स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन

●

लेखक

डॉ० शिवकरण सिंह, एम० ए० (हिन्दी-अंग्रेजी), पी-एच० डी०

हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

किताब महल, इलाहाबाद

१९६७

प्रिय अनुज

परमानन्द और राजकुमार

को

जिन्हें नियति के क्रूर हाथों

ने

उनकी किशोरावस्था में ही

मुझसे छीन लिया

दो शब्द

आज हिन्दी के क्षेत्र में अध्ययन-अध्यापन की अभिवृद्धि के साथ ही ऐसे ग्रंथों की आवश्यकता सामने आती रहती है जिसमें पाश्चात्य विचारधाराओं की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आलोचना हो। सामान्यतः आधुनिक हिन्दी साहित्य कई अर्थों में अन्य देशों की वैचारिक गतिविधि से निरंतर आन्दोलित हो रहा है। सीधे अथवा कुछ घूम-फिरकर इधर की बात उधर होती रहती है। हिन्दी के कृतिकार भी इस अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान में योग देते हैं और समीक्षक तो विदेशी चश्मे से देखने में नितांत पटु होते ही जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में युग की ऐसी आकांक्षा मालूम पड़ती है कि सदैव की भाँति पूर्व और पश्चिम में समन्वय का योग उपस्थित किया जाय। अतएव हमें चाहिए कि पश्चिमी देशों की विविध क्षेत्रीय विचारधाराओं को भारतीय परिपार्श्व में रखकर, व्यापक दृष्टिकोण से कुछ मेल-मिलाप की बातें सोचें-विचारें।

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने कुछ इसी प्रकार का प्रयास किया है। यूरोप के रोमांटिसिज्म और हिन्दी के छायावाद की तारतमिक परीक्षा दोनों के आधारिक तत्त्वों और तुलनात्मक प्रक्रिया के भेद को स्पष्ट करती है। दर्शन की एक व्यापक लहर ऐसी बही है कि उसने बड़े पैमाने पर एक बड़े भूभाग को प्रभावित किया और युग के प्रतिनिधि सचेतक साहित्यकार-जगत् को उसने आन्दोलित किया। इसी तथ्य की ओर लेखक ने, अपने ढंग से ध्यान आकर्षित किया है। विषय की विवेचना में उसने सुस्पष्टता रखी है और जहाँ तक हो सका है असंबद्ध अथवा आनुषंगिक पक्षों को उसने बचाया है। विषय-विश्लेषण अपने में पूर्ण बना दिया गया है—यों तो 'इदमित्थम्' की शक्ति किसी में नहीं हो सकती।

इस रचना में लेखक की ईमानदारी का पूरा प्रमाण मिलता है और मेरे विचार से कृतिकार के लिए इससे बढ़कर और कोई अन्य संतोष की बात नहीं हो सकती। इस आधार पर मैं उसे श्रेय का भागी मानता हूँ और अपने पद का विचार कर आत्म-संतुष्टि का अनुभव करता हूँ। मुझे पूरी आशा है कि हिन्दी में इस प्रकार और कोटि की और भी नूतन कृतियाँ समीप भविष्य में सामने आएँगी और उनकी उपादेयता सिद्ध होगी।

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

आमुख

प्रस्तुत 'प्रबन्ध' में स्वच्छन्दतावाद एवम् छायावाद के तुलनात्मक अध्ययन की चेष्टा की गई है। मानव-समाज की आवश्यकता, आकांक्षा एवं चलन की सम्पूर्ण मानसिक एवं व्यावहारिक क्रियाशीलता का निरूपण एवं चित्रांकन करने में साहित्य समाज का दर्पण है। समष्टि-जीवन की व्यापक जानकारी और तद्विषयक गहरी सहानुभूति-समानुभूति की जितनी मात्रा साहित्यकार में होगी उसी अनुपात में उसका साहित्य समाज की प्रतिकृति एवं प्रतिरूप बन सकेगा। हिंदी के प्रेमचन्द तथा यूरोपीय साहित्य के गोर्की, टालस्टाय, इ० एम० फोस्टर की महत्ता इसी से है। किंतु आज साहित्य की गरिमा का, उसके समाज का दर्पण बनने से अधिक, सबल पहलू यह है कि साहित्य जीवन का सफल प्रेरक सिद्ध हुआ है। समाज का दर्पण बनने की अपेक्षा समाज का सर्जक बनने में साहित्य का श्रेयस् अधिक स्पष्ट हो चला है। इस प्रकार साहित्य एवं समाज के परस्पर प्रेरक-प्रेरित भाव में दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध उत्तरोत्तर पुष्ट होता जा रहा है। स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद के साहित्य में इस अन्योन्याश्रय की स्थिति विशेष रूप से स्पष्ट है।

विज्ञान की नयी-नयी उपलब्धियों में विश्व की दूरी जितनी ही मिटती जा रही है, विश्व-समाज का रूप भी उतना ही साकार एवं स्पष्ट होता जा रहा है, और तब विभिन्न भू-भागों के साहित्य में मिलते-जुलते रूप की संभावना और भी सहज हो चली है। अतः यूरोपीय स्वच्छन्दतावाद एवं हिन्दी के भारतीय छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन इस दृष्टि से विशेष उद्देश्य की सिद्धि करता है। अपनी जानकारी और अध्ययन में जितना अधिक संभव हो सका है, प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने विषय को विस्तृत विवेचन के साथ रखने का प्रयत्न किया है।

हिन्दी आलोचना-जगत् में यूरोपीय स्वच्छन्दतावाद के सन्दर्भ में अपने यहाँ के 'छायावाद' का अध्ययन और मूल्यांकन विशेष रूप से मत-वैभिन्न्य का विषय रहा है। मत-भिन्नता विचार-स्वातन्त्र्य का ही नहीं, विचार-विकास का भी प्रमाण है। प्रस्तुत प्रबंध में मत-भिन्नता की दोनों सीमाओं के बीच सामंजस्य बनाकर स्वच्छन्दतावाद एवम् छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। लेखक का इस विवेचन में अपना कोई पूर्वाग्रह नहीं रहा है। वैसे यह दावा नहीं किया जा सकता कि उद्देश्य की पूर्ति में जाने-अनजाने कहीं कुछ विचलन हुआ ही न होगा क्योंकि त्रुटि मनुष्य से ही होती है।

प्रबन्ध का खण्ड (क) इन वादों की सैद्धान्तिक तुलना से सम्बद्ध है। खण्ड (ख) में कवियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। कवियों में हिन्दी के पन्त, निराला, जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा तथा अंग्रेजी के शेली, कीट्स, बाइरन, वर्ड्सवर्थ, सी० जी० रोज़ेटी तथा डी० जी० रोज़ेटी को लिया गया है। खण्ड (ग) में उनकी कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार कर्तृत्व, कर्त्ता एवम् कृति का पृथक्-पृथक् खण्डों में अनुशीलन प्रस्तुत है। इन खण्डों में कतिपय आलोचकों एवम् उनके मानदण्डों का उल्लेख करते हुए मौलिक दृष्टि से निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया गया है।

तुलनात्मक अध्ययन होने तथा अंग्रेजी के उद्धरणों को अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में प्रस्तुत करने के कारण प्रबन्ध का कुछ विस्तार हो गया है। फिर भी दोनों विचार धाराओं के तथ्यों को सम्मुख उपस्थित करके ही उस पर कुछ कहना नितान्त आवश्यक था। प्रबन्ध के कुछ अध्याय तो एक में मिलाकर लिखे ही नहीं जा सकते थे। 'पृष्ठभूमि', 'प्रेरणा-स्रोत', 'परिभाषा एवम् व्याख्या' को एक साथ लेना विवेचन-विकास की दृष्टि से सुकर न होता। इसीलिए उन्हें अलग-अलग रखा गया है। अतएव इस प्रकार जो भी विषय-विस्तार हो गया है वह अनावश्यक प्रतीत होते हुए भी अपेक्षित था।

विशेष कृपालु होकर अध्यक्ष महोदय श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने मुझे इस विषय पर प्रबन्ध लिखने का जो सुअवसर प्रदान किया है उसके सम्बन्ध में मैं किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित करूँ। प्रबन्ध-निर्देशक, गुरुजनों एवं मित्रों के ऋण से मैं कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा क्योंकि प्रबन्ध के लेखन में वे बराबर मेरी सहायता करने के लिए तत्पर रहे।

शिवकरण सिंह

तिलमापुर सिंधोरा

वाराणसी

अनुक्रमणिका

खंड (क)

सैद्धांतिक आलोचना

खण्ड (ख)

कवियों का तुलनात्मक अध्ययन

खण्ड (ग)

काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

१

वषय-प्रवेश

हिन्दी-साहित्य में 'छायावाद' को जिस सन्देह, उपेक्षा एवं भ्रान्ति के बीच गुजरना पड़ा, उसको जिस प्रकार की आलोचना-प्रत्यालोचना, आक्षेप-प्रत्याक्षेप तथा व्यंग्य एवं उपहास का विषय बनना पड़ा, वैसा सम्भवतः साहित्य की अन्य किसी धारा को नहीं। यह स्थिति इसके सौभाग्य एवं दुर्भाग्य, दोनों का कारण बनी। इस दृष्टि से इसी से मिलता-जुलता स्वरूप यूरोपीय स्वच्छन्दतावाद का भी था। नीत्शे ने ठीक ही कहा है, "मानव जाति नवीन संगीत को कर्ण-कटु समझती है।"[1] जिस प्रकार सत्य के प्रति समादर के भाव में प्रत्येक ज्ञान का आरम्भ एवं अन्त निहित है, उसी प्रकार परिवर्तन द्वारा ही प्रत्येक साहित्य अपने चिरनवीन एवं आशाप्रद परिवेश को बनाये रखने में सक्षम है। 'टेनीसन' के किंग आर्थर ने विदा होते समय जो सन्देश दिया वह आज भी हमारे लिये अनुकरणीय है। उसका विचार था "पुरातन व्यवस्थायें चिरनवीन व्यवस्थाओं को अपने स्थान पर स्थापित करती हुई, परिवर्तित होती रहती हैं। विधाता अपनी इच्छा की पूर्ति विविध रूप में करता रहता है। अगर ऐसा न हो तो एक अच्छी व्यवस्था सम्पूर्ण विश्व को पतनोन्मुख बना सकती है।"[2] यथार्थ में 'टेनीसन' के इन शब्दों में एक सार्वभौम सत्य निहित है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होने के कारण सतत् परिवर्तनशील रहा है। परम्परागत रूढ़ि-शृङ्खलाओं से जब भी यह आक्रान्त हुआ है तो वह उन्हें झन-झनाकर तोड़ फेंकने के लिये उद्यत हुआ है। 'स्वच्छन्दतावादी' एवं 'छायावादी' साहित्यिक विधाओं के आविर्भाव में यही सत्य निहित है। जिन्हें हम 'स्वच्छन्दतावादी' एवं 'छायावादी' साहित्य के नाम से अभिहित करते हैं, उनकी मूल प्रवृत्तियों का, इन दोनों ही

---

[1] Mankind has a very bad ear for new music.—*Nietzsche.*

[2] Old order changeth yielding place to new.
God fulfils himself in many ways.
Lest one good order should corrupt the world. —*Tennyson.*

साहित्यों में उनके आविर्भाव के पूर्व दर्शन हो चुका था, पर वे साहित्यिक आन्दोलन का रूप न ले सकी थीं। इसीलिये अंग्रेजी में इस आन्दोलन को 'स्वच्छन्तावादी पुनरुत्थान'[1] का नाम दिया गया। हिन्दी में भी 'घनानन्द', 'बोधा' आदि की कविताओं की प्रवृत्तियों के आधार पर इसे स्वच्छन्द धारा के नाम से अभिहित करने की प्रथा चल पड़ी। पर विचारणीय यह है कि अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के पूर्व उनके यहाँ जिस प्रबल स्वच्छन्दतावादी धारा का जन्म हो चुका था उस प्रकार का प्रवाह हिन्दी में दृष्टिगोचर नहीं होता।

'स्वच्छन्दतावाद' एवं 'छायावाद' की मूल प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात करने पर पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। दोनों में सौन्दर्य-भावना, प्रकृति-प्रेम, मानवीय दृष्टिकोण, आत्माभिव्यंजन, नीति-विद्रोह, रहस्य-भावना, वैयक्तिक प्रेमाभिव्यक्ति, देवकथा तथा प्राचीन संस्कृति के प्रति व्यामोह, प्रतीक-योजना, निराशा, पलायन, अहं के उदात्तीकरण और सृजन की अस्पष्टता के दर्शन होते हैं। इस साम्य के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावाद से अलग छायावाद की कोई सत्ता नहीं। कतिपय आलोचकों ने इसे माना भी है। पर केवल प्रवृत्तियों के आधार पर साहित्यिक विधाओं के साम्य एवं वैषम्य के निर्णय के विषय में कुछ कहना समीचीन न होगा। प्रवृत्तियाँ किसी विशिष्ट, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में क्रियाशील होकर उस देश एवं काल का साहित्यिक रूप लेती हैं। इसके अतिरिक्त देश विशेष की साहित्यिक परम्परा भी होती है जिसके अनुसार उन्हें परिवर्तित होकर स्थान ग्रहण करना पड़ता है। इन प्रवृत्तियों की निर्णायिका उपयुक्त परिस्थितियाँ होती हैं। अगर इन परिस्थितियों—आर्थिक, एवं सामाजिक मान्यताओं में समानता है तो साहित्य में भी प्राय: समानता का होना सम्भव है। अगर इनमें वैषम्य है तो प्रवृत्तियों में साम्य होते हुए भी सामान्य रूप से विविध वैषम्य दृष्टिगोचर होंगे।

प्रत्येक देश के साहित्य में 'परम्परावाद' एवं 'स्वच्छन्दतावाद' दो ही प्रवृत्तियाँ एक दूसरी के बाद समयानुसार स्थान ग्रहण करती दृष्टिगोचर होती हैं। जब देश में परम्परावादी प्रवृत्ति होगी तो उसका किसी अन्य देश की परम्परावादी प्रवृत्ति के साथ साम्य सम्भव है। इसी प्रकार जब देश में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का आविर्भाव होगा तो उसका भी अन्य देशों की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति से साम्य हो सकता है। इसका मूल कारण यह है कि इन दोनों ही साहित्यिक धाराओं की निश्चित मान्यतायें हैं और ये मान्यतायें देश-काल की परिधि को बिना स्वीकार

---

[1]Romantic Revival.

किये सर्वत्र प्रायः एक-सी हैं। अतएव केवल प्रभाव के आधार पर इनकी व्याख्या प्रस्तुत करना अनुपयुक्त होगा। 'द्विवेदी युग' पर परम्परावाद का प्रभाव अभी तक नहीं माना गया है, फिर भी परम्परावादी साहित्य एवं द्विवेदीयुगीन हिन्दी साहित्य में पर्याप्त साम्य है। अगर प्रभाव के आधार पर ही साम्य-वैषम्य की व्याख्या करना है तो बिना प्रभाव के यह साम्य कैसे सम्भव हुआ ? परम्परावादी एवं स्वच्छन्दतावादी, दोनों ही विधाओं के लिए एक निश्चित मनोवृत्ति का होना परमावश्यक है। इसी आधार पर 'स्वच्छन्दतावादी' विचारधारा के अन्दर परम्परा-वादी विचारधारा से प्रभावित कवियों का होना अथवा परम्परावादी काल में कतिपय स्वच्छन्दतावादी कवियों का मिल जाना स्वाभाविक है।

प्रायः काव्य-प्रेरणा के लिए प्रभाव की बात उठाई जाती है, पर इस दृष्टि से भी कई प्रश्न सामने आते हैं। प्रथम तो यह कि प्रभाव के लिए पूरे विश्व-साहित्य से धारा विशेष को क्यों चुना जाय, दूसरे यह कि प्रभाव ग्रहण करने के लिए अगर उपयुक्त वातावरण न हो तो वह क्या यथार्थ एवं स्थायी बन सकेगा ? पहले प्रश्न के उत्तरस्वरूप हम कह सकते हैं कि लेखक धारा विशेष या विचार विशेष के लेखकों को इसलिये चुनता है कि उनकी प्रवृत्तियों का उससे कुछ साम्य है। परन्तु सृजन-क्षेत्र में किसी दूसरे के प्रभाव को ग्रहण करने के पहले अपने अन्दर उसे समाहित करने की क्षमता एवं उसे पुष्पित एवं फलित करने के लिए उपयुक्त पृष्ठ-भूमि का अवतरण कवि के लिए आवश्यक हो जाता है। जलद एक ही प्रकार की वृष्टि सर्वत्र करता है। बंजर भूमि में कुछ नहीं उगता एवं उर्वर भूमि में बीज पड़ते ही उसके अंकुर प्रस्फुटित हो उठते हैं और वह हरियाली से आपूर्ण हो उठती है। छायावाद पर स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव है। इसको इसके प्रतिष्ठित कवियों ने स्वीकार भी किया है। पर वह पृष्ठभूमि एवं क्षमता के अभाव में कभी भी प्रस्फुटित नहीं हो सकता था। अतएव स्वच्छन्दतावाद के प्रभाव के बावजूद छायावाद की पृष्ठभूमि एवं क्षमता को मान्यता देना पर्याप्त तर्कसंगत ज्ञात होता है। इस सम्बन्ध में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि 'छायावादी' युग के प्रथम उत्थान के कवियों ने अंग्रेजी एवं बँगला से प्रेरणा अवश्य ली है पर उसी रूप में, जैसे एक जीवित साहित्य दूसरे जीवित साहित्य से प्रेरणा लेता है। छायावादी काव्य अपनी परम्परा से विच्छिन्न विदेशी काव्य नहीं, परिवर्तित परिस्थिति में अपनी ही सामंजस्यशील आर्य-साहित्य-साधना का युगानुकूल मोड़ है।[1]

---

[1] **प्रो० क्षेम : छायावाद की काव्य-साधना, पृ० ७।**

प्रभाव की बात करते समय हम इस सत्य को आँखों से ओझल कर देते हैं कि साहित्य समाज की उपज है, प्रायः विश्व में विकास का क्रम अबाध रूप से क्रियाशील है। उत्थान एवं पतन का क्रम भी चलता रहता है। पर इस विकास-क्रम में सर्वत्र एक-सी ही प्रगति नहीं होती। जब विभिन्न देश समयानुसार प्रगति या पतन की एक-सी स्थिति से गुजरते हैं तो उनकी परिस्थितियों में एक-सी इच्छाओं, आकांक्षाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन (१७९८-१८३०) उस देश की तत्कालीन स्थिति की उपज है और छायावादी आन्दोलन (१९१३-१९३६) भारत की विभिन्न परिस्थितियों की देन है। इन दोनों की परिस्थितियों के अध्ययन के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनमें कुछ साम्य अवश्य था। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि इन दोनों ही साहित्यिक धाराओं का साम्य इस परिस्थिति-साम्य पर आधारित है।

आदर्श एवं अभिव्यंजना-प्रणाली के साम्य पर भी कतिपय विचारकों ने अपना मत प्रकट किया है। आदर्श के विषय में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि मानव की अन्तःसलिला विचारधारा के उपयुक्त न होने पर वह अस्वीकरणीय ही रहता है। उसकी स्थिति उस रोम के सदृश है जिसका निर्माण एक दिन में सम्भव नहीं था। इस दृष्टि से किसी भी आदर्श विशेष को अपना कर बिना उपयुक्त साधन के उस पर चल पड़ने की बात स्वतःसिद्ध निरर्थकता है। शैली का एक विशेष प्रकार मानने में भी यही प्रश्न सामने आता है। शैली के अन्दर हम उपयुक्तता (Propriety), अभिव्यक्ति का औचित्य (Justness of expression) तथा भाषा का प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल होना (Suitability of the language to the subject we treat) आदि बातें हम ले सकते हैं। 'मिडलटन मरी' का विचार है कि "शैली एक निश्चित विचार को उन परिस्थितियों से सम्बद्ध कर देती है जो उसके सम्भावित प्रभाव को अभिव्यक्ति दे सके।"[1] परन्तु इस अभिव्यक्ति में भी कलात्मक शैली के तीन रूप दृष्टिगोचर होते हैं—

(१) स्वभावगत विलक्षणता से सम्बद्ध शैली (Style as idiosyncrasy)

(२) अभिव्यक्ति-कौशल से सम्बद्ध शैली (Style as technique of exposition)

(३) साहित्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि के रूप में शैली (Style as highest achievement of literature)

---

[1] Style consists in adding to a given thought all the circumstances calculated to produce the whole effect that the thought out to produce. —*Middleton Murry*.

लेखक के व्यक्तित्व में कई गुणों एवं विशिष्टताओं का समावेश होता है। जहाँ पर उसकी शैली उसकी स्वभावगत विलक्षणता से सम्बद्ध होती है, उसे प्रथम कोटि में रखते हैं। जहाँ विचारों के अनुक्रम अथवा श्रृङ्खला को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है वहाँ उसे हम अभिव्यक्ति-कौशल से सम्बद्ध मान कर द्वितीय श्रेणी में उसकी गणना करते हैं। इसके द्वारा केवल बौद्धिक विचारों का ही अभिव्यक्तीकरण सम्भव है। परन्तु तृतीय प्रकार की शैली में व्यक्तिगत विलक्षणता के लिए स्थान होते हुए भी वह इससे परे होती है। यहाँ उसका व्यक्तित्व पूर्ण रूप से इसका उपजीव्य होता है।

'बफन' ने शैली को मनुष्य कहा है[1] और 'फ्लावेय' ने इसे वस्तुओं को देखने का व्यक्तिगत तरीका माना है।[2] वास्तव में मानव जिस बात को सोचता हैं उसी को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार उसकी शैली में व्यक्तिगत तत्वों का होना स्वाभाविक है। अगर व्यक्ति-साम्य असम्भव है तो फिर शैली-साम्य कैसे सम्भव हो सकता है ? इसीलिए 'छायावादी' एवं 'स्वच्छन्दतावादी' लेखकों की शैली में हम पर्याप्त विभिन्नता देखते हैं। सत्य यह है कि 'स्वच्छन्दतावादी' एवं 'छायावादी' शैली में हमें मोटे तौर से इन विचारधाराओं में आने वाले सभी कवियों की विशिष्टता का समाहित रूप तो मिल सकता है, परन्तु उसके सभी गुण किसी विशिष्ट लेखक में नहीं पाये जाते। वह उनसे अधिक गुणों वाला भी हो सकता है और कम गुणों वाला भी। अतएव इस शैली की समानता का भी एक सापेक्ष महत्व है और इस दृष्टि से विचार करने से उनकी अभिव्यक्ति में प्रायः वैसी ही समानता है जैसी विचारों में।

वास्तव में ये कवि उद्बुद्ध चेतना के भावुक विचारक थे। इनका उद्देश्य सृजन था। वे अपने इस सर्जन में सभी प्रकार की मान्य परम्पराओं को त्याग कर मानव-मस्तिष्क को सामान्य वस्तुओं में निहित ज्ञान का दर्शन कराना चाहते थे। वे एक प्रकार से विद्रोही थे और इनके विद्रोह के स्वर ही इनकी कविता में विविध रूप से प्रतिध्वनित हुए। इस उद्देश्य की समानता के कारण भी उनमें कुछ विचारगत एवं शैलीगत साम्यदृष्टिगोचर होता है।

मैक्सिम गोर्की ने कहा है कि "कलाकार अपनी प्रवृतियों से भी विशाल है। उसकी भाव-राशि अथाह एवं अचिन्त्य है। वास्तव में सच्चा कलाकार अपनी कला के भीतर विराट सत्य व्यक्त करता है। उसकी कला प्रकृति सौन्दर्य का प्रतिरूप न होकर अन्तःसौन्दर्य का दर्पण है। इसके कण-कण में इसकी आत्मा समाई रहती

---

[1] Style is man himself. —*Buffon*.

[2] It is writer's individual way of seeing things.

है। प्रत्येक कला-कोविद के अन्तर्मानस से अनन्त धाराओं का स्रोत निःसृत होकर उसकी विराट क्षमता को व्यक्त करता हुआ, देश एवं काल की परिधि का अतिक्रमण कर सभी के लिए इन्द्रिय-ग्राह्य बन जाता है। यही नहीं वह अपनी संस्कृति से युगान्तर उपस्थित कर देता है। वह पथ-प्रदर्शक ही नहीं युग-निर्माता भी होता है। युग के वातावरण, परिस्थिति, विचारधारा एवं आदर्शों पर उसके व्यापक प्रभाव की मुहर लगी रहती है।"[1] इस प्रकार के कलाकार सच्चे रूप में मानव के कलाकार होते हैं। मानवता का इतिहास भी प्रायः सर्वत्र सब कालों एवं देशों में एक-सा रहता है। इसके सुख-दुःख, आशा-निराशा, उत्कण्ठा एवं अभिलाषा भी सब प्रकार के वैभिन्य के बावजूद एक-सी रही है। 'छायावाद' एवं 'स्वच्छन्दतावाद' में सामान्य साम्य-वैषम्य के अतिरिक्त विचार की एक ऐसी अन्तःसलिला के दर्शन हुए हैं जिससे कलाकार सर्वसामान्य अनुभूतियों से उठ कर मानवता के शाश्वत सत्यों को वाणी प्रदान कर उसे अभिव्यक्ति दे सके हैं और इन शाश्वत सत्यों के बाह्य आकार-प्रकार तथा सांस्कृतिक एवं सामाजिक वैषम्य के बावजूद विचार-साम्य के दर्शन हुए हैं। यथार्थ में निःसीम ज्ञान के प्रकाश में कवि के चिन्तन के सार्वभौमिक सत्यों में, पाठक को स्तब्ध कर देनेवाला मनोमुग्धकारी सामंजस्य दृष्टिगोचर हुआ है। परम्पराओं, सांस्कृतिक मान्यताओं, रहन-सहन की विभिन्नताओं को पुष्प-पराग की तरह भेद कर सर्वत्र एक रस एक रूप में उपस्थित रहने वाले सत्यों का दर्शन और उन्हीं की इन कवियों द्वारा अभिव्यक्ति ही इन कलाकारों का मुख्य काम है। इस प्रकार एक दूसरे के वे इतने समीप हैं जितनी समीपता की आशा नहीं की जा सकती।

इस अध्ययन में मुझे शैलीगत साम्य-वैषम्य या प्रभाव के जादू ने उतना आकृष्ट नहीं किया है जितना कि शाश्वत सत्यों के साम्य ने। इन दो आन्दोलनों का अध्ययन मेरे लिए इन महान् कालाकारों की आत्मा के विकास का इतिहास है। लेखक ने बाह्य एवं दृश्य स्थूलताओं को छोड़ कर उनकी उस नैसर्गिक आत्मा की पुकार को पकड़ने की कोशिश की है जिसमें देश-काल की सीमा की परिधि के परे चिरन्तन मानवीय सत्यों का एक प्रकाश निहित है। लेखक की कुछ ऐसी मान्यता है कि कवि को हम उसके बाह्य आकार-प्रकार, वेष-भूषा एवं कवि होने के लिए मान्यता नहीं प्रदान करते। हम तो उसको इसलिए महान् समझते हैं कि वह परिभू है, स्वयंभू है और साथ ही वह मानव-मन एवं प्रकृति की अतल गहराइयों तक जाकर उसके सत्य को इस प्रकार अभिव्यक्त कर देता है कि वे हमारे लिए

---

[1] **साहित्य दर्शन : शचीरानी गुर्टू।**

सुलभ एवं ग्रहणीय बन जाते हैं। इन दोनों ही धाराओं के कवियों में इस प्रकार मानव चिन्तन-धारा के विकास-क्रम की निश्चित सरणि का दर्शन हुआ है। इस निश्चित सरणि के साम्य एवं वैषम्य को ही चित्रित करना मेरा प्रमुख उद्देश्य रहा है।

यथार्थ में स्थूल मान्यताओं ने मानव-मानव के बीच एक भेद की दीवार खड़ी कर उसका विभिन्न वर्गों में बँटवारा कर रखा है। परन्तु जब आज देश-काल की सीमायें टूट रही हैं और चिन्तक विश्व को एक राष्ट्र का रूप प्रदान करने के लिए उत्सुक हैं तो इस अवस्था में विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन कर उनकी स्थूलता में छिपे चिरन्तन सत्यों के स्पष्टीकरण का भी महत्व है। अध्ययन के दौरान में ग्रीक दर्शन एवं भारतीय दर्शन की कुछ बातें आई हैं। बाह्य विभिन्नताओं के बावजूद उनमें निहित साम्य इसी बात की ओर संकेत करता है कि मानवता के चिरन्तन सत्य एक से हैं और वे देश-काल की सीमा में नहीं बँध सकते। इस विचार की पृष्ठभूमि में वे मान्यतायें मेरे लिए निरर्थक न सिद्ध होती हुई अधिक आकर्षक भी नहीं सिद्ध हो सकी हैं जिनमें हम इन धाराओं को केवल शैली का प्रकार मान कर अथवा केवल प्रभाव के आधार पर इनकी विवेचना प्रस्तुत करते हैं। स्वच्छन्दतावाद स्वयं अपने आन्दोलन के लिए जर्मनी, फ्रांस, यूनान, इटली, स्पेन प्रभृति देशों का मुखापेक्षी रहा है। उसने उसके स्पन्दन को अपने साहित्यिक कलेवर में समाहित करने का अद्भुत प्रयत्न किया है। इसे दृष्टिपथ में रख कर हम प्रभाव के कारण छायावाद को हेय नहीं ठहरा सकते। आज के युग में एतद्देशीयता स्वयंसिद्ध निरर्थकता प्रमाणित हुई है। साहित्य ने भी कभी सीमा नहीं स्वीकार किया है। यह असीम है। अतएव इसमें जो भी प्रभाव आये हैं, वे मिल कर एकमेक होकर इसके अंश बन गये हैं। परन्तु इस दृष्टि से यह मान लेना कि छायावादी साहित्य में सभी कुछ विदेशी ही है भ्रान्तिमूलक होगा।

इस प्रकार प्रभाव और शैली की एकता एवं विभिन्नता के साथ ही साथ चिरन्तन सत्यों की एकता एवं अनेकता को ढूँढ़ने का प्रयत्न ही इस प्रबन्ध का मूल उद्देश्य है। लेखक का मत है कि 'छायावाद' में 'स्वच्छन्दतावाद' की प्रवृत्तियाँ हैं, फिर भी छायावाद स्वच्छन्दतावाद नहीं है। दोनों में बहिरंग परीक्षा के आधार पर स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होता है। परन्तु अन्तरंग परीक्षा द्वारा इनमें शाश्वत विचारों की एक अजस्र निर्झरिणी प्रवाहित होती दृष्टिगोचर होती है जिनमें पर्याप्त साम्य है।

२

पृष्ठभूमि

'स्वच्छन्दतावाद' एवं 'छायावाद' का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक कि उनके पूर्व चलती हुई साहित्यिक परम्परा तथा विचारधाराओं का हम अध्ययन कर लें। अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छन्दतावाद के पूर्व पुरातनवाद का पर्याप्त प्रभाव था। सन् १८६० के (रेस्टोरेशन) के पश्चात् अंग्रेजी साहित्य में इस विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ। इसका मूल कारण एलिजाबेथ-कालीन अतिशय स्वच्छन्दता तथा मेटाफिज़िकल-कालीन दुरूहता की प्रतिक्रिया थी। एलिज़ाबेथ-कालीन साहित्य में कल्पना के उन्मुक्त स्वरूप के दर्शन होते हैं। इस पर इंगलैण्ड तथा इटली का सम्मिलित प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है। पेट्रार्क के अनुकरण पर चतुर्दशपदी में प्रेमगीतों का वर्णन हुआ है। 'स्पेन्सर' में यह विचारधारा अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हुई हैं। 'रोमांस' के आधार पर तरह-तरह की रचनाएँ की गई हैं। शूरवीरों की विचित्र तलवार एवं उनके विचित्र अंग-सौष्ठव तथा विकृति की रंगीन शब्द-चित्रों में कहानियाँ अवतरित हुई हैं। इनकी पृष्ठभूमि में अन्य बाह्य प्राकृतिक उपादान भी या तो ऐन्द्रजालिक भयंकरता से ओत-प्रोत रहे हैं या अग्नि उगलने वाले शैतानों के आवास माने गये हैं। तात्पर्य यह कि एलिज़ाबेथ-कालीन स्वच्छन्दतावाद की त्रुटि उसके निश्चित स्वरूप के अभाव तथा अतिरंजित घटनाओं को चित्रित करने के कौशल एवं शब्दाडम्बर में निहित हैं—

मेटाफिजिकल कविता सौन्दर्यशास्त्र, रीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र एवं धर्मशास्त्र की अन्वीक्षिका थी। अतएव इसमें गम्भीर विषयों का समावेश हो जाना स्वाभाविक था। अरस्तू के अनुसार कविता को प्रकृति का अनुकरण करना चाहिए। पुनरुत्थान-काल के विवेचकों के अनुसार कविता को जीवन का अनुकरण करना चाहिए। पर इस काल के लेखक न तो प्रकृति का अनुकरण कर सके और न जीवन का। उनकी कविताओं में वैचित्र्य एवं विलक्षणता के दर्शन हुए और तद्नुरूप शैली भी विलक्षण ही रही। सारांश यह कि उनके विषय असाधारण, शैली कृत्रिम एवं विचार काल्पनिक थे।

पुरातनतावाद

किसी भी साहित्यिक विचारधारा के उच्छृङ्खल एवं नियमहीन हो जाने पर नवीन विचारधारा का प्रादुर्भाव आवश्यक हो जाता है। इस अतिशयता से मुक्ति पाने के लिए साहित्य-परिष्कार की भावना प्रबल हो उठी, पर प्रश्न यह उठा कि किस आधार पर इन अपेक्षित परिवर्तनों को समाविष्ट किया जाय। अत्यधिक छान-बीन के पश्चात् लोगों को वर्जिल एवं होमर जैसे दिग्गज कलाकारों का आश्रय लेना पड़ा। ये लेखक अपने ही काल में न केवल पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके थे, अपितु उस काल के लोग इन्हें पर्याप्त समादर प्रदान करते थे। पुरातनतावादी लेखकों ने इनके आदर्शों को स्वीकार किया। अतिशय स्वच्छन्दता से इसे मुक्त रखने के लिए नये-नये नियम भी बनाए गये। कल्पनातिशयता के दुष्परिणामों के तो ये प्रत्यक्षदर्शी थे ही। अतएव काव्य-क्षेत्र से कल्पना का बहिष्कार हुआ। 'अनुद्वेग, आत्मा-निग्रह, लालित्य, संतुलन, नियम, शुद्धता एवं गणित जैसी निर्व्याज व्यंजना' इसके विशिष्ट गुण माने गये।

पुरातनतावादी साहित्य के विकास में उस काल की राजनीतिक आवश्यकता ने भी विशेष सहयोग प्रदान किया। चार्ल्स द्वितीय ने देश-निष्कासन का अपना समय फ्रांस में व्यतीत किया था। उसी के साथ उसके दरबारी डेनेहम तथा बेलर भी गये थे। उस काल में फ्रांस में एक ऐसे प्रबुद्ध लेखकों का समुदाय उदित हुआ जो यथार्थ रूप में पुरातनवादी विचारधारा का ही समर्थक रहा। 'ब्यायल्यू' (Boileau) इसका मार्ग-दर्शक था। फ्रांसीसी लेखकों का मुख्य उद्देश्य अतिशय स्वच्छन्दता एवं भावनाप्रवणता का विरोध था। परिणामस्वरूप डेनेहम तथा बेलर उससे अत्यधिक प्रभावित हुए।

आर० ए० स्काट जेम्स ने अपने 'मेकिंग आफ लिटरेचर' में स्वच्छन्दतावाद एवं पुरातनतावाद की तुलना करते हुए लिखा है कि "पुरातनतावाद के लिए बाह्य स्वरूप अधिक महत्वपूर्ण है। इस बाह्य स्वरूप में संतुलन, नियम, अनुपात, नियन्त्रण एवं एकता होनी चाहिए। स्वच्छन्दतावादी उस बाह्य स्वरूप में निहित भावना को महत्वपूर्ण समझता है। वह उस स्वच्छन्दता का प्रतीक है जो किसी स्वरूप विशेष से सन्तुष्ट न होकर अपनी भावना के अनुसार प्रयोग के आधार पर कभी किसी स्वरूप को महत्व देती है तो कभी किसी को। कोई इस दृश्य जगत् के ज्ञात सौन्दर्य पर प्रकाश डालता है, तो कोई दूसरे विश्व की बात करता है। इस प्रकार जहाँ एक के लिए मानवता का उचित अध्ययन ही मनुष्य का अध्ययन है। वहीं दूसरा अपनी आत्मा की खोज में विचित्र एवं अज्ञात स्थानों तथा प्रकृति के निर्जन स्वरूपों में भटकता फिरता है। एक मध्यवर्ती मार्ग का अभिलाषी है, दूसरा सीमान्त का। शान्ति

(Repose) परम्परावादी को पसन्द है पर साहस स्वच्छन्दतावादी को। एक परम्परा के अनुमोदन की चाह रखता है, पर दूसरा सदा नूतनता की खोज में रत रहता है। परम्परावाद के लक्षण में हम औचित्य, उपयुक्तता, मान, संयम, अनुशासन, परम्परानुमोदन, सत्ताधिकार, अनुभव आदि की गणना कर सकते हैं। स्वच्छन्दतावाद के लक्षणों में आवेश, शक्ति, आकुलता, आध्यात्मिकता, कौतूहल, प्रक्षुब्धता, प्रगति, स्वातन्त्र्य एवं मुक्त आत्म-प्रकाशन को स्वीकार कर सकते हैं।"[1]

एफ० एल० ल्यूकस ने मानव-अहं को तीन भागों में विभाजित किया है : (१) (Id) मूल प्रकृत्यात्मक संवेग, (२) (Super ego) या (Ego ideal) आदर्शात्मक अहं और (३) (Reality principle) यथार्थ सिद्धान्त। उनके अनुसार साहित्य में यथार्थवाद 'रियलिटी प्रिंसिपल' का आधार लेकर चलता है, स्वच्छन्दतावाद 'इड' का और परम्परावाद 'सुपर-ईगो' का। उन्होंने अपने विचार-तारतम्य को आगे बढ़ाते हुए इस सत्य को अभिव्यक्त किया है कि अपनी सीमा में पार्थिनान, सोफोक्लीज, होरेस, रेसिन अथवा जान्सन की कृतियों में परम्परावाद प्रशंसनीय रूप में आया है। 'एफ० एल० ल्यूकस' ने पोप के निम्नांकित शब्दों को उद्धृत करते हुए कहा है कि—

> **"यह गहन है फिर भी स्पष्ट, मृदुल है फिर भी आकर्षणविहीन नहीं, शक्ति-संयुक्त है फिर भी काव्योन्मादरहित, बिना अतिरेक के सर्वाङ्गपूर्ण है।"**
> Though deep yet clear, though gentle yet not dull
> Strong without rage, without overflowing full.[2]

इस उद्धरण से परम्परावाद के चार गुणों पर प्रकाश पड़ता है : (१) गहनता के बावजूद स्पष्टता, (२) मृदुलता के बावजूद आकर्षण, (३) अकृत्रिम शक्ति-सम्पन्नता और (४) अतिरेकरहित पूर्णता। परन्तु ये गुण 'स्काटजेम्स' की परिभाषा में आ गये हैं। अतएव यहाँ विचारणीय है कि परम्परावाद को आलोचक ने 'सुपर ईगो' से क्यों सम्बद्ध माना है ? आदर्शात्मक अहं ('सुपर-ईगो') की व्याख्या करते हुए कुमारी प्रीति अदावल ने लिखा है कि "इसे हम सामान्य भाषा में प्रयुक्त अन्तर्बोध या अन्तराल का फ्रायडीय नाम मान सकते हैं। उचित-अनुचित की नैतिक मान्यतायें इसी अंश द्वारा निर्मित होती हैं। यह अहं एवं इदं दोनों को नियन्त्रण में रखता है।"[3] 'सुपर-ईगो' को ल्यूकस ने विवेक माना है जो यह कहता है

---

[1] *Scott James*, The Making of Literature Classic and Romantic.,
[2] *F. L. Lucas*, Literature and Psychological Criticism.
[3] **हिन्दी साहित्य कोश : 'सुपर-ईगो'।**

कि 'यह आकर्षक तो है पर गलत है। (It is pleasant but wrong) तात्पर्य यह कि आदर्श अहं विवेक-सम्पन्न नियामक शक्ति है। अतएव आदर्श अहं से जिस भी साहित्य का सम्बन्ध होगा वह अतिशयता से दूर होगा। इसकी उपयुक्तता एवं अनुपयुक्तता पर अगले अध्याय में विचार किया जायगा। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त है कि परम्परावादी साहित्य के 'सन्तुलन' एवं 'संयम' पर ही ध्यान केन्द्रित करके आलोचकों ने उपयुक्त विभाजन प्रस्तुत किया है।

'इसे प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन'[1] का भी नाम दिया गया है। प्रकृति से विवेचकों का तात्पर्य उन सभी नियमों से था जिसका पुरातन लेखकों ने प्रयोग किया था। प्रकृति की ओर अभिगमन से उनका मतलब प्रकृति के अनुशासन, उसके स्वाभाविक नियमों के अनुगमन तथा उसके बौद्धिक स्वरूप की स्वीकृति से था। वे इसे नियम, एकता सन्तुलन एवं सामंजस्य का आगार मानते थे। सारांश यह कि प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन का अर्थ प्राकृत स्वरूप की ओर लौटना अथवा जो वस्तु जिस रूप में थी उसी रूप में उपस्थित करना था।

साहित्य के इतिहासकारों ने इसे बौद्धिकता का युग भी कहा है।[2] ध्यान देने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सचमुच इस काल की कविता बुद्धि पर आधारित थी। बुद्धिप्रधान कविता की विशेषता है कि यह मस्तिष्क द्वारा प्राप्त सत्य की अनुषंगिनी होकर अग्रसर होती है। मस्तिष्क, तर्क अथवा सामान्य बुद्धि साहित्य-सृजन के लिए आवश्यक पथ-प्रदर्शन का कार्य करते हैं। सामान्य बुद्धि का भी कार्य सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करना होता है। अतएव इस आधार पर यह तर्क उपस्थित किया गया है कि कविता ऐसी होनी चाहिए जो अच्छे एवम् सुसंस्कृत मानव को उत्पन्न कर सके। परिणामस्वरूप यह कविता क्लब, काफी-हाउस एवम् ड्राइङ्ग-रूम के जीवन को तो चित्रित कर सकी परन्तु सम्पूर्ण देश एवम् बाह्य प्रकृति से सर्वथा दूर रही।

द्विवेदी युग

द्विवेदीजी स्वयम् एक सतत् प्रयत्नशील साहित्य-व्यवस्थापक थे। १९०३ में 'सरस्वती' का सम्पादन-कार्य ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने खड़ीबोली का परिष्कार आरम्भ किया और इस युग के प्रायः सभी कवियों ने उनके द्वारा निर्धारित साहित्यादर्शों का अनुसरण किया। द्विवेदीजी के पूर्व रीतिकालीन साहित्य-परम्परा का ही आधिपत्य था। रीतिकालीन कवियों ने अपनी पूर्ण पराजय स्वीकार करके

---

[1] Return to Nature.

[2] Age of Reason.

सामन्ती सभ्यता द्वारा प्राप्त अतिशय ह्रास-विलासयुक्त शृङ्गारिक जीवन को अभिव्यक्त करना अपना उद्देश्य मान लिया था। उनका मुख्य उद्देश्य 'स्वान्तः सुखाय' कविता करना न होकर 'स्वामिनः सुखाय' कविता करना हो गया था। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि की रचनाओं को लेकर सुरति आदि के वर्णनों में कवि की कला सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रयोग करने में रत थी। जो कवि अपनी कविताओं में जितनी ही कामुकता एवम् ऐन्द्रियता के चित्र प्रस्तुत कर सकता था वह उतना ही सफल कवि माना जाता था। काव्य में बाह्य अलंकरण की प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि विरहिणी विरहजन्य क्षीणता में घड़ी के पेण्डुलम की तरह इधर-उधर झूलने लगी। विरहातिरेक के कारण उसका हृदय तप्त भट्ठी बन गया और उसकी छाती पर गिर कर उसके आँसू छन-छन करने लगे। विरह की विकलता में बिना लिखी हुई पत्री भेज दी गई और नायक भी बिना अंक के ही उसे पढ़ने में समर्थ रहा। सारांश यह कि ऊहा एवं अतिशयोक्ति के जितने भी स्वरूप हो सकते थे—सपत्नियों की ईर्ष्या, खण्डिता का वाग्वैदग्ध्य, मानिनी के नखरे, अज्ञात यौवन का भोलापन, ज्ञात यौवन की शिक्षा आदि—सब उसमें चित्रित थे। प्रेम भी नायक-नायिका के सुखोपभोग में ही केन्द्रित हो गया। 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' वाली 'माघ' की अमर वाणी स्त्री-सौन्दर्य बाह्य स्थूल आकार से ही बाँध दी गई। अलंकारप्रियता इतनी बढ़ गई कि 'भूषण बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त' ही उस समय का सर्वमान्य काव्य-सिद्धान्त हो गया। तात्पर्य यह कि 'राधा कन्हाई सुमिरन को बहानो' लेकर शृंगार के जितने भी सम्भव स्वरूप थे उनको आलंकारिक भाषा में (सामन्ती संस्कृति के उन्नायकों को प्रसन्न करने के लिए) अभिव्यक्त किया गया। दूरदर्शी एवं भविष्यद्रष्टा द्विवेदी अपने समय के साहित्य पर रीतिकाल का विकृत प्रभाव नहीं सह सकते थे। भारतेन्दु-काल से ही इससे छुटकारा पाने के लिये काव्य भी छटपटा रहा था। द्विवेदी युग के सबल प्रयत्नों द्वारा उसका पूर्ण उद्धार सम्भव हो सका। अतिशृंगारिक मनोवृत्ति काव्य के लिए अनुपयुक्त मानी गई। रीतिकालीन परम्पराओं तथा रूढ़ियों के प्रति विरोध प्रकट कर जीवन के सम्बन्ध में व्यापक दृष्टि अपनाई गई।

१९वीं शताब्दी का प्रारम्भ जिसे द्विवेदी युग कहा जाता है भारतीय साहित्य का चेतना-काल है। इसमें एक ओर हमें धर्म समाज, ब्रह्म समाज, देव समाज, आर्य समाज की हलचल दृष्टिगोचर होती है तो दूसरी ओर थियोसॉफिकल सोसाइटी, इण्डियन नेशनल कांग्रेस, सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी आदि के निर्माणात्मक स्वरूपों के दर्शन होते हैं। इन सबके परिणामस्वरूप इस काल में सुधारात्मक वृत्ति को प्रश्रय मिला। अन्धविश्वास एवं मिथ्या रूढ़ियों के प्रति अनास्था की

भावना उदित हुई। लोकहित को मान्यता दी गई और राष्ट्रीयता का भाव जाग्रत हुआ। कविता के विषय इतिहास एवं पुराणों से लिए गये। विषय के अनुरूप शैली में इतिवृत्तात्मकता का समावेश हुआ। सूर के लोक-रंजन की प्रवृत्ति के स्थान पर, तुलसी के लोक-मंगल की प्रवृत्ति को प्रश्रय मिला। कवि के चित्रित भावों में बाह्य चरित्रों एवं घटनाओं को ही प्रधानता दी गई। कवि के व्यक्तिगत राग-विराग के स्थान पर वर्ण्य वस्तु को ही प्रमुख माना गया। हृदय-पक्ष पर बुद्धि-पक्ष की अमिट छाप लगी। स्वाभाविक था कि तब ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली का संघर्ष अपनी सीमा पर आता। ब्रजभाषा में हो रही कविता के स्थान पर खड़ीबोली के परिष्कृत रूप में काव्य-सृजन का सूत्रपात करना परमावश्यक हो गया, और आचार्य द्विवेदीजी यह अपेक्षित परिवर्तन सफलतापूर्वक ला सके। भाषा-परिष्कार, छन्दों की योजना एवं विचार की दृष्टि से यह नवीन प्रयोगों का काल रहा। व्याकरण-नियमों की योजना, शब्दों के समुचित प्रयोग, उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दों पर यथाशक्ति नियंत्रण एवं बँगला तथा अंग्रेजी से आए हुए हिन्दी शैली में न खप सकने वाले शब्दों की उचित व्यवस्था इस काल की विशिष्टता थी। भाषा के शब्द-भण्डार एवं उसकी अभिव्यंजनात्मक शक्ति की वृद्धि का जो कार्य भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हुआ था द्विवेदी युग में वह और आगे बढ़ा। "इस समय अंग्रेजी की लाक्षणिकता, बँगला की कोमल पदावली, अलंकारों तथा उर्दू मुहावरों से समन्वित शैली के साथ ही साथ प्रेमचन्द जैसे लेखकों की कृतियों में हिन्दी की निजी शैली का विकास हुआ। पर शब्द-भण्डार बढ़ाने एवं भाषा को परिष्कृत करने के उद्देश्य के कारण भाषा अधिक संस्कृत-गर्भित हो गई। फिर भी इस काल में पद्य, गद्य एवं अनुवाद के कार्य प्रचुर मात्रा में हुए।"

अंग्रेजी का परम्परावादी युग एवं हिन्दी का द्विवेदी युग

दोनों ही कालों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि स्वयं द्विवेदी युग एवं पुरातनतावादी युग में पर्याप्त साम्य रहा। दोनों के अन्दर प्रतिक्रिया के भाव निहित थे। एक रीतिकाल की उन्मुक्त शृङ्गारिता के प्रतिक्रियास्वरूप साहित्य-परिष्कार की नवीन दिशा को लेकर आगे आया तो दूसरा एलिजाबेथ एवं मेटाफिजिकल काल की उन्मुक्त स्वच्छन्दता के विरोध को लेकर। दोनों का दृष्टिकोण सुधारवादी था। दोनों ही पुरानी अतिशयता से मुक्ति के लिये भाषा को नियमबद्ध करना चाहते थे। दोनों ही सृजन के निश्चित मापदण्डों को मानकर चलने वाले थे। दोनों ही भूत से प्रेरणा ग्रहण करते थे। दोनों में अतिशय बौद्धिकता

की प्रधानता थी। दोनों ही अतिशय श्रृङ्गार को वर्जित समझते थे। दोनों के लिए व्यक्तिगत राग-विराग का मूल्य कम था। दोनों ही शैली को प्रधानता देते थे। दोनों की प्रवृत्ति लोक-मंगल की ओर उन्मुख थी।

पर इस साम्य के साथ ही दोनों में पर्याप्त अन्तर भी था। अंग्रेजी परम्परावादियों के पीछे भाषा की परम्परा थी, पर द्विवेदी युग तक (कविता के क्षेत्र) में खड़ीबोली की कोई परम्परा न थी। अतएव एक के लिये भाषा-परिष्कार के साथ भाषा के शब्द-भण्डार के सम्वर्द्धन का प्रश्न था पर दूसरे के समक्ष सम्वर्द्धन एवं परिष्कार का प्रश्न रहते हुए भी पूर्वकाल की अतिशयता की भावना का विरोध मुख्य था। भारतवर्ष के अन्दर राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र गति पर था। विदेशी शासकों का अत्याचार दिनोदिन बढ़ रहा था। असन्तोष की भावना प्रबल थी। अतएव हमारे देश में राष्ट्रीय चेतनापूर्ण कविताओं की सर्जना हुई।

परम्परावादी एवं द्विवेदी युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया का कारण

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। टेनीसन ने कहा भी है कि "प्रस्तुत व्यवस्था परिवर्तित होकर आगत व्यवस्था के लिए स्थान रिक्त कर देती है। भगवान् अपनी इच्छाओं को विविध रूपों में पूर्ण करते रहते हैं। अगर ऐसा न हो तो एक अच्छी व्यवस्था भी (विकास का अवरोध करके) सामाजिक पतन का कारण बन जाय।"[1] मार्क्स ने भी भौतिकता की द्वन्द्वात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए इसी बात पर विशेष बल दिया है कि परिवर्तन के बीज स्वतः व्यवस्था में निहित रहते हैं। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है, अतएव प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन को प्रतिच्छायित कर सकने में साहित्य को सक्षम होना चाहिए। इस प्रकार का साहित्य जो परम्पराओं से आबद्ध होकर अपनी क्रियाशील प्रगति से वंचित हो चुका है, बिना परिवर्तन के जीवन के नवीन स्पन्दनों को अभिव्यक्त करने में सक्षम नहीं हो सकता। उसकी तुलना तो उस स्थिर तालाब से की जा सकती है जो इसी गुण के कारण तमाम गन्दगी एवं अस्वास्थ्यकर तत्वों का आकर बन जाता है।

साहित्यिक परिवर्तन कभी-कभी नवीन प्रयोगों की इच्छाओं के प्रतिफल भी होते हैं। पर इन नवीन प्रयोगों की इच्छाओं का प्रेरणा-स्रोत समाज में ही किसी न किसी रूप में निहित रहता है। मनोविज्ञान की मान्यता में उनका मनुष्य की परम्परा एवं वातावरण से कोई अलग महत्व नहीं होता। इस प्रकार विश्व-

---

[1]Old order changeth yielding place to new.
God fulfils himself in many ways.
Lest one good order should corrupt the world.—*Tennsyon*.

साहित्य में स्थान-ग्रहण करने वाले परिवर्तन इन्हीं कारणों के अन्दर लिये जा सकते हैं।

इस दृष्टिकोण से जब हम उपर्युक्त दो धाराओं पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें ज्ञात हो जाता है कि 'प्रथम ग्रासे मक्षिका पात' वाली कहावत ही चरितार्थ हुई है। इन धाराओं के लेखकों ने (खास तौर से परम्परावादी) पुरातनवादियों का अनुगमन तो किया है पर वे पुरातनवाद के बाह्य आकार पर ही मुग्ध होकर रह गये, उसकी आत्मा का दर्शन करने की क्षमता अपने अन्दर न ला सके। उनका साहित्य केवल उनकी रीति का अन्धानुकरण मात्र बन कर रह गया, उन्होंने उसकी आन्तरिक सजीवता को या तो समझा ही नहीं या समझ कर भी उसे अपनाने में असमर्थ रहे। 'पेटर' की यह उक्ति कि "वे (परम्परावादी) अनुकरण तो पुरातनता का करते थे पर अभ्यास नवीनता का," इनके क्रियात्मक स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डालती है।

अतिशय नियमबद्धता भी साहित्य के लिए बाधक है। इससे साहित्य का विकास या तो अवरुद्ध हो जाता है अथवा प्रभावहीन। भाषा, भाव का बाह्य कलेवर है। अन्तर एवं बाह्य के सामंजस्य के आधार पर ही काव्य की सृष्टि हो सकती है। इन युगों में केवल बाह्य शैली मात्र का अनुकरण या भाषा-परिष्कार के नाम पर अतिशय नियमबद्धता के ही दर्शन होते हैं। इससे विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति-क्षमता कुण्ठित हुई-सी जान पड़ती है। परिणामस्वरूप प्रतिक्रिया द्वारा नवीन स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी साहित्य का आविर्भाव होता है।

अतिशय बौद्धिकता भी काव्य को केवल एकांगी बना देती है। काव्य-सृजन, हृदय एवं बुद्धि के समन्वय का आकांक्षी होता है। हृदय जिन नाना अनुभूतियों को विविध कलेवर प्रदान करके अभिव्यक्ति का विषय बनाता है, बुद्धि उनमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से परिष्कार करती रहती है और उन्हें स्वाभाविक बनाती रहती है। हृदय बुद्धि के बिना अन्धा है और बुद्धि हृदय के बिना पंगु। इन युगों में बुद्धि-विलास के आधार पर जिस प्रकार के काव्य का सृजन हुआ उसमें रूक्षता अधिक है। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार काव्य के जिस रसमय रूप की हम अपेक्षा रखते हैं वह इन काव्यों से दूर जा पड़ा। परिणामस्वरूप नवीन अनुभूतियों तथा नवीन स्पन्दनों को अभिव्यक्त करने में तत्कालीन साहित्य असमर्थ रहा।

प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन का अर्थ भी परम्परावादियों ने काव्य के 'प्रकृत स्वरूप' से ही लिया। प्रकृति जो अपने नानाविध स्वरूपों में काव्य का एक मुख्य

अंग और प्रमुख प्रेरक रही, इनके आकर्षण का केन्द्र न बन सकी। मानव-प्रकृति की भी नियमबद्ध सीमा के अन्दर उथली व्याख्या की गई। परिणामस्वरूप प्रकृति-प्रेमी कवियों के लिये इस काव्य की अवहेलना करना आवश्यक हो गया।

अतिशय भाव-शबलता एवं शृङ्गारिकता काव्य के उपयुक्त उपादान नहीं हैं। पर इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इनके प्रकृत एवं अनुभूत रूपों का काव्य-क्षेत्र से बहिष्कार किया जाय। परम्परावादी युग के पूर्व की भावना-प्रवणता एवं रीति-काल की शृङ्गारिक भावना के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी, उसमें आवश्यक परिवर्तन अपेक्षित थे। पर इनका काव्य-क्षेत्र से बहिष्कार पूर्णरूपेण असंगत था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परम्परावाद एवं द्विवेदी युग में हृदय की उपेक्षा, बौद्धिकता के प्रसार, कठोर नियमबद्धता, प्रकृति के प्रकृत स्वरूपों के त्याग, तथा कल्पना एवं शृङ्गार के बहिष्कारस्वरूप स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का जन्म हुआ। पर ये ही कारण पर्याप्त नहीं थे। युग की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं काभी उनके जन्म में विशेष हाथ था।

३

प्रेरक शक्तियाँ

स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद की 'पृष्ठभूमि' में इनके उद्भव पर विचार किया गया। इस अध्याय का मुख्य विषय प्रेरक शक्तियों से सम्बद्ध है। कार्य एवं कारण दोनों की उपस्थिति कार्य को निष्पन्न करने में सफल होती है। परन्तु इन दोनों का सम्बन्ध युग की समग्र चेतना के आधार पर ही क्रियाशील होता है। इस दृष्टि से किसी भी साहित्यिक धारा के अध्ययन के लिए युग की सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सभी परिस्थितियों पर विहंगम दृष्टि डाल लेना आवश्यक है।

स्वच्छन्दतावाद के प्रेरणा-स्रोत

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख प्रेरक मानी जा सकती है। यह राज्य-क्रान्ति तीन स्वरूपों से होकर गुजरी—(१) सैद्धान्तिक स्वरूप, (२) राजनीतिक स्वरूप और (३) सैनिक क्रान्ति का स्वरूप।

इस क्रान्ति के सैद्धान्तिक स्वरूप का सम्बन्ध 'रूसो' तथा 'वाल्टेयर' से था। 'वर्ड्सवर्थ', 'शेली' तथा 'कॉलरिज' पर इनका विशेष प्रभाव पड़ा। 'रूसो' ने इस युग की परिस्थिति के विश्लेषण में कहा है कि प्रकृत स्वरूप में मौलिक प्रवृत्तियाँ अच्छी हैं, पर मनुष्य वैभवशालिता, कृत्रिमता एवं विलासिता के चक्कर में पड़कर पथभ्रष्ट हो गया है और उस प्रकृत स्वरूप को सर्वथा भूल गया है। इस कारण पूरा सामाजिक ढाँचा ही रोगाक्रान्त हो गया है। इस रुग्णावस्था से बचने का एक मात्र उपाय प्रकृति के प्रकृत स्वरूपों—पर्वतों, चरागाहों आदि की ओर लौटना है। शताब्दियों से निर्मित ढाँचा परम्परा की तह पर तह जम जाने के कारण उपयोगिताविहीन हो गया है। मानव का कल्याण इसी बात में निहित है कि वह उसे पूर्णरूपेण ध्वस्त कर दे। राजनीतिक संस्थायें शोषण एवं उत्पीड़न का एक माध्यम बन गई हैं। शक्ति सर्वदा निरंकुश होती है। 'अतएव विशुद्ध भौतिक धरातल पर नवीन मानव—कल्याणकारी सामाजिक नियमों के निर्माण की महती आवश्यकता है।' LA VOLONTE GENERALE, अर्थात् जनता ही शासक है। उसके अनुसार यह अन्यायपूर्ण है कि "मुट्ठी भर लोग ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत करें और अधिकांश लोग पेट भर भोजन न मिलने के कारण भूखों तड़पें।"[1] अतएव इस अन्याय के प्रतिकारस्वरूप उसने स्पष्ट घोषित किया कि "वे जो स्वयं पैदा नहीं करते, दूसरों के द्वारा पैदा किये हुए अन्न पर पोषित होते हैं समाज के चोर हैं और ऐसा बाण्ड-होल्डर' जिसको राज्य बिना कुछ किये पैसा देता है, मेरी दृष्टि में उस दस्यु से कम नहीं जो यात्रियों को लूटकर अपना भरण-पोषण करता है।"[2] उसके अनुसार सभी अभिलाषाओं में स्वतन्त्रता की अभिलाषा सर्वोच्च है।[3]

---

[1]Handful of people be gorged with luxury, while the starving multitude lack the necessity of life.—Discourses on equality.

[2]He who eats in idleness what he has not himself earned steals it and a bond holder, whom state pays, for doing nothing hardly differs in my eyes from a highway robber who lives at the expense of the traveller.

[3]The first of all blessing is not authority but liberty.

१७८९ में क्रान्ति के द्वितीय चरण का प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु अपने प्रथम चरण में ही यह स्वच्छन्दतावादी कवियों को पूर्णरूपेण प्रभावित कर चुकी थी। वर्ड्सवर्थ तथा कॉलरिज इससे अत्यन्त प्रभावित थे। वर्ड्सवर्थ ने लिखा भी है, "उस क्रान्ति के उषाकाल में जीवित रहना आनन्दप्रद था, परन्तु युवक होना तो स्वर्ग ही था।"[1] वह उस समय परम दुःखी भी हुआ जब इंगलैण्ड ने फ्रांस पर आक्रमण की घोषणा कर दी। परन्तु बाद में उसके क्रान्ति-सम्बन्धी विचार रक्त की भयंकरता के साथ विगलित होने लगे। फिर भी इस परिवर्तन का यह कदापि अर्थ नहीं कि फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से वह प्रभावित न था। यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की जा सकती है कि क्रान्ति के उत्साह ने ही उसकी कविता को आकर्षक कलेवर प्रदान किया।

शेली, कीट्स तथा बाइरन के लिए क्रान्ति इतिहास बन चुकी थी। वे क्रान्ति-सम्बन्धी भावनायें जिनको वर्ड्सवर्थ तथा कॉलरिज अपनी युवावस्था में स्वीकार करने के पश्चात् त्याग भी चुके थे इन कलाकारों के लिये उत्साहप्रद (कीट्स को छोड़कर) सिद्ध हुई। शेली क्रान्ति के आदर्शों का उन्मुक्त गायक था। उसके मुख्य प्रेरणा-स्रोत इसी से सम्बन्धित विचार तथा आदर्श थे। वह भविष्य द्रष्टा कवि था। "स्वतन्त्रता समानता तथा भ्रातृत्व की भावनायें उसकी कविता में सर्वाधिक प्रश्रय पा सकीं।"

बाइरन इसके क्रान्ति-पक्ष तथा ऐतिहासिक पक्ष से बहुत कम प्रभावित था। क्रान्तिकारी स्वच्छन्दता का जो भी स्वरूप हमें उसकी कविता में दृष्टिगोचर होता है वह नैपोलियन के नेतृत्व में चलने वाले सत्याग्रह का अन्तिम रूप था। वह अहंवादी था। उसे अपनी अनन्त शक्ति पर विश्वास था। नैपोलियन की अपार शक्ति ने उसे पागल बना दिया। अतएव यह प्रभाव उसकी कविता में दृष्टिगोचर हुआ। फिर भी अपने अत्यधिक उत्साह के कारण वह इसके निषेधात्मक स्वरूप का ही उन्मुक्त गायक बन सका। परन्तु जब जीवन के अन्तिम काल में उसे इस खोखलेपन का ज्ञान हुआ तो उसका यह अशान्त एवं अहंवादी स्वभाव निर्लिप्त सामाजिक उत्साह में परिणत हो गया।

कीट्स पर फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का कोई प्रभाव न था। उसके लिये तो 'श्रुत संगीत मधुर है और जो अश्रुत है वह और भी मधुर है।'[2] अतएव वह

---

[1]Bliss it was in that dawn to be alive, but to be young was very heaven.

[2]Heard melodies are sweet but those unheard were sweeter still.—*Keats.*

'एण्डिमियन', 'हाइपीरियन', अपोलो', 'नेप्चून' के माध्यम से, सुन्दर कुमारियों भयंकर समुद्रों एवं ऐन्द्रजालिक वातायनों को ही चित्रित करता रहा। मानवतावादी दृष्टिकोण के कतिपय तत्त्व उसमें अवश्य मिल जाते हैं जिसको कुछ लोगों के शब्दों में राज्य-क्रान्ति का परिणाम माना जा सकता है।

जर्मनी का प्रभाव स्वच्छन्दतावाद का दूसरा प्रेरणा-स्रोत है। जर्मनी की स्थिति भी प्रायः फ्रांस जैसी ही थी। पुरातनवादी विचारधारा का इंग्लैण्ड पर प्रभाव तो था ही पर 'जैकब बोडमर' (Jacob Bodmer) तथा उसके अनुयायी (Henerich Miller) 'हेनरिच मिलर' के लिये फ्रांस की साहित्यिक संप्रभुता असह्य हो गई। अतएव उन्होंने एक राष्ट्रीय साहित्य के प्रणयन की आवश्यकता बताकर लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। यह नया आन्दोलन जो इनकी विचारधारा को प्रेरणा मानकर चला फ्रांस के लिए चुनौती बन गया। अतएव नई विचारधारा का तीव्र गति से प्रसार हुआ और 'गेटे', 'श्लेजेल' एवं 'नोवालिस' जैसे महान् उन्नायक इस धारा में तैरते दिखाई दिये। इंग्लैण्ड के स्वच्छन्दतावादी पुनरुत्थान की यह विशेषता रही कि उसने मान्य परम्परावादी सिद्धान्तों एवं नवीन स्वच्छन्दतावादी विचारों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। पर जर्मनी में इस प्रकार का कोई भी प्रयत्न दृष्टिगोचर नहीं होता। अतएव यहाँ शुष्क बौद्धिकता एवं निरे कल्पनाशून्य विचारों के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया हुई। इनकी मध्यकालीन प्रवृत्ति में आदि भौतिक एवं पौराणिक विचारों का ही अधिक महत्व था। विशुद्ध ललित कल्पना का अतिरंजित स्वरूप साहित्य-क्षितिज पर दृष्टिगोचर होने लगा। यह प्रवृत्ति उस समय जर्मनी की राष्ट्रीय चेतना का अंग बन गई। 'गेटे', 'नोवालिस', 'श्लेजेल' जैसे महान् लेखकों की कृतियों में उन्हीं विचारों का सृजन होने लगा जिसके लिए ये अभी तक मिल्टन तथा शेक्सपीयर के मुखापेक्षी थे। इनमें शेक्सपीयर जैसी उदात्त कल्पना तथा जिज्ञासा वाले साहित्यकार का प्रादुर्भाव हुआ जो कविता, नाटक हर क्षेत्र में अतिरंजित असम्भावनाओं के बावजूद जीवन का चित्र प्रस्तुत करने लगा। इस स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख विशेषता प्राचीन जादू, सम्मोहन तथा चुड़ैलों इत्यादि के चित्रांकन में निहित थी। टेलर अपने अनुवादों तथा व्याख्यानों द्वारा जर्मनी की इस स्वच्छन्दतावादी विचारधारा का इंग्लैण्ड के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकने में समर्थ हुआ। वह कुछ काल तक जर्मनी में निवास कर चुका था। गेटे से उसका व्यक्तिगत परिचय भी था। उसकी अनुवाद-क्षमता अद्वितीय थी। साउदे (Southey) ने १७९९ में ठीक ही कहा कि 'तुमने मेरे अन्दर जर्मन कविता के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कर दी है।'[1]

[1] You have made me hunger and thirst after German poetry.—*Southey, Campton Rickett, p. 138.*

जर्मनी के मुख्य विचारक काण्ट, हीगेल तथा स्केलिंग का प्रभाव स्वच्छन्दतावाद पर पड़ा। काण्ट जर्मनी का मुख्य विचारक था। उसके विचारों के तीन स्वरूपों को स्वच्छन्दतावादी आदर्शवाद में प्रश्रय मिला।

(१) काण्ट की सर्वातिशायी एकता का सिद्धान्त।

(२) नैतिक मनोवृत्ति द्वारा निर्मित स्वतन्त्र व्यक्तित्व। और

(३) 'क्रिटिक आफ जजमेण्ट' में वर्णित अनुभव।[1]

'काण्ट की विचारधारा के दो भाग थे। इसके प्रथम औपचारिक स्वरूप को आत्मबोध की सर्वातिशायी एकता कहते हैं। यह वह शक्ति है जो हमारी अनुभूतियों को एक बनाये रखकर उनका निर्माण करती है और इन्हें मात्र उद्वेगों से भिन्न रूप देकर उनमें तादात्म्य स्थापित करती है।'[2]

इसकी दूसरी विचारधारा 'क्रिटिक आफ प्रेक्टिकल रीजन' में दृष्टिगोचर होती है। काण्ट इसकी सिद्धि के लिये पूर्वानुमान का प्रश्रय ग्रहण करता है। हम अपने ऊपर अपनी क्रियाओं का उत्तरदायित्व लेते हैं। इस प्रकार का कोई भी उत्तरदायित्व हम तब तक वहन नहीं कर सकते हैं जब तक हम स्वतन्त्र न हों अथवा हमारी क्रियाओं पर हमारा अधिकार न हो। काण्ट के अनुसार किसी भी उत्तरदायित्व की स्वीकृति का तात्पर्य यह है कि हम यह मान लेते हैं कि हम स्वतन्त्र हैं। अनुभव के क्षेत्र में सभी कुछ मस्तिष्क के नियम पर आधारित है। वहाँ उसकी क्रियाशीलता का आधार 'कार्य' एवं 'कारण' हैं। इस प्रकार के अनुभव के क्षेत्र में स्वतन्त्रता का अभाव हो सकता है। काण्ट की धारणा यह है कि हमें यहाँ ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना करनी चाहिए जो सामान्य विश्व से भिन्न क्षेत्र में भ्रमण करता हो। उसने आत्म-बोध के द्वारा यह स्वतःसिद्ध मान लिया है कि इस दूसरे विश्व के विषय में हम कोई बात जान नहीं सकते, फिर भी हम अपने को उसके पूर्वानुमान में सतत् लिप्त पाते हैं। इस प्रकार हम आत्मभाव की कल्पना तो करते है पर इससे अवगत नहीं रहते। स्वच्छन्दतावादियों ने इस सर्वातिशायी आत्मबोध की एकता को आत्मा के पूर्वानुमान के साथ जिसको वे जानते नहीं पर कल्पना

---

[1]The (a) transcendental unity, (b) The free self which our moral attitude postulates, and (c) The experience as depicted in 'Critique of Judgement'—Movement of Thought in 19th Century.—*H. Mead.*

[2]One aspect is purely formal as it appeared in the transcendental unity of apperception, that unifying power which holds together and constructs our percepts, makes them different firom our bare sensations and gives unity to them.—*Ibid.*

कर सकते हैं, लिया और इस प्रकार इनके सम्मिलन से स्वच्छन्दतावादी आत्म (सेल्फ) का निर्माण किया।

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है कि 'काण्ट के मत में कलाओं का मध्यवर्ती स्थान है। उसके एक ओर विशुद्ध ज्ञान की भूमि है (Pure Reason) तथा दूसरी ओर व्यावहारिक ज्ञान (Practical Reason) की। इसके मध्य में कला की वह भूमि है जिसे वह अनुभूति (Judgement) नामक तत्व का क्षेत्र मानता है। काण्ट ने अपने तीनों ग्रंथों में इन्हीं तीन तत्वों की विस्तृत व्याख्या की है। 'क्रिटिक आफ प्योर रीज़न' में उसने विशुद्ध ज्ञान अथवा आध्यात्मिक तत्व का निर्देश किया है। 'क्रिटिक आफ प्रेक्टिकल रीजन' में उसने व्यावहारिक क्षेत्र में व्यक्त होने वाले ज्ञान की व्याख्या की है। 'क्रिटिक आफ जजमेण्ट' में उसने सौन्दर्य-क्षेत्र में आने वाली काव्य-कला आदि का विवेचन किया है। इस प्रकार सम्भवतः काण्ट ने सर्वप्रथम कला क्षेत्र का स्वतन्त्र निरूपण किया है।'[1]

स्कॅलिंग

काण्ट का दृष्टिकोण दार्शनिक है और फिक्टे का नैतिकतावादी, पर स्कॅलिंग का दृष्टिकोण कलाकार का दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण का महत्व इस मान्यता में है कि 'सेल्फ' अपने विचारों एवं उसकी व्याख्याओं को इसी विश्व के उपादानों में खोजता है, कलाकार स्वतः अपने को इन उपादानों में पाता है। इन्हीं उपादानों में उसे इस विश्व की व्याख्या प्राप्त होती है और उसे स्वतः अपनी व्याख्या भी मिलती है। कलाकार के रूप में वह सर्जक है। वह अपने उपादान एवं अपने विश्व का सर्जन करता है, फिर भी वह उनके सर्जन में नाट-सेल्फ (Not self) का ही प्रयोग करता है और यह कलाकार के विचारों की व्याख्या के अर्थ के आधार पर ही निर्मित होता है। वह अपनी सभी नियामिका सामग्रियों को एक संस्पर्श प्रदान करता है। इसी में कलाकार का तात्पर्य तथा उसकी इच्छा का संनिहित स्वरूप उपस्थित है। इस प्रकार यह उपादान जिसका वह निर्माण करता है उसका स्वतः विचार ही है और उसके विचार केवल उसकी सम्पत्ति हैं।

स्कॅलिंग के अनुसार इसी विश्व में कलाकार अपने विचारों को प्राप्त करता है और अपने महत्व को जान सकता है। स्कॅलिंग के इन विचारों का भी स्वच्छन्दतावाद पर प्रभाव पड़ा। इस प्रकार हम कह सकते है कि स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन जर्मनी का ऋणी रहा है।

---

[1]आधुनिक साहित्य—नन्ददुलारे बाजपेयी : अभिव्यंजनावाद, पृ० ३८०।

स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के निर्माण में औद्योगिक क्रान्ति का तीसरा महत्त्वपूर्ण स्थान है। औद्योगिक क्रान्ति से भौतिक वातावरण की सृष्टि हुई। नवीन मशीनों के अविष्कार ने मानव को केवल बौद्धिक प्राणी बना दिया। इससे प्राकृतिक सौन्दर्य को जो स्वच्छन्दतावादियों को अधिक प्रिय था, आघात पहुँचा। मनुष्य की प्रकृत भावनायें भी निन्यानबे के फेर में पड़कर विकृत हुई। औद्योगिक केन्द्रों में आबादी की वृद्धि के कारण बहुत सामान्य पारिश्रमिक मिलने लगे। इससे उनकी आर्थिक व्यवस्था का ह्रास हुआ। स्त्रियों एवं बच्चों को भी काम करने की स्थिति आ गई। और श्रमिक को चौदह से अठारह घण्टे तक रोज काम करना पड़ता था। इस प्रकार एक प्रचण्ड शोषण की प्रवृत्ति को प्रश्रय मिला। एक तरफ सामान्य जनता भूखों तड़पने लगी, दूसरी ओर उन्हीं के श्रम पर महल खड़े होने लगे। 'ओवेन', 'कैवेट' तथा 'पेन' ने श्रमिकों की सुरक्षा तथा प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों पर लिखना प्रारम्भ किया। परन्तु उनके विरुद्ध ऐसा बन्धन लगाया गया कि या तो उनको इंगलैण्ड छोड़ देना पड़ा या अपनी लेखनी चलाना बन्द कर देना पड़ा। संसदों में कार्य करने बाले ऐसे सदस्यों का इतिहास भी मिलता है जो अन्न-संग्रहालयों के मालिक थे और अपने हित के लिए अन्न-अधिनियम पास करके इच्छित मूल्य पर अनाजों की बिक्री करते थे। इससे भुखमरी की स्थिति आ गई।

औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् विज्ञान को प्रश्रय मिला। नये-नये प्रयोग तथा आविष्कार होने लगे। विज्ञान की सार्वभौमिकता के समक्ष धर्म की पुरानी रूढ़ियाँ टूटने लगीं। परन्तु यह प्रभाव विक्टोरिया-काल में अत्यधिक स्पष्ट हुआ। स्वच्छन्दतावादी काल तक संघर्ष उतना स्पष्ट रूप न ले सका। फिर भी इन स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सदा इस क्रान्ति के परिणामों को अभिव्यक्ति प्रदान की। वर्ड्सवर्थ की कविता 'दी वर्ल्ड इज़ टू मच विद अस' तथा 'प्रील्यूड' के दशम खण्ड में इसी का विवेचन किया गया। परन्तु इससे उत्पन्न परिस्थिति के दर्शन 'कम्बर लैण्ड बेगर' 'लीच गैदरर' अथवा 'माइकेल' जैसी कविताओं में मिले। कहीं-कहीं वे यह विचार कर कि उद्योगों से सामान्य जनहित हुआ है इसकी प्रशंसा भी करने लगे, परन्तु ये कवि इसके अन्धकारमय जीवन की ओर जल्दी लौट आये।

कोई भी विदेशी प्रभाव उसी अवस्था में प्रभावित कर सकने में सक्षम होता है जब स्वयं देश के मस्तिष्क में उसको ग्रहण कर सकने की क्षमता हो तथा साथ ही उसकी कुछ सामान्य उपयोगिता भी हो। औद्योगिक क्रान्ति ने ऐसा ही वातावरण उपस्थित किया जिसमें इन बाह्य विचारों को प्रस्फुटित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। कुछ स्वदेशी लेखकों के विचार भी इस प्रेरणा-स्रोत को महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते रहे।

छायावाद के प्रेरणा-स्त्रोत

आचार्यप्रवर रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद का प्रेरणा-स्रोत बँगला एवं अंग्रेजी कवियों को माना है। उनके अनुसार 'रहस्यवाद के अन्तर्गत रचनायें पहुँचे हुए पुराने सन्तों या साधकों की उस वाणी के आधार पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधि-दशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई दीख पड़ती हैं। इस रूपात्मक अनुभव को यूरोप में (Phantasmeta) 'छाया' कहते हैं। इसी से बंगाल में ब्रह्म समाज के बीच, उस वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे छायावाद कहलाये। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्यिक क्षेत्र में आया। फिर रवीन्द्र बाबू की धूम मचने पर हिन्दी में भी प्रकट हुआ।[1] डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी भी छायावादी कविताओं का मूल स्रोत इंग्लैंड को स्वीकार करते हैं। उनका मत है कि अंग्रेजी रोमाण्टिक साहित्य से हटकर यह प्रभाव बँगला एवं हिन्दी के आधुनिक साहित्य में आया।'[2]

दूसरी ओर ऐसे लोगों का दल है जो इसको 'एतद्देश प्रसूत' सिद्ध करने पर तुला हुआ है। छायावाद को भी इन्होंने प्राचीन संस्कृत साहित्य में ढूंढ़ निकाला है। स्वयं 'प्रसाद' छायावाद की लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता और उपचार-वक्रता को 'ध्वनिकार' से प्रभावित मानते हैं। इनके अनुसार 'छायावाद' तो हमारे सन्तों की वाणी में सदियों से नहीं वरन् सहस्रों वर्षों से चला आ रहा है। घनानन्द की कविता में छायावाद के दर्शन होते हैं। उन्होंने इनके प्रिय अलंकार विशेषण विपर्यय का प्रयोग किया है। उनमें ध्वन्यात्मकता तथा लाक्षणिकता के भी दर्शन होते हैं। लाक्षणिक तथा रहस्यवादी प्रयोगों के पर्याप्त उदाहरण कबीर तथा जायसी में उपलब्ध हैं। इलाचन्द जोशी ने इसे बँगला या अंग्रेजी से प्रभावित नहीं माना है। उनके अनुसार 'छायावाद' शब्द विशुद्ध हिन्दी का है। राय कृष्णदास ने भी रवीन्द्र को कबीर, विद्यापति और बंगाली कवि सेठ गोविन्द दास से प्रभावित माना है। उनके अनुसार रवीन्द्र पर ईसाई सन्तों का प्रभाव नहीं था। रवीन्द्र ने कबीर के कुछ पदों का अंग्रेजी अनुवाद भी किया था। उनका मन्तव्य था कि 'ये पद पाश्चात्य विद्वानों की अवज्ञा तथा अपेक्षा दूर कर सकेंगे। यूरोपीय भाषाओं में इनके अनुवादों से कितने चोटी के समीक्षक भारतीय साधना एवं साहित्य के विषय में अपना मत बदलने को बाध्य हुए थे।'[3]

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६६८।

[2] अवन्तिका काव्यालोचनांक, जनवरी सन् १९५४।

[3] कबीर—कबीर की वाणी : हजारीप्रसाद द्विवेदी, परिशिष्ट २, पृ० २२९।

रवीन्द्र पर भारतीय तथा यूरोपीय प्रभाव

बँगला पर अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा फिर वहाँ से रवीन्द्र की ख्याति के बाद हिन्दी में आया । 'ब्रह्म समाज' वहाँ की विचार-पद्धति से प्रभावित था, इत्यादि ऐसे विचार हैं जिनके तथ्यातथ्य पर बिना विचार किये केवल पिष्टपेषण द्वारा इन्हें स्वीकार कर लेना उपयुक्त नहीं दीखता । ब्रह्म समाज का अगर गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन किया जाय तो लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में निस्संकोच भाव से स्वीकार किया जा सकता है कि इस ने भी धर्म-शिथिल भारतवासियों को विशुद्ध हिन्दू धर्म का ज्ञान कराने का प्रयत्न किया और धीरे-धीरे परम्परागत कट्टरता एवं पौराणिकता का लोप होने लगा । किन्तु कट्टरता के लोप के साथ-साथ ब्रह्म समाज पर पाश्चात्य प्रभाव बहुत तीव्र रूप में पड़ा—ज्यों-ज्यों यह प्रभाव बढ़ता गया कट्टर हिन्दू इस आन्दोलन से अलग रहने लगे…। वास्तव में राजा राममोहन राय ने विविध मतों का गहन अध्ययन और उपनिषदों तथा वेदान्त का बंगला में अनुवाद किया था । उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता और एकेश्वरवाद पर जोर दिया । अतएव ब्रह्म समाज का मूल तो हिन्दू धर्म में ही था, किन्तु उसका बाह्य रूप पाश्चात्य अवश्य था ।[1]

यहाँ पर इसी सन्दर्भ में रवीन्द्र पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए । उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि कुछ लोग कहते हैं कि 'उपासना में प्रार्थना का कोई स्थान नहीं है, वह केवल मात्र ध्यान है । यह बात मैं स्वीकार कर लेता यदि जगत् में अपनी इच्छा का कोई प्रसार न देखता……हम उसी के प्रति अपनी प्रार्थना करते हैं जिसमें इच्छा हो । ईश्वर अगर केवल सत्यस्वरूप होते, केवल अभ्यर्थ नियमों के रूप में ही उनका प्रकाश होता तो उनके निकट प्रार्थना करने की बात हमारे मन में स्वप्न में भी न आती । पर कहा गया है कि वे आनन्दमय अमृतम् हैं । कहा गया है कि वे आनन्दमय, इच्छामय और प्रेममय हैं । इसीलिए सिर्फ विज्ञान के द्वारा उनको नहीं जानते । इच्छा के द्वारा ही इच्छास्वरूप एवं आनन्द-स्वरूप को जाना जा सकता है ।'

हमारे अन्दर इस इच्छा का निकेतन हृदय है । हमारा यह इच्छा-रसमय हृदय जगद्व्यापी इच्छा-रस की नाड़ी के साथ बँधा हुआ है । वहीं से यह आनन्द-रस पाकर जी रही है; पर यह चाहता है प्रेम, चाहता है अमृत । जो कुछ चाहता है, इसीलिए चाहता है कि वह वस्तु क्षुद्र रूप से संसार में और चरम रूप से उन भगवान् में वर्तमान है…इसीलिए उपनिषदों ने कहा है कि—

[1] **हिन्दी साहित्य कोश—ब्रह्म समाज, पृ० ५२३ ।**

'को ह्वेवान्यात् कऽ प्राण्यात्
यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् एष ह्वेवानन्दयति ।।'

अर्थात् कौन शरीर की चेष्टा करता और कौन जी सकता था। यदि आकाश में वह आनन्द न होता।

'दो इच्छाओं के बीच दूती का कार्य करती है प्रार्थना। इसीलिए असाधारण साहस के साथ वैष्णव भक्त ने कहा कि जगत् के विभिन्न सौन्दर्य के भीतर भगवान् की वंशी जो नाना सुरों में बज रही है वह सिर्फ हमारे लिए उनकी प्रार्थना है— हमारे हृदय को वे अनिर्वचनीय आनन्द द्वारा पुकार रहे हैं। इसीलिए वह सौन्दर्य-संगीत हमारे हृदय की विरह वेदना को जगा देता है......। जितने दिन तक प्रेम-स्वरूप भगवान् अपने नाना सौन्दर्यों द्वारा इस जगत् को आनन्द-निकेतन के रूप में सजा रहे हैं तब तक उनसे मिलन हुए बिना वेदना कैसे दूर होगी।'[1]

इस भक्ति पर थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। स्वयं भगवान् कृष्ण ने कहा है कि—

'श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः
ज्ञानं लब्ध्वा पराशान्तिं अचिरेणाधिगच्छति ।।' —गीता (४-३९)

जब श्रद्धावान् मनुष्य इन्द्रिय-निग्रह द्वारा ज्ञान-प्राप्ति का प्रयत्न करता है तो उसे ब्रह्मात्मैक्य-रूप ज्ञान का अनुभव होता है फिर उसे शीघ्र ही शान्ति मिलती है। पुनः गीता कहती है—

'भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मितत्वतः
ततो माम् तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।।'
—गीता (१८-५५, ११-५४)

मेरे स्वरूप का तात्विक ज्ञान भक्ति से होता है और जब यह ज्ञान हो जाता है तो वह मुझमें आ मिलता है।

जगद्गुरु शंकराचार्य ने तो यहाँ तक कह दिया कि मनसा-वाचा-कर्मणा जो कुछ होता या किया जाता है वह सब भक्ति के ही अन्तर्गत समझा जा सकता है, यथा—

'आत्मा त्वं, गिरिजा मतिः, सहचराः प्राणाः, शरीरं गृहं।
पूजाते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधि स्थितिः।'

---

[1]कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १२६ से उद्धृत।

'संचारः प्रदयो प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्त दखिलं शम्भो तवाराधनम् ।।'

जरा इन भावों से रवीन्द्र के उपर्युक्त भक्ति-सम्बन्धी भावों को मिलाया जाय। फिर साम्य-वैषम्य स्वतः स्पष्ट हो जायगा।

रवीन्द्र की उपर्युक्त व्याख्या से हमें एक बात स्पष्ट ज्ञात होती है कि केवल भक्त ही भगवान् को नहीं पुकारता, भगवान् भी भक्त को पुकारता है। अगर उसकी यह पुकार किसी भी प्रकार हृदय को प्रभावित कर गई तो बिना दर्शन के शान्ति कहाँ? यह मानव-हृदय की वृत्ति चिरन्तन तथा शाश्वत है। पाश्चात्य तथा पौरस्त्य सन्तों में इसके शत-शत उदाहरण ढूंढ़े जा सकते हैं। कबीर ने भी कहा है—

'सत गुरु हो महराज मो पै साई रंग डारा
शब्द की चोट लगी मेरे मन में, बेध गया तन सारा।'

रवीन्द्र का दूसरा पद लें—

'ए तो माला, नय गो, ए ये
तोमार तरवारि।
ज्वले ओठे आगुन येन
वज्र हेन भारी
ए ये तोमारि तरवारि।
तरुण आलो जानला वे ये
पड़ लो तोमारि शयन छेये
भोरेर पाखी शुधाम गेये
की देलि तुई नारि
नय में माला, ए थाला
ए ये भीषण तरवारि ।।'[1]

'अर्थात् हे प्रिय! कल तुमने सुहागरात को यह क्या रख दिया है? प्रातःकालीन तरुण प्रकाश ज्यों ही तुम्हारी खिड़की से तुम्हारी शैया पर पड़ा त्यों ही मैंने देखा कि यह तो तुम्हारी तलवार है। सबेरे चहकते हुए पक्षी ने व्यंग्य किया कि नारी यह तूने क्या पाया है? ना, यह मान्य नहीं, नैवेद्य नहीं, गन्ध जल की झारी भी नहीं अरे यह तो तुम्हारी तलवार है।' पुनः—

शक्ति हीना मरि लाजे।
ये भूषण की आमार साजे ।।

[1]**कबीर—हजारी प्रसाद द्विवेदी।**

राखते गेले वुकेर माझे
व्यथा ये पाय प्राण।
तब आज वइव वुके
एइ वेदनार मान
निभे तोमारि एइ दान।' (**रवीन्द्र**)

'हाय प्यारे ! यही क्या तुम्हारा दान है। मैं शक्तिहीना नारी मुझे क्या यह आभूषण सोहेगा ? तुम्हारे इस प्रेमोपहार को रखने का एक मात्र स्थान तो यह कलेजा है। पर वहाँ रखती हूँ तो प्राण व्यथा से काँप उठते हैं। तो भी हे प्रियतम तुम्हारे इस दान को मैं कलेजे से लगा लूंगी। मैं जान गई हूँ कि जिसे तुम प्यार करते हो उसे फूल की सेज नहीं देते, दुःख का कँटीला मार्ग दिखा देते हो।'

दाम्पत्य प्रेम में परम सत्ता ही एक मात्र पुरुष है और अन्य सब उसके आश्रित होने के कारण उसके स्त्री-स्वरूप में मान्य हैं। यथा—

'पुरिष हमारा एक है हम नारी बहु अंग
जे जैसी ताहि सों, खेले तिसही संग।' (**कबीर**)

'पैंटमोर' (Patmore) ने इसी बात को माना है कि ईसामसीह के साथ जीवात्मा का उसकी विवाहिता पत्नी के सदृश सम्बन्ध प्रेमभाव की कुन्जी है। इसी से मुक्त होकर उसके साथ प्रार्थना, प्रेमभाव एवं श्रद्धा प्रदर्शित की जानी चाहिए। 'पुष्टिमार्गीय' भी इस मत को स्वीकार करते हैं। वहाँ भी राधा-कृष्ण का मिलन एक अलौकिक मिलन का सन्देश देता है। वेदान्त में परमात्मा के साथ जीवात्मा के मिलने को दो प्रेमियों के आलिंगन-सदृश माना गया है। जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी प्रियतमा से आलिंगित होने पर बाह्य एवं आभ्यंतर का अन्तर खो देता है उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा से संमिलन प्राप्त करने पर बाह्य एवं आभ्यन्तर का ज्ञान खो देता है। चीन में लाओत्जे के सिद्धान्त भारतीय सिद्धान्त से मिलते हैं। उन्होंने भी पूर्ण समर्पण के सिद्धान्त को मान्यता दी है। इसी प्रेम की कल्पना कुछ भिन्न रूप में सूफियों में दृष्टिगोचर होती है। श्री रवीन्द्र ने उसी प्रेम को स्वीकार किया है। इस पृष्ठभूमि में उपर्युक्त दोनों पदों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्रेयसी (आत्मा) को सुहागरात के प्रथम दिन ही उपहार प्राप्त हुआ है। पर वह उपहार तलवार-सदृश है जिसको अंगीकार करने में उसका हृदय काँप उठता है। परन्तु अचानक उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि जिसे वह परम प्रियतम मानकर प्यार करता है उसे फूल की सेज नहीं अपितु दुःख का कंटीला मार्ग देता है।

कबीर का रहस्यवाद भी भारतीय वेदान्त तथा सूफी भावना से प्रभावित था। सूफी भावना विदेश की उपज थी। हो सकता है पाश्चात्य रहस्यवाद का उस पर प्रभाव पड़ा हो। कबीर ने रवीन्द्र जैसा ही अनुभव किया है। वे साधना-मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

'आँखड़ियाँ झाईं पड़ीं पन्थ निहारि निहारि
जीभड़ियाँ छाँला पड्या, राम पुकारि पुकारि।'

+ +

'हँसि-हँसि कन्त न पाइये जिन पाया तिन रोइ
जो हँसि-हँसि ही हरि मिले तो न दुहागिन कोइ।'

आखिर यह विरह की अवस्था आई ही क्यों? इस पर विचार करने के पश्चात् वे उसी रवीन्द्र के मत को स्वीकृति प्रदान करते हुए दीख पड़ते हैं कि आत्मा ही परमात्मा के लिए नहीं तड़पती वरन् परमात्मा भी आत्मा का कल्याण चाहता है। यथा—

'मार्‌या है जो मरेगा, बिनु सर थोथी भाल
पड़्या पुकारे विरिछ तर आज मरें कै काल।'

परन्तु यह अवस्था उसी समय आती है जब जीवात्मा को परमात्मा का आभास मिल जाता है। इस ज्ञान-प्राप्ति के साथ ही जैसा दिखाया जा चुका है उसका उस अनन्त सत्ता से संमिलन अवश्य होगा।

एक उदाहरण द्वारा इस दाम्पत्य-भाव को और भी स्पष्ट कर लेना चाहिये। कबीर की अभिसारिका अपने प्रियतम से मिलने के लिए अपनी आरती सजा कर अग्रसर हो रही है। उसकी चुनरी प्रेमरस की अजस्र वर्षा से भींग रही है।

'भींगे चुनरिया प्रेम रस बूँदन
आरती साजि कै चली है सुहागिन
प्रिय अपने को ढूँढ़न।'

अथवा प्रियतमा आलस्य का अनुभव करने पर प्रिय से शयन-कक्ष में चलने के लिए निवेदन कर रही है—

'ए अखियाँ अलसानी हो पिया सेज चलो।
खम्भ पकरि पतंग अस डोलै बोलै मधुरी बानी,
फूलन सेजि बिछाइ जो राख्यौ पिया बिनु कुम्हिलानी।

धीरे पाँव धरो पलंग पर जागत ननद जेठानी
कहत कबीर सुनो भाई साधो, लोक लाज बिछलानी ।'
—कबीर वचनावली, पृ० ४६६

रवीन्द्र भी कहते हैं—

'ओहे अन्तरतम मिटे छे कितब सकल पियास
आसि अन्तरे मम ।'

यहाँ स्वयं ब्रह्म ही अपनी तृषा-शान्ति के लिए प्रियतम के पास आता है । यथा—

'ऐसे छिल नीरव राते, वीणा खानि छिल हाते
स्वप्न माझ बाजियो गेलो गंभीर रागिणी ।' —गीतांजलि

इन सभी उद्धरणों पर दृष्टिपात करने से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'कबीर एवं रवीन्द्र की विरह एवं दाम्पत्य सम्बन्धी भावनाओं में साम्य होने पर भी सामान्य भेद है । एक की केलि यत्न-साधित है दूसरे की स्वतः-प्राप्त । एक अपने तथा अपने पौरुष को भूलकर भी नहीं भूलता, दूसरा अपनी शक्ति को स्मरण रख कर भी भूल जाता है । एक क्रियात्मक है दूसरा भावनात्मक । एक का मार्ग साधना-मार्ग है दूसरे का मार्ग सौन्दर्य-मार्ग । एक करने में विश्वास करता है दूसरा होने में । एक प्रधान रूप में सन्त है और दूसरा कवि परन्तु दोनों में प्रियतम से मिलने की व्याकुलता है । दोनों ही प्रियतम के पथ पर अखण्ड विश्वास करते हैं दोनों ही में आत्म-समर्पण के भाव प्रबल हैं । दोनों ही प्रिय-प्राप्ति को सहज लभ्य व्यापार नहीं मानते । दोनों ही का प्रेम हिस्टीरिक प्रेमोन्माद का परिपन्थी है......'[1] इसके अतिरिक्त दोनों पर भारतीयता की अमिट छाप है । पैटमोर का उद्धरण यहाँ इस-लिए उद्धृत कर दिया गया है जिससे यह जाना जा सके कि उनकी भी मान्यता कुछ भारतीयों जैसी थी । मेरा यह मत नही है कि रवीन्द्र पर पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव नहीं है । १७वीं शताब्दी के रहस्यवादी कवियों को छोड़ भी दें तो भी इस काल में रवीन्द्र के साथ काम करने वाले फ्रांसिस थाम्पसन, 'यीट्स' प्रभृति ऐसे लेखक' थे जिनसे रवीन्द्र की तुलना की जा सकती है । 'थाम्पसन' के 'हाउण्ड आफ हेवेन्' में भगवान का मानव के प्रति प्रेम चित्रित किया गया है जिसको रवीन्द्र भी मानते थे ।[2] पैटमोर के विचारों से भी इनका प्रायः पर्याप्त साम्य था । फिर भी ये पूरे अभारतीय थे यह विचार मुझे अमान्य है । आज के विश्व में सांस्कृतिक आदान-प्रदान के साथ वैचारिक आदान-प्रदान भी पर्याप्त सरलतापूर्वक

---

[1]**कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी ।**

[2]**'हाउण्ड आफ हैवेन' : फ्रैंसिस थाम्पसन ।**

हो रहे हैं। अर्थशास्त्र, राजनीति, धर्म आदि की विश्वव्यापी उद्भावनायें इसकी प्रमाण हैं। आज लेखक का व्यक्तित्व किसी देश-काल की सीमा से बँधा नहीं रह सकता और अगर वैसा है भी तो वह एकांगी अथवा अहग्रस्त है। प्रश्न यह है कि किसी भी विचार के अभिव्यक्तीकरण में लेखक ने किस बात को महत्व दिया है, क्या अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप उसका उदात्तीकरण करके परिष्कृत रूप में उसे अपनाया है ? भारत दर्शनप्रधान देश है। सभवत. इसकी मिट्टी के कण-कण में तप एवं तत्वान्वेषण का इतिहास छिपा हुआ है। यहाँ की भावनायें आज भी 'इलियट' जैसे लब्ध-प्रतिष्ठित लेखकों को 'वेस्ट लैंड' में दत्त, दभ्यत्, दयध्वम्' का घोष करने के लिए बाध्य करती हैं। उसके काव्य का अन्त 'ऊँ शान्ति' से होता है। गीता एवम् उपनिषद् के तमाम छन्द अनूदित रूप में उसमें पड़े हैं। बौद्ध दर्शन की तमाम गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की महत्ता को स्वीकार करने वाले न मालूम कितने आलोचक हमारी शास्त्रीय आलोचना की और आकर्षित हुए हैं। पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि उन्हें हमारे औपनिषदिक तत्व-ज्ञान को स्वीकृति प्रदान करने के कारण यूरोप में हेय समझा गया हो अथवा 'वर्ड्सवर्थ' तथा 'शेली' आदि को विदेशी प्रभाव स्वीकार करने के कारण महत्वपूर्ण न माना गया हो। सत्य तो सर्वदेशीय एवम् सर्वकालीय है। उसकी इयत्ता इन सीमाओं द्वारा निर्धारित नहीं की जा सकती। एक देश में उत्पन्न होकर दूसरे देश में शिक्षा ग्रहण कर, तीसरे देश में अपने कार्यों को सम्पादित करने वाला 'मार्क्स' एक चौथे देश में क्रान्ति करा सकने में समर्थ है। साहित्य को अपने कक्ष के वातायनों को हमेशा खुला रखना पड़ता है। इसी से चतुर्दिक् के प्रभाव उसे प्राप्त होते रह सकते हैं। पर जब वे प्रभाव किसी भी कक्ष विशेष में पहुँच जाते हैं तो वहाँ के वातावरण द्वारा उन्हें एक रूप दिया जाता है। रवीन्द्र पर भले ही विदेशी प्रभाव रहे हों चेतना सदा-सर्वदा भारतीय रही है। उनका एक सांस्कृतिक एवं सामाजिक आधार रहा है। वस्तुतः केवल बाह्य साम्य अथवा वैषम्य किसी भी प्रभाव को जानने के उपर्युक्त माध्यम नहीं है। सब प्रकार के वैषम्य के बावजूद द्विवेदी युग एवं परम्परावादी युग में साम्य है, तुलसी के मानस एवं मिल्टन की 'पैराडइज लास्ट' में सामान्य साम्य है। क्या केवल विचारों के आधार पर साम्य एवं वैषम्य की आराधना करने वाले लोग इनमें किसी धारा विशेष का अन्य धारा विशेष पर प्रभाव देख सकते हैं ? अगर नहीं तो इसका उनके पास क्या उत्तर है ?

रवीन्द्र का छायावाद पर प्रभाव

यह बात स्वीकार कर लेने पर कि रवीन्द्र पर बाह्य प्रभाव हो सकते हैं फिर भी उनकी चेतना भारतीय थी, अब दूसरा प्रश्न उठता है कि उन्होंने छायावाद को
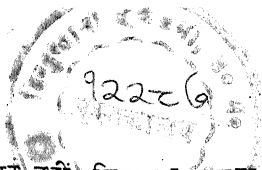
क्या देन दी ? इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि रवीन्द्र का काव्य, रवीन्द्र की शैली, रवीन्द्र की चिन्तन-प्रणाली, रवीन्द्र की दार्शनिकता तथा उनकी आधुनिकता ने आधुनिक साहित्य को कई रूपों में प्रभावित किया है। रवीन्द्र के अन्दर 'शेली' तथा 'कीट्स' के सौन्दर्यवाद, 'डब्लू० बी० ईट्स' तथा 'मेटरलिंक' के प्रतीकवाद तथा 'वर्ड्सवर्थ' के प्रकृति-प्रेम से मिलती-जुलती अभिव्यंजनाओं के दर्शन होते हैं। छायावादी कवियों में भी इन सभी स्वरूपों को हम किसी न किसी रूप में देखते हैं। 'निराला' को रवीन्द्र से प्रेम, आनन्द एवं सौन्दर्य का मानसिक वातावरण मिला, 'महादेवी' को प्रिय मिलन तथा विरह की प्रतीक्षा आदि की साकार कल्पना के दर्शन हुए। पन्त की भी 'प्रिये प्राणों की प्राण', 'अनंग,' 'अपरा' एव 'पल्लव' कालीन कविताओं में उनके प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य-भावना, कल्पना-सघनता तथा अभिव्यंजना-प्रणाली के दर्शन हुए। जयशंकर 'प्रसाद' पर बंगाल की स्वच्छन्दतावादी धारा का प्रभाव था। इस प्रकार 'रवीन्द्र की गीतांजलि ने हिन्दी काव्य में ईश्वर के निर्विकल्प स्वरूप को व्यक्तिवादी, सौन्दर्यवादी, रहस्यवादी तथा सर्वव्यापी चिरन्तन प्रेम बनाने में योग दिया।'[1] उनसे हमें जीवन के शृङ्गार, शिवत्व के प्रभविष्णु मसृण स्वरूप तथा विराट् आप्त-दर्शन की प्राप्ति हुई। परन्तु अपनी अखण्ड वैयक्तिकता के आग्रह एवं सामाजिक मंगल की उपेक्षा के कारण ये हिन्दी के कवि उस प्रभाव को उस प्रशस्त पृष्ठभूमि में नहीं प्राप्त कर सके जो रवीन्द्र को उपनिषद्-कवि और शेली को युगद्रष्टा बनाने में सफल थी। रवीन्द्र की भी अपनी सीमायें थीं। वे सत्य से अधिक सौन्दर्य के, समाज से अधिक सृष्टि देवता के, समस्याओं से अधिक शिव के, सामयिकता से अधिक अनन्त के अन्तर्यामी कवि मनीषी थे। आत्मा के रहस्यवादी वृत्त के चतुर्दिक् उनका भ्रमण हो रहा था और वे समाज तथा मनुष्य को उसके वास्तविक धरातल से न देखकर व्यक्ति के आदर्शपूर्ण गौरव के प्राचीन खण्डहरों पर खड़े होकर देखते थे। अपनी इस सीमा के कारण उनके साहित्य में आज के मानववादी दृष्टिकोण का समन्वय न हो सका, अतएव उनका साहित्य इस चुनौती के समक्ष निर्बल सिद्ध हुआ।

स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव

इस स्थल पर इस प्रभाव के विषय में अधिक कहने का अवसर नहीं है फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि इसका कुछ प्रभाव बंगाल की कविताओं

---

[1]**आधुनिक काव्य-साहित्य के बदलते हुए मानों का अध्ययन:**

रमेश प्रसाद मिश्र।

से होकर आ चुका था पर कवि-जिज्ञासा उससे संतुष्ट न हुई। उसने अंग्रेजी कवियों का अध्ययन किया। द्विवेदी युग तथा पुरातनतावादी युग का अध्ययन करते हुए इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि परिस्थितियाँ भले ही दो भिन्न देशों और भिन्न कालों में स्थान ग्रहण कर रही थीं फिर भी उनमें पर्याप्त साम्य था। प्रतिक्रिया भी कुछ एक-सी ही हुई। छायावादी कवियों का अपनी अभिव्यंजना, कुशलता तथा सत्योपयोगिता के लिये विभिन्न दृष्टिकोणों का अवलोकन करना स्वाभाविक हो गया। उन्होंने उसका अवलोकन किया, प्रेरणा भी ग्रहण की पर उसी को अपना जीवन सर्वस्व नहीं मान लिया। 'क्षेम' ने ठीक ही लिखा है, 'छायावादी युग के प्रथम उत्थान के कवियों ने अंग्रेजी तथा बँगला से प्रेरणा भी ग्रहण की पर उसी रूप में जैसे एक जीवित साहित्य दूसरे जीवित साहित्य से प्रेरणा लेता है। छायावादी काव्य अपनी परम्परा से विच्छिन्न विदेशी काव्य नहीं। परिवर्तित परिस्थितियों में अपनी ही सामंजस्यशील आर्य-साहित्य-साधना का एक युगानुकूल मोड़ है।'[1]

अभिव्यंजनावाद का प्रभाव

भारतीय स्वच्छन्दतावादी अभिव्यंजनावाद से भी प्रभावित थे। अभिव्यंजनावाद के अनुसार कलाकार अपने अन्तर की भावना को बाहर प्रकाशित करता है। उसका काम यथार्थ का प्रतिनिधिमूलक चित्रण प्रस्तुत करना नहीं है क्योंकि वह अपनी आन्तरिक भावना के अनुरूप यथार्थ का चित्रण करता है या उस यथार्थ को स्पर्श भी नहीं करता। कलाकार उसी क्षण में कलाकार है जब उसके अन्तर में भावावेग गतिशील रहता है। कोई भी वस्तु कलाकृति के लिये उपयुक्त है, उसके भली-बुरी होने का प्रश्न नहीं उठता। छायावादियों पर भी इस दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि वे के बाह्य स्थूल उपकरणों को त्याग कर आन्तरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को ही महत्व प्रदान करते हैं। हृदय में उठते हुए प्रचण्ड प्रेम के प्रवाह का चित्रोपम स्वरूप हमें उनकी अनेक कविताओं में उपलब्ध होता है। कहीं-कहीं तो अमूर्त मनोदशाओं का इतना सुन्दर मूर्त चित्रण है कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। उदाहरण के लिये निम्नांकित कविता ली जा सकती है।

मौन रही हार
प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार।
कण-कण कर कंकण प्रिय किण-किण रव किंकिणी

---

[1]**छायावाद की काव्य-साधना : प्रो० 'क्षेम'।**

रणन-रणन नूपुर उर लौट लाज रंकिणी।
और मुखर पायल धुनि करे बार-बार,
प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार।

शब्द सुना ही तो अब लौट कहाँ जाऊँ,
उन चरणों को छोड़ और शरण कहाँ पाऊँ।

प्रतीकवाद का प्रभाव

कुछ लोगों के अनुसार प्रतीकवाद का भी छायावाद पर प्रभाव है। प्रतीकवाद के रूप में हमारे समक्ष दो विचारधारायें उपस्थित होती हैं : एक तो पुरातन काल से चलता हुआ प्रतीक, दूसरा आधुनिक काल में पाश्चात्य देशों में आन्दोलन के रूप में चलने वाली भावना का दृश्य उपमानों द्वारा मूर्तीकरण। जब भी हम साहित्य में प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग देखते हैं तो इतना कह ही सकते हैं कि वह स्वच्छन्द मनोवृत्ति पर ही अधिक आधारित है। आदिम काल से ही इन प्रतीकों का प्रयोग मुख्य रूप से 'माइथालाजी' में दृष्टिगोचर होता है। हमारे ही देश में शिव का स्वरूप, रावण के दस मुख, बीस भुजायें अथवा देवासुर संग्राम ये सब प्रतीक रूप में लिये जा सकते हैं। मध्यकालीन साहित्य में सन्तों द्वारा इनका पर्याप्त प्रयोग किया गया है। कबीर समुद्र में आग लगा देते हैं, नदियाँ जल कर राख हो जाती हैं, पर मछली जलती ही नहीं, वह तो वृक्ष पर चढ़ जाती है। अंग्रेजी 'मेटाफिजिकल' कवियों ने 'सिम्बल' का प्रयोग किया है। स्वच्छन्दतावादियों में भी इसका प्रभूत प्रयोग मिलता है; पर धड़ल्ले से इसका प्रयोग आधुनिक युग में ही दृष्टिगोचर होता है। 'इलियट,' 'एजरापाउण्ड', 'इशरवुड', 'थाम्पसन' और 'यीट्स' के उदाहरण लिये जा सकते हैं। भारतवर्ष में सन्तकाव्य के पश्चात् आधुनिक काल में रवीन्द्र ने इसका विशेष प्रयोग किया है।

प्रतीक का मूलाधार उसका आदर्श सौन्दर्य के प्रति आग्रह है। उसमें इस भावना का भी दर्शन होता है कि कला के माध्यम से उस सौन्दर्य-जगत को आत्मसात् करना सम्भव है। फलस्वरूप काव्य में पूजाभाव एवम् अन्तर्योग को महत्व मिलता है और योगी की निर्विकल्प समाधि के स्थान पर कलाकार की सविकल्प समाधि की कल्पना होती है, जिसमें देश-काल, अस्ति-नास्ति, हर्ष-विषाद अखण्डित आनन्द में लयमान हो जाते हैं।[1] सर्जन के क्षणों में कवि जिस विधायक कल्पना की शक्ति का अनुभव करता है वही महत्वपूर्ण मान ली जाती है। फलतः

[1]मूल्य एवं मूल्यांकन : डा० रामरतन भटनागर।

शब्द एवम् अर्थ उसको अभिव्यक्त करने में पीछे रह जाते हैं। अतः इस परवशता के कारण प्रतीकों का खुल कर प्रयोग होता है जिससे उसमें एक दुरूहता आ जाती है। प्रतीकवाद के उन्नायक 'मेलामें' महोदय का यह अभिमत है कि कविता का आनन्द तभी मिलता है जब समझ का उपयोग करके अर्थ किया जाय। स्पष्ट कह देने में कविता का तीन चतुर्थांश आनन्द समाप्त हो जाता है। उसने यह स्वीकार किया है कि प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति एवम् संवेदना में ही अन्तर नहीं, अपितु प्रत्येक भाव, वेदना तथा अनुभव में भी अन्तर है और प्रत्येक का अस्तित्व भिन्न है। यह अनुभव इतनी क्षिप्र गति से अदृश्य हो जाता है कि भाषा की सामान्य स्थिति उसे बाँध सकने में असमर्थ हो जाती है। अतएव स्वच्छन्दतावादी एवम् छायावादी कवियों ने उसका खुल आश्रय ग्रहण किया है।

वैष्णव-प्रभाव

छायावादी कवि विशुद्ध भारतीय वातावरण में निवास करने वाले थे। भारतीय काव्य की भी एक परम्परा, विभिन्न युगों से होती हुई, विभिन्न प्रभावों को अपने अन्तराल में सन्निहित करती हुई, आज के विकसित रूप में हमें दृष्टिगोचर होती है। इसमें भी बड़े से बड़े रहस्यवादी, तत्व-चिन्तक, विचारक, कविता की तात्विक व्याख्या करके उसके द्वारा अपने धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक विचारों का समन्वय करके उसको अभिव्यक्ति करने वाले लोग प्रस्तुत रहे हैं। अतएव ये कवि इनसे भी प्रभावित हुए हैं। आधुनिक छायावादी कविता में ससीम एवं असीम के मिलन की उत्कण्ठाएँ बड़े मनोयोग से व्यक्त की गयी हैं। इसका रागात्मक माधुर्य सगुण भक्ति से रसोद्रेक प्राप्त करके उससे आपूर्ण है। रवीन्द्र, निराला, महादेवी आदि मूलतः अद्वैती होते हुए भी कान्ता भक्ति एवं सखा भक्ति की भावमूलक व्यंजना करते हैं, रूप सौन्दर्य, प्रेमोपासना एवं आसक्तिप्रधान भक्ति इसी वैष्णव प्रभाव की देन है।[1]

सूफी काव्य का प्रभाव

इस विचारधारा का प्रेरणा-स्रोत सूफी काव्य भी रहा है। प्रिय-संमिलन की आकुलता, प्रचण्ड विरह-वेग, प्रियतमा को पुल्लिंग में संबोधित करने की कला एवं मधुचर्या का सम्मोहन तथा प्रतीक-अभिव्यक्ति की विरासत सूफियों से मिली है। उमरखैयाम की रुबाइयों का अनुवाद भी उस समय प्रस्तुत किया गया है। काम-

---

[1]आधुनिक हिन्दी साहित्य के बदलते हुए मानों का अध्ययन : रमेशप्रसाद मिश्र।

अतृप्ति के कारण यह यहाँ के कुछ कवियों के गले का हार बन गयी और सामान्य नश्वरता से मधुचर्या का आधार लेकर, अनश्वरता, अनित्यता तथा चिरन्तनता की ओर उन्मुख होने का स्वाँग भरने में कुछ लोगों को समर्थ बना सकी है।

विवेकानन्द की मातृ-शक्ति का प्रभाव

अधिक सूक्ष्मता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि विवेकानन्द की मातृ-शक्ति की उपासना निराला में अपने पूरे निखार के साथ स्फुरित हुई। पन्त ने भी इसे मातृ-शक्ति के पुनीत आसन पर प्रतिष्ठित किया और क्रान्तिकारियों ने मातृ-भूमि को दुर्गा मान कर उसे अपना शीश चढ़ाया।

बौद्ध-धर्म का प्रभाव

परिस्थितिजन्य दैन्य तथा निराशा के कारण बौद्ध-धर्म का प्रभाव इन विचारकों की चिन्तन-शक्ति का अविच्छिन्न अंग बन गया। इसका स्पष्ट प्रभाव 'प्रसाद' की नाट्य-कला तथा 'महादेवी' की कविताओं पर पड़ा।

मध्यकालीन कवयित्री 'मीरा' 'कबीर' आदि भी कभी-कभी इनके प्रेरणा-स्रोत के रूप में दीख पड़ते हैं। अगर मीरां अपनी करुणा की कूक में गा पड़ती हैं कि—

'सुरति निरति का दिवला संजोले, मनसा की कर ले बाती
प्रेम हरी का तेल मंगा ले जग रह्या उनते राती।'

तो महादेवी भी कहती दीख पड़ती हैं—

'अपना जीवन दीप मृदुलतर
वर्ती कर निज स्नेह सिक्त उर
फिर जो जल पावे हंस-हंस कर
हो आभा साकार।'

अगर मीरां अपने प्रिय को अपने हृदय में देखकर कूक पड़ती है—

'मेरा पिया मेरे दिल में बसत है, ना कहु आती जाती
जिसका पिया परदेश बसत है लिख लिख भेजें पाती।'

तो महादेवी के भी करुण-सिक्त हृदय में उसी प्रकार की एक टीस उठकर गुनगुना पड़ती है—

'अलि कहाँ सन्देश भेजूँ, मैं किसे सन्देश भेजूँ,
नयन-पथ से स्वप्न में मिल, प्यास में घुल साध में खिल,
प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूँ।'

कबीर ने इसी स्वर में कहा है कि—

'प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कोइ होय विदेश
तन में, मन में, नैन में, ताकों कहाँ सन्देश।'

इनका भी शैली एवं विचार सम्बन्धी प्रभाव किंचित् रूप में छायावाद पर पड़ा।

सामाजिक, राजनीतिक एवम् आर्थिक परिस्थितियाँ

अब हमें सामाजिक, राजनीतिक एवम् आर्थिक पृष्ठभूमि में इनके प्रेरणा-स्रोत पर दृष्टिपात कर लेना समीचीनी होगा। बीसवीं शताब्दी, भारतीय राज-नीति में संक्रमण-काल की संज्ञा से अभिहित की जा सकती है। इस समय नवीन शिक्षा के फलस्वरूप, नवीन वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न करने वाली परिस्थिति के कारण, 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा बुलन्द करते हुए हम अपनी दासता की बेड़ियों को तोड़ने का प्रयत्न करने लगे। एक दो सत्याग्रहों की असफलता तथा प्रथम युद्धोत्तर काल में सुविधाओं के स्थान पर जलियानवाले बाग तथा रौलट ऐक्ट जैसी घटनाओं से हमें क्षणिक निराशा अवश्य हुई, पर हमारी भावना पददलित न हुई। कहा जाता है कि भारतवर्ष अंग्रेजी शासन के शिकन्जे में जकड़ा होने से वैयक्तिक स्वतन्त्रता से दूर था और 'शासन के प्रबल विरोध के कारण नई पीढ़ी के कवि अपने जीवन को सत्य नहीं कर पा रहे थे।'[1]......अतएव इस अन्तर्विरोध का स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक परिणाम हुआ मानसिक क्षोभ एवम् कुंठा। इसके कारण हमारी वृत्ति पलायनवादी हो गई और हमारी अभिव्यक्ति अस्पष्ट एवं धुँधली। स्वतन्त्रता की बलवती भूख जीवन में तृप्ति न पा सकने के कारण कुंठित हो गई और काव्य-जगत् में परम्परागत रूढ़ि. विषय-शैली, भाषा आदि के विरोध में फूट पड़ी।[2] मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि किस कुण्ठा की ओर आलोचकप्रवर इशारा करते हैं? सत्याग्रह का मुख्य उद्देश्य एक ही बार में अंग्रेजों को भगा देना तो था नहीं। हमारा उद्देश्य तो बार-बार के अवरोध के द्वारा सर-कारी मशीनरी को कमजोर करके स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। अगर राजनीतिक क्षेत्र में हम कुण्ठा की बात मान भी लें तो इसका कौन-सा हल दिया जा सकता है कि १९२१ के उपरान्त १९३१ का और १९३१ से भी प्रबल सन् १९४२ का सत्याग्रह हुआ। दूसरी बात जिसकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए वह यह है कि क्या सन् २१ के आन्दोलन की असफलता के पश्चात् हम आत्मविश्वास खो दिए? क्या स्वतन्त्रता के लिये काम होने बन्द हो गये? सत्य यह है कि कभी-कभी ऐसे

---

[1]अवन्तिका (काव्यालोचनांक), पृ० २२८।

[2]कवि सुमित्रानन्दन पन्त एवं उनका प्रतिनिधि काव्य : प्रो० शिवनन्दन प्रसाद पृ० २७।

अवसरों पर जो सामयिक निराशा हो जाया करती है वह बाद में और भी प्रबल उत्साह एवं जन-जागरण का अग्रदूत प्रमाणित हो सकती है। इस परिस्थिति से उस काल के छायावादी लेखक कितने प्रभावित हुए यह विचारणीय प्रश्न है। हमें जो लगता है कि प्रमुख छायावादी कवि सामान्यतः राष्ट्रीय कवि नहीं हैं। तरंग में आकर छिटपुट जो भी राष्ट्रीय भावना की कवितायें की गईं उनमें आशा का संचार मात्र है। प्रसाद के नाटकों में जहाँ हमें देश-प्रेमपरक गीतों के दर्शन होते हैं वहाँ अतीत के पटल पर आधुनिक काल की उद्‌बुद्धता का प्रयास मुख्य रूप से दृष्टिगोचर होता है। अतएव इन कवियों की जो भी निराशायें थीं वे पूर्णरूपेण व्यक्तिगत थीं। उनका वैयक्तिक स्वरूप उनके सामाजिक स्वरूप से अधिक स्पष्ट था। वे अपनी व्यक्तिगत सफलताओं, असफलताओं से अधिक प्रभावित हुए थे। फिर भी उनके जीवन में स्पन्दन था और अभिव्यक्ति में कौशल। वे इसी स्पंदनमयी अभिव्यक्ति का आलोड़न करते रहे। उन पर सामाजिक स्वरूप का अंकुश भले रहा हो पर राजनीतिक स्वरूप एवम् उसके प्रभाव कम दृष्टिगोचर होते हैं। आर्थिक दृष्टिकोण से तो उन्होंने वस्तु-स्थिति को देखा ही नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता, फिर भी वह उनकी मधुचर्या के समक्ष निस्तत्व ही रही।

गांधीवादी विचारधारा भी इस काल में तीन स्रोतों से होकर प्रवाहित होती रही। प्रथम क्रान्तिकारी थी जो क्रान्ति की लपटों में जयघोष से सम्बद्ध थी दूसरी सत्याग्रही वीरों की जेल-यातनाओं, त्याग तथा बलिदानों से सम्बन्ध थी। और तीसरी विचारधारा आध्यात्मिक आदर्शवाद से सम्बद्ध थी। इन तीनों धाराओं के त्रिवेणी-संगम का दर्शन हमें राष्ट्रीय कविताओं में हुआ।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वच्छन्दतावाद पर फ्रांस की राज्य-क्रांति, जर्मनी की स्वच्छन्दतावादी विचारधारा, स्वदेशी राजनीतिक स्थिति, औद्योगिक क्रान्ति तथा मध्यकालीन देवकथाओं का प्रभाव रहा और छायावाद पर स्वच्छन्दतावाद, बँगला-साहित्य, मध्यकालीन साहित्य, भारतीय दर्शन, बौद्ध दर्शन, विवेकानन्द के विचार तथा तद्‌युगीन सामाजिक अनुबन्धनों का विशेष प्रभाव रहा। छायावाद अपने प्रभाव-क्षेत्र में केवल स्वच्छन्दतावाद का ही मुखापेक्षी न रहा, केवल स्वच्छन्दतावाद के प्रभावों में मग्न न था अपितु उसकी भी स्वच्छन्दतावाद से अलग अपनी एक पृष्ठभूमि और सत्ता थी। भारतीय पूंजीवाद अंग्रेजी औद्योगिक क्रान्ति के सदृश नहीं था। औद्योगिक क्रान्ति समाज की आवश्यकताओं द्वारा स्वतः उद्‌भुत क्रान्ति थी, पर भारतवर्ष में किए गये कार्य औपनिवेशिक सुधार की कोटि के थे।

वे जनता के समक्ष रोटी के टुकड़े फेंकने सदृश थे। फ्रांस की राजक्रान्ति, उसकी सफलता तथा विफलता के स्वच्छन्दतावादी कवि प्रत्यक्ष दर्शक थे, अतएव वे अपने मानवतावादी विचारों में अधिक स्पष्ट तथा क्रान्तिकारी थे। भारतवर्ष में चलने वाला सत्याग्रह हमारी स्वतन्त्रता की प्राप्ति का एक माध्यम था जब कि उनकी राज्य-क्रान्ति शोषण के विरुद्ध एक शस्त्रीय प्रतिक्रिया थी। इस शस्त्र-प्रयोग से उद्भूत परिस्थितियाँ उनके विचारों को अधिक झकझोर सकीं, पर हम निःश्शस्त्र एवं निषेधात्मक अवरोध ही उत्पन्न कर सके। अतएव क्रान्तदर्शी सत्याग्रहियों को छोड़कर सामान्य जनता उसकी सफलता के प्रति सशंक थी। आंग्ल स्वच्छन्दतावादी अपनी वैचारिक क्रान्ति में अधिक आग उगल सके, पर भारतीय कवि अपने क्रान्ति के गीतों द्वारा राष्ट्र के उद्बोधन में रत अवश्य हुए पर उनमें वह तीव्र भावना न आ सकी जो क्रान्ति का वातावरण पैदा कर सकती।

४
परिभाषा एवं व्याख्या

स्वच्छन्दतावाद यूरोप की उपज थी और छायावाद भारतवर्ष की। छायावाद पर अधिकतर भारतीय विचारकों ने दृष्टिपात किया है और स्वच्छन्दतावाद पर यूरोपीय। अतएव इनका अलग-अलग साम्य-वैषम्य निरूपित करना अधिक समीचीन होगा।

स्वच्छन्दतावाद

रोमांस शब्द का उद्गम एवं इतिहास

स्वच्छन्दतावाद के मूल में साहित्य के पूर्ववर्ती रोमांस की प्रेरणा रही है। रोमांस लेटिन शब्द 'रोमना' (Romana) से बना है। काव्य में प्रयुक्त

मध्ययुगीन रोमांस एक सभ्यता का दूसरी सभ्यता में परिणति माना जा सकता है। स्टॉडर्ड (Stoddard) का कहना है कि 'रोमांस ऐसी प्रवृत्ति है जो अन्य स्थान से उपलब्ध, अन्यदेशीय तथा स्थानान्तरित प्रवृत्ति कही जा सकती है। यह उस प्रस्तुत जीवन से अधिक उपयुक्त, उत्तम तथा उत्कृष्ट जीवन की खोज कही जा सकती है जिसका हमें पूर्ण ज्ञान नहीं है और जो आशा का विषय होने के बावजूद उपलब्ध नहीं हो पा रही है।'[1] पियर्सल स्मिथ (Pearsall Smith) के शब्दों में यह मानव विचारधारा में परिवर्तन का प्रतीक होने के साथ ही इस सत्य का भी साक्षी है कि उस समय के लोग इसमें निहित ऐसे गुण से परिचित हो चुके थे जिसके लिये नामकरण आवश्यक था। इसकी दो विशेषतायें थीं। इसका एक पक्ष शूरतापूर्ण दाक्षिण्य एवं युद्धान्वेषी सामन्ती मनोवृत्ति का द्योतक था। इसमें नायक अपनी नायिका तक पहुँचने के लिये शैतानों को मार डालता था या उन्हें अपनी शक्ति-बल से पालतू बना लेता था। इसमें शूरवीरता का प्रदर्शन प्रमुख था। परन्तु इसका दूसरा पक्ष धोखाधड़ी, पाखण्ड एवं मात्र शूरवीरता का द्योतक था। उसका स्वरूप हमें फ्रांस की पाखंडपूर्ण रोमांचक कहानियों में दृष्टिगोचर होता है। अपनी इस विशेषता के कारण यह मिथ्या एवं यथार्थ माना जाता था। इसीलिये कुछ लोग इसे प्रथम तो जीवन के बौद्धिक स्वरूप की संज्ञा देते रहे, परन्तु तर्क की कसौटी पर यह मिथ्या, आडम्बरपूर्ण एवं काल्पनिक ही समझा जाता रहा। अतएव उस समय इसके अर्थ की सीमा के अन्तर्गत रोमानी साहित्य के लोकातीत तत्व, उनके शैतान, जादूगर, ऐन्द्रजालिक दुर्ग, पूर्ववर्ती साहित्य के झूठे, असम्भव, आवेग-पूर्ण विचार तथा उनके अतिरंजित एवं हास्यास्पद स्वरूप निहित थे। इसीलिये हमें ऐसी स्वच्छन्दतावादी कहानियों का भी दर्शन होता है जिसमें प्रेम एवं सम्मान का स्वरूप प्रायः अव्यवस्थित है। अतएव वे प्रहसन या स्वाँग मात्र हैं। बाद के १५० वर्षों तक 'रोमांस' को हास्यास्पद एवं अयथार्थ की संज्ञा से विभूषित किया जाता रहा। 'पियर्सल स्मिथ' ने इसका विवेचन करते हुए लिखा है कि 'उस काल की कृतियों में हम 'रोमांटिक' शब्द को अस्वाभाविक, हास्यास्पद तथा निराधार शब्दों से संबद्ध पाते हैं। हमें उस सन्दर्भ में स्वच्छन्दतावादी असंगति तथा

---

[1]A romance is something, transferred, brought from a far. A romance is something foreign. It is something hunting of life, better, completer or nobler than the present life, dimly konwn, detached from, hoped for yet,, never expected in the present life.--
Stoddard.

अविश्वसनीय गल्प जैसे शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं।'[1] १८वीं शताब्दी के कवि इसे अनियन्त्रित कल्पना (unregulated imagination) मानते रहे हैं। पोप की गर्वोक्ति इस दृष्टि से दर्शनीय है—

'वह ललित कल्पना की भूल भुलैया में नहीं घूमता रहा,
अपितु सत्योन्मुख होकर अपने संगीत को नैतिक बनता रहा।'[2]

स्वच्छन्दतावादी अभ्युदय के साथ ही 'रोमाण्टिक' का प्रयोग होने लगा जो अतार्किक एवं असम्भव होने के बावजूद कल्पना को सम्मोहित कर सकने में सक्षम था। आलोचकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। इस शब्द का प्रयोग प्राकृतिक चित्रों के कुछ ऐसे गुणों को उपस्थित करने के लिये किया गया जो मध्यकालीन रोमांचकारी प्रवृत्तियों की मूल विशेषता थी।

१९वीं शताब्दी के आरम्भ के साथ ही यह शब्द अपने सीमित दायरे से मुक्त हो गया और दृश्यों एवं पूर्वसीमित साहित्यिक मान्यताओं का परित्याग करके नवीन अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। 'अब यह अनुभव करने के साधन अथवा अनुभव के निर्माण की ऐसी प्रक्रिया का द्योतक समझा गया जिसको हम विश्वजनीन स्वभाव की संरचना के परिणामस्वरूप मान्यता देते हैं।'[3] यह विभिन्न सम्भव तरीकों में वस्तुओं के सर्वेक्षण का सर्वोत्तम साधन सिद्ध हुआ। इसीलिए रस्किन यह घोषित कर सका कि 'यह असम्भव है कि पुरातनतावादी अथवा परम्परावादी प्रवृत्ति ही सदा महान् मस्तिष्कों पर अपना प्रभाव रखे।'[4]

रोमांस एवं रोमाण्टिक शब्द के विविध अर्थ

सामान्य भाषा में इसे इच्छाओं का सामान्य जीवन एवं सामान्य स्थानों से प्रत्यावर्तन के साथ ही उग्र प्रयत्न एवं अनिश्चित उत्कण्ठा के क्षेत्र में सामान्य

---

[1]In the writing of this period, we find the word romantic coupled with terms like 'chimerical', ridiculous, unnatural, bombast, we read the the childish and romantic poems of romantic absurdities and incredible fiction.—*P. Smith.*

[2]"That not in fancy's maze he wondered long, but stopped to truth and moralised his song."—*Pope.*

[3]It came to denote certain ways of experiencing things or fashioning experience, which we, now, recognise to be infact a universal possible consequence of the mere structure of human nature. – What is Romanticism, *K. K. Sharma.*

[4]It is impossible that classical spirit should ever take possession of a mind of highest order.—*Ruskin.*

सन्तोष के नाम से ही अभिहित किया जा सकता है । इसे हम अभिलषित कल्पना के क्षेत्र में सम्भव की विवृति भी कह सकते हैं । स्वच्छन्दतावाद शाब्दिक स्वच्छन्दतावाद से भिन्न है । 'इस रूप में यह 'लिटरल' स्वच्छन्दतावाद का प्रतीकवाद में ऐसा अवस्थान्तर कहा जा सकता है जिसका रहस्यमय अर्थ केवल उन्हीं को ज्ञात हो सकता है जिनके आध्यात्मिक जीवन की गम्भीरता उन्हें इस परदे से बाहर झाँकने की अनुमति देती है । यथार्थ में स्वच्छन्दतावाद प्रतीकों का सिद्धान्त है । यह स्वच्छन्दतावाद मध्यकालीन रहस्यवादी प्रतीकों की धार्मिक, साहित्यिक एवं कलापूर्ण अभिव्यक्ति कहा जा सकता है ।'

स्वच्छन्दतावाद एवं परम्परावाद

'हीन' (Heine) का विचार है कि मध्यकालीन कविता की कुछ ऐसी विशेषता है जिसके आधार पर यह ग्रीक और रोमन कविता से भिन्न समझी जाती है । इस भिन्नता के सन्दर्भ में हम प्रथम को 'रोमाण्टिक' एवं द्वितीय को 'क्लासिकल' कह सकते हैं । परम्परावादी साहित्य की क्या विशेषतायें हैं, इस पर प्रकाश डाला जा चुका है । यहाँ पर केवल इतना ही कहना उचित है कि कुछ ऐसे विशेष गुण, बौद्धिक स्थितियाँ, अनुभव एवं विचार के तरीके, एवं शैली की नवीनताएँ हैं जो इनको एक दूसरे से भिन्न ठहराती हैं । स्टाडर्ड का कहना है कि 'विशुद्ध परम्परावादी सृजन, स्वरूप, उद्देश्य एवं सम्बन्ध के नियमों का मुखापेक्षी है । परम्परावादी मस्तिष्क इनको मान्यता देता है । इसके मूल में अनुपात, आकर्षण एवं सामंजस्य क्रियाशील हैं...क्लासिकल भावनायें नियम से उद्भूत होकर प्रभुत्व की क्रोड़ में पल्लवित एवं पुष्पित होती हैं । परम्परावादी इस दृष्टि से पुरातनतावादी कहा जा सकता है । स्वच्छन्दतावाद में प्रकृत के स्थान पर अन्यापदेशिक का आग्रह रहता है । यह स्पष्टता के स्थान पर गम्भीर विचारों के प्रतीकों को प्रश्रय देता है । इसके मूल में आधिकारिक प्रतिमानों के विरुद्ध एक असन्तोष का भाव निहित है । यह पुरातन नियमों के स्थान पर नवीन नियमों की प्रतिष्ठा करना चाहता है । इसीलिए परम्परावादी व्यक्ति की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी कृतियों में अनुपात एवं सामंजस्य का अभाव रहता है । परम्परावाद एक सुसंस्कृत स्वीकृति है और स्वच्छन्दतावाद एक अनियन्त्रित अभिलाषा ।'

श्लेजेल का विचार है कि 'पुरातनतावादी साहित्य में विचार स्पष्ट एवं अनलंकृत रूप में उपस्थित किये जाते हैं, परन्तु स्वच्छन्दतावादी साहित्य में सभी उपादान रंगीन एवं अस्पष्ट वातावरण में अभिव्यक्त किए जाते हैं । हर विचारों के साथ में कलाकार ऐसे सहायक विचारों का एक समुदाय रखते हैं जो इसके प्रभाव को बढ़ा सकें । यद्यपि ऐसा करने से कभी-कभी बाह्य स्वरूप भ्रमोत्पादक हो

जाता है। परम्परावादी कलाकार आत्म-नियन्त्रण की स्थिति में काम करता है और स्वच्छन्दतावादी विक्षोभ की स्थिति में। प्रथम में हमें शान्ति के दर्शन होते हैं और दूसरे में उत्साह के। एक की शैली का गुण किसी भी वस्तु को स्पष्ट रूप से ग्रहण करके उसे उपयुक्त ढङ्ग से उपस्थित करने में निहित है, जब कि दूसरे का आत्म-दीप्ति द्वारा सम्मोहक तथा विविध संस्पर्श प्रदान करने में।

डॉ० स्टेण्डल का विचार है कि सभी उत्तम कलायें अपने काल में स्वच्छन्दतावादी रही हैं। उनके अनुसार 'स्वच्छन्दतावाद यथार्थ आदतों एवं विश्वासों को राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित करने की ऐसी विधि है जो उन्हें अधिक से अधिक सम्भव आनन्द प्रदान कर सकती है। इसके विरुद्ध परम्परावाद इन्हें उस रूप में उपस्थित करता है जो हमारे प्रपितामहों को सर्वाधिक आनन्द प्रदान करता था। (उनके अनुसार) स्वच्छन्दतावाद प्रगति, स्वतन्त्रता, मौलिकता एवं भविष्य कल्पना का प्रतीक है जबकि परम्परावाद पुरातनता, अधिकार, अनुकरण एवं विगत कल्पना का।'[1]

इन उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि विषय स्वच्छन्दतावादी अथवा परम्परावादी नहीं होता। केवल उनके उपस्थित करने के ढङ्ग में ये प्रवृत्तियाँ निहित हैं। यथार्थ में परम्परावाद एवं स्वच्छन्दतावाद का अन्तर अनावश्यक विचार-विमर्श का विषय रहा है। एबरक्राम्बी ने ठीक ही कहा है कि यह अन्तर पूर्णतः अनुपयुक्त है क्योंकि स्वच्छन्दतावाद परम्परावाद से पूर्ण भिन्न वस्तु है। यथार्थ में परम्परावाद एवं स्वच्छन्दतावाद का भेद सन्तुलन के ऊपर निर्भर करता है, कभी-कभी हम ऐसा भी देखते हैं कि स्वच्छन्दतावाद में परम्परावाद के गुण विशेष भी निहित हैं।

स्वच्छन्दतावाद एवं परम्परावाद में अत्यधिक विभेद की विवेचना के परिणाम स्वरूप यह सत्य आँखों से पूर्णरूपेण ओझल हो जा सकता है कि वे मूलतः एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इतिहास एवं जीवन में इन्हीं के कारण सजीवता बनी रहती हैं। ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ यथार्थ में समष्टि व्यक्तित्व के दो अङ्ग हैं।

---

[1]Romanticism is the art of presenting to the nation the literary works, which in actual state of their habit and beliefs are capable of giving them the greatest possible pleasure. Classicism on the contrary, presents them with what gave the greatest possible pleasure to their great grandfathers.......... Romanticism, stands for progress, liberty, originality and the spirit of the future, classicism for conservatism, authority, imitation and the spirit of past. *Dr. Stendhal.*

कभी उस पर एक का अधिकार रहता है तो कभी दूसरे का। इसी परिवर्तन के कारण इतिहास एवं व्यक्ति दोनों में सजीवता का संचार होता है।

स्वच्छन्दतावाद क्या नहीं है

स्तच्छन्दतावाद मात्र निश्चित काल एवं निश्चित शैली का क्रिया-कलाप अथवा परम्परागत शैली के विरुद्ध प्रतिक्रिया नहीं। यह तत्त्व ही नहीं, अपितु कलाकार जो भी विलक्षण कार्य सम्पादित करना चाहता है उसके लिये दिशा-निर्देशक एवं महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। स्वच्छन्दतावाद अशांत नकारात्मकता की पुकार नहीं है, यह तो भौतिक, मानसिक एवं आधिदैविक क्षेत्र के अन्दर आदर्श की खोज में मानवीय गवेषणा का कीर्तिमान है। एक समालोचक के शब्दो में रोमांस, व्यंजना एवं भविष्यवाणी है। हर प्रकार का स्वच्छंदतावाद धुँधले आदर्श की ओर उन्मुख रहता है। इसीलिए वह समाज के सम्भव उत्थान के लिये मानवीय मस्तिष्क की खोज करता है। 'स्टाडर्ड' ने ठीक ही कहा है कि अपनी सोंवत्कृष्ट अभिव्यक्ति में स्वच्छंदतावाद नवीन नियम, तथ्य, सामंजस्य एवं परिदृश्य के लिए पुरातन नियम, तथ्य, सामंजस्य एवं पुरातनता का परित्याग है। अपने इस रूप में स्वच्छंदता-वादी कर्त्तृत्व अज्ञात देवता के लिये एक चबूतरा है।'

स्वच्छन्दतावाद क्या है

यह ज्ञात हो जाने के पश्चात् कि स्वच्छंदतावाद क्या नहीं है, अब हमें यह देख लेना समीचीन होगा कि यह क्या है? 'एबरक्राम्बी' ने स्वच्छदतावाद को मस्तिष्क का एक सुनिश्चित स्वरूप माना है। यह ऐसी विचारधारा है जो यथार्थ से संबंधित न होते हुए भी विधायिनी कल्पना शक्ति के आधार पर उस यथार्थ पर दृष्टिपात करती है। यह बाह्य अनुभव के स्थान पर आन्तरिक अनुभव का महत्त्व प्रतिपादित करती है, फिर भी न तो उस आन्तरिक अनुभव पर ही उसका एकाधिकार है और न बाह्य अनुभव की अनुपस्थिति में वह उसे उपलब्ध कर सकने में ही सक्षम है। एबरक्राम्बी ने इस सत्य को अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि 'परियाँ तभी स्वच्छंदतावाद की परिपोषक बन कर उपस्थित होती हैं, जब वे वैसी ही परियाँ हों जिनमें स्वच्छंदतावादी विश्वास करता हो। वे कविता के माध्यम से यथार्थ चित्र की वाहक नहीं कही जा सकतीं। उनकी उपस्थिति केवल इसलिये स्वीकार्य नहीं है कि वे कल्पना के अतिरिक्त किसी अन्य माध्यम से प्राप्त नहीं की जा सकतीं। स्वच्छंदतावादी कवि के लिये परियों में सजीवता का आरोप करना उस सत्य का आभास पाने के सदृश है, जिसका महत्त्व सभी प्रकार की सीमाओं का अतिक्रमण करके केवल उस यथार्थ के अन्दर समाविष्ट माना जा सकता है जो

मानवीय अनुभव-क्षेत्र के बाहर अज्ञात रूप से पड़ा हुआ है। परन्तु यह सत्य भी उस प्रतीकवादी अप्रासंगिकता के द्वारा ही अभिव्यंजित किया जा सकता है जो केवल जीवन के अन्तःस्पन्दनों द्वारा अनुभूत हो । तात्पर्य यह कि वह चेतना के माध्यम से विशाल ज्ञान-क्षेत्र द्वारा प्राप्त उस काल्पनिक अनुभव में विश्वास करता है जो सामान्य मानव की समझ के परे है। परियाँ केवल कवि के आन्तरिक स्पन्दनों की प्रतीक होने के कारण ही रोमाण्टिक हैं। मस्तिष्क अनुभव का मात्र व्याख्याकार होने के कारण यथार्थ चित्र नहीं उपस्थित कर सकता। प्रज्ञा भी अनुभव का सार होने के कारण इन्हें दे सकने में असमर्थ है। यथार्थ, व्याख्या और सार-संयोजक मस्तिष्क तथा अनन्त इन्द्रियबोध और बाह्य एवं आन्तरिक प्रवृत्तियों की क्रियाशीलता द्वारा प्राप्त सन्तुलन एवं समाहृता का पर्याय है। यथार्थ ही जीवन का सारभूत तथ्य है। यह दृश्य एवं अनुभूत प्रवृत्तियों से सामंजस्य द्वारा उपलब्ध हो सकता है।'[1] ऐसी भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जब कल्पना बाह्य उपादानों द्वारा किसी भी प्रकार सीमित नहीं की जा सकती क्योंकि यही आन्तरिक अनुभव अथवा मस्तिष्क की कल्पनाप्रवण संश्लेषणात्मक शक्ति इस स्थिति में यथार्थ बन बैठती है और केवल जीवन का एक पक्ष सम्पूर्ण जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण दीख पड़ने लगता है। ऐसी अवस्था में मस्तिष्क इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान को यथार्थ न मानकर उसको नियन्त्रित कर सकता है। इस प्रकार बाह्य सामंजस्य की बात निरर्थक सिद्ध हो सकती है क्योंकि यहाँ एक, अनेक के साथ सन्तुलन स्थापित करने के स्थान पर उसे आत्मसात् कर जाता है और विश्व का अनुभव करनेवाला व्यक्तित्व आत्म-अनुभव करने वाले व्यक्तित्व का अभिन्न अंश हो जाता है। इस अवस्था में उपस्थित जीवन की सार्थकता अभीप्सित जीवन की प्रतिच्छाया मात्र बन जाने में निहित है। इस प्रकार की विचारधारा स्वच्छन्दतावादी विचारधारा है।

कुछ ऐसे लोग भी हैं जो केवल स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की उपलब्धि और उसमें क्रियाशील मस्तिष्क एवं आदत का ही विवेचन करके स्वच्छन्दतावादी

---

[1] Mind does not give reality, because it can explain experience, nor does sense give reality, because it is the substance of experience. Reality is balance and equivalance of the two, of explanation and substance, of unifying mind and multitudinous sense, of inner and outer.

—'What is Romanticism, *K. K. Sharma, p. 25.*

विचारधारा की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। 'गेटे' ने परम्परावाद एवं स्वच्छन्दतावाद के अन्तर को 'स्वस्थ एवं रोगाक्रान्त व्यक्ति के अन्तर सदृश माना है।'[1] शिल्लर ने एक को अकृत्रिम एवं दूसरे को भावुकतापूर्ण कहा है।[2] डॉ० एफ० एच० हेज ने रूमानी विचारधारा को आश्चर्य एवं रहस्य से उद्भूत माना है। उनके अनुसार पत्तियों से आच्छादित एवं लकड़ियों से भरी हुई घाटी तथा टेढ़े-मेढ़े रास्ते रूमानी हैं, वक्रगति से प्रवाहित नाले रूमानी हैं, पर अजस्त्र गति से प्रवाहित विशाल जलमयी नदी को यह संज्ञा नहीं दी जा सकती। प्रेरणा ही स्वच्छन्दतावाद का प्राण तत्त्व है। 'परम्परावाद शैली की विशेषता, नियन्त्रण एवं आत्म-दमन है पर स्वच्छादतावाद शैली की विशेषता, भावोत्तेजना एवं निष्पक्ष विषय-प्रतिपादन है।'

स्वच्छन्दतावादी विचारधारा की दूसरी विशेषता सृजन की अपूर्णता तथा अनिश्चितता कही जा सकती है। यह यथार्थ में रहस्यमयता, गोपनीयता तथा महत्वाकांक्षा का प्रतिफल है। 'डॉ० हेज' के अनुसार 'रोमाण्टिक' एवं 'क्लासिक' का वही सम्बन्ध है जो संगीत एवं अभिघटक कलाओं में है। यह पूर्ण आदर्श न उपस्थित करके ऐसे आदर्श को उपस्थित करता है जो चित्र-फलक या प्रस्तर-खण्डों की सीमा में नहीं आता। अभिघटक कलाओं का सम्बन्ध मस्तिष्क से है जब कि संगीत का अनुभूति से। प्रथम अपने दृश्य स्वरूप द्वारा हमें प्रभावित करता है और द्वितीय श्रव्य स्वरूप द्वारा।

ब्रुनेटियर (Brunetier) के अनुसार गेयता स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख विशेषता है। इसे (उनके शब्दों में) 'अहं की मुक्ति'[3] (Emanncipation of Ego) के नाम से अभिहित किया जा सकता है। उनकी मान्यता उस विचार विशेष की सर्वमान्य कसौटी कही जा सकती। 'मि० थियोडोर बाट्स डण्टन' (Mr. Theodore Watts Dunton) ने इसे 'विचित्रता का पुनरुत्थान कहा है।'[4] प्रो० कजामियाँ के शब्दों में 'यह एक उद्व्यक्त एवं वैशिष्ट्यपूर्ण भावना प्रवण जीवन है जो काल्पनिक मनःस्थिति से उत्पन्न एवं स्फुरित हो कर उसी प्रकार की क्रिया को प्रश्रय देता हैं।'[5] सर ाल्टर पेटर का अभिमत है कि सौन्दर्य की अभिलाषा, सभी प्रकार

[1] Healthy and morbid.

[2] Schiller proposed native and sentimental.

[3] Emancipation of Ego.

[4] "It is an acceteated predominance of emotional life provoked or directed by exercise of imaginative vision in its turn stimulating and directing such visions."—Renascence of Wonder.

[5] Prof. Cazamian, *History of English Literature*.

के कलात्मक संघटन का एक निश्चित तत्त्व है। 'सौन्दर्य का वैचित्र्य से संयोग होने पर ही स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति का स्फुरण होता है।' 'कैम्प्टन रिकेट' ने इसे 'कला के क्षेत्र में तीव्र अनुभूतिपूर्ण, उदात्त तथा संवेदनशील कल्पना कहा है।' परन्तु यहाँ हमारा सम्बन्ध कला से न होकर साहित्य से है। अतएव हम यह कह सकते है कि 'स्वच्छन्दतावाद एक ऐसा काल्पनिक दृष्टिकोण है जिसने कई प्रकार के कला-स्रोतों को प्रभावित किया है।'[1]

फ्रायड के आधार पर मानव-अहं (ईगो) की व्याख्या करते हुए 'एफ० एल० ल्यूकस' ने बताया है कि स्वच्छन्दतावाद जन्मजात प्रवृत्ति (इड) की उपज है। यही जन्मजात प्रवृत्ति 'इड' व्यक्तित्व की प्रेरक शक्तियों तथा मूल प्रवृत्तियों का भण्डार है। फ्रायड के अनुसार ये प्रवृत्तियाँ दो प्रकार की हैं। प्रथम को वह जीवन की प्रवृत्ति मानता है और दूसरी को मृत्यु की प्रवृत्ति। 'इड' यथार्थ से पूर्ण उदासीन, केवल सुखेच्छा से परिचालित होता है। इसको हम प्रबल उत्तेजना का व्यवस्थित रूप कह सकते हैं। इसमें अहं के विपरीत कोई निषेध, कोई नियन्त्रण या कोई वर्जना नहीं है। 'इड' के लिये शुभ-अशुभ, नैतिक-अनैतिक आदि मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं है। मनुष्य की जन्मजात सुखेच्छा की तृप्ति ही इसका एक मात्र कार्य है। इस 'इड' की क्रिया को दृष्टिपथ में रखते हुए हम कह सकते हैं कि इसके द्वारा सम्पादित कार्य एवं स्वरूप से स्वच्छन्दतावाद का साम्य अवश्य है। इसमें स्थान-स्थान पर मानव-मन की अनियन्त्रित एवं अतृप्त इच्छाओं की झलक के दर्शन होते हैं। स्वच्छन्दतावाद स्वयं कवि के मानस-पटल पर अंकित उन प्रचण्ड विचारावशेषों का प्रतिफल है जिसके स्पन्दन कवि की वाणी को मुखरित कर देते हैं। इस प्रकार के विवेचन से दृश्य रूप में हमें यह दीख पड़ता है कि स्वच्छन्दतावाद 'इड' का ही प्रतिरूप है। परन्तु जब गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं तो हमें यह ज्ञात हो जाता है कि इस प्रकार की मान्यताओं से कला के व्यक्तिगत पक्ष की व्याख्या ही सम्भव है। इसी दोष का ज्ञान होने पर 'युंग' ने इसे व्यापक सामाजिक सन्दर्भ प्रदान करने का प्रयत्न किया। 'युंग' ने अपने प्रतिपादन में व्यक्ति के अन्तर्विरोधों पर दृष्टिपात किया है, फिर भी ये इस बात को मान्यता देते हैं कि कवि का दृष्टिकोण व्यक्तिगत सीमाओं का अतिक्रमण भी कर सकता है और इस स्थिति में सार्वभौम भी हो सकता है। इस प्रकार फ्रायड का उपर्युक्त विचार स्वयं युंग को आमान्य रहा। इसके बावजूद एक सत्य है जिसकी ओर संकेत कर देना आवश्यक है। मनोविश्लेषण की भी सीमायें हैं। मनोविज्ञान मूलतः मनुष्य के मन का विज्ञान है, जब कि साहित्य उसकी चेतना की

---

[1]C. Rickett, *History of English Literature.*

समग्रता का अभिव्यक्त रूप। मनोविश्लेषक वैज्ञानिक रूप से व्यक्ति का अध्ययन तो करता है, पर वह उसकी समग्र चेतना के विविध स्वरूप का उद्घाटन कर सकने में अभी अक्षम है। अतएव मनोविश्लेषण द्वारा व्यक्तित्व के पक्ष विशेष का उद्घाटन भले ही सम्भव हो, पर उसकी सम्पूर्ण चेतना के वैविध्य का दिग्दर्शन नहीं हो सकता। 'फ्रायड', 'युंग' एवं 'एडलर' की मनोविज्ञान की मान्यताओं की सीमाओं में यह नहीं बाँधा जा सकता। व्यष्टि के अध्ययन के साथ ही समष्टि का अध्ययन भी साहित्य का केन्द्र-विन्दु है। मनोविश्लेषण मूलत: व्यक्ति के मन के विश्लेषण का ही विज्ञान होने के कारण इस समष्टि-भावना का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करने में सक्षम नहीं है। अतएव इस प्रकार के विवेचन की सीमायें हैं और उन्हीं के अन्दर उनको स्वीकृति प्रदान की जा सकती है।

इस प्रकार आलोचकों ने स्वच्छन्दतावाद पर दृष्टिपात करते हुए, प्राय: तीन मतों को प्रश्रय दिया है। पहले प्रकार की व्याख्या शैली की विशेषता से सम्बद्ध है। यहाँ हमें काव्य के बाह्य स्वरूप का ही दर्शन होता है। दूसरे प्रकार के आलोचकों में कृति के साथ ही कृतिकार की मानसिक क्रिया के अध्ययन का आग्रह दृष्टिगोचर होता है। इसके प्रतिनिधि 'कजामियाँ' और 'एबरक्राम्बी' हैं। तीसरा मत मनोविश्लेषण पर आधारित है। इसके मुख्य प्रतिपादक 'ल्यूकस' महोदय हैं। इन सभी मतों पर विचार करने से हमें निम्नलिखित विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं—

(१) अपने प्राथमिक रूप में यह अनुभव की एक विशिष्ट प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने का माध्यम है।

(२) शब्दार्थ की दृष्टि से इसे हम सामान्य के प्रति विशेष की प्रतिक्रिया कह सकते हैं।

(३) इसे आदर्श की खोज में सतत संलग्न मानवीय गवेषणा का कार्तिमान कह सकते हैं।

(४) कुछ लोगों को इसमें आन्तरिक अनुभव की विशेषता का दर्शन हुआ है। इसीलिये इसे चिरसंचित अभिलाषा का प्रतिस्थापन कहा गया है। कुछ लोगों को इसमें कृत्रिमता एवं प्रभावहीनता का दर्शन हुआ है। कुछ लोगों ने इसके मूल में भावनाप्रवणता के साथ ही साथ भावोत्तेजना की अभिव्यक्ति को ही स्वीकृति प्रदान की है। 'पेटर' ने इसे सौन्दर्य एवं वैचित्र्य का मणि-कांचन संयोग माना है। ल्यूकस ने 'इड' की ही प्रवृत्ति को स्वच्छन्दतावाद की संज्ञा से अभिहित किया है। ऐसी स्थिति में 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' की कहावत चरितार्थ होती है। अत: अपनी ओर से परिभाषा देकर मैं इसकी संख्या में वृद्धि नहीं करना चाहता।

छायावाद नाम का प्रथम 'प्रयोग' एवं इसकी सार्थकता

छायावाद का आरम्भ इसी शताब्दी के द्वितीय दशक से स्वीकार करना अधिक समीचीन है। श्री मुकुटधर पाण्डेय ने इसी नाम के चार निबन्ध १९२० की 'शारदा' पत्रिका में छपवाये थे। 'सरस्वती' में भी 'हिन्दी में छायावाद' नामक निबन्ध प्रकाशित हुआ था। इस पर स्वच्छन्दतावाद की तरह आरम्भ में विविध प्रहार हुए। इसे वाग्जाल, निस्सार कल्पना, मिथ्यानुभूति एवं काव्यशास्त्र से अनभिज्ञ होने के साथ ही साथ रहस्यवाद का पर्याय, और 'पलायनवाद' की संज्ञा से भी अभिहित किया गया। पुरातनतावादी आचार्यों से 'छायावादी' कवियों को केवल भर्त्सना ही मिली। द्विवेदी जी के अनुसार 'बड़े-बड़े लांगूलों' को धारण करके साहित्य-उपवन में विहार करने वाले और दीन जी के अनुसार इसे 'रावणवाद', 'छोकरावाद', 'उच्छृंखलतावाद' आदि की संज्ञा दी गई है। 'सुधा' के दिसम्बर १९२७ के अंक में मायावादी उपनाम से निम्नलिखित कविता प्रकाशित हुई थी जिससे 'छायावाद' सम्बन्धी उस समय के विचार पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है—

> छायावाद चलाया किसने है किसकी यह माया।
> हिन्दी भाषा में यह न्यारा शब्द कहाँ से आया।।
> कविता जो न समझ में आयी, कहकर छायावादी।
> बुद्ध मियाँ व्यंग करने के हुए हाय अब आदी।।
> 'मिस्टिसिज्म' का नाश मारकर हो उसके प्रतिपक्षी।
> 'छायावाद' उसे बतलाते हैं साहित्यिक पक्षी।।
> कोई पूछ नहीं रहा है, क्या है छायावाद।
> सांख्यिक मायावाद है या कोरा अपवाद।।
> बाबा किस 'पेटेण्ट मिण्ट' से हुआ वर्ड यह क्वायन।
> इसका पता न चलता है कुछ छाने बेद रसायन।।

स्वयं आचार्यप्रवर शुक्ल जी ने लिखा था कि —

> भाषा है न भाव है न भूति भाँपने की आँख,
> शिक्षा की सुभिक्षा भी न पाई कभी एक कन।
> कहीं ढंग-भंगपद चकती चमक रही,
> कहीं अंग्रेजी अनुवाद का अनाड़ीपन।
> ऐसे सिद्ध साँइयों की माँग मतवालों में है।
> काव्य में न झूठे स्वाँग खींचते कभी हैं मन।।'

आचार्य महावीर प्रसाद 'द्विवेदी' ने 'आजकल की हिन्दी कविता एवं कवि' में लिखा कि छायावाद से लोगों का क्या मतलब है समझ में नहीं आता। शायद इससे

मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहनी चाहिए। आचार्य शुक्ल ने इसे द्विवेदीयुगीन हिन्दी कविता के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया माना।[1] उनके अनुसार उस काल में कविता नये विषयों के प्रतिपादन की ओर उन्मुख थी। कसर थी केवल आवश्यक व्यंजक शैली की, कल्पना एवं संवेदना से अधिक योग की। तात्पर्य यह कि छायावाद जिस आकांक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास मात्र था। इस प्रकार शुक्ल जी ने पहले इसे काव्य-शैली का एक विकास मात्र माना। प्रोफेसर विनय मोहन शर्मा ने भी शुक्ल जी से सहमत होते हुए लिखा कि छायावाद में भावों की नवीनता की अपेक्षा, उसको अभिव्यक्त करने की कला में नवीनता अवश्य थी। यदि गम्भीरता से देखा जाय तो छायावाद कोई वाद नहीं बन सकता। उसके पीछे कोई दार्शनिक या परम्पराजन्य भूमि नहीं दिखाई देती। उसे हम काव्य की एक शैली मात्र कह सकते हैं।[2] श्री सद्गुरुशरण अवस्थी का भी विचार इसी से मिलता-जुलता है। उनके अनुसार छायावाद के नाम से जो कुछ भी हिन्दी संसार में प्रचलित है उसे केवल अभिव्यंजना-चमत्कार ही समझना चाहिए।

श्री रामचन्द्र 'शुक्ल' ने इसी का अनुगमन करते हुए लिखा कि पुराने ईसाई सन्तों के छायाभास तथा यूरोपीय काव्य-क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के नाम पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कवितायें छायावाद कही जाने लगी थीं। यह वाद क्या प्रकट हुआ एक बने-बनाये रास्ते का दरवाजा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नये कवि एकबारगी उधर झुक पड़ें। यह अपना क्रमशः बनाया रास्ता नहीं था। इसका दूसरे साहित्य-क्षेत्र में प्रकट होना, कई कवियों का एकबारगी इधर चल पड़ना और कुछ दिनों तक अंग्रेजी एवं बँगला की पदावली का जगह-जगह अनुवाद रखा जाना ये बातें मार्ग की स्वतन्त्र उद्भावना नहीं सूचित करती।[3] डा० केसरी नारायण शुक्ल[4] ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि छायावाद का अपना इतिहास है। इसका मूल साहित्य बँगला साहित्य के छाया-दृश्य में मिलता है।...ब्रह्म समाज की उपासना का ढंग रहस्यात्मक है। इसके उपासना के गीतों में उस प्रियतम की झलक का वर्णन होता है जिसका उपासक कभी आंशिक आभास मात्र पाता है। उपासक के लिये प्रतीकों का उपयोग आवश्यक हो जाता है क्योंकि इस

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल।

2 हिन्दी काव्य में छायावाद : दीनानाथ शरण।

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६५१।

4 आधुनिक काव्यधारा : डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, पृ० २६२-६३।

माध्यम के द्वारा वह दिव्य ज्योति को धूमिल बनाकर आत्मा के साक्षात्कार के उपयुक्त बनाता है। इन प्रतीकों के सहारे उन्हें प्रियतम का आभास भी मिल जाता है। उस प्रियतम की प्रतिकृति होने के कारण इन प्रतीकों को बँगला में छायावाद कहा गया। अतः रहस्यात्मक प्रतीकों से उपयुक्त कविता का नाम छायावादी कविता पड़ा।

डॉ० रामकुमार वर्मा[1] ने छायावाद की छाया में सान्त का अनन्त से मिलाप का दर्शन किया। पंडित नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में छायावाद को हम शुक्ल जी के अनुसार अभिव्यक्ति की एक प्रणाली नहीं मान सकते। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक भाव का उद्‌गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टतः पृथक् उद्देश्य, अस्तित्व और गहराई है।[2] इतिवृत्तात्मक कविता का सम्बन्ध अगर स्थूल शरीर से है तो छायावाद का सूक्ष्म प्राण से। इतिवृत्तात्मक दृष्टि का पदाधिकार यदि पुष्प के सर्वांग का वर्णन प्रस्तुत करेगा तो छायावादी कवि उस पुष्प के भीतर से केवल उस प्राणमय जीवन को अपनायेगा जो उसके साथ आत्मीयता स्थापित किए हुए है। डा० नगेन्द्र[3] के शब्दों में छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष भावनात्मक दृष्टिकोण है।...इस जीवन का आधेय नवजीवन के स्वप्नों एवं कुण्ठाओं के सम्मिश्रण से बना है, प्रवृत्ति अन्तर्मुखी तथा वायवी है और अभिव्यक्ति हुई है प्रायः प्रकृति के प्रतीकों द्वारा। डा० देवराज[4] ने इसकी तीन विशेषताओं को स्वीकार किया है : (१) धूमिलता या अस्पष्टता (२) बारीकी या गुम्फन की सूक्ष्मता, (३) काल्पनिकता या कल्पना-वैभव। उनके अनुसार छायावाद प्रधानतः प्रकृति काव्य और लौकिक प्रेमकाव्य ही है। आध्यात्मिकता का आरोप करना उचित नहीं है।[5] पं० नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में, आध्यात्मिक सत्ता का आभास छायावाद की सर्वमान्य परिभाषा हो सकती है।[6]

प्रयत्नशील होने पर अन्य लेखकों एवम् आलोचकों का विचार उद्धृत किया जा सकता है। पर आज का साहित्य आलोचना का साहित्य है। इससे परिभाषाओं

---

[1] कविता (साहित्य-समालोचना) : डॉ० रामकुमार वर्मा।

[2] कवि और काव्य : शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० १५०।

[3] आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ : डॉ० नगेन्द्र।

[4] छायावाद का पतन : डॉ० देवराज, पृ० ३।

[5] वही, पृ० १७।

[6] यामा का दार्शनिक आधार : नन्ददुलारे वाजपेयी।

एवम् व्याख्याओं की अच्छी तालिका तो मिल सकती है परन्तु समुचित दृष्टिकोण प्राप्त करना टेढ़ी खीर है। फिर भी उपर्युक्त उद्धरणों पर दृष्टिपात करने से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं :-(१) यह द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया है; (२) यह स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है, (३) यह अभिव्यंजना की एक शैली मात्र है, (४) जीवन के स्वप्न एवम् कुण्ठा ही इसके उपजीव्य हैं, (५) अभिव्यक्ति के लिये प्रतीक का आश्रय लिया गया है, और (६) इसमें पुराने ईसाई सन्तों के रहस्यवाद, बँगला, संस्कृत एवम् अंग्रेजी की पदावली एवम् रोमांटिक काव्यशैली को अपनाया गया है, (७) बाह्य के स्थान पर आभ्यान्तरिक के प्रतिपादन का आग्रह है और (८) व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक सत्ता का आभास है।

इस प्रकार छायावाद एवम् स्वच्छन्दतावाद पर दृष्टिपात करने से हमें प्रायः एक-सा ही विचार मिलता दृष्टिगोचर होता है। दोनों ही पूर्वसाहित्य की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुए हैं। दोनों में ही स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म प्रतिपादन की प्रवृत्ति है, दोनों में अभिव्यंजना के स्वप्नों को उपजीव्य-रूप में स्वीकार किया गया है। दोनों ही में प्रतीक का खुल कर प्रयोग हुआ है। दोनों ने ही रहस्य को प्रश्रय दिया है। परन्तु इन निष्कर्षों के होते हुए इनके आलोचकों के विचारों में भिन्नता सबसे अधिक भ्रमोत्पादक बात कही जा सकती है। अन्धों को हाथी देखकर उसके स्वरूप के प्रति झगड़ने की बात तो समझ में आ सकती है पर दृष्टि-सम्पन्न लोगों को वाद विशेष की विचाराधारा विशेष से ही अपने को सम्बद्ध करने की बात समझ में नहीं आती। यथार्थ में 'छायावाद' एवं 'स्वच्छन्दतावाद' के सभी लेखक अपनी परिभाषाओं में किसी विशेष स्वरूप पर ही दृष्टिपात कर अपने मतों के प्रति संतुष्ट हो गये हैं। अतएव तुलनात्मक दृष्टि से कुछ कहने के पहले थोड़े से कवियों के व्यक्तिगत मतों पर दृष्टिपात कर लेना चाहिए। 'नीत्शे' ने एक बार कहा था कि प्रत्येक नवीनता आरम्भ में मनुष्य के लिये अग्राह्य होती है। संभवतः इसीलिये 'आर्नल्ड' जैसे लेखकों ने 'शेली' पर दृष्टिपात करते हुए 'उसे ऐसा अप्रभावशाली देवदूत घोषित किया था जो शून्य में निरर्थक ही अपने पंखों को फटकारा करता था।'[1] उसकी इस मान्यता के पीछे साहित्य को जीवन की व्याख्या मानने का सिद्धान्त क्रियाशील था। वर्गसाँ ने कहा था कि 'हर नवीन अनुभव कविता है।'[2] गेटे ने 'फास्टे' के प्रथम भाग में लिखा है कि 'हमारी आत्मा में दो आत्मायें निवास करती हैं। वे अपनी

[1] Critical Essays (Shelley), *Arnold.*

[2] Every new experience is poetry.

अविभाजित सीमा में सतत् संघर्षरत रहती है।'[1] विलियम जेम्स का मत है कि मानव का आभ्यान्तरिक स्वरूप दो विभिन्न शक्तियों के सतत संघर्ष का परिणाम है। एक यथार्थ है, दूसरा आदर्श।'[2] वास्तव में इन दोनों वादों का आधार-क्षेत्र यही आन्तरिक संघर्ष है। 'वर्ड्सवर्थ' ने इसी को 'शान्ति के क्षणों में संगृहीत सशक्त भावों का आत्मस्फूर्त एवम् स्वतःप्रेरित उद्वेलन कहा है' और 'कॉलरिज' ने 'भावों' को जागृत करके सौन्दर्य के माध्यम से हृदय में साक्षात् आनन्द का रसोद्रेक कराने वाली क्षमता माना है।'[3] 'शेली' ने इसे मान्यता प्रदान करते हुए लिखा है कि 'मानव एक ऐसा यन्त्र है जिस पर बाह्य एवम् आभ्यान्तरिक प्रभाव पड़ते हैं। जिस प्रकार एओलियन वाद्य-यन्त्रों पर सतत् परिवर्तनशील वायु का प्रभाव मधुर संगीत उत्पन्न करता है, उसी प्रकार मनुष्य पर भी इन बाह्य एवम् आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्वों का एक निश्चित प्रभाव पड़ता है। पर मनुष्य सजीव होने के कारण इन बाह्य यन्त्रों से भिन्न रूप में उस प्रभाव को ग्रहण करता है। यह केवल संगीत नहीं उत्पन्न करता, अपितु एक सामंजस्य उपस्थित करता है।[4] 'पन्त' ने लिखा है—

> 'वियोगी होगा पहला कवि,
> आह से निकला होगा गान।
> निकल कर आँखों से चुपचाप
> बही होगी कविता अनजान।'

जयशंकर प्रसाद भी कविता की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका सम्बन्ध, विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है। आत्मा की मनन-शक्ति की असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके चारुत्व में ग्रहण कर लेती है काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।'[5]

लेखकों के द्वारा दी गई काव्य-संबंधी इन परिभाषाओं पर 'छायावाद' एवं 'स्वच्छन्दतावाद' की कसौटी प्रस्तुत करना सम्भवतः कुछ लोगों को न पसन्द आये, पर बिना उनके काव्य-संबंधी विचारों को समझे इनकी परिभाषा अधूरी सिद्ध हो

---

[1] Two souls alas ! are lodged within our souls; which struggle for undivided reign.

[2] Man's interior is a battle ground, for what he feels to be two deadly hostile selves.

[3] Excitement of emotion, for the purpose of immediate pleasure, throngh the medium of beauty.—*Coleridge*.

[4] ऐसे आन पोयट्री : पी० बी० शेली।

[5] काव्य-कला एवं अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद।

सकती है। कवि या लेखक अपने काव्यगत विचारों के आधार पर ही अपने सृजन को प्रस्तुत करता है। अतएव इन्हीं के प्रकाश में परिभाषाओं पर दृष्टिपात करने का प्रयत्न किया जायगा।

दोनों ही परिभाषाओं के अन्दर आत्मानुभूति पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कल्पना के माध्यम से आत्मानुभूति को प्रतीकों द्वारा एक नयी शैली में उपस्थित करने का प्रयत्न छायावाद में भी हुआ है और स्वच्छन्दतावाद में भी। सम्भवतः इसीलिये 'छायावाद' को अभिव्यक्ति-कौशल का एक प्रकार स्वीकार किया गया है। पर किसी भी आन्दोलन की इयत्ता कुछ थोड़े से शब्दों में निर्धारित कर देना, अध्ययन की दृष्टि से अनुपयुक्त होगा। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद विविध प्रभावों के बावजूद इस प्रकार के आक्षेप से मुक्त था पर छायावाद पर इस दृष्टि से विविध आक्षेप किए गए। कोई भी साहित्यिक आन्दोलन मात्र शैली का प्रकार होकर अप्रभावशाली सिद्ध हो सकता है। साहित्य में सहित का भाव अन्तर्निहित है। वह पृथ्वी की धूल एवं आकाश के फूल को मिलाने का एक अप्रतिम साधन है। वह पृथ्वी पर ही स्वर्ग एवं नरक की कल्पना का साकार रूप है। वह अपनी समग्रता में देश के सभी संकलित सजीव स्पन्दनों का अभिव्यक्तीकरण है। वह भूत, भविष्य एवं वर्तमान की सभी आशाओं का पुँजीभूत रूप है। शैली उन्हीं स्पन्दनों को अपने बाह्य रूप में आवेष्टित करने का साधन है। इस दृष्टि से शैली काव्य का आवश्यक तत्व हो सकती है, पर वही काव्य नहीं हो सकती।

कविता यथार्थ में किसी विचार की अभिव्यक्ति होती है। उसकी सफलता इस बात पर निर्भर है कि हम उस विचार को कितनी सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करते हैं। यथार्थ में छायावादी एवम् स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कविता को स्वतः-स्फुरित क्रिया के रूप में स्वीकार किया है।[1] उनके अनुसार कविता बनाई नहीं जाती, वह विकसित होती है।[2] वह सशक्त अनुभूति का स्वतःस्फुरित प्रवाह है। उसका कहना है कि कवि साहित्य में अपनी बहुत दिनों की भूली हुई उस शक्ति को आमन्त्रित करता है, जो अव्यक्त रूप से सबमें व्यक्त, अपनी आँखों से विश्व को देखती हुई, अपने ही भीतर उसे डाले हुए पानी की तरह सहस्र ज्ञानधाराओं में बहती हुई, स्वतंत्र किरणों की तरह सब पर पड़ती हुई, मधुर, उज्ज्वल, अम्लान, मृत्यु की तरह नवीन, जन्मदात्री, सर्वशाखाओं की तरह अगणित प्रसार में फैली हुई प्रत्येक

---

[1] If poetry comes not as naturally as leaves to the trees it had better not to come at all.—*Keats.*

[2] Real poetry is not made but grows.—*Shelley.*

मूर्ति में चिरकमनीय है।[1] इस प्रकार इन्हीं के शब्दों में इनका काव्य, अनुभूति के क्षणों में आत्मस्फुरित संगीतमयता का विकसित रूप है। आज उत्पत्ति एवम् वितरण तक ही काव्य की इयत्ता निर्धारित करने वाले आलोचक, अथवा भावनाओं में शाश्वत एवं चिरन्तन एकसूत्रता ढूँढ़ने के अभाव में अखण्ड सत्य के स्थान पर खण्ड सत्य की माँग करने वाले समीक्षक, संभवतः इस सत्य से न सहमत हों। हो सकता है कि कुछ लोग, प्रतिक्रिया एवम् वैयक्तिक कुण्ठा को ही इसके मूल में स्वीकृति प्रदान करें, फिर भी इन कवियों के सृजन के उस निश्चित पक्ष को मान्यता देना ही पड़ेगा जो पर्याप्त प्रशस्त है।

कुछ लोग आत्मस्फुरित अनुभूतियों को कविता का विषय मानने से इन्कार कर सकते हैं। अतएव इस पर भी दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। कवि यथार्थ में मस्तिष्क द्वारा प्राप्त एवम् अनुभूत, ज्ञान एवम् सत्य को ही अपनी कविता का विषय बनाता है। वह गम्भीरतापूर्वक वस्तुओं का निरीक्षण करता है और भावनाप्रवण तथा संवेदनशील होने के कारण उस पर इनका प्रभाव भी पड़ता है। दृश्य, श्रव्य, स्पर्श, घ्राण आदि माध्यमों द्वारा उपलब्ध अनुभव लेखक के मस्तिष्क में दुःख, करुणा, आनन्द, अतृप्ति आदि की एक गम्भीर अनुभूति उत्पन्न करते हैं। यह अनुभूति की तीव्रता कवि को उस समय तक शान्त नहीं रहने देती जब तक वह उन्हें अभिव्यक्त न कर दे। केवल छायावादी एवम् स्वच्छन्दतावादी कवियों के लिये ही यह सत्य नहीं है, बल्कि यही मूल रूप से कविता का आधार है।

कविता यथार्थ में उतनी ही शाश्वत है जितना कि मानव-हृदय। कवि वर्तमान में रहकर भूत एवम् भविष्य का द्रष्टा है। अपने मनोभावों एवम् अभिव्यक्ति में भिन्न होने के बावजूद वह सृष्टि के छोरों में बिखरे सत्य को अपनी प्रतिभा एवम् कल्पना द्वारा आवेष्टित करने का प्रयत्न करता है। इसीलिए कविता उसके लिये सभी ज्ञानों का आरम्भ एवं अन्त का रूप ले लेती है। इस प्रकार कवि केवल संगीत एवं भाषा के प्रवक्ता नहीं हैं, वे तो नियम की संस्था, समाज के व्यवस्थापक, जीवन की गति-विधि के नवीन अन्वेषक तथा ऐसे शिक्षक हैं जो सत्यं एवं शिवं का समन्वय करके उसे हमारे समक्ष उपस्थित करते हैं। वे उस शाश्वत, अनन्त एवं एक की क्रिया के साझीदार हैं। वेद की उक्ति है, 'रसोवैसः' रसं ह्वेवाय लब्ध्वानन्दी भवति। कवि भावना-प्रसूत कविता को भी 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की व्याख्या से अभिहित किया जाता है। रसौवैसः इस सत्य की ओर भी संकेत करता है कि काव्यानन्द

---

[1] प्रबन्ध पद्म : निराला, पृ० २०।

ब्रह्मानन्द सहोदर है। कुन्तक ने काव्यानन्द को चतुर्वर्ग के आनन्द से बढ़ कर बताते हुए कहा है कि—

> चतुर्वर्ग फलास्वादप्यतिक्रम तद्विदाम् ;
> काव्यामृत रसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते।

ऊपर रस की चर्चा की गई है। भारतीय मनीषी इसको बौद्धिक नहीं मानते। 'रस-आस्वादे' से रस का अर्थ स्वाद लेना तथा 'स्वादो रस ग्रहणे' के आधार पर स्वाद का अर्थ रस लेना होता है। इस प्रकार स्वाद-ग्रहण की प्रतिक्रिया एवं तज्जन्य आनन्द का नाम रस है। यह अन्तर्योग बुद्धिमात्र का विषय न होने के कारण किसी ऐसे बोध अथवा संप्रतीति द्वारा प्रबुद्ध है जिसे हम अनुभूति कह सकते हैं। 'आइ० ए० रिचर्ड' ने भी इसी को मान्यता देते हुए कहा है कि कलाकार अंकित मूल्यों के कुबेरालय हैं। वे असामान्य लोगों के जीवन की असामान्य अवस्था से उद्भूत होकर उसी को अनश्वर बनाते हैं। ऐसे अवसर पर उनका अपनी अनुभूतियों पर विचित्र नियन्त्रण रहता है। इनकी कला उन क्षणों की ही उपज है जब वे संसृति की विभिन्न संभावनाओं का स्पष्ट दर्शन करके उससे उत्पन्न विविध क्रियाकलापों को पूर्ण सफलतापूर्वक चित्रित करते हैं। उनकी कला उस क्षण को ही अमरता प्रदान करती है जब उनकी सामान्य स्वार्थ की संकीर्णता में भ्रमोत्पादक चाकचक्य, सत्यान्वेषी दृष्टि पर आधारित अभिव्यक्ति द्वारा स्थानान्तरित कर दी जाती है।[1] इस प्रकार विविध दृष्टिकोणों से दृष्टिपात करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कलाकार अपनी उस घनीभूत पीड़ा को जो स्मृति-पटल पर छायी रहती है अपने काव्य की अजस्र निर्झरिणी का स्रोत बनाता है। उसकी स्वतःस्फुरित आत्मानुभूति ही उसके शब्दों को काव्यमय बनाती हुई उसकी कविता के सूक्ष्म तारों को झंकृत करती रहती है।

परिभाषा के समूह पर दृष्टिपात करने से यह भी ज्ञात होता है कि कुछ लोग छायावाद एवम् स्वच्छन्दतावाद पर दृष्टिपात करते समय विभिन्न आदर्शों की

---

[1] Artists are storehouse of recorded values, they spring from and perpetuate, hours in the life of exceptional people when their control and command of experience is at its highest hours, when the varying possibilities of existence are most clearly seen, and different activities, which may arise are most exquisitely recorded, hours, when habitual narrowness of interests or confused bewilderments are replaced by intricately wrought composure.

—*I. A. Richards.*

भी चर्चा करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक लेखक अपने सर्जन के क्षणों में कोई न कोई आदर्श अपने समक्ष रखता है। पर प्रश्न आदर्शों का नहीं बल्कि आदर्शों को किसी सीमा तक अपने काव्य में उतार पाने का है। किसी लेखक ने ठीक ही कहा है कि आदर्श प्राप्त करना सम्भव नहीं। उसके पास तक पहुँचा अवश्य जा सकता है। इन दोनों वादों के समक्ष विविध देशी एवम् विदेशी आदर्श थे अवश्य, पर वे किसी आदर्श विशेष की सीमा में न बँध सके—वे विचार एवम् अनुभूति की पृष्ठभूमि पर अपने नवीन प्रयोग एवम् नयी उपलब्धि में सतत् रत रहे।

'छायावाद' के प्रतिष्ठित आलोचक ने यह भी कहा है कि 'इनमें पूर्णता की भूख नहीं है। उनका काव्य तो लौकिक प्रेम, विरह एवम् प्रकृति से संबंधित काव्य है।'[1] इसमें कोई शक नहीं कि लौकिक प्रेम, विरह एवम् प्रकृति के चित्र उनमें पूर्ण रूप से उभड़ कर आये हैं परन्तु विचारणीय यह है कि मानव की जन्म-जात प्रवृत्ति पूर्णता की है। वह लौकिक हो या पारलौकिक, पूर्णता प्राप्त करने के लिये छटपटाता रहता है। हमारे प्रयत्न एक ओर प्रायः पूर्णता की ओर उन्मुख होते हैं; दूसरी ओर कठिनाइयों से बाधित होने के कारण उनके समक्ष पूर्णता की प्राप्ति में बाधायें भी आती रहती हैं। इस पूर्णता एवं अपूर्णता के अन्तर्द्वन्द्व के मूल में ही साहित्य का सृजन निहित है। हम अपने व्यक्तिगत जीवन में अपूर्ण रह सकते हैं। पर साहित्य-सर्जन व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित होते हुए भी उसकी सीमाओं का अतिक्रमण कर सकने में समर्थ है। इसलिये कवि या लेखक अपनी कृतियों में अपूर्णता का दिग्दर्शन कराते हुए पाठक को पूर्णता की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न करता है। 'कामायनी' के 'मनु' श्रद्धा के सहयोग से आनन्दोपलब्धि के पश्चात् प्रायः लेखक के स्वप्न ही पूर्णता के प्रतीक रूप में हमारे समक्ष आते हैं। निराला के तुलसीदास अस्थि-चर्ममय देह का मोह छोड़कर ज्योंही इस संकल्प की ओर उतरते हैं—

> **'करना होगा यह तिमिर पार**
> **देखना सत्य का मिहिर द्वार।'**

तो उनमें पूर्णता की भूख जागृत हो जाती है। 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' में प्रताड़ित 'प्रोमीथियस' के रूप में 'शेली' ने अपने स्वप्नों की पूर्णता का ही चित्रण हम लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि लेखक अपने वैयक्तिक जीवन में भले ही अपूर्ण रहे हों, पर अपने सृजन में वे पूर्णता को ही चित्रित करने में सफल हैं। यथार्थ में छायावादी एवम् स्वच्छन्दतावादी लेखकों को ज्ञात था कि 'हम

---

[1] **डॉ० देवराज : छायावाद का पतन।**

तब तक अच्छे हैं, जब तक हम यह न देख लें कि इस मानवीय सृष्टि में अगर मानव का निर्माण न हो तो अन्य कुछ भी निर्माण योग्य नहीं है।'[1] अतएव सौन्दर्य एवम् प्रेम की मधुमती भूमिका के बावजूद मानव-प्रेम एवम् क्रान्ति का जो भी स्वरूप वे हम लोगों के समक्ष रख सके हैं, उसमें समाज-परिष्कार की भी भावना निहित हैं। यह इस प्रकार इनकी पूर्णता की ओर उन्मुख होने का ही द्योतक है।

हमने प्रस्तुत अध्ययन के पिछले पृष्ठों में इस बात की चर्चा की है कि आचार्यप्रवर शुक्ल जी ने अंग्रेजी फण्टास्माटा तथा बँगला के छायाभास के आधार पर हिंदी में 'छायावाद' शब्द को स्वीकार किया है। इस भावना के आधार पर आज भी ऐसे लोग दृष्टिगोचर होते हैं जो 'छायावादी साहित्य' को नकली या विदेशी कहकर हेय दृष्टि से देखते हैं। आज हजारीप्रसाद जी ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि बंगाल में 'छाया' जैसा शब्द कभी प्रचलित न था। इस निराकरण के बावजूद आलोचकों की तीव्र बुद्धि ने अन्य साधन ढूंढ़ निकाले जिसके आधार पर छायावाद को विदेशी ठहराया जा सके और इसे स्वच्छन्दतावाद की उपज बतलाया जा सके। बात जो भी हो छायावाद अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद नहीं है। ये प्रायः एक सी स्थिति में दो भिन्न देशों एवं कालों की उपज हैं। परिस्थिति, सोचने की क्रिया एवं मानवीय विचारों की शाश्वतता में साम्य होने के कारण साम्य अवश्य है फिर भी देशकाल, दर्शन एवं संस्कृति की भिन्नता के कारण अन्तर भी है। मैं इस बात को लिख चुका हूँ कि एतद्देशीयता सर्वमान्य निरर्थकता है। आज देश एवं काल की सीमायें टूट रही हैं, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना जोर पकड़ रही है। ऐसी स्थिति में केवल 'अनुकरण मात्र' या विदेशी नकल कह कर किसी वाद का तिरस्कार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार की विचारधारा को महत्व देने से साहित्य का अहित हो सकता है। एक समय आर्य-अनार्य, हिन्दू-अहिन्दू की भावनाओं को लेकर देश उन तत्वों को आत्मसात् करने में असमर्थ रहा जो आज विध्वंसक सिद्ध हो रहे हैं। हमें आज भी इस बात में सतर्कता बरतनी है। 'विदेशी तत्व' आदि की संज्ञा देकर कहीं हम जीवन के उन मूल्यों का बहिष्कार न कर बैठें जो साहित्य की प्राणवान् सत्ता के लिये आवश्यक उपादान हैं। पीछे इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि पाश्चात्य देशों के लोग आज हमारे दर्शन एवं संस्कृति के आधारभूत तत्वों को किस प्रकार अपना रहे हैं और उनके साहित्य में इसकी अभिव्यंजना हो रही है। हमें भी इस दौड़ में पीछे नहीं रहना है। हाँ, इस दृष्टि से सतर्क अवश्य रहना है कि विदेशीपन के मेल से कहीं मूल सांस्कृतिक चेतना न लुप्त हो जाय।

---

[1] Scientific Monthly, June 1927, *Edward Markham.*

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद दो भिन्न काल एवं देश की उपज हैं। इनकी स्वयम् अपने में कोई निरपेक्ष दार्शनिक मान्यता नहीं है। इनके अन्दर एक ऐसी व्यापक मानववादी साहित्यिक चेतना को प्रश्रय मिला है जो यथार्थ जीवन की जड़ता एवं परम्परा के विरोध में स्वच्छन्दता तथा पुरातन मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों की प्राण-प्रतिष्ठा करती है। ये दोनों ही वाद संक्रान्तिकालीन सामाजिक व्यवस्था की उद्‌भूति हैं। इनकी एक निश्चित सांस्कृतिक चेतना है और इसी आधार पर प्राचीन मूल्यों का मूल्यांकन करके उन्हें नवीन दृष्टि-कोण से प्रस्तुत करने का स्पृहणीय प्रयत्न भी हुआ है। छायावाद एवं स्वच्छन्दता-वाद के अन्दर भाव के क्रमिक विचार-विकास की निश्चित सरणि का दर्शन होता है और इसीलिए वह तत्कालीन मानवता का जयघोष बन गया है। ये यथार्थ में सर्जन के क्षणों में अनुभूति के निष्क्रिय वाहक नहीं, अपितु उसमें सक्रिय आनन्द लेने वाले जिज्ञासु कलाकार हैं। इसीलिए कल्पना-प्रौढ़ता एवं अनुभूति-सौष्ठव के आधार पर जो भी सृजन वे प्रस्तुत कर सके वह अपनी प्रभविष्णुता में अद्वितीय है। इस प्रकार आत्मानुभूति के अनन्त सागर में डुबकी लगाकर विचारों का अमूल्य रत्न ढूँढ़ने वाले ये दोनों वाद आज भी मनन एवं मन्थन का विषय बने हुए हैं।

५

स्वच्छन्दतावाद तथा छायावाद में कल्पना का योग

स्वच्छन्दतावाद तथा छायावाद दोनों ही प्रकार के कृतिकारों और आलोचकों ने कल्पना को महत्त्वपूर्ण माना है। वस्तुतः कल्पना इन दोनों प्रकार की रचनाओं का आवश्यक उपादान है। अतः मुख्य प्रश्न पर विचार करने के पूर्व साधारण रूप

से यह प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित होता है कि कल्पना क्या है और इस आलोच्य का काव्य के सृजन में क्या योगदान है ? इस प्रश्न पर विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि 'पूर्व अनुभूति की योजना से अपूर्व की उद्‌भावना की क्रिया या शक्ति को कल्पना कहते हैं।'[1] इसी की सहायता से हम परोक्ष के मानसिक चित्र उपस्थित कर सकते हैं और अतीत और अनागत भविष्यत् की अर्थ-प्रतिमा का निर्माण कर सकते हैं। अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का अर्थ है 'मानसिक चित्र'। संस्कृत में कल्पना शब्द 'क्लृप' धातु से बना है जिसका अर्थ है सृष्टि।[2] स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी काव्य प्रणेताओं ने अंग्रेजी के 'इमेजिनेशन' और संस्कृत के 'कल्पना' की अर्थ-संगति में सजीव चित्र उतारने में अपनी सृजन-क्षमता का अच्छा परिचय दिया है। यथार्थ में कल्पना अतीत, वर्तमान तथा अनागत का विधिवत् अगवाहन करके उसके निष्कर्षों में ऐसा सामंजस्य उत्पन्न कर देती है जो काव्य-सृजन का आधार बनता है। इसी से इसे 'अन्तर्दृष्टि विधायिनी काव्य-शक्ति' के नाम से अभिहित किया जाता है।

स्मृति एवं कल्पना

मनोवैज्ञानिकों ने कल्पना पर दृष्टिपात करते हुए स्मृति एवं कल्पना को एक ही माना है। जहाँ तक उनके सम्बन्ध का प्रश्न है, वह असंदिग्ध है, पर उनके द्वारा कार्य-संपादन की क्रिया में भिन्नता है। 'स्मृति', प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा प्राप्त अनुभूतियों को कल्पना के समक्ष प्रस्तुत करती है। कल्पना भी अनुभूतियों द्वारा प्राप्त ज्ञान का नवोन्मेष करती है। पर स्मृति जहाँ अपनी क्रिया में परतन्त्र है, वहीं कल्पना स्वतन्त्र। स्मृति अतीत की मुखापेक्षी है और कल्पना अतीत के साथ ही भविष्यत् परोक्ष एवं अपरोक्ष की। फिर भी कल्पना का मूलाधार स्मृति ही है। स्मृति कल्पना की सीमा नहीं निर्धारित कर सकती, उसके लिये आधार अवश्य प्रस्तुत करती है।

भाव एवं कल्पना

भाव एवं कल्पना को लेकर पर्याप्त विवाद हुआ है। परन्तु सामान्य दृष्टि से विचार करने पर यह भली भाँति ज्ञात हो जाता है कि ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिज्ञासा भाव का सृजन एवं उद्‌बोधन करती है। वही भावलोक के अनुपम स्वरूप को कल्पना के माध्यम से भावक के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। जिज्ञासा की कल्पना अपनी संश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के बल पर दृश्य, अदृश्य, गम्य, अगम्य, ज्ञाता एवं ज्ञेय के एवम्भूत संयोग के द्वारा संसृति के विविध स्वरूपों का

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश, कल्पना, पृ० २०६।

[2] सिद्धान्त एवं अध्ययन : गुलाबराय, पृ० १०७।

यथार्थ दर्शन कराती है । उसकी यह क्रिया निराधार नहीं होती क्योंकि वह हमेशा तीव्र एवं प्रचण्ड भाववेगों का आश्रय लेकर उन्मुख होती है। भाव जितना ही तीव्र होगा कल्पना का निखार उतना ही स्पष्ट। जिज्ञासापूर्ण भावना ही कल्पना की अधिष्ठात्री होती है परन्तु स्मृति के माध्यम से कल्पना भावना को और सघनता प्रदान करती है। इसीलिये भाव या राग को कविता के मूल में होने के बावजूद उसमें कलात्मक सर्जन की चेष्टा तब तक नहीं आती जब तक उसमें कल्पना का मिश्रण नहीं हो जाता; अथवा कल्पना भाव विशेष के संस्कारों को पुनः अन्तश्चक्षुओं के समक्ष नहीं प्रस्तुत कर देती। तीव्र भाव-दशा में भोक्ता स्वयं आत्म-विस्मृत होकर उसके आस्वादन में रत रहता है।'[1] कुछ लोगों को यह बात खटक सकती है। पर वास्तविकता यह है कि यह ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द की अवस्था होती है जब चेतना स्वतःनिष्क्रिय रहती है। ऐसी अवस्था में यह काव्य-उपजीव्य नहीं बन सकती। इन्हें काव्यात्मक रूप प्रदान करने के लिए कल्पना की आवश्यकता होती है। मानव-जीवन में सुख-दुःख, आशा-निराशा के अनुकूल और प्रतिकूल वेदनीयता की स्थिति के इतने आलोड़न-प्रलोड़न होते हैं कि किसी न किसी समय उन्हें तीव्र अनुभूति अवश्य होती है और तब ये अनुभूतियाँ कविता का रूप ले लेती हैं।

कल्पना की प्रेरक शक्ति

स्वच्छन्दतावादी कवियों की यह धारणा थी कि कल्पना में उनका विश्वास उनके समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के कारण था। वे इस विधायिनी कल्पना की शक्ति से पूर्णरूपेण अवगत थे। उनका अनुभव था कि इस कल्पना शक्ति के निर्बाध रूप से क्रियाशील होने पर कवित्व में चार चाँद लग जाते हैं और क्षिप्रता के साथ अदृश्य होने वाले स्वप्नों एवम् असंयत विचारों को सरलता से एक दिशा मिलती है। कला समाज का प्रतिबिम्ब होती है और साहित्य जीवन की व्याख्या। अतएव साहित्य के क्षेत्र में व्यक्तिगत साहसिकता के माध्यम से कल्पना का आधार लेकर सृजन का अपने विद्रोही स्वर का घोष करना सर्वथा उचित होता है। पुनरुत्थान-काल तक आधुनिक युग में मानव-उद्धार की विविध संभावनायें दृष्टिगोचर हुई और साहित्यिक कलेवर ने उसे अपने में आत्मसात् करके उसको अभिव्यक्ति भी प्रदान की। इन दोनों ही धाराओं के कवियों ने मस्तिष्क को नवीन संस्कार प्रदान करने के लिए विशाल मानवतावादी दृष्टिकोण का आह्वान किया। उनके हृदय में एक स्पन्दन हुआ और लेखनी उन विविध प्रभावों को चित्रित करके कल्पना को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए मचल पड़ी। इस चेतना के परिणाम-

---

[1] छायावाद की काव्य-साधना, प्रो० क्षेम, पृ० २१६ ।

स्वरूप हमें जो भी प्राप्त हुआ वही स्वच्छन्दतावादी तथा छायावादी साहित्य रहा। इसके मूल में जो शक्ति क्रियाशील रही वही कल्पना है।

सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोणों से स्वच्छन्दतावादी कल्पना को बड़ा सहारा मिला। शताब्दियों तक पाश्चात्य दर्शन लॉक से प्रभावित था। उसकी धारणा थी कि 'अनुभूति के समय मस्तिष्क निष्क्रिय रहता है। वह केवल बाह्य प्रभावों का यथारूप संग्रहकर्त्ता तथा विश्व का एक तटस्थ दर्शक रहता है।'[1] उसकी यह मान्यता वैज्ञानिक अभिव्यक्तीकरण के उपयुक्त थी और इसका प्रकाशन न्यूटन में हुआ भी। अपने विचारों में लॉक ने इस आधार पर कि प्रकृति के कार्यों में देवत्व का आभास मिलता है और न्यूटन ने, इस आधार पर कि यह संसृति-रूपी बड़ी मशीन बिना यन्त्रचालक के नहीं चल सकती, ईश्वर को स्थान दिया था।'[2] परन्तु स्वच्छन्दतावादियों को इसमें अपने स्वप्नों का निषेधात्मक स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ, अतएव उन्होंने उपर्युक्त मान्यता को अस्वीकार कर दिया।

पृष्ठभूमि

साहित्य में कल्पना तत्व पर बड़ा विचार हुआ है। हर प्रकार के और हर काल के कवियों तथा लेखकों ने अपनी दृष्टि से इसका विवेचन किया है। 'प्लेटो' के शब्दों में 'मस्तिष्क की जिस आन्तरिक शक्ति द्वारा एकता एवम् व्यवस्था में अनेकता एवम् अव्यवस्था का समावेश होता है उसे कल्पना कहते हैं।'[3] अरस्तू ने अनुकरण-सिद्धान्त तथा 'केथारसिस' (विरेचन) के आधार पर प्लेटो के विचारों का खण्डन किया। 'बेकन' ने कल्पना का महत्वपूर्ण प्रतिपादन करते हुए लिखा कि 'आनन्द के क्षणों में कवि की कल्पना प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं का संश्लेषण करती है, और इस प्रक्रिया से वह ऐन्द्रिय वस्तुओं के द्वारा एक ऐसे उर्वरक का मिश्रण तैयार करती है, जो काव्य के निर्माण के काम आता है।' इस परिभाषा में कल्पना के संश्लेषणात्मक पहलू पर विचार हुआ है। परन्तु कल्पना-व्यापार से उपलब्ध वस्तु का मूल्यांकन उसमें नहीं है। 'ऐडिसन' की राय है कि 'प्रकृति-वस्तु में जो पूर्णता पाई जाती है मानव उससे अधिक पूर्णता देखने का अभिलाषी है। परन्तु दुर्भाग्य यह कि इस पूर्णानन्द के अनुरूप प्रतिक्रिया करनेवाली वस्तु प्रकृति में पाई नहीं जाती। दूसरे शब्दों में मन वैसी वस्तु की कल्पना कर सकता है जो अधिक दिव्य एवम् सुन्दर हो। चाक्षुष प्रतीकों द्वारा प्राप्त वस्तुओं में कुछ न कुछ त्रुटि दीखती है, अतएव कवि का

---

[1] *Bowara,* Romontic Imagination.

[2] *Ibid* , Chapter I.

[3] *Scott James,* The Making of Literature—Imitation.

कर्त्तव्य है कि जब वह किसी तथ्य का वर्णन करे तो प्रकृति-वस्तु में यथोचित परि-वर्तन-परिवर्द्धन करके उसे अपनी कल्पना के अनुरूप बना ले।' यहाँ पर एडसिन महोदय भी लॉक के ही पदचिह्नों का अनुगमन करते दीख पड़ते हैं। 'बर्क' ने कल्पना पर अपना विचार व्यक्त किया पर इसको सही रूप स्वच्छन्दतावादी कल्पना के साथ ही मिला।

स्वच्छन्दतावादी कल्पना

ब्लेक—कल्पना पर 'ब्लेक' तथा 'कोलरिज' दोनों ने ही अपने आदर्शवादी विचारों को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार मस्तिष्क आध्यात्मिक सत्ता का केन्द्र है और इसकी मुख्य शक्ति कल्पना है। अतएव वे इसे आध्यात्मिक मानने के लिए तैयार थे। जब मस्तिष्क को ईश्वर-प्रदत्त मान लिया गया तो इसका प्रयोग किसी न किसी प्रकार भगवान की क्रिया में हिस्सा बँटाना हुआ।'[1] ब्लेक का विचार था कि कल्पना का विश्व शाश्वत है। यह वह ईश्वरीय हृदय है जिसमें हम इस पंचभौतिक शरीर के अन्त के पश्चात् मिलेंगे। यह कल्पना-लोक अनन्त तथा चिरन्तन है परन्तु अन्य भौतिक सृष्टि अपने स्वरूप में सीमित एवं नश्वर है। ब्लेक का यही विचार उसे सत्य के अन्तरतम तक ले जाकर रहस्य का दर्शन करा सकता था। वह कहता है—

> **'विश्व को एक बालू के कण में देखना,**
> **स्वर्ग को एक जंगली फूल में देखना,**
> **अनन्तता को अपनी हथेलियों में सीमित कर लेना,**
> **और शाश्वतता का एक घंटे में दर्शन करना।'[2]**

इन दृश्य वस्तुओं के द्वारा 'ब्लेक' उस सर्वातिशायी स्वरूप को प्राप्त कर सका जिसको उसने शाश्वत कहा और फिर नवीन एवम् सजीव वस्तुओं के सृजन के लिये वह स्वतन्त्र हो गया। वह ऐसा रहस्य-द्रष्टा नहीं था जो अपने परिश्रम से ईश्वर की ओर उन्मुख होता, वह तो एक कल्पना-विहारी था जो अपने विषय में कह सकता था कि मैं रातदिन भगवान की उपस्थिति में हूँ और भगवान कभी भी मुझसे

---

[1] *Bowara* : Romantic Imagination.

[2] To see world in a grain of sand,
and heaven in a wild flower,
Hold infinity in palm of your hand;
And eterinty in an hour.

विमुख नहीं होते ।[1] 'ब्लेक' के अनुसार केवल ईश्वरीय स्वप्न ही मनुष्य को कवि बना सकता था । हमारे यहाँ भी सन्त एवम् भक्त कवियों ने इसी से मिलती-जुलती बात स्वीकार की है । यथा—

> कबीर कूता राम का मुतिया मेरा नाउँ
> गले राम की जेवड़ी जित खैंचे तित जाउँ ।

अथवा—

> शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी
> रामचरित मानस कवि तुलसी ।

इस साम्य का मूल कारण इन सभी कवियों का आदर्शोन्मुख आध्यात्मिकता को प्रश्रय देना और उस आध्यात्मिक सत्ता से उनका सम्बन्ध है । 'ब्लेक' ने तो सामान्य से सामान्य घटना को एक विचित्र कलेवर प्रदान करके महान् रहस्य का द्योतक बनाया है । उसके लिये पिंजड़े में घिरी लाल चिड़ियाँ सम्पूर्ण स्वर्ग को स्पन्दित कर सकती हैं ।[2] सामान्य विचारोंवाला व्यक्ति कह सकता कि अगर छोटी चिड़िया स्वर्ग को स्पन्दित कर सकती है तो बड़ी चिड़िया पूरी संसृति को स्पन्दित कर देगी । पर सत्य इससे कुछ भिन्न है । वह एक संगीत-प्रेमी क्षुद्र चिड़िया की ही प्रतीक नहीं अपितु उस महान् शक्ति-पुंज का प्रतीक है जो इस प्रकार का कार्य कर सकती है । 'ब्लेक' ऐसा स्वप्नवेत्ता था जो यह विश्वास करता था कि सामान्य वस्तुयें अयथार्थ हैं फिर भी महान् यथार्थ के सत्य होने के कारण महान् हैं ।[3]

कीट्स

'कीट्स' ने लिखा है कि हृदय के प्रेम की पवित्रता तथा कल्पना के सत्य के अतिरिक्त मुझे किसी अन्य बात पर दृढ़ निश्चय नहीं है । जिस बात को कल्पना सौन्दर्य के रूप में ग्रहण करती है वह अवश्य सत्य होगा ।[4] इसके अतिरिक्त उसने कविता-संबन्धी अपने विचारों में इसी भावना को अभिव्यक्त किया है । वह कविता

---

[1] I am in Gods presence night and day
And he never turns his face away.

[2] R. I. Bowara.

[3] R .I. Bowara.

[4] I am certain of nothing but holiness of heart's affection and the truth of imagination. What the imagination seizes as beauty must be truth.—*Keats' leatter to Baily.*

को ऐसी शक्ति समझता है जो सभी स्थानों का स्पष्ट चित्रण कर सकने में सक्षम है और साथ ही यह भी मानता है कि यही उसे सभी देखे हुए स्वप्नों के वर्णन की प्रेरणा प्रदान करती है। उसने लिखा है कि तब (कविता की शक्ति प्राप्त करने पर) मैं एक शैतान की तरह इस संसार की घटनाओं को पकड़ सकता हूँ। मेरी आत्मा स्वतः तब तक इसके पीछे पड़ सकती है जब तक अपने कंधों पर यह उस पंख को नहीं देख लेती जो आवश्यकता की खोज करने में सक्षम है।[1]

उसने ऐसा निश्चय किया था कि मानव ललित कल्पना के विहार को त्याग-कर जीवन के विविध उपादानों के चिन्तन के लिये 'स्वर्ण युग' की कल्पना स्वीकार करेगा। उसका यह विचार 'पोएट्री एण्ड स्लीप' में एक रथ एवं रथारोही के माध्यम से प्रकट हुआ है। उसने लिखा भी है कि 'अधिक तत्परता के साथ उन्मुख वह रथारोही आगे बढ़ने की चाह लिए कुछ सुन रहा हैं।'[2] कीट्स के ये उपर्युक्त उद्धरण कविता को कल्पना के पंखों से युक्त होने तथा उसके अवबोध के रहस्यों को ही अभिव्यक्त करते हैं। पर कवि इन स्वप्नों को अधिक देर तक स्थिर नहीं रख पाता है, वे मुरझा जाते हैं। फिर भी वह यह निश्चय करता है कि कविता के इन कल्पनापूर्ण स्वप्नों तथा उस विचित्र रथ और उसकी विचित्र यात्रा के स्वरूपों को, बनाये रहेगा। हो सकता है उसे इसके लिये अन्य शंकाओं से लड़ना पड़े।[3] इस विचार के तुरन्त बाद ही वह इसी कविता में कल्पना को संबोधित करता है क्योंकि उसका विश्वास है कि इसी कल्पना के आधार पर कवि-मस्तिष्क को सभी प्रकार के ज्ञान प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार केवल एक कविता 'पोयट्री एण्ड स्लीप' के विवेचन के द्वारा हम यह देखते हैं कि कवि 'कीट्स, कल्पना के महत्व को स्वीकार करता था। इसके

[1] Then the events of their wide world I would seize
Like a strong giant, and my spirit tease,
Till at its shoulders it should proudly see
Wings to find out its immortality.

[2] The most awefully intent,
The driver of those steeds is forward bent,
And seems to listen.

[3] But I will strive
Against all doubtings and will keep alive
The thoughts of that strange chariot,
And the strange Journey it went.—Sleep and Poetry, *Keats*

अतिरिक्त उसकी अन्य कितनी ही कविताओं में मध्यकालीन देवकथाओं को एक नया रूप देकर उसके द्वारा विचार को प्रतिपादित करने की चेष्टा की गई है। 'ओड टु नाइटिंगेल' उपर्युक्त विचार के विकास-क्रम का इतिहास प्रस्तुत करती है। जिस प्रकार वर्ड्सवर्थ का कवि अपने को प्रकृति-प्रेम के स्वरूपों में ही फँसा कर अन्य विविध मानवीय स्वरूपों को भूल बैठा, उसी प्रकार 'कीट्स' भी सौन्दर्य एवं सत्य के दर्शन में कल्पना पर उतना गहन विचार नहीं कर सका जितना कि उसके सहवर्गियों ने किया। उसके लिये तो 'सौन्दर्य ही सत्य एवं सत्य ही सौन्दर्य है' सर्व-मान्य सिद्धान्त था। 'एण्डिमिअन' में उसने इस बात को अवश्य स्वीकार किया है कि (कल्पनाजनित) आनन्द हमारे मस्तिष्क को इतना प्रभावित कर देता है कि वह सारभूत तत्व का सहगामी बन जाता है। इसका हम पर इतना प्रभाव पड़ता है कि हम देश एवं काल के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। सब कुछ के बावजूद 'कीट्स' का यह विवेचन 'कॉलरिज' और 'ब्लेक' के विवेचन की तरह व्यापक और गम्भीर नहीं है।

कॉलरिज

'कॉलरिज' ने कल्पना के सम्बन्ध में 'ब्लेक' से कुछ मिलते-जुलते विचारों को प्रतिपदित किया है। उसके ही शब्दों में, 'कल्पना सभी मानवीय अनुभूतियों की सजीव शक्ति तथा मुख्य स्रोत है; इसे मानव के सीमित मस्तिष्क में शाश्वत सृष्टि के अनन्त कार्य में की पुनरावृत्ति कहा जा सकता है।'[1] कॉलरिज कल्पना के सृजन-पक्ष से पूर्ण परिचित था। अतएव उसे इसके दो भेद मान्य हैं : प्रथम विधायक कल्पना, द्वितीय ललित कल्पना। उसने केवल निर्जीव प्रतिमाओं के ऐसे संग्रह को जो मानव-मस्तिष्क में उपस्थित रहती हैं कविता के सौन्दर्य एवं सत्य के लिये अनावश्यक माना है। एक ललित कल्पनाप्रधान मस्तिष्क विचारों की यांत्रित क्रियाओं के आधार पर-उसी प्रकार की प्रतिमाओं को हमारे समक्ष उपस्थित करता है। परन्तु कल्पना-प्रधान मस्तिष्क उन प्रतिमाओं में सौन्दर्य एवं स्पन्दन का संचार करता है। अतएव जब वे लिखित रूप में हमारे समक्ष आती हैं तो हमें संवेदनशीलता एवं गम्भीरता का अनुभव होता है। वे इस रूप में महान् होती हैं। अतः इसे उसने कल्पना की विधायिनी शक्ति का नाम दिया है।

कॉलरिज ने कल्पना को दो अन्य भागों में भी विभाजित किया है : (१) मुख्य कल्पना, (२) गौण कल्पना। मुख्य कल्पना की परिभाषा ऊपर दी जा चुकी है। 'गौण कल्पना भी मुख्य कल्पना की प्रतिध्वनि, सचेतन इच्छा की सहगामी

[1] Biographia Literaria, *Coleridge*, *R. A. Scott James*

तथा अपनी क्रियाशीलता में इसी के अनुरूप है। यह मुख्य कल्पना से केवल मात्रा एवं अनुभूति की दृष्टि से भिन्न है। यह पुनर्निर्माण के लिए विलीनीकरण, प्रसरण एवं विकीर्णीकरण का आश्रय लेती है। जब इस प्रकार की क्रिया असम्भव हो जाती है तब भी वह उसके आदर्शीकरण एवं एकीकरण के लिए प्रयत्नशील रहती है।'[1]

कल्पना मूलतः इच्छाशक्ति एवं अवरोध-वृत्ति के आधार पर क्रियाशील होती है। यह ज्ञानक्षेत्र एवं विचारपूर्ण अवबोध के क्षेत्र को मिलाने की कड़ी है। इसी सम्मिलन द्वारा यह प्रवृत्ति द्वारा उपलब्ध अनुपयुक्त वस्तुओं से अपनी प्रतिभा तैयार करती है। 'कॉलरिज' की यह धारणा व्यावहारिक थी। यह उसके अनुभव, कविता-ज्ञान तथा आध्यात्मिक दर्शन पर वर्षों मनन करने के परिणामस्वरूप अवतरित हुई थी। मनोवैज्ञानिक भी मानव-मन का विवेचन करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इसमें प्रतिभाओं एवं उनके संग्रह के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। साथ ही वे इस बात से भी पूर्ण अवगत हैं कि आत्मा की कोई ऐसी वृत्ति अवश्य है जो वस्तुओं को इस प्रकार उपस्थित करती है जिसका अनुभव एवं अवबोध सम्भव है।

कलापूर्ण कल्पना प्रकृति को विचार एवम् विचार को प्रकृति के रूप में लेकर अद्भुत की स्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। कलाकार प्रकृति को अपने विचारों के रूप में चित्रित करता है। प्रकृति का अनुभव उसके लिए भगवान् का अनुभव है, क्योंकि प्रकृति भगवान् के ऐश्वर्य की मूर्त कला है। परन्तु वह प्रकृति की समग्रता को उसके अनन्त रूप में, भगवान् के रूप में न लेकर भगवान् की इच्छा के बाह्य प्रसार के रूप में ग्रहण करता है। कॉलरिज का यह विश्वास था कि यह मानव-बुद्धि तथा ईश्वरीय बुद्धि का सम्मिलन ही मानव की कल्पना को प्रवृत्ति के रूप में ईश्वरीय इच्छा के बाह्य प्रसार को देख सकने में सक्षम बनाता है।

कॉलरिज के अनुसार कल्पना में आत्मा के विविध व्यापार, बुद्धि, इच्छा और अनुभव के विभिन्न रूप निहित हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि कल्पना वह शक्ति है जिसका प्रयोग कवि उसी समय कर सकता है जब वह प्रतिभा-सम्पन्न हो तथा उसका अपने पर पूर्ण अधिकार हो।

वर्ड्सवर्थ

वर्ड्सवर्थ की कल्पना-सम्बन्धी धारणायें कॉलरिज से कुछ मिलती-जुलती थीं। उसके अनुसार कल्पना तथा ललित कल्पना में अन्तर था। उसकी कल्पना-प्रधान कविताओं में सृजन-शक्ति एवम् अन्तर्दृष्टि का विचित्र सामंजस्य था।

---

[1] **'मेकिंग ऑफ लिटरेचर' : आर० ए० स्काट जेम्स, पृ० २२३।**

'कॉलरिज' की ही तरह वह मानता था कि कल्पना की क्रिया ईश्वरीय क्रिया के अनुरूप है। वर्ड्सवर्थ ने इस बात को मान्यता दी है कि विशिष्ट शक्ति से संयुक्त सृजन महत्वपूर्ण है। उसने लिखा है कि--

'कल्पना निरंकुश शक्ति का दूसरा नाम है,
यह अति स्पष्ट अन्तर्दृष्टि है, मस्तिष्क का प्रसार है,
यह बुद्धि की पूर्ण उदात्तावस्था है।'[1]

फिर भी कॉलरिज ने बाह्य विश्व को ईश्वर के विचार का प्रसार माना है। परन्तु वर्ड्सवर्थ के विचार इससे भिन्न हैं। वह इसकी स्वतंत्र स्थिति स्वीकार करता है और इसे सक्रिय मानता है। उसके अनुसार मानव-आत्मा से भिन्न इसकी अलग आत्मा है। वह मानवात्मा से मिलन को आवश्यक मानता है क्योंकि जन्म से लेकर आगे आनेवाले समय में प्रकृति उसे कई प्रकार से प्रभावित करती रहती है और यही उसके व्यक्तित्व के अणु में व्याप्त है। वर्ड्सवर्थ का ऐसा विश्वास था कि वह प्रकृति की आत्मा को मानव की आत्मा के परम समीप ले जाने में समर्थ सिद्ध हुआ है। इसी से वह अपनी कविताओं में मानव-मस्तिष्क का प्रकृति पर, तथा प्रकृति का मानव-मस्तिष्क पर विचित्र प्रभाव अंकित कर सकने में समर्थ हुआ है। प्रकृति का सामीप्य ही उसे मानव-मन की उच्च भूमियों का दर्शन कराने में सफल रहा है। अतएव वह उस स्थल की खोज में संलग्न हुआ है जहाँ पर प्रकृति तथा मानव-संबंध स्थापित किया जा सके। इस गवेषणा में वर्ड्सवर्थ की कल्पना का जो निखार हमें प्रकृति के प्रांगण में दृष्टिगोचर हुआ वह अन्यत्र दुर्लभ है।

शेली

शेली के अनुसार कविता कल्पना की अभिव्यक्ति है। उसके कथन को पढ़कर हमें ऐसा लगता है कि आदर्श सृजन में कवि एवं प्रकृति दोनों संलग्न हैं। यह बात भी ठीक है कि आदर्श जगत् की सृष्टि प्रकृति-प्रदत्त शक्ति तथा उसी के द्वारा बताये कौशल से होती है। कवि प्रकृति के शिक्षणालय में इस कौशल की शिक्षा प्राप्त करता है। पर चैतन्य, प्रतिभासंपन्न, और कल्पनाप्रवण होने के कारण, इस आदर्श व्यवस्था के सृजन की घुड़दौड़ में वह आगे निकल जाता है।[2]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शेली काव्य-सृजन में कल्पना को प्रधानता देता है। उसके शब्दों में काव्य वही हो सकता है जिसमें कल्पना-शक्ति के प्रदर्शन के लिए पूर्ण अवसर हो। 'कविता दर्पण है जो प्रकाश को पूर्ण रूप से

[1] Imagination is another name for absolute power
And clearest in sight, amptitude of mind
And Reason in her most exalted mood."
—Prelude—II, 255-56

[2] **रोमांटिक साहित्यशास्त्र : देवराज उपाध्याय, पृ० ८४।**

प्रतिबिंबित करती है और कलायें मेघ-खंड हैं, जो प्रकाश की ज्योति को म्लान कर देती हैं; भाषा कल्पना-प्रसूत है, अतएव उसका सीधा सम्बन्ध पारस्परिक है, यह कल्पना एवम् अभिव्यक्ति के बीच की सीमा तथा सम्बन्ध सूत्र बनाती है।'[1] सचमुच उपर्युक्त विवेचन को दृष्टिपथ में रखकर अगर हम शेली की मान्यता पर विचार करें तो स्पष्ट रूप से यह ज्ञात होता है कि वह स्वप्नों का कवि था और उन स्वप्नों के अन्तराल में कल्पना का महान सूत्र क्रियाशील था। उसके अनुसार कल्पना एवं बुद्धि में भिन्नता होने पर भी अन्योन्याश्रय सम्बन्ध था, क्योंकि बुद्धि का आश्रय लेकर चलने वाली ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को भी उसकी कल्पना रचनात्मक स्वरूप देने में सक्षम थी। उसकी कल्पना ने जिस क्षण भी नश्वर स्वरों में अनश्वर संगीत की तान छेड़ी है वहीं महाकवि शेली की महान् कला के दर्शन हुए हैं। आत्मा का शाश्वत धर्म होने के कारण शेली ने इसे मानव की सहजात प्रवृत्ति माना है। 'डिफेन्स आफ पोयट्री' में उसने लिखा है कि कवि गम्भीरतापूर्वक न केवल वर्तमान को उसके यथार्थ रूप में देखकर उन नियमों की खोज करता है जिनके आधार पर उनका नियमन होना चाहिए, अपितु वह भविष्य को भी वर्तमान में देखता है और उसके विचार में आगत के भी फूल एवं फल के विकास-चिह्न निहित हैं। कवि शाश्वत, अनन्त एवं एक का साझीदार है।[2]

कवि को इस वर्तमान भविष्य एवं भूत की एक साथ गवेषणा करने एवं सम्बन्ध-सूत्र जोड़ने या तोड़ने में उसकी कल्पना ही उसकी सहगामिनी है। वह विधायक कल्पना की इस अर्न्तदृष्टि से पूर्णरूपेण परिचित है। इसीलिए उसने कवि को भविष्य-द्रष्टा भी माना है। प्रायः आलोचकों ने कल्पना की अतिशयता के कारण उसे अप्रभावशील देवदूत कहा है। पर बात ऐसी नहीं है। उसने यथार्थ की व्याख्या की है जो कालातीत, अपरिवर्तनशील एवं नियमन-निष्णात है। दृश्य जगत को उसने इस यथार्थ का एक टूटा हुआ हिस्सा माना है। शेली ने प्रत्येक वस्तु को उसकी आवश्यक एकता में देखकर यह दिखाया है कि यथार्थ एवं प्रत्यक्ष का क्या स्वरूप है। उसने इस बात को भी स्पष्ट किया है कि दृग्विषयक (फिनामिनल) वस्तुयें यथार्थ की मुखापेक्षी हैं। उनके लिये शाश्वत मस्तिष्क अन्तिम सत्य है, और इसी कारण विश्व में समरसता भी बनी रहती है।[3]

---

1 *Ibid.*, p. 86.

2 Defence of Poetry in prose works of *P. B. Shelly*, edited by *Harry Buxton*, III, 104.

3 Romantic Imagination, *Bowara*, p. 22।

शैली के कल्पना-सम्बन्धी विचारों पर 'लॉक' तथा 'बेकन' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

इस विवेचन के पश्चात् यहाँ पर एक बड़ा विकट प्रश्न खड़ा होता है कि कवि अपनी इस महत्वाकांक्षी उड़ान में इस प्रकार तल्लीन हो सकता है कि वह यथार्थ से दूर एक भावनात्मक लोक का सृजन करके उसमें रमण करने में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ले। पर इसके लिये यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि रोमांटिक कवियों की विचारधारा की उत्पत्ति ही कृत्रिमता, असत्य एवं झूठ के विरोध में हुई थी। अतः वे स्वाभाविकता एवं सत्य के पक्षपाती थे। उनके मत से कल्पना, यथार्थ एवं सत्य में एक आवश्यक सम्बन्ध है।[1] साहित्य में वह सभी यथार्थ है जिसके पीछे साहित्यकार की अनुभूति है और जिसे वह दूसरों को अनुभूत करा सकता है। मानव-अनुभूति के विषय असीम एवं असंख्य हैं। इनके सीमा-निर्धारण का प्रश्न उठाना विडम्बना है। स्वस्थ रोमांस मानव-जीवन में ताजगी लाने तथा उसे गतिशील बनाये रखने के लिए अति आवश्यक है। साहित्य-क्षेत्र में रोमांस भी उतना ही यथार्थ है जितना रोटी-कपड़ा।[2] महाकवि शेक्सपीयर ने लिखा है कि कवि की दृष्टि एक सुखद आवेगपूर्ण प्रवाह में स्वर्ग से पृथ्वी की परिक्रमा करती है और इस प्रक्रिया से उसकी कल्पना अज्ञात वस्तुओं को रूप देती है और उसकी लेखनी वायवीय शून्यता को एक स्थानीय आवास एवं नाम प्रदान करती है।[3] अर्थात् कवि कल्पना के सहारे अदृश्य को भी दृश्य बनाकर ऐसे सत्य का उद्घाटन कर सकने में समर्थ है जो सामान्य बुद्धि-चक्षु द्वारा ग्राह्य नहीं, अतएव इसको एक विशिष्ट अन्तर्दृष्टि, अनुभूति एवं अन्तःस्फूर्ति से प्रभावित मानना उपयुक्त है। भावना एवं कल्पना के संबंध पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। केवल एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना परमावश्यक है। भावना एवं कल्पना में जो सम्बन्ध है वही

---

[1] **आधुनिक कविता में स्वच्छन्द धारा : डॉ० त्रिभुवन सिंह, पृ० ५८।**

[2] **कल्पना, सम्पादकीय, १९५८, पृ० ७४३।**

[3] The poet's eye in fine frenzy rolling,
Doth glance from heaven to earth and from earth to heaven,
And as imagination bodies forth.
The form of things unknown, the poets pen
Turns them to shapes and gives to airy nothings.
A local habitation and name.
A Mid Summer Nights Dream.—*Shakespeare*

अन्तर्दृष्टि एवं कल्पना में है। अतएव अब हम भली-भाँति कह सकते हैं कि स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी अन्तर्दृष्टि के आधार पर, अन्तःप्रेरणा का अनुगमन करके आन्तरिक शक्ति के उद्घाटन में यथाशक्ति तल्लीन रहे। यही उनका मुख्य विषय होने के कारण उनकी कल्पना को भी पूर्णरूपेण क्रियाशील होने का सुअवसर मिला। उन्होंने दृश्य जगत के बाह्य स्वरूप की अवहेलना कर, उसके रहस्य को समझने के लिए उसके अन्तराल तक डुबकी लगाई और इसी के द्वारा प्राप्त रहस्य का वे जीवन को समझने में उपयोग करते रहे। दृश्य का उनके लिए उतना ही महत्व था जितना अदृश्य को समझने के लिए उसकी आवश्यकता थी। इस प्रकार स्थूल सत्य तथा सत्य के परंपरित स्वरूप के ऊहापोह की, उनकी कृतियों में, खोज उनको समझ सकने में स्पष्टतः बाधक होगी वे यथार्थ रूप से जिज्ञासु थे और अपनी जिज्ञासा के अनन्त प्रयत्न तब तक करते रहना चाहते थे जब तक उनका कोई समुचित उत्तर न मिल जाय। उनकी कृतियों में इस प्रकार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं जिनको परम्परित ज्ञान की तुला पर तोलना असम्भव है। कला की सीमा होती है। वह सदा सर्वदा मानव के अनन्त विचारों, उसके जीवन के समग्र चित्रों एवं गहन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में असफल रही है। स्वच्छन्दतावादियों में समग्र जीवन-दर्शन का अभाव भले हो, पर जीवन के एक क्षेत्र की समग्रता को तो उन्होंने पूर्णता के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है।

वैसे तो प्रत्येक कवि के लिये अनुभूति आवश्यक तत्व है। पर स्वच्छन्दतावादी कवियों के लिये इसका और विशिष्ट महत्व है। यह उनके काल्पनिक सत्य को क्रियाशील बनाती है। इसी के कारण वे प्रकृति के सामान्य स्वरूप को भी विचित्र प्रकाश से आवेष्टित करके हमें स्तब्ध कर सकते हैं। इसी के माध्यम से वे उन प्रबुद्ध क्षणों को प्राप्त करते हैं जो उन्हें मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाकर संसृति के रहस्य से अवगत करा सकते हैं। पर अनुभूति द्वारा प्राप्त इस अन्तस्थ सत्य पर विश्वास करके भी इसे प्राप्त करने के उनके साधन प्रायः स्वतन्त्र एवं भिन्न हैं।

छायावादी कल्पना

दर्शन ने अन्तःकरण को चार भागों में विभाजित किया है—(१) मन, (२) बुद्धि, (३) चित्त और (४) अहंकार। मन के पुनः दो रूप स्वीकार किए गए हैं : (१) संकल्पात्मक, (२) विकल्पात्मक। संकल्प के मूल में स्वीकृति की प्रवृत्ति क्रियाशील रहती है और विकल्प के मूल में सन्देह की। इस स्वीकृति एवं सन्देह के सम्मिलन से कल्पना का निर्माण होता है।

भारतवर्ष में कल्पना पर पर्याप्त विवेचन हुआ है। आधुनिक काल में रवीन्द्र,

श्यामसुन्दर दास तथा रामचन्द्र शुक्ल ने इस पर अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं। शुक्ल जी ने तो काव्य के सारे रूप विधान के मूल में कल्पना को ही मान्यता दी है। उन्होंने सम्पूर्ण विभावन-व्यापार को कल्पना के अन्दर स्वीकार किया है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने ज्ञान की निम्नांकित पाँच अवस्थायें स्वीकार की हैं—(१) परिज्ञान, (२) स्मरण, (३) कल्पना, (४) विचार और (५) सहज ज्ञान।

बाबू साहब ने अपने कल्पना के विवेचन में स्मृति को ही मूल रूप में स्वीकार किया है। पर स्मृति से कल्पना के पक्ष विशेष का प्रत्यभिज्ञान भले ही हो जाय पर वह कल्पना की समग्रता को प्रस्तुत करने में असमर्थ है।

श्री रवीन्द्र ने लिखा है कि 'जिस प्रकार भौतिक वातावरण की विसंगतियों का अनुशासन प्रकाश द्वारा होता है उसी प्रकार मनुष्य के मानसिक परिवेश के बिखराव का अनुशासन कल्पना द्वारा होता है। कल्पना हमारे अन्दर सुप्त मानव-समष्टि को जाग्रत करती है। वह जीवन के बिखरे तथ्यों को एक दर्शन के अन्दर पिरो कर संघटित करने में हमारी सहायता करती है।'[1] रवीन्द्र की इस परिभाषा में हमें विलियम ब्लेक की विशुद्ध अन्तर्दृष्टि-संयुत् कल्पना के दर्शन होते हैं।

छायावाद एक शैली विशेष नहीं है। उसका जीवन के प्रति एक सौन्दर्य-मूलक भावात्मक दृष्टिकोण है। वास्तविक कला की सृष्टि कलात्मक कल्पना के आधार पर ही होती है। अतएव उन्होंने भी अपने साहित्य-सृजन में इसका प्रयोग किया है पर स्वच्छन्दतावादियों की तरह इसकी व्याख्या नहीं प्रस्तुत की है। अतएव उनके कल्पना-संबंधी विचारों की खोज हमें उनकी कृतियों में ही करना अधिक समीचीन होगा।

पन्त

उन्होंने स्वतः लिखा है कि 'मैं कल्पना को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ। मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है उन सबका समीकरण करने की चेष्टा मैंने की है। मेरा विचार है कि वीणा से लेकर ग्राम्या तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है और उसी का प्रभाव उन पर मुख्य रूप से रहा है।'[2] यथार्थ में कल्पना पन्त जी की कविताओं की रीढ़ है। उनकी कल्पना का सबसे बड़ा गुण उसकी मूर्त विधायिनी शक्ति है। यह शक्ति इतनी विकसित है कि कवि के सम्मुख छोटी वस्तु भी मूर्त रूप में आती है।...जो सूक्ष्मग्राहिणी नुकीली कल्पना मीनाकारी के लिये अपेक्षित है उसका पन्त के पास अक्षय भांडार है—

---

[1] रवीन्द्र।

[2] आधुनिक कवि—पन्त, पृ० ३६।

'मोतियों से जड़ी ओस की डार
हिला जाती चुप चाप बयार।'

पड़ी ओस की बूंदों के दर्शन तो सभी करते हैं, पर मोतियों से जड़ी कह कर स्पष्ट करने की क्षमता किसी कल्पनाशील कवि में ही हो सकती है। हिला जाने का भी भाव कुछ विचित्र ही है। इसी प्रकार जन्म एवं मरण तो संसार की शाश्वत क्रियायें हैं। पर

'खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण।'

द्वारा एक विचित्र भाव की अनुभूति होती है। जन्म के साथ ही मानव इस संसार में अपनी आँखें खोलता है। परन्तु जन्म होते ही मृत्यु की क्रिया भी आरम्भ हो जाती है। जीवन के एक-एक दिन बीत कर हमें इस सत्य का अनुभव कराते हैं कि मृत्यु पास आ रही है। जन्म का लोचन खोलना तथा मृत्यु का उसे मूँदना चित्रित करना विधायक कल्पना का अच्छा उदाहरण है।

पन्त ने एक स्थान पर लिखा है,

कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता सिसकता गान है।
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है।

यहाँ 'प्रेम के अश्रुसिक्त होने की तरह'[1] कल्पना भी अश्रुसिक्त दीख पड़ रही है। 'वियोगी होगा पहला कवि' जैसी कवितायें इसी सत्य की ओर संकेत करती हैं। सत्य एवं सौन्दर्य के परमोपासक 'कीट्स' को इसी प्रकार की भावना के दर्शन हुए हैं। शेली भी इसी प्रकार की स्थिति से गुजरा है। वाल्मीकि के प्रथम अनुष्टुप छन्द इसी टीस से निकले हैं। कल्पना कविता के कानन की रानी है। काव्य अगर जीवन की एक व्याख्या है तो फिर कल्पना में भी जीवन के वेदनामय स्वरूप तिरते हुए अवश्य दीख पड़ जाते हैं।

पन्त जी ने कहा है कि 'जिस प्रकार छायावाद प्रेरणा का काव्य रहा है उसी प्रकार कल्पनाप्रधान भी रहा। पर कल्पना का पलायन से भिन्न उच्च अर्थ में भी काव्य में प्रयोग हो सका है।' यह उद्धरण इस बात को स्पष्ट कर देता है कि इन्होंने कल्पना का प्रयोग केवल पलायन के लिए नहीं किया है अपितु उनके समक्ष भी एक स्वप्न रहा है जिसे हम भविष्य का स्वप्न मान सकते हैं। इसी स्वप्न का सांस्कृतिक स्वप्न से समन्वय करना इनकी कल्पना का मूल आधार है।

---

[1] Love embodied in tears.

निराला

निराला जी की कविता का उद्देश्य उन्हीं के शब्दों में 'नव गति, नव लय, ताल छन्द नव' के द्वारा जाना जा सकता है। बात यह है कि प्रत्येक कला की प्रेरणा या सृजन के मूल में एकमात्र अखण्ड सत्य क्रियाशील रहता है। इसके विविध रूप होते हैं। कवि-कल्पना, अपनी अनुभूति द्वारा जिस सत्य का दिग्दर्शन करा सकने में सक्षम है, उसी सत्य का रूप कवि के लिए महत्वपूर्ण है। परन्तु यदा-कदा बहुमुखी प्रतिभा वाले अपने काव्य-रूपों में कल्पना तथा प्रेरणा के आधार पर युग-जीवन की समग्रता को भी अभिव्यक्ति प्रदान कर सके हैं। महाकवि निराला इसी प्रकार के कवि थे। उनकी कल्पना साहित्य की चिरनवीनता एवं स्वतन्त्रता की पोषक है। इसीलिये उनकी 'सरोज-स्मृति' केवल सरोज-स्मृति नहीं रह जाती, 'कुकुरमुत्ता' केवल कुकुरमुत्ता नहीं रह जाता, अपितु उनमें जीवन के चिरन्तन सत्य का समावेश हो जाता है। इसके मूल में जो वस्तु उन्हें क्रियाशील मिलती है वह है स्मृति। उन्होंने स्वयम् कहा भी है कि 'हम साहित्य में अपनी बहुत दिनों की भूली हुई शक्ति को आमन्त्रित करना चाहते हैं जो व्यक्त रूप से सबमें व्यक्त अपनी ही आँखों द्वारा विश्व को देखती हुई अपने ही भीतर से उसे डाले हुए है।' परन्तु इस भूली हुई शक्ति के आमन्त्रण की मूल शक्ति कल्पना है। इसलिये उसको सम्बोधित करते हुए वे लिखते हैं कि—

> 'कल्पना के कानन की रानी,
> आओ आओ मृदु पद मेरे
> मानस की कुसुमित वाणी।'

उनका यह सम्बोधन इसके विधायकत्व को देखते हुए यथार्थ है।

उनकी कल्पना का अनुपम प्रयोग हमें 'तुलसी दास' एवम् 'राम की शक्ति-पूजा' में मिलता है। चित्रकूट में प्रकृति ने तुलसीदास को जो अनुपम सन्देश दिया है अथवा प्रकृति की रङ्गपटी पर जहाँ उनको अपनी प्रियतमा के दर्शन मिले हैं, ऐसे प्रयोग विश्व-साहित्य में बेजोड़ हैं। 'यमुना के प्रति' कविता उनकी कल्पना-शक्ति का ज्वलन्त प्रमाण है। यथा—

> 'स्वप्नों सी उन किन आँखों की
> पल्लव छाया में अम्लान।
> यौवन की माया सा आया
> मोहन का सम्मोहन ध्यान।

गन्ध लुब्ध किन अलि बालों के
मुग्ध हृदय का मृदु गुञ्जार ।
तेरे दृग कुसुमों की सुषमा
जाँच रहा है बारम्बार ।'

कविवर बिहारी जिस यमुना के किनारे, सघन कुञ्ज, सुखद छाया तथा शीतल मन्द समीर में ही उलझ कर रह जाते हैं वहीं निराला को राधा-कृष्ण की उन शाश्वत लीलाओं की याद आती है जो भागवत में वर्णित हैं। विधायक कल्पना का इससे अच्छा और क्या उपयोग हो सकता है ?

प्रसाद

प्रसाद काव्य की तरह कल्पना को भी श्रेय एवं प्रेय मानते हैं। उनके सम्पूर्ण काव्य में संकल्प एवं विकल्प क्रियाशील दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने कहा है कि—'इस जीवन का ध्येय नहीं है अन्त भवन में टिक रहना, किन्तु चले जाना उस पथ तक जिसके आगे राह नहीं।' कवि यहाँ स्वयं अपनी कविता का उद्देश्य निर्धारित कर देता है और कल्पना को ही इसमें मूल रूप से सहायक समझ कर उसका आवाहन करता है—

'हे कल्पना सुखदानि !
तुम मनुज जीवन-दानि,
तुम विशद व्योम समान ।'

यही व्योम-समान विशद् कल्पना कवि को वहाँ तक ले जाती है 'जिसके आगे राह नहीं।' कामायनी में कवि-कल्पना संभवतः अपने इसी इच्छित प्रतिमान को प्राप्त कर सकी है। 'झरना', आँसू', 'लहर' प्रभृति तक तो वह कल्पना को भुलावा देकर अपने को दूसरे स्वच्छन्द लोक में पहुँचाने के लिये याद करता है पर कामायनी में कल्पना के व्यष्टि एवं समष्टि रूपों के संयोग द्वारा कवि विश्व-मंगल की कामना करने में समर्थ है। कवि ने स्वयं लिखा भी है कि 'दुःख-दग्ध जगत एवं आनन्द पूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है। इसीलिये अत्यन्त अघटित घटनाओं पर कल्पना की वाणी वह महत्वपूर्ण स्थान देती है जो निजी सौन्दर्य के कारण सत्य-पथ पर प्रतिष्ठित होती है। इसमें विश्वमंगल की भावना ओतप्रोत रहती है।'[1] कवि अपने इस सत्य को कल्पना के माध्यम द्वारा साकार करने में सफल हुआ है। केवल एक उदाहरण

---

[1] **काव्य-कला एवं अन्य निबन्ध, प्रसाद, पृ० १२३ ।**

इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है । कवि ने कामायनी में श्रद्धा के अधखुले अंग के चित्रण के लिये कल्पना की जिस सुनहली तूलिका का सहारा लिया है वह अद्भुत है—

'नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रङ्ग ।'

मेघों के वन में बिजली के फूल की कल्पना चाहे सामान्य मनुष्य भले ही न कर सके पर श्रद्धा के अतीन्द्रिय सौन्दर्य का दर्शन तो वही कर सकता है जिसके मस्तिष्क के चित्रफलक पर ये चित्र एक बार कौंध गये हों ।

महादेवी

महादेवी जी कवि एवं दार्शनिक के परस्पर सम्बन्धों पर दृष्टिपात करती हुई लिखती है कि 'कवि का वेदान्त-ज्ञान जब अनुभूति से रूप, कल्पना का रंग तथा भाव-जगत् से सौन्दर्य पाकर साकार होता है, तब उसके जीवन में सत्य का स्पन्दन रहेगा, बुद्ध की तर्क-शृंखला नहीं ।'[1] महादेवी ने इसमें कल्पना के विधायकत्व तथा उसकी अन्तर्दृष्टि में सत्य की पहुँच को उसी रूप में स्वीकार किया है जिस रूप में स्वच्छन्दतावादी कवियों ने । उन्होंने जो स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि कण-कण में आंसू के मिस किसी का प्यार और पल-पल में किसी का सुकुमार स्वप्न पल रहा है वह कवयित्री की कल्पना का ही रमणीय रूप है । फिर भी उनके आलोचक स्पष्ट व्यंजित सत्य की ओर ध्यान नहीं देते । वे तो सीधे कह दिया करते हैं कि उनकी सभी कवितायें ललित कल्पना का एक विलास हैं । वास्तविकता तो यह है कि न तो कोई कवि सदा ललित कल्पना में ही रत रहता है और न वह ललित कल्पना के प्रयोग से बचा रह सकता है । कल्पना का संबंध अनुभूति एवं स्मृति की तीव्रता से है । जो विषय कवि को जितनी सच्चाई से स्पन्दित करके उसकी अनुभूति को प्रभावित कर सकेगा उसमें कल्पना का भी उतना ही उदात्त रूप रहेगा और वह सत्य का एक अंश होगा । ऐसा कुछ मान लेना कि इनके जीवन में अनुभूति के सच्चे क्षण कहीं आ सके हैं, अन्याय है । एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

'कण्टकों की सेज जिसकी आँसुओं का ताज
सुभग ! हँस उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज
बीती रजनि प्यारे जाग ।'

---

[1] काव्यकला, महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० ४० ।

जीवन के सत्य से पराङ्मुख व्यक्ति इस प्रकार की कविता नहीं लिख सकता। महादेवी की कविता में कल्पना के सूक्ष्म एवं मसृण रूप का जो प्रयोग हो सका है, वह अप्रतिम है।

विशेष

स्वच्छन्दतावादी तथा छायावादी दोनों ही कल्पनाओं का प्रथम रूप नारी स्वरूप से संबद्ध है। इसका दूसरा रूप विराट की उपासना में दृष्टिगोचर होता है। इसके तीसरे रूप की झाँकी, प्रत्यावर्तन एवं भविष्य की स्वर्णिम झाँकी में मिलती है। आदर्श एवं स्वच्छन्द जीवन को न प्राप्त कर सकने के कारण असंतुष्ट कवि दोनों ही ओर गमन करता दृष्टिगोचर होता है। इन दोनों वादों की भविष्य-कल्पना आदर्शपूर्ण लोक की कल्पना है। इसकी भित्ति भावुकता एवं विराट मानवता है। प्रकृति-प्रेम तथा नवीन छन्द एवं पदों तथा अलंकारों का स्वरूप-निर्धारण भी कल्पना द्वारा ही होता है। इस साम्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी कल्पना में साम्य है। छायावादी कवि स्वच्छन्दतावादी कवि की कल्पना को महत्व ही नहीं प्रदान करते अपितु स्थान-स्थान पर उसका अनुकरण करके प्रेरणा भी ग्रहण करते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि और विवेचक दोनों थे। छायावादी कवि, कवि अधिक और विवेचक कम थे। ये भी अगर स्वच्छन्दतावादियों की तरह आज के बौद्धिक मानव के समक्ष अपने विचारों को रख सके होते तो उनके काव्य का इतना विरोध न होता। प्रायः कुछ आलोचकों में यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है कि वे परिस्थिति विशेष में अवतरित किसी अन्य देश के सिद्धांत को अन्य देश के काव्य पर लागू करके चटपट निष्कर्ष निकाल देते हैं। पर यह मनोवृत्ति दूषित है, क्योंकि इसके लिये संस्कृति, समाज, धर्म, राजनीति आदि की समता पर दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है। जहाँ तक प्रेरणा ग्रहण करने या अनुकरण करने का सवाल है वह संभव हो सकता है, फिर भी, यह याद रखना आवश्यक है कि ये विचार के बीज उसी शस्य-श्यामला भूमि पर पल्लवित एवं पुष्पित हो सकते हैं जहाँ परिस्थिति-साम्य भी हो तथा ग्राहक में ग्रहण करने की क्षमता भी हो। सामान्य विवेचन से थोड़ा परिस्थिति-साम्य भी दीख पड़ेगा। यही हालत है कुछ छायावादी आलोचकों की। पग-पग पर भारतीय छायावाद पर दोषारोपण करके वे उसकी ऐसी उपेक्षा और अवहेलना करने लगते हैं कि कभी-कभी ऊब सी हो जाती है। परन्तु उन्हें इस सत्य की ओर ध्यान देना चाहिए कि 'कल्पना कवि की बहुत बड़ी शक्ति है, भाव तो किसी न किसी मात्रा में सबमें उठते और मिटते रहते हैं, अनुभूतियों के तार सबमें गुंजित होते रहते हैं, परन्तु जब

इन अनुभूतियों को कल्पना का स्पन्दन मिलता है, तभी अन्तश्चक्षुओं के सामने कला की परम्परा अवतरित होने लगती है। वाक् मे अर्थ एवं अर्थ से वाक् का यही मधुमय मिलन कवि की साधना का साध्य होता है।'[1] परन्तु प्रश्न यह है कि इस मधुमयी भूमिका की साधना का साध्य क्या कवि की प्रतिभा एवं कवि के व्यक्तित्व से संबद्ध नहीं होता ? इसके उत्तरस्वरूप हम आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत उद्धृत कर सकते हैं जिसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि 'कल्पना कवि की अपनी प्रतिभा का परिणाम होती है, अतएव वह अपने मूल रूप में व्यक्तिगत है। फिर भी कवि द्वारा सृजित कल्पना का जगत् ऐसा नहीं होता कि अन्य लोग उसका अनुभव न कर सकें।'[2] दूसरे इस अद्भुत जगत् का अनुभव करते हैं, अपनी तरह से प्रेरणा भी ग्रहण करते हैं और उसे अभिव्यक्त भी करते हैं पर, वैयक्तिक प्रतिभा एवं मौलिक विचारों के अन्तर के कारण एक-सी चीजें नहीं प्रस्तुत कर पाते। तुलसी के पहले और बाद में भी न मालूम कितने रामचरित-काव्य लिखे गए पर सबके मूल में राम का उदात्त चरित्र होते हुए भी मौलिक अन्तर है। स्वयम् स्वच्छन्दतावादी कवियों के सृजन में भिन्नता है तो छायावादियों का उनसे सीधा प्रभाव ग्रहण करके उसको मान्यता देना कुछ तर्कसंगत नहीं दीख पड़ता। छायावादी कवियों पर स्वच्छन्दतावादी कल्पना का जो भी प्रभाव पड़ा वह इनकी वैयक्तिकता एवं प्रतिभा के अनुकूल परिवर्तित होकर ही यहाँ उपस्थित हुआ।

प्रायः आलोचना के समय हम यह भूल जाया करते हैं कि कोई भी सजीव काव्य किसी अन्य काव्य से केवल प्रेरणा ग्रहण करके अपना भरण-पोषण नहीं कर सकता। उसकी स्वयं की पृष्ठभूमि होती है जिसमें कहीं से आई प्रेरणा को एक मोड़ मिलता है, उसकी अपनी जीवन-व्याख्या होती है जिसके अनुसार उसे क्रियाशील होना पड़ता है और उसकी वर्तमान सामाजिक परिस्थिति होती है जिसके अनुसार उसे स्थान ग्रहण करना पड़ता है। फिर इतने विचारों के होते हुए किसी काव्यधारा को किसी देश विदेश की अनुकृति नहीं माना जा सकता। स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी काव्यों की मान्यताओं में साम्य अवश्य है फिर भी स्वच्छन्दतावादी कवि न तो 'कामायनी' लिख सके और न तो छायावादी कवि 'एंडिमिअन'। प्रेरणा-स्रोत एवं कल्पना की मान्यतायें चाहे जो भी हों सांस्कृतिक आधार एवं सामाजिक परिस्थितियाँ कवि के दृष्टिकोणों की निर्णायक होती हैं। लेखक इनकी पूर्ण अवहेलना करके सृजन कर सकने में असमर्थ है। यह तथ्य निर्विवाद रूप से माना जाना चाहिए कि जिस प्रशस्त तथा व्यापक कल्पना-भूमि पर स्वच्छन्दतावादी

---

[1] **रोदन की भूमिका : प्रो० क्षेम।**

[2] **आधुनिक कविता में स्वच्छन्द धारा, पृ० ४८।**

लेखक कार्यरत रहे वह किसी कवि या लेखक के लिये देश-काल की सीमा बिना स्वीकार किये अनुकरणीय थी। छायावादियों ने—जैसा वे स्वीकार भी करते हैं—उससे प्रेरणा ग्रहण की। पर उस प्रेरणा का प्रयोग हमारी सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि में हुआ, यूरोप में नहीं।

एक और सत्य है जिसकी ओर इंगित कर देना आवश्यक है। प्राय: संसृति में उत्थान एवं पतन का चक्र चलता रहता है। पर यह उस क्रम से नहीं चलता कि हर स्थान पर एक ही साथ उत्थान हो और एक ही साथ पतन। इस प्रकार इस परिवर्तन के वातचक्र में किन्हीं दो देशों में एक साथ ही समान स्थिति हो सकती है अथवा कुछ अन्तर पर उसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फिर इस परिस्थिति द्वारा उसी प्रकार की इच्छायें एवं आकांक्षायें भी पैदा हो जा सकती हैं जिनमें साम्य होता है। स्वच्छन्दतावादी इंग्लैंड तथा छायावादी भारत की अधिकांश इच्छायें हमारे विचार में तो अनुकरण-साम्य पर उतनी आधारित नहीं हैं जितनी कि परिस्थिति-साम्य पर।

कल्पना के उत्कृष्ट स्वरूप तो हर देश के हर काल के कवियों में किसी न किसी रूप में मिलते ही हैं। केवल कल्पना की बात अगर रहती तो छायावादी लेखकों को इंग्लैंड की ओर देखने की कोई आवश्यकता न होती। परन्तु जिस प्रकार की कल्पना का प्रयोग स्वच्छन्दतावाद में हुआ था उसी से मिलता-जुलता प्रयोग छायावाद में अभीप्सित था। इसका मूल कारण यह था कि द्विवेदी युग की परंपरावादी प्रवृत्ति से मुक्त होने के लिये जनमानस तड़फड़ा रहा था और इस नवीन स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का आगमन अवश्यम्भावी था। ऐसी स्थिति में स्वच्छन्दतावादी कल्पना का प्रयोग एक साहित्यिक आवश्यकता थी। अनुकरण होता अथवा न होता, प्रवृत्ति अवश्य दृष्टिगोचर होती क्योंकि प्रत्येक देश के साहित्य में परंपरावाद के बाद स्वच्छन्दतावाद तथा स्वच्छन्दतावाद के बाद परंपरावाद का चक्र चलता रहता है।

निष्कर्ष

ब्लेक ने कहा है—

> **'मैं एक नियम का सृजन करूँगा, नहीं तो**
> **दूसरों द्वारा बनाये नियम का गुलाम हो जाऊँगा।'[1]**

---

[1] I must create a system or be enslaved by another man.

वह पुन: कहता है—

'मैं तर्क एवं तुलना नहीं करूँगा, मेरा उद्देश्य सृजन है ।'[1]

उपर्युक्त विचार स्वच्छन्दतावाद के समान छायावाद पर भी समान रूप से लागू होते हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी यह जानते थे कि उनका उद्देश्य सृजन है। वे जानते थे कि उनका उद्देश्य इस सृजन द्वारा मानव की सभी भावनाओं को प्रबुद्ध करके उनके चैतन्य स्वरूप को प्रभावित करना, उनके मस्तिष्क को सामान्य वस्तुओं में निहित सत्य के प्रति जाग्रत करना, उनको परंपरित अनास्थापूर्ण स्वरूपों से, अनवगाहनीय गहराई एवं अपरिमाणात्मक दूरी का आभास देना अथवा तर्क को अपर्याप्त मानकर उदबुद्ध सहजवृत्ति का आश्रय लेना था। वे पूर्ववर्ती कवियों की तुलना में कविता का एक विशद दृष्टिकोण स्वीकार करते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि मानव की आध्यात्मिक प्रकृति ही अपनी पूर्णता में मान्य है। इन सभी उद्देश्यों को सफल करने में उनकी कल्पना सहायक थी; इसी लिये कॉलरिज ने उसे 'संश्लेषणात्मक निर्माणक शक्ति' (ए यूनीफाइंग क्रीयेटिव फैकलटी), स्वत:सुन्दरता की अधिष्ठात्री (ब्यूटीफुल, ब्यूटी मेकिंग पावर), कल्पना की विधायक क्षमता (शेपिंग स्पिरिट ऑफ इमैजिनेशन) आदि नामों से अभिहित किया और जयशंकर आदि ने 'सुन्दरता सुख खानि', 'मनुज जीवन दानि', 'विशद् व्योम समान' कहकर उसका अनुकथन किया। कल्पना स्वच्छन्दतावादी साहित्य का प्राण है। उनके लिये यह एक साहित्यिक आवश्यकता है। परन्तु जहाँ तक इसके शैलीगत व्यापार हैं वहीं इनमें कुछ साम्य दीख पड़ जाता है। दोनों देशों के विचारगत व्यापार भिन्न हैं। इनकी अलग-अलग सत्ता है। अतएव वहाँ ये कवि एक दूसरे से अधिक दूर दीख पड़ते हैं। आगे के तुलनात्मक अध्ययन में इसको स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा।

---

[1] I will not reason and compare, my business is to create.
– *R. I. Bowara*, p. 23.

६

प्रकृति-चित्रण

सृष्टि के आरम्भ के साथ ही प्रकृति एवं मानव का चिरन्तन सम्बन्ध स्थापित हुआ। मानव में अन्य जीवधारियों की अपेक्षा सहज जिज्ञासा वृति और सौन्दर्यानुभुति की विशेषता है। अतः प्रकृति अपने रहस्यपूर्ण क्रिया-व्यापार तथा रमणीय रूप-वैविध्य के कारण आदिकाल से ही मानव की रागात्मिका वृत्ति का मूल आधार रही है। उसके रहस्यों को जानने की जिज्ञासा जहाँ मानव को उत्तरोत्तर सज्ञान बनाती गई वहीं प्रकृति का विविधता से पूर्ण और दिन-दिन चिरनवीन लगनेवाला मनोहर रूप, उसमें सौन्दर्यानुभूति की भावना का विकास करके उसके जीवन-क्रम को कलात्मक बनाता गया। यही सज्ञानता और कलात्मकता मानव के जीवन में आनन्द का संचार कर सकी। इस प्रकार हमसे चिरन्तन, फिर भी चिरनूतन संबंध रखने वाली यह प्रकृति, हमारे जीवन-विकास की मूल प्रेरक रही। कालान्तर में वास्तु, नृत्य, संगीत, चित्र और काव्य, काव्य-कलाओं का उद्‌गम और विकास इसी रहस्यमयी और रमणीय प्रकृति के कारण हुआ। काव्य में प्रकृति का महत्व स्वतः-सिद्ध है।

दार्शनिक दृष्टि से भी यह संबंध महत्वपूर्ण रहा। 'सत्-रूपी प्रकृति, चित्-रूपी जीवन एवं आनन्द-रूपी परम तत्व तीनों ही मिल कर परमेश्वर की सत्ता का रूप धारण करते हैं। शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टियों से प्रकृति मानव का पोषण करती हुई उसे जीवन-पथ में अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती रही और इसकी अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन एवं कला में चिरकाल से होती रही।' 'ऋग्वेद' में ऊषा, सूर्य, मरुत, इन्द्र आदि को अलौकिक रूप में स्वीकार करते हुए, उनके मानवीय क्रिया-कलापों को अंकित किया गया है। 'ऋग्वेद' की ऊषा कमनीय कन्या की भाँति अत्यन्त आकर्षणमयी बनकर, अपने प्रियतम सूर्य के निकट जाती हुई तथा उसके सम्मुख स्मितवदना युवती की भाँति अपने वक्ष-प्रदेश को निरावृत करती हुई चित्रित की गई है। पुरुरवा को त्याग कर जाती हुई सौन्दर्य-पुंज उर्वशी, बादलों के वक्ष-स्थल को चीर कर जाती हुई बिजली-सदृश बताई गई है। आदि कवि वाल्मीकि में तो

प्रकृति के उद्दीपन तथा रूप-सौन्दर्य की साज-सज्जा के रूप में इसका पर्याप्त प्रयोग हुआ है। महाभारत तक आते-आते प्रकृति की सौन्दर्यश्री में चार चाँद लग गया। महाकवि कालिदास तो प्रकृति के उन्मुक्त गायक के रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। उनका मेघ विरही-जनों का सन्देश वाहक एवं उनकी शकुन्तला, प्रकृति-कन्या बन गई है। प्रायः आधुनिक भारतीय आलोचक, भारतीय काव्य में मानवीकरण को अंग्रेजी का अनुकरण मानते हैं। पर ऋग्वेद के उपर्युक्त उदाहरण के अतिरिक्त कालिदास, भवभूति आदि में भी इसके कितने उदाहरण ढूँढ़े जा सकते हैं। 'मेघदूत' में गम्भीरा नदी का विह्वला नारी के रूप में, और ऋतुसंहार में शरद का नववधू के रूप में चित्रण इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काव्य में प्रकृति-चित्रण प्रायः उद्दीपन एवं उपमान के रूप में हुआ है, 'रासो ग्रंथ' इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। मैथिल कवि विद्यापति ने नारी के रूप-वैभव को अंगराज द्वारा अलंकृत करके एक अप्रतिम सौन्दर्य की सृष्टि की है। पर आगे आनेवाले संतों एवं भक्त कवियों ने प्रकृति को मायारूप में ग्रहण किया। रीतिकालीन काव्य में प्रकृति का केवल उद्दीपक रूप ही ग्रहण हुआ। डॉ० रघुवंश ने लिखा है कि 'प्रकृतिवादी सौन्दर्योपासना एवं सगुणवादी रूपोपासना के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर है। भारतीय भक्तियुग के साहित्य में भगवान् की प्रत्यक्ष भावना के कारण प्रकृतिवाद को स्थान न मिला, फिर भी प्रकृति का राशि-राशि भक्तों की भावना का आलम्बन हुआ।' प्रकृतिवादी, प्रकृति में फैले हुए सौन्दर्य के प्रति सचेष्ट एवं आकर्षित हो कर उसकी क्रियाशीलता पर मुग्ध होता है। उसके माध्यम से किसी अज्ञात सत्ता की ओर उन्मुख होकर वह उसकी सहानुभूति प्राप्त करता है। वैष्णव भक्त के लिए यह अज्ञात ज्ञात एवं अपरिचित परिचित है। उसका साक्षात् उसके लिए पूर्व निश्चित है। वह अपने आराध्य के व्यक्तित्व-साकार में जिस सौन्दर्य का अनन्त दर्शन पाता है, उसमें प्रकृति का सारा सौन्दर्य अपने आप प्रत्यक्ष हो उठता है। उसके रूप-सौन्दर्य के विविध रूप प्रकृतिवादी भावना के समान स्थिर, सचेतन, सप्राण, अनन्त एवं अलौकिक रूपों से संबंधित हैं। प्रकृतिवादी रहस्यवादी, प्रकृति के सचेतन सप्राण सौन्दर्य में एक ऐसा सम प्राप्त करता है जो तर्क से परे होकर आनन्द का कारण बन जाता है। इसके विपरीत वैष्णव भक्त कवि अपने आराध्य की प्रत्यक्ष सौन्दर्य-भावना से ऐसा सम स्थापित करता है कि उस क्षण प्रकृति भी आनन्द-भावना से उल्लसित हो उठती है।

आधुनिक काल में भारतेन्दु-काल से ही प्रकृति के रूमानी चित्रण के दर्शन होने लगते हैं जिसका विकसित रूप द्विवेदी युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों में परिलक्षित होता है। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय आदि कवि

प्रकृति के प्रति विशेष आकृष्ट दृष्टिगोचर होते हैं । इसके प्रकृतिवाद से सौन्दर्य-बोध का समन्वय होने के कारण ये प्रकृतिवादी कवियों के अधिक निकट एवं अग्रगामी हैं । पर प्रकृतिवाद का वास्तविक स्वरूप छायावादी कवियों में ही दृष्टिगोचर हुआ है । उसका अध्ययन आंग्ल-स्वच्छन्दतावादी कवियों की पृष्ठभूमि में ही उपस्थित किया जाना समीचीन होगा ।

स्वच्छन्दतावादी कवि एवं प्रकृति

वर्ड्सवर्थ

वर्ड्सवर्थ विशेष रूप से मानव एवं प्रकृति का कवि था । उसका उद्देश्य चारागाहों, पर्वतों एवं जंगलों में सौन्दर्य खोजकर उसको आध्यात्मिक शब्दों में अभिव्यक्त करना था। वह प्रकृति से प्राप्त स्वरूपों को सदा सर्वदा आध्यात्मिक संस्पर्श प्रदान करके उससे आत्म-शान्ति प्राप्त करता रहता था । उसने अपने को प्रकृति के अज्ञात एवं अव्यक्त स्वरूपों से न संबद्ध करके ज्ञात एवं सर्वविदित रूप में ही स्वीकार किया । 'डी० किन्से' ने कहा कि 'प्रकृति के लिए वर्ड्सवर्थ का प्रेम उसके संस्कार का एक रूप हो चुका था । यह उसके जीवन की आवश्यकता थी ।'[1] कवि का प्रकृति-प्रेम ऐन्द्रिय संवेगों के स्थान पर इन ऐन्द्रिय संवेगों के अन्तराल में छिपी हुई आध्यात्मिक भावनाओं से ही संबद्ध था । 'प्रिमरोज़' एवं 'डेफोडिल्स' उसके लिए प्रकृति-संदेश के प्रतीक थे । वर्षाकालीन पर्वतीय शिखर उसे इसलिए प्रिय था कि वह इनके सौन्दर्य को स्वच्छन्द-विहारी पर्वतों के संमोहन की ओर उन्मुख करता था । सूर्योदय उसके लिए विविध रंगों का प्रदर्शन मात्र न था । इसमें उसे आध्यत्मिक भावना का दर्शन होता था । प्रकृति का बाह्य प्रदर्शन, उसके आश्चर्यचकित कर देने वाले उद्रेक, उसकी प्रहेलिका, चक्षुरेन्द्रिय तथा स्पर्शेन्द्रिय को प्रभावित कर सकने वाली क्षमता से वह कम प्रभावित था । इनका केवल श्रवणेन्द्रियगत प्रभाव उसके लिये ग्राह्य था, क्योंकि इनके द्वारा वह विशिष्ट आत्म-तोष को प्राप्त कर सकता था जिसके लिए उसका जीवन समर्पित था । वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स तथा बाइरन सभी प्रकृति के कवि थे, परन्तु उनमें एक स्पष्ट भिन्नता थी । वर्ड्सवर्थ तथा शेली में एक बात की समानता थी । वे अपने समसामयिक कवियों से भिन्न रूप में प्रकृति को बौद्धिक स्तर प्रदान करते थे । उनका अप्रतिम संगीत परात्पर भाषा (ट्रांसडेंटल लैंग्वेज) द्वारा अभिव्यक्त हुआ था । वे केवल प्रकृति के कवि ही नहीं प्रत्युत् प्रकृति के अनागतदर्शी कवि थे । वे चित्रण की अपेक्षा व्याख्या से तथा उसके सौन्दर्य पर चकित होने की अपेक्षा

---

[1] Wordsworth has his passion for nature fixed in his blood, it was necessity of his being.—*Dequinecy*.

आन्तरिक अभिव्यंजना से अधिक हर्षोन्मत्त होते थे।[1] वे बाह्य तथ्यों से विचारों की ओर उन्मुख होते थे। कोलरिज अपने मित्र की परात्परता से प्रभावित तो अवश्य था, फिर भी उस पर विविध ऐन्द्रिय प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। बाइरन और कीट्स पार्श्व दृश्य, एवं जलद दृश्य में पैगन दृष्टिकोण से हर्षोल्लसित होते थे। वे केवल देवी की उपासना मात्र से संतुष्ट थे—उसकी देववाणी से कुछ पूछने की अभिलाषा न थी।[2]

मायर्स के शब्दों में 'प्रकृति का गम्भीर चिन्तन लेखकों को सांसारिक गतिविधि के रहस्य का ज्ञान कराता था।'[3] वर्ड्सवर्थ अंग्रेजी काव्य का उत्कृष्ट रहस्यवादी कवि था। प्रकृति उसके लिये एक निर्जीव वस्तु न होकर ऐसी विलक्षण सत्ता थी जिसमें उसे परात्पर ब्रह्म का आभास मिलता था। उसका अभिमत था—

'अपने दिव्य क्रिया-व्यापार से प्रकृत्ति ने उस मानवीय आत्मा
को संबद्ध कर दिया था जिसके स्पन्दन मेरे अन्दर निहित थे।'[4]

इस प्रकार का प्रकृति-निरीक्षण कवि को एक प्रज्ञापूर्ण व्यक्ति की तरह संवेदनशीलता प्रदान कर सका। उसका ऐसा विश्वास था कि 'हर पुष्प उस वायु का आनन्दपूर्ण उपयोग करता है, जिसमें वह श्वाँस लेता है।'[5] वर्ड्सवर्थ ने प्रकृति को सजीव ही नहीं अपितु नैतिक गुणों से भी संपन्न माना है। अतएव इस तरह वह सर्वोत्कृष्ट प्रकार की शिक्षा प्रदान करने में सक्षम है। उसका विश्वास है—

'प्रकृति की हरियाली से प्राप्त एक मनोवृत्ति, मनुष्य तथा
नैतिक भलाई-बुराई के विषय में, सभी सन्तों की अपेक्षा
अधिक सिखा सकती है।'[6]

---

[1] They are concerned less to depict, than to explain, less to marvel at the beauty than to exalt at the significance.

[2] They are content to worship the goddess not to consult the oracle.

[3] Contemplation of nature enables me to see into the life of things.

[4] To her fair work did nature link, the human soul that through me ran.

[5] Every flower enjoys the air it breathes.

[6] One impulse from vernal wood,
Can teach you more of man,
Of moral evil and good,
Than all the sages can.

वर्ड्सवर्थ ने स्वत: जीवन-स्वप्नों का अनुभव किया था। वह उनसे पूर्णरूपेण अवगत था। उसके लिये प्रकृति संमोहनीय संस्पर्श प्रदान करके पूरी सृष्टि को एक नवीन कलेवर प्रदान करने वाली थी। उसने स्वत: इसे स्वीकृति प्रदान करते हुए लिखा है—

'मैंने एक ऐसी उपस्थिति का अनुभव किया है
जो मुझे उदात्त विचारों से प्रताड़ित करती रहती है।
वह ऐसी भावना है जो सर्वाधिक अन्तर्ग्रथित है।'[1]

'टिन्टर्न एबे' में उसने लिखा है कि—'अधिक समय की अनुपस्थिति के बावजूद इन सुन्दर चित्रों का महत्व मेरे लिये वैसा नहीं था जैसा कि एक सुन्दर दृश्य का महत्व अन्धे के लिये होता है। वे मुझे जीवन में देखने की क्षमता प्रदान करते हैं।'[2]

इसी बात को उसने 'प्रील्यूड' में भी कहा है। यथार्थ में प्रकृति एवं उसकी अत्यधिक समृद्धि से उसने इतना अधिक प्राप्त किया है कि उसके सभी विचार अनुभूतिमय हो गये हैं। प्रकृति ने ही उसके उत्कृष्ट चिन्तन को पोषित किया है। इसी से उसने आनन्द एवं विशुद्ध मनोवेगों के सभी सिद्धान्तों को प्राप्त किया है। उसके लिये यह प्रकृति समुद्र को तरंगायित करती है, पर्वतीय शृंखलाओं का निर्माण करती है, उडुगणों को प्रभावित करती है और सूर्योदय का कारण बनती है।

वर्ड्सवर्थ के लिये प्रकृति-जीवन की तीन विशेषताएँ थीं—

(१) इसका आनन्द।
(२) इसकी शान्ति।
(३) इसकी संप्रेषणीयता।

उसके ये विचार उन वैज्ञानिकों को नहीं प्राप्त हो सकते जो प्रकृति को विभीषिका-मयी, निर्दय तथा अशान्त देखते हैं।

---

[1] I have felt a presence that disturbs me with the joy of elevated thought.

[2] These beauteous forms, through a long absence
Have not been to me
As a landscape to a blind man's eye,
... ...
We see into the life of things.

यथार्थ में आनन्द का स्रोत हमारा अन्तःकरण है पर सांसारिक प्रपंचों के कारण वह पूर्णतः प्रसुप्त बन जाता है। यही आनन्द का स्रोत प्रकृति-सामीप्य से पुनः उमड़ उठता है। जिस आनन्द को वह प्रकृति से प्राप्त करता है वह वन्य प्रदेश में विकीर्ण है। कवि को विश्व में सर्वत्र आनन्द का ही दर्शन हुआ और इसी आनन्द से उसने अपने हृदय के आनन्द-पुंज को अभिषिक्त किया। इस प्रकार वह प्रकृति से आनन्द प्राप्त करके उसे ही लुटाता रहा। आनन्द के अतिरिक्त दुःख के वातचक्र उसके जीवन में आये, परन्तु ये विविध रूप से उसके जीवन के सार-तत्त्व सिद्ध हुए। उनके लिये मृत्यु न होकर ये जीवन के नवीन स्वरूप में परिवर्तन सिद्ध हुए।

शान्ति का तत्व आपूर्ण एवं शान्त सरिता की तरह उसकी सभी विचारोत्तेजक कविताओं में उपस्थित है। वह उन झंझावातों से पूर्णरूपेण अवगत था जो प्रकृति की शान्ति को समाप्त कर देते हैं। फिर भी उसका यह विश्वास था कि 'असीम उद्वेलन के अन्तराल में अनन्त शान्ति सदा-सर्वदा उपस्थित रहती है।'[1]

कवि के विश्वास के अनुसार प्रकृति की हर वस्तु एक दूसरे से संबद्ध हैं। उनमें एक प्रकार से प्रेमपूर्ण सहयोग है। वे प्रकृति प्रेम एवं दया के माध्यम से आत्मप्रसार किया करती हैं। प्रकृति अनन्त प्रेम का आगार है। 'हम प्रकृति से वही नहीं पाते, जिसको उसे देते हैं। वह तो हमारी उदात्त भावनाओं को पोषित करती है और उसी में हमें अपने इस अशान्त हृदय के लिये कभी असफल न होने वाले आनन्द का सिद्धान्त और विशुद्ध मनोवेग मिलता है।'[2] इतना ही नहीं बल्कि 'प्रकृति की शान्ति से सत्य भी उपलब्ध होता है।'[3]

वर्ड्सवर्थ के लिये कविता मानव एवं प्रकृति की प्रतिमा थी। वह प्रकृति के साथ ऐसा सामीप्य स्थापित कर सका कि उसकी कविता प्रकृतिमय हो गई।

शेली

'शेली' पर उसके आरम्भिक प्रकृति चिन्तन में वर्ड्सवर्थ का प्रभाव था। परन्तु इस काल में उसके प्रकृति-प्रेम का कोई निश्चित स्वरूप न था। मानव-जीवन

---

[1] Central peace subsists at the heart of endless agitation.

[2] Thou hast fed my lofty speculations, and in thee
For this uneasy heart of ours,
I find a never failing principle of joy and purest passion.

[3] Thou hast sought the truth in solitude.

के प्रेम की घनिष्ठता एवं स्थिरता, उसकी पहुँच के परे थी, अतएव वह प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ। वह भी बिना किसी प्रकार की नैतिकता का प्रश्न खड़ा किये उसकी सहायिका सिद्ध हुई। 'असेसिन्स' तक उसका प्रकृति-प्रेम अपने स्वरूप में परिपक्वावस्था की ओर बढ़ता दृष्टिगोचर होता है। 'अलास्टर' में वह चिड़ियों, कीड़ों तथा जानवरों से एक घनिष्ठ आत्मीयता स्थापित करता दीख पड़ता है। 'शेली' प्रकृति को वैज्ञानिक दृष्टि से मानव-मनोवेगों से विच्छिन्न नहीं चित्रित कर सका है। कभी-कभी उसकी कविताओं में प्राकृतिक उपादानों का ऐसा मानवीकरण हो गया है कि सामान्य व्यक्ति उसे समझने में असमर्थ हो जाता है। 'माउण्ट ब्लेक' उसके इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण का अच्छा उदाहरण है। उसने इसे मनोवेगों का अनियन्त्रित प्रवाह कहा है। फिर भी इस पर दृष्टिपात करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि अपनी कल्पना एवं उद्देश्य को एक निश्चित दिशा नहीं प्रदान कर सका है। 'क्लटन ब्राक' ने लिखा है कि 'शेली अभी तक ऐसा मिथ-मेकर नहीं हो सका था जिसके लिये जलद, सूर्य, वायु, एवं उडुगण सजीव हों और वह उनका इस प्रकार चित्रण करे जिस प्रकार कवि पुरुष एवं स्त्रियों का चित्रण करता है।'

समय की गति के साथ 'शेली' के इस चित्रण में परिवर्तन आता गया। यह परिवर्तन 'क्लाउड' एवं 'स्काइलार्क' में स्पष्ट हो गया। बादल मानवीय संबंध से मुक्त है। इसका एक सर्वातिशायी स्वरूप है। इसमें आध्यात्मिक तत्वों का रहस्य निहित है। 'स्काइलार्क' उस अन्तर्दृष्टि एवं आनन्द से आपूर्ण है जो मनुष्य को सुलभ नहीं हो सकता। इसी प्रवृत्ति का प्रयोग 'क्लाउड' में हुआ है। 'कीट्स' दिवंगत हो चुका है, पर प्रकृति एक प्रकार की पुनरावर्तन की क्रिया से संबद्ध है। इसलिये इसके प्रागंण में नश्वर भी अनश्वर बन जाता है। इस दृष्टि से प्रकृति यहाँ मानव से महान् है। वह अनन्त शक्तिमान है। उसकी यह शक्तिमय सजीवता नश्वर नहीं है। यहाँ पर उसके प्रकृति-चित्रण में आध्यात्मिकता का पुट है। कभी 'शेली' प्रकृति में परात्पर सत्ता के स्थान पर उसके उपादानों का इस प्रकार चित्रण करता है कि वे सजीव दीख पड़ते हैं और उनकी अलग सत्ता का आभास मिलता है। यहाँ पर वह ग्रीक कलाकारों की तरह अपने को मिथमेकर बना देता है। 'सेन्सिटिव प्लाण्ट' इसका अच्छा उदाहरण है। इसमें देवकथा के आधार पर शरद् को एक ऐसे राक्षस के रूप में चित्रित किया गया है जो पहाड़ तोड़ कर तुच्छ जलस्रोतों को निकालता है और उन्हें अपनी पेटी से बाँध लेता है। 'प्रोमीथियम अनबाउण्ड' को हम इस प्रकार की कथा का उदाहरण मान सकते हैं।

कभी-कभी 'शेली' प्राकृतिक वस्तुओं को तटस्थ रूप में चित्रित करने में

समर्थ है। वह यहाँ प्रकृति को एक ऐसी समर्थ शक्ति के रूप में चित्रित करता है जो अपनी इच्छानुसार कार्य संपादित करती रहती है। उसने प्राकृतिक घटनाओं को मानव के मानसिक स्वरूप के प्रतीक रूप में भी चित्रित किया है। यहाँ पर उसकी भविष्यद्रष्टा की स्थिति स्पष्ट है। वह यहाँ प्रकृति में इस प्रकार की घटना ढूंढ़ता है जो इस बात को सिद्ध कर सके कि सर्वनाश के पश्चात् पुनरुत्थान होता है। परिवर्तन का अर्थ सर्वनाश नहीं होता। आज भी विश्व को कल्याण का मार्ग मिल सकता है, पर उसके लिए इसे उन भविष्य-द्रष्टा कवियों पर ध्यान देना पड़ेगा। 'वेस्ट-विण्ड' कवि के लिये आन्तरिक स्वप्नों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। 'शेली' 'क्लाउड' द्वारा यह सन्देश देता है कि 'मैं परिवर्तित हो सकता हूँ पर मेरा विनाश नहीं हो सकता।'[1] इस प्रकार के विचार 'शेली' की कविता की आधारशिला हैं। वह प्रायः प्रकृति के यथार्थ चित्र को ही अधिक अपना सका है। 'स्टापफोर्ड ब्रुक' का कहना है कि 'टर्नर' की तरह वह अपने प्रभावों का यथातथ्य वर्णन करता है। 'बाण्डेज' ने 'मेन करेण्ट इन नाइन्टीन्थ सेंचुरी पोएट्री' में लिखा है कि 'वर्ड्सवर्थ' का प्रकृति-प्रेम मनोवेगरहित था। प्रकृति उसके लिये किसी 'प्रोटेस्टेण्ट' के विचार की तरह प्रेरक एवं सलाहकार थी। तुच्छ फूल भी वह गम्भीर विचार दे सकता था जो कभी-कभी गम्भीर अश्रु उत्पन्न करने वाली घटनायें भी नहीं दे सकतीं। इस विचार को उसने अपनी बटन के काज में एक अलंकार-रूप में सजा लिया था। परन्तु 'शेली' प्रकृति की ओर उस समय उन्मुख हुआ जब सामान्य मानवता ने उसके लिए अपना कपाट बन्द कर लिया। अतएव वह उसे बिलकुल अपने से विच्छिन्न नहीं समझता। उसके अनुसार इसकी पथरीली शान्ति से मानव के उत्थान एवं पतन सम्बद्ध हैं। हमारे जीवन, मृत्यु, सामयिक विजय एवं लम्बे दुःखमय पराजय से सम्बन्ध इसकी (प्रकृति की) आध्यात्मिक अगम्यता, मनुष्य की जड़ता, मूर्खता एवं पाशविकता की तुलना में अधिक परोपकारी है।[2] 'शेली' प्रकृति को एक उत्तम प्रेमी की तरह प्यार करता है, वह उसकी छाया बन कर उसके परम रहस्यमय स्वरूपों को जान सका है। 'शेली' पक्षी, वृक्ष एवं लता आदि को अपने प्रिय बन्धु अथवा भगिनी के रूप में याद करता है और उनसे अपनी तुलना करता है। एक कविता में उसने गिरगिट से अपनी तुलना की है, जो प्रकाश एवं हवा पर निर्भर है (और कवि प्रेम एवं ख्याति पर)। 'एडोने' में वह अपनी तुलना 'एक्टीअन' से करता है। वह प्रकृति के बाह्य स्वरूप से

[1] I change, but I can not die.

[2] Main current in 19th century poetry., *Brandes*.

ही नहीं, अपितु उसके उस स्वरूप से भी संबद्ध है जो अत्यधिक सजीव है। वह 'बाइरन' की तरह केवल उसके विनाशात्मक एवं भयंकर स्वरूपों को ही नहीं प्यार करता, अपितु उसकी सामान्य पवित्र शान्ति को भी चाहता है। अगर वह प्रकृति की भयंकरता को चाहता है तो बाइरन से भिन्न रूप में। यहाँ 'शेली' प्रकृति को भयंकर, विराट एवं उदात्त[1] रूप में पूजता है। इसका उदाहरण हम 'विज़न ऑफ सी' में पाते हैं। 'बाइरन' के लिये समुद्र की कविता 'पोत-दुर्घटना, प्रचण्ड रूप में प्रवाहित वायु, विनाश के लिये लहरों के असंतुष्ट गर्जन आदि से सम्बन्धित थी। नभ से सम्बन्धित कविता तूफान के विनाशकारी नर्तन, बिजली के भयंकर गर्जन एवं कड़कड़ाहटपूर्ण चमक से सम्बन्धित थी।' 'चाइल्ड हेराल्ड' के चतुर्थ केण्टो में 'रॉलआन दाउ डीप एण्ड डार्क ओशन, रॉल' जैसे प्रकृति की प्रशस्ति में लिखे गये गीत अपनी भयंरकता में स्वर्ग एवं पृथ्वी में वर्णित प्रलय-दृश्य से मिलते हैं। 'शेली' की 'क्लाउड', 'वेस्ट विण्ड' आदि कविताओं में प्रकृति के सभी तात्विक स्वरूप एक विशिष्ट अनावृत्ति के साथ निरूपित हुए हैं। इस विशिष्टता में परोपकार एवं अदम्य आशा का संचार निहित है। यहाँ पर हम 'शेली' को उन्मुक्त प्रकृति के पुरातन आर्य-मनीषी गायकों के समकक्ष पाते हैं। एक महान् समालोचक ने 'बाइरन' और 'शेली' की तुलना करते हुए लिखा है कि प्रकृति की महान् घटनाओं एवं उसके परिवर्तनों के परिचय की दृष्टि से, 'शेली' 'बाइरन' से मिलता है, परन्तु यह साम्य वैसा ही है जैसा कि एक उत्कृष्ट अन्धकार-पूर्ण 'एरियल' और प्रभात-पुत्र लुसिफर में है।

बाइरन

'बाइरन' के प्रकृति-प्रेम पर अपना विचार व्यक्त करते हुए 'कैम्पटन रिकेट' ने लिखा है कि 'वर्ड्सवर्थ' की तीव्रता, 'कोलरिज' की सूक्ष्मता, 'कीट्स' की विचक्षणता और 'शेली' की वायव्य-दीप्ति के अभाव में भी 'बाइरन' में कल्पना एवं उत्साह के वे स्पन्दन निहित थे, जिनकी तुलना किसी भी समकालीन कवि से करना अनुचित है। उसके ये गुण उसकी प्रकृति की कविता में अधिक स्पष्टता से परिलक्षित होते हैं। उसके प्रकृति-प्रेम की अपनी विशिष्टता है। उसमें गम्भीर चिन्तन एवं रहस्य का अभाव होते हुए भी एक सजीव आश्चर्य एवं आनन्द की उदात्त भावना निहित है। उसने लिखा है, 'पुनः ओसपूर्ण सुगन्धित निःश्वासों से लदी, चमकते हुए चेहरे वाली, बादलों से व्यंग्य पूर्ण खेल करती हुई ऊषा का ऐसे उदय हुआ मानो पृथ्वी में अब कोई मजार न रह गई।'

---

[1] Terrible, vast and sublime.

प्रकृति उसके लिए वह ऐश्वर्यपूर्ण पृष्ठभूमि है जिसके आधार पर मानवीय क्रियाशीलता अपने को अभिव्यक्त करती है। उसके उत्साह की उपयुक्तता अथवा वाग्मिता की प्रकृति-प्रदत्त दीप्ति पर किसी को अविश्वास नहीं। वह स्पष्ट भाषा में लिखता है—'यह शान्ति नहीं अपितु प्रकृति के आकर्षक स्वरूप से वार्तालाप तथा उसके कुबेरालय को देखने का प्रयत्न है।'[1]

अपने गम्भीर क्षणों में बाइरन ने प्रकृति को चाहा था। परन्तु वह पृथ्वी के उच्च स्थानों से सम्बन्धित मनोभावों का ही प्रेमी था। उसकी आधी से अधिक कविता इसकी छाया से पूर्ण है। उसे समुद्र में उठे हुए तूफान तथा 'आल्पस' पहाड़ियों में उठने वाले झंझावातों में आनन्द की एक विशेष स्थिति उपलब्ध होती है। वह उनके भयंकर एवं आनन्दित स्वरूप का सहभागी है। उसका अभिमत है—वह आकाश, पर्वत, नदी, जंगल, झील आदि के साथ ही रात्रि एवं जलद को प्रकाशित करती है।' 'वर्ड्सवर्थ' की तरह 'बाइरन' को प्रकृति में कोई शान्तिप्रद शक्ति नहीं मिलती और न वह उसके आनन्द में आत्म-विभोर ही होता है। उसके और 'वर्ड्सवर्थ' के प्रकृति-चित्रण की तुलना करते हुए 'मूरमैन' ने लिखा है कि वह केवल अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के आधार पर 'आल्प्स' का 'जेनेवा' झील तक झुकने या जलपूर्ण नाले टेरनी के प्रवाहित होने का ही चित्रण नहीं करता, अपितु थोड़े काल के लिए उस समय प्रकृति के रहस्यवादी स्वरूप में भी प्रवेश करता है, जब ये पर्वत, समुद्र एवं आकाश उसका एक हिस्सा बन जाते हैं और वह उनका। आल्पस की अपार शान्ति में 'शेली' की तरह 'बाइरन' भी उसी वर्ड्सवर्थ का अनुगामी बन जाता है। इस साम्यावस्था में भी हम उनकी भिन्नताओं के प्रति जागरूक रहते हैं। 'बाइरन' मनुष्य से बचने के लिये प्रकृति की शरण में जाता है। उच्च पर्वत-श्रेणियाँ उसके अनुभव का एक अंश हो जाती हैं। शहर का शोरगुल दुःखद वस्तुमात्र सिद्ध होता है। पर 'बाइरन' से भिन्न रूप में वर्ड्सवर्थ को प्रकृति में मानवता के संगीत सुन पड़ते हैं। उसके जीवन का उद्देश्य इस आकर्षक विश्व एवं दृश्य मानव की बौद्धिकता के रहस्यमय गठबन्धन के प्रणय-गीतों का उल्लेख करना है।

'बानहफ' ने उसी बात को और भी स्पष्टता से उद्धृत किया है। उसका कहना है कि 'बाइरन' प्रकृति पर किसी आध्यात्मिक सत्ता के लिये नहीं अपितु अपने मनोवेगों को प्रतिध्वनित करने के लिए दृष्टिपात करता है। 'बावरा' ने अपनी पुस्तक 'रोमांटिक इमैजिनेशन' में लिखा है कि उसके प्रकृति-प्रेम में

---

[1] This is not a solitude, it is but to hold,
Converse with nature's charm, and view her store unrolled.

रहस्य की वह गोपनीयता न थी जिसको 'वर्ड्सवर्थ' तथा 'शेली' ने प्राप्त किया था। सारांश यह कि 'बाइरन' वर्ड्सवर्थ और 'शैली' से भिन्न प्रकार का रहस्य-दर्शी था। उसका प्रकृति-धर्म भी अलग था। हमें उस पर उस समय अविश्वास करने का कोई प्रश्न नहीं उठता, जब वह कहता कि उस महान् पूर्णता से उत्पन्न तथा उसी के द्वारा गृहीत समुद्र, पर्वत, वायु एवं उडुगण मेरे उपक्रम हैं।' 'बाइरन' की प्रतिभा सर्वव्यापी ईश्वरत्व के आधार पर क्रियाशील न थी। वह जो कुछ देख सका और उसका जो कुछ प्रभाव उस पर पड़ा वही उसका प्रतिपाद्य रहा। वह प्रकृति के स्वरूप पर एक निरीक्षक की दृष्टि से दृष्टिपात करता था। वह पूर्वपरंपरित मान्यताओं से विचित्र रूप से प्रभावित था। वह प्रकृति से भ्रमण-शील था। अतएव उसका प्रकृति-दर्शन 'वर्ड्सवर्थ' से भिन्न था। वह प्रकृति के उस विशिष्ट अंश की व्याख्या कर सका जिसको वर्ड्सवर्थ छोड़ गया था। उसका कोई प्रकृति सिद्धान्त न था और वह प्रकृति के माध्यम से कोई बात भी नहीं प्रकट करना चाहता था। इसीलिये वह प्रकृति के निर्दय एवं क्रूर स्वरूपों को उस रूप में देख सका जिस रूप में अधिकांश स्वच्छन्दतावादी न देख सके। यह यथार्थ है कि 'रूथ' में 'वर्ड्सवर्थ' ने कहा था कि जार्जिया के हिंसापूर्ण वातावरण में व्यतीत किया हुआ बचपन चरित्र के लिये लाभप्रद नहीं हो सकता। यह भी सत्य है कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में 'कीट्स' भी प्रकृति के विध्वंसक रूप से अवगत हो चुका था, परन्तु अपने इस विचार का विकास करने के लिये वह अधिक दिन तक जीवित न रहा। 'बाइरन' प्रकृति को उसी रूप से देखता है जिस रूप में वह है, उसे उसके विध्वंसक रूप के चित्रण से कोई भय नहीं। प्रकृति के समक्ष मान-वीय निस्सहायता ऐसा विषय भी है जिससे स्वछन्दतावादी भागते थे, पर 'बाइरन' ने इसे बड़ी स्पष्टता से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

कीट्स

'कीट्स' न तो 'वर्ड्सवर्थ' की तरह झीलों एवं पर्वतों के प्रभाव में पला था और न 'शेली' की तरह स्वप्नों पर। वह लन्दन में उत्पन्न हुआ था और 'मिडलसेक्स' में उसका पालन-पोषण हुआ था। किसी रहस्यमय जन्मसिद्ध अधिकार द्वारा उसे सौन्दर्य में एक अन्तर्दृष्टि तथा प्रकृति-जीवन से एक सहानु-भूति प्राप्त हो गई थी। सारा दृश्य जगत् कीट्स के लिये प्रकृति का प्रांगण था। उसकी प्रकृति में 'वर्ड्सवर्थ' की नैतिकता एवं रहस्यमयता के दर्शन कम होते थे। वह उसमें सजीव एवं विकासशील वस्तुओं के अविश्लेषित आनन्द से ही तृप्त था।

अपने कवि-जीवन के आरम्भ से ही कीट्स प्रकृति-व्यापारों का प्रेमी था। प्रकृति उसकी कविताओं के लिये अजस्र स्रोत प्रदान करती थी। 'स्लीप एण्ड पोएट्री' में यह विचारधारा विकसित की गयी है कि कविता प्रकृति के सामीप्य द्वारा प्राप्त दृश्य आनन्द का गान है। प्रारम्भिक कविताओं में भी कवि सौंदर्य से शान्त और संवेदनशील ऐन्द्रिय आनन्द ग्रहण करता था। यह ऐसा आनन्द था जो आत्मा की सौन्दर्य-भोक्तावस्था में शरीर को आराम से रखना चाहता था और सब कुछ में समन्वय स्थापित करना चाहता था। वह तितली की तरह एक उपादान से दूसरे उपादान तक उसके क्षणिक आनन्द को ग्रहण करने के लिये मँडराया करता था। यही उसका स्वभाव है। पर उसे उसका गंभीर कल्पनापूर्ण स्वभाव नहीं माना जा सकता। उसका वह कल्पनाप्रधान स्वभाव गंभीर अन्तर्दृष्टि से पूर्ण है। जब ललित कल्पना का खिलवाड़, 'कीट्स' के मन को न बहला सका, तो उसकी शक्ति सक्रिय रूप से उसे प्रकृति के हर स्वरूपों के साथ सम्बद्ध कर सकने में समर्थ हुई। उसकी कविता 'ओड टू साइके' में कल्पना का सृजनात्मक सत्य के रूप में प्रयोग किया गया है। उसमें मानव-मस्तिष्क तथा प्रकृति की आत्मा परस्पर सम्बद्ध है। 'एण्डिमिअन' के समाप्ति-काल में जब वह सांसारिक विपत्तियों के बीच पड़ा, और अपने भाई की मृत्यु को भी अपनी आँखों देखा, तो उसे अनुभव हुआ कि यह जीवन उसके लिये विषमय है। अतएव उसके प्रकृति-संबंधी विचारों में परिवर्तन हुआ। उसका प्रकृति-प्रेम दुःखानुभूति से रंग उठा। परन्तु यह दुःखानुभूति अपने को आनन्द में विलीन कर देने को व्यग्र है। अतएव वह कवि में आत्म-विस्मृति का भाव पैदा करके उसे पलायन करने के लिये बाध्य करती है। दुःख कहता है 'उसका त्याग करके अपने जीवन के आनन्द के क्षेत्र में जाओ।' 'कीट्स' इसका अनुगमन करता है, प्रकृति एवं उसके उसके सौन्दर्य का मुखापेक्षी होता है और थोड़े समय के लिये अपने अवसादपूर्ण जीवन को सर्वथा भूलने में समर्थ होता है।

उसकी यह उपयुक्त भावना 'ओड टु नाइटिंगेल' में अधिक स्पष्ट है। यह प्रेम एवं दुःख की नवीन संवेदनशीलता उसके प्रकृति-प्रेम को और सघन बना देती है और उसकी प्रकृति-संबंधी भावना एवं विचारों को शक्ति प्रदान करती है। उसकी यह भावना उसके सौन्दर्य संबंधी विचारों से संबद्ध है, अतएव उसके प्रकृति-संबंधी वर्णन अधिक परिचित, भावुक, कल्पनाप्रवण और जाने पहचाने लगते हैं। 'ओड टु नाइटिंगेल' की कुछ पंक्तियाँ इसके उदाहरणस्वरूप ली जा सकती हैं। 'हे अमर चिड़िया! तुम मृत्यु के लिये नहीं उत्पन्न हुई थी। यह बुभुक्षित मानव-परंपरा तुम्हारा दमन नहीं कर सकती। जो ध्वनि आज इस व्यतीत होने वाली रात्रि में मुझे सुन पड़ी है, वही विगत काल में राजा और फकीर द्वारा सुनी

गई थी। '''''यह एक अनागत दर्शिता है या जाग्रत स्वप्न। संगीत समाप्त हो गया है, मैं जग रहा हूँ या सो रहा हूँ।'[1] यह एक तितली जैसी प्रतिभा का कार्य नहीं हो सकता जो एक फूल से दूसरे फूल तक बिना किसी प्रकार आराम किये पूर्ण आनन्द लिये दौड़ती रहती है। यहाँ कीट्स 'नाइटिंगेल के साथ एकाकार हो गया है। यह कवि की वह आत्मा है जो गायक चिड़िया के रूप में अपने हार्दिक मनोभावों को उड़ेल कर प्रकृति के कण-कण को स्पन्दित कर देती है। यहाँ उसकी प्रकृति-भावना में मानवीय दुःखों का समावेश हो गया है फिर भी विश्व-सौन्दर्य इतना अनन्त है कि इसके अवसादपूर्ण प्रभावों को प्रकृति की खूंट में बाँधना अनुपयुक्त सिद्ध हुआ है। वह इस कल्पना को त्याग कर ऐसे प्रकृति-सौन्दर्य का पल्ला पकड़ना चाहता है जो मानवीय दुःखों से कलंकित न हो। उसने अपने एक पत्र में लिखा है कि 'मैं ऐसे आनन्द की खोज नहीं करता हूँ जो वर्तमान में नहीं है। इस उपस्थित क्षण के अतिरिक्त मुझे और कुछ स्तंभित नहीं करता। अस्त होता हुआ सूर्य मुझे सदैव उपयुक्त एवं यथार्थ वस्तु को स्वीकार करने का संदेश देता है। अगर कोई गौरैया मेरी खिड़की के समक्ष आ जाती है तो मैं उसके खेल में सहयोग करने लगता हूँ। किसी की विपत्ति का संदेश सुनकर मेरे मन में यह विचार आता है कि यथार्थ में इससे बचा नहीं जा सकता। अतएव यही ऐसा अवसर है जब वह अपनी आत्मा के स्रोतों का अनुगमन करेगा और उसी पर निर्भर रहेगा।'[2]

---

[1] Thou wast not born for death immortal bird,
No hungry generations tread thee down;
The voice I hear this passing night,
Was heard in an ancient days by emperor or clown.
Was it a vision or a waking dream,
Fled is the music, do I wake or sleep.

—Ode to Nightingale, *Keats*

[2] "I look into happiness, if it be not in the present hour. Nothing startles me beyond the hour. The setting sun will always set me to rights, or if a sparrow were before my window, I took part in its existence and pick about the greval. The fine things that startles me on hearing a misfortune, having fallen another is this—well it canाt not be helped, he will have the pleasure of, trying the resources of his spirits."—From letters of John Keats.

छायावादी कवियों का प्रकृति-प्रेम

महादेवी वर्मा

छायावाद एवं प्रकृति के संबंध का स्पष्टीकरण करते हुए 'महादेवी' ने लिखा है कि 'छायावाद ने मनुष्य के हृदय एवं प्रकृति के संबंध में प्राण डाल दिया है, जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुःख में उदास एवं सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घटकूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट महाप्राण बन गई। अतएव मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल-कण एवं पृथ्वी के ओस-बिन्दु का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ एवं कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल एवं स्थिर पर्वत, निविड़ अंधकार एवं उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता, विशालता, कोमलता, कठोरता, चंचलता, निश्चलता और मोक्ष, ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयत्न किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा छोर उसके असीम हृदय में समाया हुआ था। तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।'[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि महादेवी ने एक ओर प्रकृति में विराट चिरंतन सत्ता का आभास पाया है पर दूसरी ओर उनके व्यक्तित्व की झलक भी उसमें मिलती है। उनका यह उपकथन प्रत्येक छायावादी कवि पर लागू है और वे इसी आधार पर प्रकृति से तादात्म्य भी स्थापित कर सके हैं। महादेवी ने इसका उपयोग किया है।

'मैं बनी मधुमास आली !'

'विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात।'

'रात सी नीरव व्यथा तम सी अगम मेरी कहानी।' आदि

कविताओं में वे प्रकृति के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर सकी हैं। 'प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन' जैसी कविताओं में तो महादेवी ने जीवन की धूमिल छाया को संध्या के आकाश में प्रतिबिम्बित एवं प्रतिध्वनित करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने कहीं-कहीं अपनी परवशता, अभावहीनता, विराटता अथवा दुःख की अतिशय अनुभूति के लिए विरोधी प्रकृति-तत्त्वों का भी प्रयोग किया है। जैसे—

---

[1] **'यामा' अपनी बात, पृ० ६।**

'जग करुण करुण मैं मधुर मधुर
दोनों मिलकर देते रज-कण।
चिर करुण मधुर सुन्दर सुन्दर,
जग पतझड़ का नीरव रसाल।
पहने हिमजल की अश्रु माल,
मैं पिक बन गाती डाल डाल।
सुन फूल-फूल उठते पल-पल
सुख-दुःख मंजरियों के अंकुर।'

इस मानव एवं प्रकृति के तादात्म्य में कवयित्री ने प्रकृति का उपयोग, उसका मानवीकरण करके किया है, पर इसके दो स्वरूप उसमें परिलक्षित होते हैं। प्रथम तो प्रकृति उस चिरंतन विराट सत्ता को बाँधती हुई दीख पड़ती है जो एक विचित्र परिवेश में उपस्थित की जाती है। यथा—

'लय गीत मदिर गति ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।
आलोक तिमिर सित असित चीर,
सागर गर्जन रुनझुन मंजीर,
उड़ता झंझा में अलक जाल,
मेघों में मुखरित किंकिणि स्वर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।
रवि-शशि तेरे अवदंश लोल,
सीमन्त जटिल तारक अमोल,
चपला विनम्र स्मिति इन्द्रधनुष,
हिम-कण बन झरते स्वेद निकर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।

पर स्थान-स्थान पर उन्होंने अपने अंग-विन्यास को भी प्रकृति में प्रतिबिम्बित पाया है। वे ऐसी विरहिणी बन जाती हैं कि उनके निःश्वास में झंझावात, आँसू में प्रलय के बादलों का उत्पात और वेदना की कसक में विद्युत् का अन्तर्धान होना परिलक्षित होता है। वास्तव में प्रकृति में उन्होंने अपनी ही आशा-निराशा एवं उत्कण्ठा के चित्र आरोपित किए हैं। अतएव वे कभी-कभी विराट रूप धारण कर विराट की ही मिलन-उत्कण्ठा में प्रकृति के उपकरणों को अपना साधन बनाती हैं। कहीं शशि के दर्पण में अपने तिमिर केश सुलझाने की

बात करती हैं तो कहीं प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं से आभूषित होकर अभिसार के निमित्त तत्पर दिखाई देती हैं। यथा—

'तब रंजित कर दे ये शिथिल चरण
ले अशोक का अरुण राग।
मेरे यौवन को आज मधुर ला रजनीगंधा का पराग।'

स्थान-स्थान पर प्रकृति उपदेशिका के रूप में भी आयी है, पर उनके प्रकृति-चित्रण रहस्यवादी ही अधिक हैं। इन्हीं पर प्रकाश डालते हुए महादेवी ने स्वयं लिखा है—

'मैं कण-कण में पाल रही, सखि आँसू के मिस प्यार किसी का।
मैं पल-पल में पाल रही, सखि, यह सपना सुकुमार किसी का।'

अथवा

अली, मैं कण कण को जान चली,
सबका क्रन्दन पहचान चली।'

अपने असीम की ओर उन्मुख होती हुई 'महादेवी वर्मा' कण-कण से परिचित हो जाती हैं। इस क्रन्दन की पहचान उन्हें आश्वस्त कर देती है। इसका कारण यह है कि उनकी दृष्टि गहरी है, विशाल भी। 'आरम्भ में जैसे जीवन के प्रति उनकी दृष्टि विस्मय-भरी थी, वैसी ही प्रकृति के प्रति भी। वे सीधे-सादे प्रकृति-चित्रण में ही सन्तुष्ट अथवा प्रकृति की दुःखमयी स्थिति से प्रसन्न या विषादमग्न हो जाती थीं। उनकी वृत्ति तटस्थ दर्शक की थी लेकिन धीरे-धीरे वे उसके भीतर डूबती गईं और प्रकृति उनकी अनुभूति का अंग बन गई।'[1]

'पंत' एवं 'महादेवी' की तुलना करते हुए शांतिप्रिय 'द्विवेदी' ने लिखा है कि 'प्रकृति के मनोहर व्यक्तित्व का परिचय 'पंत' ने दिया, प्रकृति के पुरुष पुरातन का दिव्य परिचय 'महादेवी' ने। प्रकृति का उल्लास 'पन्त' में है, प्रकृति का उच्छ्वास 'महादेवी' में। पन्त की कविता में प्रकृति बालिका की तरह खेलती है। 'महादेवी' की कविता में प्रकृति विरहिणी की तरह निवेदित करती है। एक में क्रीड़ा है और दूसरे में पीड़ा है।'

पन्त

पन्त ने स्वयम् अपने विषय में लिखा है कि 'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है; जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल

१. महादेवी और प्रकृति, पृ० १३७।

प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है मैं घन्टों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखता रहता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।' प्रकृति-प्रेम की यह स्वीकृत प्रेरणा कवि के जीवन का अंग बनकर किसी न किसी रूप में उसकी कविताओं में उपस्थित है।

'वीणा' के तारों को झंकृत करके कवि ने सर्वप्रथम प्रकृति रानी के शत-शत विकीर्ण सौन्दर्य का आह्वान किया है। यहाँ वह प्रकृति के रूप-वैभव एवम् ज्ञान-वैभव के अन्तराल में प्रवेश करके प्रकृति के दिव्य स्वरूपों का निष्पक्ष उद्घाटन कर सके, यही उसकी कामना है। विश्वम्भर 'मानव' ने लिखा है कि 'छाया से वह प्रार्थना करता है कि उसका मनस्ताप हरे, अन्धकार से कहता है कि उसे भी रङ्गरहित होकर जीवन व्यतीत करना सिखलाए। सरिता से कहता है कि वह उसी के समान गा सके, निर्झर को देखकर उसकी कामना होती है कि वह भी उसी के समान आँसुओं का दान दे सके।' वीणा का मूल मन्त्र निम्नांकित पद्य से अभिव्यक्त किया जा सकता है—

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति की भी माया,
वाले तेरे वाल-जाल में,
कैसे उलझा दूँ लोचन ?'

'वीणा में कवि का हृदय यौवन के आलोड़न-विलोड़न से सर्वथा मुक्त रहा है पर ग्रन्थि में आते-आते उसकी यह भावना यौवन के आह्लादकारी चित्रण से संग्रथित हो गई है। अतएव यहाँ प्रकृति प्रेम की गहराई के स्थान पर कल्पना-चित्र ही अधिक उमड़ सके हैं। 'गुंजन' का कवि जीवन की शृङ्गारिक गुंजार से पूर्णरूपेण अवगत हो गया है, अतएव इसके प्रकृति-चित्रण में स्त्री-सौन्दर्य का आरोप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। 'गुंजन' की प्रकृति साध्य न होकर साधन की ही पृष्ठभूमि अदा कर पाती है। 'वीणा' में चित्रण का विशुद्ध एवं परिष्कृत प्रकृति-प्रेम नारी के रूप-जगत में अपने लोचन को उलझा देता है और वह इतना विह्वल हो उठता है कि—

'तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार, लग गई मधु के बन में ज्वाल।
खड़े किंशुक कचनार अनार, लालसा की लौ से उठ लाल।'

प्रकृति के सम्मुख नारी को हेय ठहराया गया था पर आज नारी के ही अंग-सौष्ठव से प्रकृति में निखार आता है और वह पूर्णता प्राप्त करती है। वन-उपवन में

जो भी राशि-राशि हिम हास लोट रहा है अथवा आँगन में अवदात कुन्द कलियों की पाँत खिल उठी है उसका मूल कारण सम्भवत: अनजान में ही उसकी प्रिया का मुस्करा देना है। स्पष्ट है 'यहाँ पर प्रकृति' देवि, माँ, सहचरि-प्राण सभी भूमिकाओं में उपस्थित हुई है। 'छाया' से आत्मीयता का भाव जगाते हुए वह कह पड़ता है—

> 'हाँ सखि आओ बाँह खोलकर
> मिल कर गले जुड़ा लें हम।
> फिर तुम तम में, हम प्रियतम में,
> हो जायें द्रुत अर्न्तध्यान॥'

पन्त ने प्रकृति का मानवीकरण किया है। वास्तव में मानव ही रोमांस की जड़ है। जहाँ कर्त्ता का अभाव होगा, वहाँ आवरण आदि निष्फल होंगे। मनुष्य मनुष्य से इतना हिल-मिल गया है कि उसका त्याग उसके लिए असम्भव है। 'पन्त' यद्यपि प्रकृति पर प्राण देते हैं फिर भी मनुष्य को उससे ऊँचा दर्जा देते हैं।[1]

'युगान्त' में आते-आते कवि में महान् परिवर्तन होता है। वह यहाँ पर उपयोगितावादी विचारों से प्रभावित दीख पड़ता है। यहाँ उसका क्रान्तिकारी स्वरूप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। अत: वह कोकिल के गानों के स्थान पर उसके मुख से अंगारों का आह्वान करता है। 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि' एवं 'उत्तरा' में पुन: यथार्थ से आदर्श की ओर प्रत्यावर्तन दीख पड़ता है। यहाँ पर कवि प्रकृति के विराट रूप को चित्रित करने में समर्थ है।

निराला

'निराला' का प्रकृति-चित्रण भी प्रायः अन्य छायावादियों से मिलता-जुलता है। प्रकृति का मानवीकरण इनका प्रिय विषय रहा है। 'जूही की कली' में कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य का मानवीकरण किया है। इसमें वह प्रोषित पतिका के रूप में चित्रित की गई है परन्तु अन्त में उसका प्रवासी पति लौट आता है। एक वियोगिनी तरुणी के प्रवासी पति के मिलन के साथ कली के खिलने का क्रम भी चित्रित किया गया है। विशेषता यह है कि दोनों भावों में से कोई किसी को आच्छादित नहीं करता। दोनों ही अंत तक अपने प्रकृत रूप में बने रहते है।[1] उदाहरणार्थ—

---

[1] डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक कविता में स्वच्छन्द धारा।

[2] डॉ० बच्चन सिंह : क्रांतिकारी निराला।

'विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न,
अमल कोमल तनु तरुणी जूही की कली,
दृग बन्द किए शिथिल पत्रांक में ।'

कहीं-कहीं पर (तुम और मैं) 'निराला' जी ने जीव एवम् ब्रह्म की बुझौवल को प्रकृति के माध्यम से उपस्थित करने का प्रयत्न किया है । रहस्य एवं दर्शन के प्रति प्रेम रहने पर भी इस प्रकार की कविताएँ कम दीख पड़ती हैं । कहीं-कही स्वच्छन्दतापूर्वक प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रों की अवतारणा की गई है । संध्या-सुन्दरी का चित्र तो अपनी मनमोहकता के लिए अद्वितीय है । यथा—

'मेघमय आसमान से उतर रही है,
वह संध्या सुन्दरी परी-सी ।
धीरे धीरे धीरे,
तिमिरान्चल में नहीं कहीं चंचलता का आभास ।
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,
किन्तु जरा गम्भीर नहीं हैं
उसके हास विलास,
डूबा रवि अस्ताचल
संध्या के दृग छल-छल ।'

यहाँ कवि संध्या की क्रमिक गति का आभास किसी भी पाठक को देने में समर्थ है । अन्तिम पंक्तियाँ तो करुणाद्रिक्त किये बिना नहीं छोड़ती । ये प्रिय एवं प्रियतम के प्रतीक-रूप में चित्रित की गई हैं और गत्यात्मक प्रकृति के चित्रों को उपस्थित करने में अप्रतिम हैं । उपर्युक्त कविता में इसी सत्य का संकेत है ।

प्रकृति के उपकरणों के माध्यम से कवि एक सुन्दर चित्र-विधान पाठकों के समक्ष रख सकता है । 'बादल राग' इसका उपयुक्त उदाहरण है ।

'झूम-झूम, मृदु गरज-गरज घन-घोर,
राग अमर अम्बर में भर निज रोर,
झर-झर-झर निर्झर गिर सर में,
धर-मरु-तरु-मर-मर सागर में ।
सरित-तड़ित गति चकित पवन में,
मन में, विजन-गहन-कानन में ।

आनन-आनन में रव घोर कठोर,
राग-अमर अम्बर में भर निज रोर।'

यहाँ चित्रात्मक के साथ-साथ 'निराला' का अविजेय व्यक्तित्व भी झांकता दृष्टिगोचर हो रहा है। इस दृष्टि से यह कविता 'शेली' की ओड टू वेस्ट विंड और 'ओड टू नाइटिंगेल' की कोटि में आती है। 'निराला' ने वसंत-समीर को 'वेस्ट विण्ड' की तरह ही संबोधित किया है। वे उससे नील सिन्धु की कल्पित तरंगों से उठकर पृथ्वी तथा वन में मृदु वीणा का मर्मर स्वर भर देने का आह्वान करते हैं।

'निराला' में प्रकृति के प्रति अनन्त जिज्ञासामय व्यक्तित्व फूट पड़ता है और है और वे अपनी कौतूहल वृत्ति में पूछ बैठते हैं–

'किस अनन्त का नीला अंचल हिला-हिलाकर
आती हो तुम सजी मँडलाकार।
एक रागिनी में अपना स्वर मिला मिला कर
गाती हो ये कैसे गीत उदार।'

उनकी बड़ी कविताओं—'राम की शक्ति-पूजा,' तथा 'तुलसीदास' में प्रकृति के विश्वव्यापी प्रभाव को मुखरित किया गया है। राम के निराश मन में पृथ्वी-तनया की श्रीछवि कौंध जाती है और उनकी स्मृति तरंगायति हो उठती है—

याद आया उपवन,
'विदेह का प्रथम स्नेह का लतान्तराला मिलन,
नयनों का नैनों से गोपन, प्रिय सम्भाषण।
पलकों का नवपलकों पर प्रथमोत्थान पतन,
काँपते हुए किसलय, झरते पराग समुदय,
गाते खग नवजीवन परिचय तरु मलय वलय,
ज्योतिः प्रताप स्वर्गीय ज्ञानछवि प्रथम स्वीय,
जानकी नयन कमनीय, प्रथम कंपन तुरीय।'

'प्रेम की दशा में यहाँ 'निराला' के राम को सम्पूर्ण प्रकृति प्रेमोन्मत्त दिखाई पड़ती है। किसलय काँप रहे हैं, फूलों से पराग झर रहे हैं, खग नए जीवन से परिचय के गीत गा रहे हैं और तरु-मलय पवन से बलयित हो उठे हैं। लगता है कि स्वर्गीय ज्योति का प्रपात झर रहा है।'[1]

---

१ डॉ० नामवर सिंह : छायावाद, पृ० ५५।

उनकी 'तुलसीदास' अपनी रचना में प्रकृति को अपूर्व पृष्ठभूमि प्रदान करती है। वासना की 'मुक्ति-सुक्ता' को त्याग में तागने वाला कवि यह प्रण करता है, 'करना होगा यह तिमिर पार देखना सत्य का मिहिर द्वार।'

प्रसाद

प्रसाद ने स्वयं लिखा है कि 'साहित्य में विश्व-सुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत-वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति एवं शक्ति का रहस्य सौन्दर्य-लहरी के 'शरीरं त्वं शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है। वह साहित्य में रहस्यवाद का विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का 'इदं से समन्वय करने का प्रयास है।'[1] यद्यपि इस दृष्टि से दार्शनिक अर्थ में प्रकृति का प्रयोग प्रसाद की कुछ कविताओं में हो सका है, परन्तु इसको दूसरे रूप में प्रकृति पर किए गए चेतना के आरोप की उनके शब्दों में व्याख्या भी माना जा सकता है। 'छायावादी काव्य में प्रकृति पर यह चेतना का आरोप या मानवीकृत रूप कभी-कभी जीवन तथा जगत् के सूक्ष्म तथ्यों की एक विराट पृष्ठभूमि में बड़ी ही सुन्दर झाँकी उपस्थित करता दिखाई देता है।'

'युगों की चट्टानों पर सृष्टि,
डाल पदचिह्न चली गम्भीर।
देव गन्धर्व असुर की पंक्ति
अनुसरण करती उसे अधीर।'

आरम्भ में कवि प्रसाद प्रकृति के गति-विधान के ही चित्रकार थे। पर बाद में उनके काव्य में प्रकृति के शुद्ध एवं रहस्यात्मक चित्रों की प्रमुखता हो गई। उन्होंने प्रकृति-प्रेम के आधार पर दर्शन को भी उपस्थित किया। प्रकृति पर चेतना के आरोप से उनमें एक अप्रतिम सौन्दर्य आ जुड़ा। इसके उदाहरणस्वरूप 'बीती विभावरी जाग री' जैसी कविताओं के मानव सापेक्ष चित्र उपस्थित किए जा सकते हैं।

'प्रसाद' की 'कामायनी' तो प्रकृति के गोंद में पुष्पित एवं फलित होने वाला महाकाव्य है। यहाँ भी प्रकृति में मानवीय भावनाओं के दर्शन होते हैं। वे प्रकृत के केवल बाह्य सौन्दर्य मात्र से संतुष्ट होने वाले कवि न थे, अपितु उसके आभ्यान्तर

---

[1] काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध : प्रसाद, पृ० ३९।

में प्रविष्ट होकर रहस्य का उद्घाटन करने में समर्थ थे। उनका विश्वास था कि सभी जड़-चेतन उसी एक महाचेतन सत्ता से आबद्ध हैं। उनके कण-कण, अणु-अणु, परमाणु-परमाणु में एक चेतना है, जो एक महाअंश से अनुप्राणित है। यही आधार 'प्रसाद' के प्रकृति-प्रेम को एक सशक्त पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

'प्रसाद' में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों ही प्रकार के प्रकृति-चित्रणों का दर्शन होता है। कहीं-कहीं मानव तथा प्रकृति के संघर्ष का स्वरूप भी उपस्थित किया गया है। 'कामायनी' के प्रथम सर्ग में ही देवताओं के वासनाप्रधान नग्न ताण्डव से कुपित होकर प्रकृति रौद्री शक्ति के रूप में प्रकट हुई है। यथा—

'पंचभूत का भैरव मिश्रण
शम्पाओं के शकल निपात।
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ
खोज रहीं ज्यों खोया प्रात।
धँसती धरा धधकती ज्वाला,
ज्वालामुखियों के निःश्वास।
और संकुचित क्रमशः उसके,
अवयव का होता था ह्रास।'

'कामायनी' में प्रकृति द्वारा मानव की पराजय, फिर उसके निराश्रित हो जाने पर प्रकृति का मानव के प्रति प्रेम तथा पुनः उसके द्वारा प्रकृति पर विजय का इतिहास अंकित हुआ है। 'मनु' ने आशा के संचार के साथ ही प्रकृति के त्रस्तमुख के पुनः हँसने का रूप देखा है। कवि इसीलिये 'आशा' सर्ग में रमणी-रूप में प्रकृति के मान का अनुपम चित्र उपस्थित करता है।—

'सिन्धु सेज पर धरा-वधू,
अब तनिक संकुचित बैठी-सी।
प्रलय-निशा की हलचल-स्मृति में,
मान किए सी ऐंठी-सी।'

कहीं पर 'प्रसाद' ने अपने प्रकृति-चित्रण में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के साम्य द्वारा अपूर्व भावोत्कर्ष का नियोजन किया है।

'आह वह मुख! पश्चिम के व्योम,
बीच जब घिरते हों घनश्याम।
अरुण रवि-मंडल उनको भेद,
दिखाई देता हो छविधाम।

या कि नव इन्द्र नील लघु शृंग,
फोड़ कर धधक रही हो कान्त।
एक लघु ज्वालामुखी अचेत,
माधवी रजनी में अश्रान्त।
घिर रहे थे घुँघराले बाल,
अंश अवलम्बित मुख के पास।
नील घन शावक से सुकुमार,
सुधा भरने को विधि के पास।'

प्रसाद ने प्रकृति के उद्दीपक वर्णनों को ही अधिक लिया है। प्रकृति के माध्यम 'द्वारा मानव-मन के विश्लेषण की ओर प्रवृत्ति होने के कारण यह उद्दीपक वर्णन उन्हें अधिक प्रिय है। संयोग तथा वियोग दोनों ही क्षेत्रों में प्रकृति का चित्रण है। परंपरागत मान्यता यही रही है कि संयोगावस्था में प्रकृति सुखद तथा वियोगावस्था प्रकृति दुःखद दीख पड़ती थी। पर प्रसाद ने इस ढङ्ग से इसका चित्रण प्रस्तुत किया है कि 'श्रद्धा' प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर पाती है।

'कामायनी' में अलंकृत वर्णन भी पर्याप्त मात्रा में दीख पड़ते हैं। यहाँ प्रकृति 'प्रसाद' के दर्शन की अधिष्ठात्री बनकर उपस्थित हुई है। वे 'सर्वं खलविदं ब्रह्म' के समर्थक थे। 'शरीरं त्वं शम्भो' के अनुरूप वे प्रकृति को शरीर के प्रसार-रूप में देखते थे। शैव होने के कारण वे शक्ति के दो रूप मानते थे। वह आनन्द-रूप में शिव के आत्मस्थ शरीर में लीन रहती है और स्पन्दन-रूप में प्रकृति के कण-कण में व्याप्त रहती है, अथवा यह कहा जा सकता है कि आत्मस्थ होने पर प्रकृति का आनन्द-रूप स्वयं शिव में निहित रहता है और सिसृक्ष होने पर उसी का स्पन्दन प्रकृति में विकीर्ण हो जाता है। इस दृष्टि से प्रकृति के कण-कण में एक अखण्ड सत्ता का जो आभास मिलता है उसे वे नतमस्तक हो सम्मान के साथ स्वीकार करते दीख पड़ते हैं। यथा—

'महा नील उस परम व्योम में,
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान्,
ग्रह नक्षत्र और विद्युत् कण,
किसका करते है संधान।
छिप जाते हैं और निकलते
आकर्षण में खिचे हुए
तृण वीरुध लहलहे हो रहें, किसके रस में सिचे हुए।

'सिर नीचाकर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ,
सदा मौन से प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ ?'

'कामायनी' के प्रकृति-चित्रण में प्रसाद ने मानव-भावनाओं का प्रकृति के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित किया है। जब वे किसी व्यक्ति का वर्णन करते हैं, तो उसमें उन्हें मेघ, बिजली, वृक्ष, लता, वन आदि दिखाई देने लगते हैं। जब वे प्रकृति-चित्रण करते हैं तो उसमें उन्हें प्रभात की लाली में रमणी का हास्य और पुष्प के मकरन्द में मनुष्य का विलास दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की भाव-व्यंजना के लिए कवि ने चित्रमयी लाक्षणिक भाषा का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए हँसी बनस्पतियाँ अलसाई, लहरियों की अंगड़ाई, पराग-क्रीड़ा, मकरन्द-विलास, सूखे तरु का मुस्काना, लतिका के घूंघट आदि प्रयोग लिए जा सकते हैं। यथार्थ में 'कामायनी' में प्रकृति और पुरुष का पूर्ण अभेद दृष्टिगोचर होता है।

तुलना

इस प्रकार इन सभी कवियों पर दृष्टिपात करते हुए हम इस सत्य को हृदयंगम करते हैं। प्रकृति-प्रेम तो छायावादी एवं स्वच्छन्दतावादी कवियों का संस्कार बन गया था। उनके लिए प्रकृति का यथार्थ महत्व था, क्योंकि वहाँ प्रेम का राज्य है, अनन्त सुषमा है, अक्षय सौन्दर्य है, और सबसे बढ़कर वहाँ अबाध स्वच्छन्दता है।[1] प्राचीन समाज-व्यवस्था के घुटते हुए दमतोड़ वातावरण में ईर्ष्या, द्वेष, पारस्परिक प्रेम का अभाव, वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्द प्रेम का रूढ़ियों द्वारा दमन, आदर्श प्रेम तथा आदर्श सौन्दर्य की भूख, आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रकृति के स्वरूपों का सर्वनाश, प्रचण्ड कामुकता की अतृप्ति आदि ऐसे कारण हैं जिनकी अपूर्ति की पूर्ति करने के लिए वे प्रकृति की ओर उन्मुख होते हैं। 'बाइरन', 'शेली', 'कीट्स', 'महादेवी', 'पंत', 'निराला', 'जयशंकर प्रसाद' आदि इसी कोटि के कवि हैं। समाज एवं व्यक्ति की तुलना में कभी-कभी व्यक्ति अपने चिन्तन में समाज के परंपरागत चिन्तन से आगे बढ़ जाता है। उसमें स्वच्छन्दता की एक भूख जागृत होती है, पर उस स्वच्छन्दता को सामाजिक मान्यता नहीं प्राप्त होती। परिणाम यह होता है कि मनुष्य तथा समाज का संघर्ष आरम्भ हो जाता है। परंपरा एवं अन्धविश्वास की जड़ें चिन्तन की अपेक्षा अधिक गहरी होती हैं। प्रगतिवादी विचारों का समाज तीव्रगति से आह्वान नहीं करता है। इतिहास यही रहा है कि क्राइस्ट, गान्धी आदि विश्व-विश्रुत महामानवों को तलवार के घाट उतार कर फिर उनके लिए आँसू से सिक्त गीत रचे गए हैं। यही हालत होती है क्रान्तिकारी तथा क्रान्त-

[1] डॉ० नामवर सिंह : छायावाद।

दर्शी लेखकों की। समाज की प्रतिक्रिया कभी इतनी तीव्र हो जाती है कि ये बेचारे निराश्रित होकर प्रकृति की शरण में जा पड़ते हैं। समाज में आदर्श श्रृंगार की जो भावनाएँ कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकीं उन्हीं को प्रकृति के प्रांगण में उपलब्ध करके उनके साथ मुक्त विहार द्वारा इन कवियों ने आत्मतोष प्राप्त किया है। प्रकृति की नारी भावना तथा कवि के मनोभावों के आरोप का यही रहस्य है। प्रकृति उनके लिए सजीव सत्ता के रूप में उपस्थित हुई। क्षेम ने कहा है कि इन काव्यों में प्रकृति मानव-प्राणों के भाव-रस से भींग उठी है। वास्तव में प्रकृति में चाहे भावात्मक चेतना हो अथवा न हो पर उससे सचेतन मानव को भावात्मक प्रेरणा तथा अनुभूत्यात्मक उन्मेष अवश्य प्राप्त होता है।'[1] ये कवि जीवन के प्रायः मनोरम स्वरूपों के मानसिक पक्ष के गायक रहे हैं। अतएव इनके प्रकृति-चित्रण में इसी पक्ष का अधिक दर्शन हुआ है फिर भी 'बाइरन', 'शेली', 'निराला', 'जयशंकर' प्रभृति कवियों ने जहाँ प्रकृति के विध्वंसक स्वरूप पर लेखनी उठाई है वह अद्वितीय एवं अप्रतिम बन गया है। ये सभी कवि जीवनोद्रिक्त तथा आत्म-सजग हैं। अतएव जीवन के उद्रेक तथा आत्म-सजगता के इस प्रवाह में वे समस्त दृश्य जगत् को समेट चले हैं। प्रकृति को अपने से भिन्न अलग खड़ी मानकर, उसमें अपने को डुबाने की अपेक्षा, उन्होंने उसे अपने ही चेतना प्रवाह में मिला लिया है।

वर्ड्सवर्थ के प्रकृति-प्रेम का एक दर्शन था। वह प्रकृति को आनन्द, शांति तथा प्रेम का आगार मानता था। उसके लिए प्रकृति में घावों को भर सकने की शक्ति थी। वह महान् शिक्षक तथा एक चिरंतन सत्ता का आवास थी। कोलरिज इस प्रवृत्ति की परात्परता से प्रभावित होकर प्रकृति-चित्रण में ऐन्द्रिय सुख की ओर भी उन्मुख हुआ। 'डीजेक्शन ऐन ओड' में उसने लिखा है कि 'हम वही पाते हैं जो हम देते हैं, हमारे जीवन में प्रकृति-निवास करती है।[2]

प्रकृति की परात्परता में विश्वास के बावजूद उसका विचार था कि प्रकृति-जीवन का मानव-जीवन से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं है। रंग, दीप्ति, सौन्दर्य तथा जीवन जो कुछ भी हम उसमें पाते हैं वे आत्मा की किसी आंतरिक शक्ति द्वारा सर्जित होते हैं। आत्मा की यह आन्तरिक शक्ति दृश्य उपादानों को एक अप्रतिम सौन्दर्य प्रदान करके, सौन्दर्य ही आनन्द है का अनुभव करा सकती है। उसने स्पष्ट ही कहा है कि–

---

[1] **छायावाद के गौरव-चिह्न : प्रो० क्षेम।**

[2] we receive but what we give,
In our life does nature alone live.

"हमें वाह्य स्वरूपों द्वारा उन जीवन के मनोवेगों को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए जिनके स्रोत इस अन्तराल में निहित हैं।"[1] इस प्रकार उसका 'वर्ड्सवर्थ' से स्पष्ट भेद दृष्टिगोचर होता है। 'शेली' प्रकृति में अपनी राशि-राशि सफलताओं, असफलताओं का प्रकट स्परूप देखता है। उसके लिए प्रकृति चिरंतनता का प्रतीक बनकर आई है। वह स्वतः सोचता है कि मैं परिवर्तित हो सकता हूँ पर मर नहीं सकता हूँ। ऐसे विचारों की पृष्ठभूमि में प्रकृति ही सदा उसके समक्ष उपस्थित है। प्रकृति के विध्वंसक रूपों का भी चित्रण करने में 'शेली' 'बाइरन' से भिन्न रहा है। 'बाइरन' स्वतः अपने प्रकृति-चित्रण में 'वर्ड्सवर्थ' तथा 'शेली' से कोसों दूर है। वह 'वर्ड्सवर्थ' की तीव्रता 'शेली' की वायव्य दीप्ति, 'कीट्स' की विचक्षणता तथा 'कॉलरिज' की सूक्ष्मता के बावजूद स्वयम् अपने क्रान्तिकारी विचारों का प्रकृति के साथ ऐसा समन्वय कर सका है जिसके कारण प्रकृति स्वयं उसके मनोभावों की दर्शक तथा यथासमय आनन्द का स्रोत बन गयी है। वह प्रकृति का यथातथ्य चित्रण करता है। 'कीट्स' के प्रकृति-चित्रण में ऐन्द्रिय विलास ही अधिक स्पष्ट है। इस प्रकार इन स्वच्छन्दतावादी कवियों में भी प्रकृति-प्रेम के भिन्न स्तर के दर्शन होते हैं। चारों कवि संमिलित रूप से प्रकृति-प्रेम के समग्र रूप को उपस्थित करते हैं। अलग-अलग देखने पर इनमें प्रकृति का एकांगी चित्र मिलता है।

छायावादी, स्वच्छन्दतावादी कवियों के प्रकृति-प्रेम से प्रभावित हैं। पर केवल स्वच्छन्दतावाद ही इनका प्रेरणा-स्रोत रहा हो कुछ ऐसी बात मान्य नहीं। स्वच्छन्दतावादी कवियों में मानवीयकरण के विशिष्ट प्रकारों के दर्शन अवश्य होते हैं; पर इसके पर्याप्त उदाहरण प्रचुर मात्रा में हमारे संस्कृत-वाङ्मय में उपस्थित हैं। ये स्वच्छन्दतावादी कवियों को ही अपना गुरु मान बैठे और यहाँ के प्रकृति-प्रेम को न अपना सके ऐसा कहना त्रुटिपूर्ण है। इस संबंध में यह कहना उचित है कि हमारे यहाँ प्रकृति-प्रेम की परम्परा रही है। इसके विध्वंसक तथा वीभत्स रूपों का हमने कम प्रयोग किया है। प्रकृति को समग्रता में जो स्वीकृति मिली है वह स्वच्छन्दतावादी साहित्य की प्रमुख विशेषता है। इस स्वरूप के चित्रण के लिए ये भले ही उनके ऋणी हों, पर अन्य प्रकार के वर्णन संस्कृत-साहित्य की परम्परा में ही आते हैं। 'मेघदूत' में यक्ष अपनी प्रियतमा के अंगों की समता प्रियंगुलता में पाता है और उसके कटाक्षों में उसे चकित हरिणी की दृष्टि के दर्शन होते हैं। वह चन्द्रमा से उसके मुख की तुलना करता है। मयूर-पक्षों से अलकों का अनुमान करता है

---

[1] We should not hope from out ward forms to win
The passions and life, whose fountains are within.

तथा नदी की लोल लहरियों में उसके भौहों की छवि निहारता है। पवन से थिरकती लताओं में नर्तकियों का चित्र पाता है। इतना ही नहीं बल्कि—

'अंगुलीभिरिव केश संचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः
कुम्भरीकृति सरोज लोचनं, चुम्वतीवरचंनी मुख शशिः'

जैसे वर्णन भी उपलब्ध होते हैं; जिसका तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा अपनी किरण-रूपी सुकुमार अंगुलियों से रजनी के अंधकार-रूपी बिखरे केशपाश को धीरे-धीरे समेट कर उसके अर्धमुद्रित कमल-नेत्रों वाले मुखमण्डल का चुम्बन कर रहा है। 'मेघदूत' में जब यज्ञ प्रसन्नता से अपनी पत्नी का दर्शन करके आलिंगन के लिए हाथ बढ़ाता है तो वन देवताओं की आँखों से अश्रु-विन्दु लताओं पर गिर पड़ते हैं, अथवा रावण जिस मार्ग से सीता को ले गया था वह मार्ग लताओं ने राम को अपने शाखाओं और पल्लवों से सूचित किया, आदि उदाहरण मानवीकरण के उत्कृष्ट स्वरूप उपस्थित करते हैं। तो फिर हम किस विशेषता के आधार पर यह कहते हैं कि मानवीकरण के लिए हम पाश्चात्य साहित्य के ही ऋणी हैं। हम अंग्रेजी प्रभाव को अस्वीकार नहीं करते। अनेक ऐसे शब्दों के दर्शन (यथा 'स्वर्ण-स्वप्न' या 'गीले गान') हुए हैं जो अंग्रेजी शब्दों के तोल पर गढ़े हुए हैं। कहीं-कहीं पदावली के अनुवाद के रूप में भावों के भी अनुवाद अधिक मिलते हैं यथा—

'चन्द्रिके चूमो तरंगों के अधर
पवन आलिंगन करो तुम गगन का।'[1]

अथवा

'सिखा देना हे मधुप कुमारि,
मुझे भी अपना सौरभ गान।'[2]

इसके अलावा कवियों की प्रवृत्ति कल्पना द्वारा आकाश-पाताल मिलाने की ओर है। अत्यन्त थोड़ा समय रहने पर भी किसी अपरिचित अप्रस्तुत विधान में परिचित प्रस्तुत विधान का आरोप किया जाता है। सन्दर्भरहित प्रतीकों का अत्यन्त अधिक प्रयोग हुआ है।...कवियों का ध्यान रूप-गुण-साम्य की अपेक्षा प्रभाव-साम्य पर अधिक है। उपमान वही हैं, पर उनका प्रयोग भिन्न है।'[3] ये सब बातें

[1] The moon beam kiss the sea,
And the air embraces the sky.

[2] Teach me half the gladness
That thy brain must know,
Such harmonious madness,
From my lips would flow.

[3] **कवि निराला : डॉ० रामरतन भटनागर।**

छायावाद में ऐसी हैं, जो स्वच्छन्तावाद में भी हैं। पर यह तो शैली-साम्य हुआ जिसको हम कुछ सीमा तक स्वीकार कर चुके हैं। भाव-साम्य की बात भी पर्याप्त गहनता पर आधारित है। यह भाव-साम्य मानवता के शाश्वत सत्यों में एक ही रूप में उपस्थित रहने के कारण सम्भव हुआ है। जहाँ तक 'पन्त' का सवाल है वे छायावादी कवियों में स्वच्छन्दतावादी कवियों के प्रकृति-प्रेम से सर्वाधिक प्रभावित दीख पड़ते हैं। 'जयशंकर' पर सीधा अंग्रेजी का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। जो कुछ भी इन्हें इस परंपरा से प्राप्त हो सका है, वह बँगला से आया है। 'निराला' पर भी प्रभाव है पर उसका प्रयोग एक परिष्कृत रूप में हुआ है। पन्त की तरह कहीं भी उधार लिए हुए भावों से अपनी कविता-कामिनी को अलंकृत करने का प्रयास उन्होंने नहीं किया है।

प्रकृति-चित्रण पर दृष्टिपात करने के साथ ही प्राचीन काल से ही चली आती हुई 'मिथ-मेकिंग' शक्ति का भी समुचित अध्ययन कर लेना चाहिए। प्राचीन 'मिथ्स' (काल्पनिक कथाओं) में प्रकृति कथा आकाश के क्रियाकलाप, मानवीकरण द्वारा मानवीय क्रियाकलापों के सदृश चित्रित किये गए हैं। उषा सूर्योदय के समक्ष पलायन करती हुई दिखाई गई है। ग्रीष्म-देवता शरद-देवता से प्रतिस्पर्धा रखते हुए चित्रित किये गए हैं। सूर्य की किरणें सूर्यदेवता की वीणा मानी गई हैं। वर्षाकालीन बादलों की वर्षा के भार से नत जलद-समूह इन्द्र की गायों के स्फीत स्तन के सदृश माने गये हैं...। ये विचार हर देश की कविता में किसी न किसी रूप में उपस्थित रहे हैं। हमें 'शेली' में ऐसे कवि का दर्शन होता है 'जो वर्तमान एवम् भूत से विलग रहकर भी अपने को प्राचीन आर्य विचारधारा की मस्तिष्क-स्थिति में रख सका है, और उससे ऐसी 'नेचर मिथ्स' का सृजन कर सका है जिसके द्वारा प्रकृति का अनुभव कर सकता है और एक निर्दोष व निष्कलुष बच्चे की तरह उसका आनन्द भी उठा सकता है।'[1]

यह प्रकृति का कल्पनापूर्ण स्वरूप उपस्थित करने की प्रवृति प्रायः प्रकृति-कवियों को पर्याप्त प्रभावित कर सकी है। ये प्रकृति-सम्बन्धी दन्तकथायें अर्द्धविकसित एवं आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान से दूर रहने वाले व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत हैं, इसमें उनकी अदम्य जिज्ञासा तथा उसके समाधान का अजस्र स्रोत प्रवाहित है। प्रत्येक देश के प्रकृति-प्रेम में अन्य प्रभावों को देखने की अपेक्षा मनुष्य के बौद्धिक विकास के साथ, इस 'मिथिकल' विकास को देखकर उसके आधार पर प्रकृति-प्रेम के विकास पर दृष्टिपात करना अधिक ज्ञान-सम्पन्न एवं प्रभावोत्पादक हो सकता है। इसी

[1] *K. Stoppford A Brooks,* Studies in Poetry,

बात को ध्यान में रखकर आई० ए० रिचर्ड ने कहा है कि 'अपनी माइथालाजी के बिना मानव आत्माविहीन पशु हो जायगी क्योंकि आत्मा ही उसकी उत्कृष्ट माइथालाजी का केन्द्र-विन्दु है।'[1] इनको हम काल्पनिक कहकर टाल नहीं सकते। यथार्थ में ये देवकथायें ईश्वरीय प्रतिभा के क्रियाकलाप का प्राचीन विचारों के माध्यम से अभिव्यक्तीकरण है। अपने मूल में यह ऐसा प्रयत्न है जो मानव और उसके बाह्य संसार के सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है।[2] 'इस प्रकार मिथ एक परी की कहानी नहीं, अपितु गाम्भीर्य-निष्णात तथा गतिशील अनुभव के अभिव्यक्तीकरण का माध्यम है। यह नियम तथा स्वरूप के प्रति पुरातन मानव के प्रथम प्रयत्न, उसके समग्र अनुभव के कल्पनाप्रवण स्वरूप तथा महत्व का परिचायक है। पुरातन देवकथा सदा ऐसे ढाँचे का निर्माण करती है जिसमें मनुष्य अपने को दैनिक जीवन के परे बाह्य विश्व की रहस्यमय शक्तियों के सम्पर्क में लाता है।'[3] अतएव मिथ की प्रगति का अध्ययन, प्रकृति प्रेम के अध्ययन का सहायक ही नहीं, अपितु उसके परिवर्तित स्वरूप पर प्रकाश डालने वाला तथा उसको सही रूप में समझने के लिए एक उपयुक्त माध्यम प्रदान करने वाला साधन हैं। 'छायावाद' एवं 'स्वच्छन्दतावाद' के प्रकृति-चित्रण में इसका प्रयोग हुआ है और यह चिरन्तन मानव के मन में अदृश्य भावों को साकार रूप में प्रस्तुत कर सका है। यथार्थ में प्रकृति-चित्रण में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रकृति-प्रेम के पीछे जो दार्शनिक भावना है, उसमें भी प्रत्येक देशों में कुछ न कुछ भिन्नता दीख पड़ती है। भारतवर्ष दर्शनप्रधान देश है। इसमें प्रकृति तथा पुरुष को लेकर कई दृष्टियों से विचार हुआ है। इस प्रकार की दार्शनिक भावना का अंग्रेजी में अभाव है। वर्ड्सवर्थ इस ओर उन्मुख हुआ है, पर वह उस ऊँचाई को नहीं प्राप्त कर सका है जहाँ तक भारतीय पहुँचे हैं। उदाहरणस्वरूप 'कामायनी' अथवा 'तुलसीदास' को हम ले सकते हैं। उसके पीछे निहित दर्शनों की उदात्त भावना इन कवियों को एक विशिष्ट श्रेणी का कलाकार सिद्ध करती है।

---

[1] Without his mythology man is animal without soul., for a soul is central part of his governing mythology. Coleridge on Imagination. *I. A. Richards.*

[2] We may therfore define myth as an account of deeds ol God, or divine heing usually expressed in terms of primitive thought. In essance it is an attempt to explain the relation of man to physical world—Form the Golden Age of Myth and Legend.

[3] *E. Drew,* T. S. Eliot : The Design of his Poetry,

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने से हमें ज्ञात होता है कि इन दो वादों के अन्दर यथातथ्य प्रकृति-चित्रण, मानव-भावनाओं से अनुरंजित प्रकृति-चित्रण, आलम्बन एवं उद्दीपन के रूप में प्रकृति-चित्रण, पूर्वपीठिका के रूप में प्रकृति-चित्रण, प्रकृति का मानवीकरण और उपदेशात्मक प्रकृति-चित्रण हुआ था। इनमें अलंकृत चित्रण तथा प्रकृति के रहस्यवादी रूप का निरूपण भी किया गया था। इससे यह सिद्ध होता है कि इनका काव्य प्रकृतिमय है। फिर भी इनके प्रकृति-चित्रण में सामान्य अन्तर है पर इन सबको साथ लेने से प्रकृति के विविध रूपों के जितने भी चित्रण सम्भव हैं, वे अपनी समग्रता में मिल जाते हैं। यथार्थ में अगर इनके भाव प्रकृतिमय हैं तो प्रकृति भावमय है, प्रकृति स्त्रीमय है तो स्त्री प्रकृतिमय है, अभिव्यक्ति प्रकृतिमय है तो प्रकृति अभिव्यक्तिमय है। वह जिज्ञासा एवं कुतूहल से लेकर राग-विराग तक की प्रेरिका है।···यहाँ प्रकृति शुद्ध रूप में मानव की संपोषिका, द्रष्टा, भाव-रंजित रूप में मानव की सहधर्मिणी, आभूषित रूप में उसकी मनोरंजिनी, उद्दीपन-रूप में उसकी संप्रेरिका, अवर्ण्य रूप में उसकी परिसाधिका, विचारात्मक रूप में मनुष्य की सहचिन्तिका, रहस्यात्मक रूप में मानव की अग्र-दूतिका तथा प्रतीकात्मक रूप में उसकी मानस-नेत्री है। (इन वादों में) प्रकृति अन्तः एवं बाह्य सभी कोणों से संगिनी है।[1] इस प्रकार छायावादी एवं स्वच्छन्द-वादी युग को प्रकृति ने प्रभूत सामग्री प्रदान की है और विविध रूप में उनके विचारों के पूरक रूप में उपस्थित रही है।

---

[1]छायावाद के गौरव-चिह्न—छायायुगीन काव्य में प्रकृति, प्रो० क्षेम पृ० १६२।

७

मानवतावाद, प्रेम एवं सौन्दर्य

स्वच्छन्दतावादी कवि

सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रेम तथा सौन्दर्य को अपनी कविता का विषय बनाया है, पर इनमें इस दृष्टि से पर्याप्त अन्तर है। इनके प्रकृति-प्रेम पर पिछले अध्याय में विचार किया गया है, पर ये ऐसे कवि हैं जिनकी प्रेम-व्यंजना तथा सौन्दर्य-भावना के लिये प्रकृति-प्रेम को भी साथ देखना आवश्यक है। 'वर्ड्स-वर्थ' के मानवीय प्रेम की प्रकृति-प्रेम से अलग कोई सत्ता नहीं है। 'वाड्राकूर एण्ड जुलिया' कविता में वर्णित प्रेम की तीव्रता हमें 'ल्यूसी' कविताओं की याद दिलाती है, 'ल्यूसी' की चारित्रिक या आंगिक विशिष्टता की ओर कवि हमारा ध्यान नहीं आकृष्ट करता। क्रान्ति की असफलता के पश्चात् 'ल्यूसी' कविताओं में 'वर्ड्सवर्थ को वह आधार-स्तम्भ अवश्य मिला जो सम्पूर्ण मानव का आशा-विन्दु हो सकता था, फिर भी वह उस लड़की को 'आनन्द की छाया' से अधिक मान्यता न दे सका। वह उसे किसी पूर्ण प्रस्तर-खण्ड के साथ, खिले हुए उस फूल-सदृश माना जो आँखों से अर्द्ध-ओझल है। वह उसके लिए उस तारे सदृश सुन्दर थी जो आकाश में अकेले चमकता है।[1] फ्रांस के अपने आवास-काल में वर्ड्सवर्थ प्रेम की तीव्र अनुभूति का अनुभव कर चुका था। 'वाड्राकूर एण्ड जुलिया' नामक कविता में इसी की अभिव्यक्ति हुई थी। 'प्रील्यूड' की 'मेरी आफ वटरमीयर' कवि की वह आदर्शीकृत प्रतिमा थी जिसको हम सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों में पाते हैं। वर्ड्सवर्थ की कविताओं में हम 'शेली' तथा 'कीट्स' के प्रेम सम्बन्धी वे तीव्र मनोवेग नहीं पाते जो शैशवावस्था की विशेषता हैं। वर्ड्सवर्थ मानवीय सौन्दर्य से प्रभावित होता था। 'वाड्राकूर एण्ड जुलिया' में उसने यौवन को सम्बोधित करते हुए लिखा है—

---

[1] A violet by a mossy stone, half hidden from the eye,
Fair as star, when only one, is shining in the sky. Lucy-poems.

'आह ! यौवन की प्रसन्नता एवम् आमोद का वह सुन्दर क्षण जिसमें कुमारी की भ्रू पर प्रेम का चिह्न आकाश के सर्वोत्तम तारे से भी आकर्षक लगता है।'[1]

इस कविता में प्रेम के मनोवेग की तीव्रता की दृष्टि से, वह 'शेली' के समकक्ष दीख पड़ता है, पर नैतिकता, सशक्त मानसिक अनुशासन तथा प्रकृति के प्रति अत्यधिक आकर्षण के कारण इस प्रकार की कवितायें अधिक संख्या में न लिखी जा सकीं हैं।

फिर भी प्रेम के अभाव में प्रकृति के प्रांगण में मानवता का जो सजीव चित्रण वह कर सका है, वह अद्वितीय है। उसने स्वतः इस बात को स्वीकार किया है, 'मेरा हृदय बचपन में ही मानवीय सम्मान एवं प्रेम से अज्ञात रूप में परिचित हो गया। अतएव मानव-स्वरूप मेरे लिए आनन्द, शक्ति, आकर्षण तथा गुणों का आगार बन गया।' इस अभिज्ञान के पश्चात् 'वह मानवता के संस्पर्श से कभी भी दूर न हुआ। मानव एवम् प्रकृति का यह संमिलन उसके लिए इतना पूर्ण रहा कि उसे प्राकृतिक नियमों एवं मानवीय गुणों में महान् सम्बन्ध दीख पड़ा।' वह प्रकृति तथा मनुष्य पर अपने सुनिश्चित विचारों के प्रतिपादन के लिए ही दृष्टिपात करता था। प्रकृति के सम्पर्क से दूर मानव, उसके लिए एक असहाय प्राणी था। 'वर्ल्ड इज़ टू मच विद अस' में उसने इसी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया था। वह प्रकृति में ही मानवता के दुःखद संगीत सुनने का आदी रहा। 'कम्बर लैण्ड' 'बेगर' तथा 'लीच गेदरर' में वह मानवता के तिरस्कृत तथा शोषित अंश से अपनी सहानुभूति स्थापित कर सका। उसके लिए प्रकृति के साथ ही मानव की भी एक अध्यात्मिक सत्ता थी। इसीलिये प्रकृति तथा मानव-प्रेम उसी ईश्वरीय सत्ता का आभास देने के कारण एकमेक हो गये।

शेली

'शेली' स्वच्छन्दतावादियों में आदर्श तथा उन्मुक्त प्रेम का अमर गायक था। उसके पूरे कृतित्व के सार को अगर दो शब्दों में अभिव्यक्त किया जाय तो वह क्रान्ति और प्रेम होगा। विश्व के नवीनीकरण द्वारा अपनी 'यूतोपिआ' का निर्माण ही उसका मुख्य उद्देश्य था। इस कारण उसे हम जिज्ञासापूर्ण संवेदनशील यौवन का कवि कह सकते हैं। फिर भी उसके यौवन में 'बाइरन' की पाशविक

---

[1] Ah : happy time of youthful lovers
— — O balmy time.
In which love knot on the lady's brow.
Is fairer than fairest star in heaven.

वृत्तियों का अभाव है। वह एक स्वप्न-द्रष्टा तथा सुधारवादी युवक था। क्रान्ति 'शेली' के लिए आध्यात्मिक पुनर्जागरण तथा नवीन जीवन-संदेश की प्रतीक थी। दासता को वह सभी बुराइयों की जड़ मानता था। उसे विश्वास था कि मानव इस दासता से मुक्ति पाए बिना अपना सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता। 'शेली' स्वतन्त्रता को बाह्य बन्धनों से मुक्ति की संज्ञा देता था। उसके लिए व्यक्तित्व का पूर्णरूपेण स्वतन्त्र होना एक नैतिक आवश्यकता थी। उसके अनुसार शक्ति के अभाव में मानव-प्रेम समाज को विशृंखलित होने से बचा सकता था और प्रेमपूर्ण वातावरण में ही स्वतन्त्रता का पूर्ण विकास संभव था। उसके लिए प्रेम ही वह परात्पर सत्ता है जो सब कुछ को सौन्दर्य से स्पन्दित तथा अलंकृत कर सकती है। यही पूर्ण मानव के निर्माण में सक्षम है। अतएव 'शेली' का 'नार्थ अमेरिका में रिपब्लिकन्स की सफलता' तथा फ्रान्स में 'बोनापार्ट' की असफलता पर कवितायें लिखना स्वाभाविक था। राजनीतिक दृष्टि से 'ओड टू लिबर्टी' तथा 'ओड टू नेपुल्स' महत्वपूर्ण कवितायें हैं। अन्याय पर आधारित संस्थाओं के विरोध में वह पर्याप्त प्रयत्नशील दीख पड़ता है। अपनी कविता 'रिभोल्ट आफ इसलाम' में वह पाठकों के हृदय में स्वतन्त्रता तथा न्याय की एक ऐसी दीप्ति तथा शाश्वत अच्छाई में एक ऐसा विश्वास उत्पन्न कर सका है जो ईर्ष्या, हिंसा तथा दोषपूर्ण विचारधारा से किसी भी प्रकार समाप्त नहीं की जा सकती। वह मानव-प्रेम में संलग्न मस्तिष्क की प्रगति को विशेष रूप से चित्रित करना चाहता था। इन कविताओं में उसने प्रेम को ही ऐसी सत्ता के रूप में स्वीकार किया है जो नैतिक विश्व का नियन्त्रण कर सकने से सक्षम है। 'रीभोल्ट आफ इस्लाम' का नायक 'लाओन' शेली की प्रतिमूर्ति है, जो स्वतः उद्‌बुद्ध होकर कविता के माध्यम से मानवता को एक जागृति का संदेश देना चाहता है। 'प्रोमीथियस' भी शेली की तरह संदेशवाहक क्रांतिकारी है। 'शेली' धर्म के क्षेत्र में संकीर्णता का पूर्ण बहिष्कार करना चाहता था। क्रान्ति का समर्थक होते हुए भी वह विध्वंसक तत्वों को स्वीकृति प्रदान करने में असमर्थ रहा। उसका विश्वास था कि राजनीतिक संस्थाओं में अपेक्षित सुधार तथा धर्म का अपेक्षित बहिष्कार ही उसकी मनोभिलाषाओं की पूर्ति में सफल होगा। इसी अभिलाषा के कारण ही कहीं-कहीं उसमें विश्व-नियामक होने के भाव का दर्शन होता है।

'शेली' के सौन्दर्य तथा प्रेम सम्बन्धी धारणाओं पर प्लेटो का पर्याप्त प्रभाव था। 'प्लेटो' के अनुसार मानव ने सौन्दर्य का स्वर्ग में दर्शन किया है, इसीलिये उसका उस पर अत्यधिक प्रभाव है। 'हिम टु इन्टेलेक्चुअल ब्यूटी' में वह इस

प्रकार के सौन्दर्य का वर्णन करता है जो अन्य सभी प्रकार के सौन्दर्य का स्रोत है। परन्तु उसकी इस धारणा में बाद में परिवर्तन हुआ। सौन्दर्य के इस आदर्शीकृत रूप को किसी नारी-प्रतिमा में ढूँढ़ने की वह महान् त्रुटि करता रहा। 'अलास्टर' तथा 'एपिप्साइचिडिअन' में उसने सौन्दर्य का यही चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। 'हिम टु इण्टेलेक्चुअल ब्यूटी' में विश्व-सौन्दर्य के उपयुक्त स्वरूप को स्वीकार करने के पश्चात् कविताओं में इस सौन्दर्य को मानवी प्रतिमा में ढूँढ़ने का प्रयत्न चलता रहा। 'शेली' की इस भावना को समझने के लिए 'सिम्पोजियम' के कतिपय शब्द विशेष महत्वपूर्ण हैं। यहाँ साक्रेटीज कहता है, 'सौन्दर्य का पूर्ण, विलग तथा अनश्वर समुद्र जो पवित्र, पूर्ण शुद्ध, नैतिकता के बन्धन से अबाधित तथा मानव-जीवन के सभी संस्पर्शों तथा खोखले अहं से मुक्त हो' ग्राह्य है। 'शेली' सम्भवतः इसी विशिष्ट सौन्दर्य का अभिलाषी था। इस महान् सृष्टि में जो कुछ भी ग्रहणीय है वह सौन्दर्य है। 'शेली' 'प्लेटो' की इस मान्यता का भी समर्थक है। उसने लिखा है—

> 'अचानक तेरी छाया मेरे ऊपर पड़ी। मैं उस परमानन्द
> में अपने दोनों हाथों को जोड़कर चिल्ला पड़ा।
> मैंने अपनी शक्तियों को तुम्हें समर्पित करने का
> निश्चय किया।'[1]

'एपिप्साइचिडिअन' में उसने 'अमीलिया' के सौन्दर्य के विषय में कहा है—

> 'वह ऐसी मानवी प्रतिमा थी जो सौन्दर्य से आवेष्टित
> थी। वही विश्व के कण-कण में रमकर उसका
> नियन्त्रण करते हुए उसे सौन्दर्यमय बनाये रखती है।[2]

'एडोने' में सौन्दर्य उसके लिए वह 'उपादान' है जिसमें विश्व की सभी शक्तियाँ क्रियाशील होकर उसे गतिपूर्ण बनाये रखती हैं।[3] परन्तु 'अलास्टर' में इस आदर्श सौन्दर्य को किसी मानवी प्रतिमा में न प्राप्त कर सकने के कारण जो परम निराशा एवम् अवसाद का अनुभव हुआ है, उसे सफल अभिव्यक्ति मिली है।

---

[1] Sudden thy shadows fell on me.
I shrieked and clasped my hands in ecstasy.
I vowed that I would dedicate my powers to thee.

[2] As a being in beauty furled
which penetrates and clasps and fills the world.

[3] That beauty in which all things work and move.

'एपिप्साइचिडिअन' में वह पहले तो उस सौन्दर्य का दर्शन करता है जो 'उसके स्वप्नपूर्ण भ्रमण में, उसके यौवन के उषा-काल में प्राप्त हुआ था,'[1] जिसकी ध्वनि उसे प्रकृति, इतिहास, रोमांस तथा विशिष्ट दर्शन के उस प्रांगण में प्राप्त हुई थी जिसकी आत्मा में सत्य का सामंजस्य निहित है। यहाँ 'हिम टू इण्टेलेक्चुअल ब्यूटी' का प्रभाव स्पष्ट है। पर इसके बाद ही वह उस विशुद्ध सौन्दर्य का उस अग्राह्य प्रतिमा को खोजने लगता है जो ऐन्द्रिय आनन्द उत्पन्न कर सकती है। इस के उदाहरणस्वरूप उसकी निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती हैं--

'रात्रि की नीली छाया में मेरे पास एक मानवी प्रतिमा
बैठी हुई थी जिसकी ध्वनि में विचित्र विषमय संगीत था।
उसका संस्पर्श विद्युत-विष के सदृश था। उसकी दृष्टि से
ज्वाला निकल कर मुझे प्रभावित कर रही थी।'[2]

अप्रतिम सौन्दर्य की उपलब्धि में असफल होने के पश्चात् वह इस नश्वर स्त्री के सौन्दर्य में अपनी आत्मा की छाया ढूँढ़ने लगा है। उसकी अभिलाषा 'अमीलिया' के दर्शन से पूर्ण हुई है। इसीलिये, उसने उसको (अमीलिया) अपने 'हृदय की प्रेयसी' (ब्राइड आफ हिज सोल) कह कर अभिषिक्त किया है। कविता में काल्पनिक वस्तुओं तथा अमीलिया की प्रतीक्षा में पूर्ण सामंजस्य है। वह इसी माध्यम से इस दृश्य जगत् के परे अपनी उड़ान भर सका है। वह इसी के आधार पर अपने क्षुद्र व्यक्तित्व एवं विराट-सत्ता के बीच समन्वय स्थापित कर सका है। सम्पूर्ण वर्णन आदर्श सौन्दर्य के प्रति मानव की अतृप्त अभिलाषा का प्रतीक है। परन्तु इस आदर्श सौन्दर्य को प्राप्त करना मानव के लिए दुर्लभ है। अतएव उसका क्षणिक आभास पाने के पश्चात् वह पूर्ण निराशा में डूब जाता है। यथा—

'वे पंखयुक्त शब्द जिनके आधार पर मेरी आत्मा प्रेम के
विशिष्ट साम्राज्य के रहस्यों का भेदन कर के
उसकी सर्वोत्कृष्ट महत्ता को प्राप्त कर सकती थी, अब मेरे

---

[1] Met on its visioned wanderings for aloft
In the clear golden prime of my youth's dawn.

[2] There one whose voice was venomed melody
Sat by a well under blue night shade-boughs,
Her touch was as electric poison-flame,
Out of her looks into my vitals came.

लिये गम्भीर बन्धन बन गये हैं। अतएव मैं इस निराश दशा में पूर्ण रूप से काँपते हुए निस्सहाय हो गया हूँ।'[1]

इस पर अपना विचार अभिव्यक्त करते हुए 'स्टॉप फोर्ड ए ब्रुक' ने कहा है कि मानव-जीवन एक आदर्श से सम्बद्ध है। इसको मानवीय ऐन्द्रिय क्रियाओं से संतुष्ट कर सकना तो दूर रहा, यह विश्व के किसी भी उपादान से संतुष्ट नहीं किया जा सकता।...यह सौन्दर्य करोड़ों रूपों में विकीर्ण जीवन का एक स्वरूप है।...जब हम नर-नारी अथवा प्रकृति को प्यार करते हैं तो केवल इनको नहीं चाहते अपितु हम उस आदर्श सौन्दर्य-सत्ता की अभिलाषा करते हैं, जिसके हम स्वरूप हैं। इनको चाह कर हम इनके परे, उस अनन्त आत्मा तक पहुँचना चाहते हैं, जिसको ये अभिव्यक्त करते हैं।[2] यही सौन्दर्य-सम्बन्धी विचार 'शेली' के प्रेम की आधारशिला हैं। 'प्लेटो' की तरह शेली का विश्वास था कि सौन्दर्य परमोत्कृष्ट रहस्यों का दर्शन करा सकता है। प्रेमी क्रमशः उसकी ओर उन्मुख होता है। इस आवर्तन में एक ऐसी दशा भी आती है जब उसे उस परम स्वरूप का दर्शन हो जाता है जिसमें सभी प्रकार की बौद्धिकता तथा ज्ञान समाहित हैं। यथा—

'उस पवित्र आत्मा का सम्पर्क होने के पश्चात् एक गम्भीर उत्साह प्रादुर्भूत हुआ। इसने ज्ञान की दृष्टि के मुझे पूर्ण बनाया है।'[3]

'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' में भी 'शेली' की इसी भावना का प्रतिपादन हुआ है। 'ऐसिया' प्लेटो की प्रेम-सम्बन्धी धारणाओं की प्रतीक है। वह उस परमोत्कृष्ट सौन्दर्य का प्रकट एवं पुंजीभूत रूप है। वही विश्व को प्रकाशित करती है। उसी के सहयोग पर 'प्रोमीथियस' की आन्दोपलब्धि आधारित है। यथा—

'सूर्य की रश्मियों की तरह प्रेम भी इस सजीव विश्व के कण-कण में परिव्याप्त है। यह तुम्हीं से उत्पन्न होकर सम्पूर्ण पृथ्वी एवं स्वर्ग को प्रकाशित कर सकता है।'[4]

---

[1] Winged words, on which my soul pierce.
Into the height of love's rare universe,
Are chains of lead, around its flight of fire,
I pant, I sink, I tremble, I expire.

[2] Studies in poetry, *Stoppford A Brooke*.

[3] In me communion with the purest being
Kindled intenser zeal, and made me wise,
In knowledge.

[4] Love like the atmosphere of sun's fire
Filling the living World,
Bursts from thee and illumined the heaven and earth.

इस प्रकार के प्रेम की प्रभावोत्पादकता निम्नांकित कविता द्वारा स्पष्ट है—

'हे जीवन के जीवन ! तुम्हारे ओष्ठ, अपने प्रेम के आधार पर
श्वासों का स्पन्दन उत्पन्न करते हैं। हे पृथ्वी के दीपक।
जहाँ कहीं तुम परिभ्रमण करते हो वहाँ उनके धुँधले
स्वरूप स्वयम् प्रकाशित हो उठते हैं।'[1]

प्लेटो के अनुसार प्रेम ही प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है। यह मानवीय एवं अमानवीय वस्तुओं को शासित करता है। सच्चे प्रेम के प्रादुर्भाव के साथ प्रकृति स्वस्थ एवं सुन्दर दीखने लगती है। इसी प्रेम को कवि ने उपर्युक्त पंक्तियों में अभिव्यक्ति प्रदान की है।

'एपिप्साइचिडिअन' में 'शेली' ने 'प्लेटो' की भावनाओं को मुखरित किया है। वहाँ 'एमीलिया' वह दर्पण है, जो अत्यधिक प्रभावोत्पादक ढंग से अदृश्य विश्व की महत्ता को अभिव्यक्त करती है। वह दर्शक में अनन्त सौन्दर्य के प्रति तीव्र उत्कण्ठा जागृत करती है।

प्लेटो के अनुसार प्रेमी एवं प्रेमिका दोनों ही के लिये प्रेम एक आवश्यकता है क्योंकि इसी के आधार पर गुणों का जन्म होता है। 'रीभोल्ट आफ इस्लाम' में प्रेम 'लाओन' एवं 'सिथ्ना' की प्रणति का प्रेरणा-स्रोत है क्योंकि इसके अभाव में वे अपनी अनन्त विपत्तियों के कारण अवश्य असफल हुए होते।

कीट्स

'कीट्स' कई दृष्टियों से आलोचकों द्वारा पलायनवादी माना गया है। 'कोर्टहोप' का विचार है कि कीट्स की कविता में एक सशक्त बौद्धिक युवक द्वारा उसकी कल्पना का प्रगतिशील प्रयत्न ऐसे आदर्श वातावरण का सृजन करने में संलग्न है जो उसके सामाजिक वातावरण से पूर्णरूपेण भिन्न है। सचमुच 'कीट्स' के युग के सभी कवि फ्रांस की राज्य-क्रान्ति द्वारा उत्पन्न सामाजिक तथा राजनीतिक कारणों एवं परिस्थितियों द्वारा प्रभावित थे, परन्तु 'कीट्स' उनसे अप्रभावित रहा। कीट्स के समकालीन कवि मानव, उसके भाग्य, उसकी त्रुटियाँ, कर्त्तव्य एवं अधिकार तथा आशाओं एवं निराशाओं के चित्रण में सतत रत थे। इस काल की कविता का मुख्य उद्देश्य मानव-कल्याण था।

---

[1] Life of life thy lips enkindle,
With their love the breath between them,
Lamp of earth, wherever thou movest,
Its dim shapes are clad with brightness.

'कीट्स' को वर्तमान मानवता के कल्याण, मानवीय विचारों को उद्बुद्ध करने वाले राजनीतिक विचार, मानवता के भविष्य, स्वतन्त्रता, समानता एवम् विश्व-बन्धुत्व आदि में कोई दिलचस्पी न थी। धार्मिक प्रश्न, गरीबी, शिक्षा तथा वर्ग-वैषम्य, तथा प्रकृति एवम् आत्मा का सम्बन्ध उसे आकर्षित न कर सका। अपनी आरम्भिक कविताओं में उसने मानव-जीवन के कष्ट तथा वेदनाओं को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करने की आकांक्षा अवश्य व्यक्त की थी पर वह इससे अधिक प्रभावित नहीं हो सका। इसके पश्चात् 'कीट्स' जीवन की कटु अनुभूतियों से ग्रसित हुआ। 'नाइटिंगेल एन ओड' में उसकी यही प्रवृत्ति पूर्ण रूप से परिलक्षित हुई। परन्तु इस स्थल पर भी इन कष्टों का कोई निराकरण प्रस्तुत करके कवि उनसे मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील नहीं हुआ।[1] उसने लिखा है कि 'महान् लेखकों में सौन्दर्य की भावना, अन्य प्रकार की भावनाओं को दबा लेती है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि मुझे अपनी कविताओं को सौन्दर्य की अभिलाषा के आधार पर ही लिखना चाहिए, चाहे पूर्ण रात्रि के श्रम को भले ही जला देना पड़े।'[2] अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कीट्स ने लिखा था 'अगर मैं अभी मर जाऊँ तो कोई भी ऐसी महान् कृति नहीं दे सकूँगा जिस पर मेरे मित्रों को गर्व हो। मैंने सभी वस्तुओं में इसी सौन्दर्य-सिद्धान्त को प्यार किया है। अगर मैं समय पाया तो अपने को अमर बना सकूँगा।'

सौन्दर्य-सृजन के रूप में कवि की अभिलाषायें पूर्ण हुई और आज भी वह अमर है। 'कीट्स' सर्वसौन्दर्यमय का सिद्धान्त स्वीकार करता है। परन्तु 'एण्डिमिअन' में सौन्दर्य के सिद्धान्त को सभी सौन्दर्यमय है, के सिद्धान्त में परिणत होने पर वह दुःखी है। इसका मूल कारण यह था कि कवि यहाँ पर विशुद्ध प्रकृति-प्रेमी कवि है और जीवन की विषमताओं से वह अप्रभावित है। पर थोड़े ही समय के बाद कवि जीवन की विषम परिस्थितियों में पड़ जाता है। वह अपने भाई 'जार्ज' की

---

[1] Fade far away dissolve and quite forget,
What thou among the leaves hast never known,
The weariness the fever and the fret.
Here where men sit and hear each other groan.

... ...

Where beauty cannot keep her lustres,
Or new love pine at them beyond tomorrow.

[2] With great poet the sense of beauty
Overcomes every consideration.—*Keats*.

मृत्यु का प्रत्यक्ष दर्शक है। जीवन के इस अनावृत्त सत्य के दर्शन के पश्चात् उसकी सौन्दर्य-सम्बन्धी धारणाओं में परिवर्तन हुआ है।

कवि 'ब्यूटी इन आल थिंग्स' का सिद्धान्त मानता था। वह मानव-उद्देश्य की पूर्ति के लिये इसी को अभिव्यक्त करना तथा इसी के लिये अपने को उत्सर्ग करने का अभिलाषी था। ज्यों-ज्यों उसका यह सिद्धान्त प्रौढ़ हुआ वह सत्यं एवं शिवं का दर्शन करने लगा। मिडलटन मुरे का अभिमत है कि 'जिस सत्य की कीट्स गवेषणा कर रहा था, एक भयंकर सत्य था। फिर भी सौन्दर्य के साथ उसके सामंजस्य के कारण वह सुन्दर बन सका। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वह सौन्दर्य जिसको खोज कर कीट्स अभिव्यक्ति प्रदान कर रहा था, सत्य ही था। वह उस सामंजस्य का अभिलाषी था जिसके आधार पर यह सिद्ध किया जा सके कि वस्तुयें वैसी ही रहनी चाहिए जैसे वे थीं। ये उस विस्मृति का साधन नहीं है जिनके आधार पर आकर्षक शब्द सामान्य विचारों को एक चमत्कारपूर्ण आवरण से आच्छादित कर दें। यह सौन्दर्य कवि के स्वतःस्फुरित एवं क्रियाशील मस्तिष्क के आधार पर उस सत्य के दर्शन द्वारा प्राप्त होता है जिसको वही (सौन्दर्यप्रवण) देख सकता है।[1] 'ओड टू ग्रेशियन अर्न' में कवि ने कहा भी है कि 'सत्य ही सौन्दर्य है और सौन्दर्य ही सत्य। इसी का लोगों का ज्ञान है और इसी को उनको जानना भी चाहिए।'[2] सत्य ही अन्तिम यथार्थ का दूसरा नाम है। इसको हम बुद्धि द्वारा नहीं जान सकते। यह तो कल्पना का विषय है। वस्तुओं के रहस्यपूर्ण स्वरूप को कल्पना विचित्र रूप से अनावृत्त करती है। कीट्स प्रमुख रूप से इसी विधायिनी कल्पना का मुखापेक्षी था। यह उसके इन्द्रिय-ज्ञान के अनुकूल थी और विषमता को समता में परिवर्तित कर सकती थी। इस प्रकार कल्पना के आधार पर प्राप्त इस सत्य-रूपी यथार्थ को भी 'कीट्स' सौन्दर्य मानता था, क्योंकि यह उसे विचित्र रूप से प्रभावित कर सकने में सक्षम होने के साथ ही अपने अन्दर सब कुछ समाहित कर सकने में समर्थ थी। 'कीट्स' बौद्धिक यथार्थ के स्थान पर कल्पना द्वारा प्राप्त यथार्थ को अधिक महत्वपूर्ण समझता था। उसका विश्वास था कि विधायक कल्पना के आधार पर अपनी प्रबुद्ध अन्तर्दृष्टि द्वारा वह संसार के वैविध्य के आवरण में छिपे रहस्य का सरलतापूर्वक दर्शन कर सकता है। 'बावरा' का विचार है कि 'सत्य एवम् सौन्दर्य को पर्याय समझने की यह भावना कलाकार के लिये उस

---

[1] **कीट्स एण्ड शेक्सपीयर, मिडिल्टन मरी।**

[2] Truth is beauty and beauty is truth, that is all
Ye know on earth and ye need to know.

समय तक सत्य है, जब तक वह अपनी कला से संबद्ध है। कलाकार के रूप में उसका यह अभिज्ञान कि वह इसे निश्चित रूप से जानता है और यही सब कुछ है जिसको उसे अपने कर्तृत्व के लिए जानना चाहिए, पूर्ण सत्य पर आधारित है।'[1]

'कीट्स' सौन्दर्य को सत्य ही नहीं अपितु शक्ति भी मानता है। इस प्रकार वह सौन्दर्य एवम् शक्ति में भी सामंजस्य स्थापित करता है। हर आत्मा सहृदय होने के कारण सौन्दर्य के समक्ष नतमस्तक होती है। उसने एक ओर तो सत्य एवम् सौन्दर्य का सामंजस्य प्रस्तुत किया है और इस प्रकार सत्य जिन भी विविध रूपों में अभिव्यक्त हो सकता है उसी को सौन्दर्य कहा है परन्तु दूसरी ओर यह भी माना है कि विश्व जब उसकी महानता से अभिभूत होकर उसकी पूजा और अर्चना आरम्भ करता है तो सौन्दर्य को निश्चित स्वरूप मिलने के साथ ही उसकी शक्ति का भी ज्ञान होता है। इस प्रकार कीट्स ने सौन्दर्य, शक्ति और सत्य में त्रिकोणात्मक संबंध स्थापित किया।

बाइरन

'बाइरन' राजनीति से विशेष संबन्ध रखता था। 'कीट्स' की तरह वह इस बात से अवगत था कि कविता के द्वारा क्रान्तिकारी विचारों को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करना संभव न था, अतएव उसे पत्रकारिता का आश्रय लेना चाहिए। वह नैपोलियन को चाहता था फिर भी राजमुकुट धारण करने के कारण उसका जो अधःपतन हो गया था, उससे वह परम दुःखी था। उसके अधिकांश नायक 'नैपोलियन' की उद्दाम भावना एवं अदम्य उत्साह के प्रतीक थे। उसे दैवी अधिकार के सिद्धान्त से चिढ़ थी। उच्चवंशीय अभिलाषा को ही वह मानवता के अधःपतन का मूल कारण मानता था। १९वीं शताब्दी के आरम्भिक काल में राजशाही एक सशक्त राजनीतिक समस्या थी। यहीं वह केन्द्रविन्दु था जिसके चतुर्दिक्, प्रजातंत्र के विरोधी, प्रतिक्रियाशील उच्चवंशीय लोग चक्कर काटा करते थे। 'बाइरन' को उनकी यह निरंकुशता अप्रिय थी। 'प्रोफेसी आफ दान्ते' नामक कविता में वह उन लोगों पर आग उगल सका है जो अपने उच्चवंशीय आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में गीत लिखते थे। 'दान्ते' के माध्यम से कवि ने पूछा है कि 'हे शासित एवं प्रेरित करने वाले भगवान्! यह क्या बात है कि वे व्यक्ति जो अपने पृथ्वी के शासन के बाह्य आकार-प्रकार में तुम्हारे स्वर्ग के शासन-सदृश होते हुए भी ईश्वरीय गुणों से पूर्णरूपेण रिक्त हैं, इस समष्टि की झुकी हुई ग्रीवा पर गर्वपूर्वक चलते हैं और हमें यह विश्वास दिलाते हैं कि उनकी शक्ति भी तुम्हारे ही

---

[1] *Bowara,* Romantic Imagination.

सदृश है ।'[1] जीवन-पर्यन्त वह अपने को बड़े लोगों से सम्बद्ध न कर सका । इटली और ग्रीस को वह क्रान्ति का संदेश देने के साथ ही सलाहकार भी रहा । इटली के प्रति उसकी विशेष सहानुभूति थी । उसने मुरे को लिखा था—'संसृति में मैं इसे अत्यन्त आह्लादकारी और रम्य समय तथा दृश्य ससझूँगा, जब इटली के लोग अन्य राष्ट्रों के असभ्यों तथा शोषकों को उनकी माँद में भेज देंगे ।' उसने उन्हें क्रान्ति का संदेश देते हुए कहा था कि '(क्रान्ति में) खून पानी की तरह बहेगा, आँसू तुषार की तरह गिरेंगे, फिर भी वहाँ के लोग अन्ततोगत्वा विजयी होंगे । मैं इसे देखने के लिये जिन्दा न रहूँगा । फिर भी अन्तर्दृष्टि द्वारा उसे आज ही देख रहा हूँ ।' यथार्थ में जीवन-पर्यन्त, 'बाइरन' शोषण एवं प्रतारण पर कुठाराघात करता रहा ।

इसके पूर्व न तो स्वतन्त्रता को इतना बड़ा हिमायती मिला था और न चर्च के पुरोहितों को इतना बड़ा दुश्मन । वह व्यक्ति तथा समाज दोनों की निरंकुशता का परिपोषक था । 'ब्लेक' कल्पना के क्षेत्र में निर्बाध स्वतन्त्रता का परिपोषक था और 'बाइरन' सामान्य विश्व में इसका आकांक्षी । अपने स्वतन्त्रता के आदर्श में 'बाइरन' 'शेली' के समकक्ष था । वह 'शेली' की तरह प्रचण्ड भावनात्मक तीव्रता से तो अवगत् पर उसका आदर्श भविष्य-स्वप्न से रिक्त था । वह केवल वर्तमान के निरंकुश शासकों के विरोध द्वारा जनता के हित की बात से ही संतुष्ट हो जाता था । वस्तुतः वह निराशावादी न था । 'वह तो पत्थरों तक को जागृत करके अन्यायियों के विरुद्ध क्रान्ति करना चाहता था ।'[2]

बाइरन की क्रान्ति-सम्बन्धी धारणायें जितनी ही आग उगलने वाली हैं, प्रेम-संबन्धी धारणायें उतनी ही स्वच्छन्द । उसके चरित्र 'चाइल्ड हेरोल्ड', 'लारा', 'मैन्फ्रेड', 'डॉन जुआन' किसी न किसी रूप में बाइरन की प्रतिमूर्ति हैं । 'चाइल्ड हेरोल्ड' की पुरानी प्रतिलिपि में 'चाइल्ड बुरुन' नाम आया है । 'बुरुन' 'बाईरन' का पुराना रूप है । 'स्त्रियाँ केवल उसे प्यार ही न करती थीं बल्कि रूप परिवर्तित करके उसे खोजती थीं । जब वे इस बात से अवगत होती थीं कि बाइरन ने उन्हें त्याग दिया है, तो वे उसे मार डालने तक की धमकी देती थीं । जब तक वह प्रेम

---

[1] Oh ! power that rulest and inpierest ! how
Is it, they on earth, whose earthly power
Is likest thine in heaven in outward show,
Least like to thee in attribute divine,
Tread on the universal neck that bow,
And assure us their rights are thine.

[2] I will reach if possible, the stones
To rise against the earth's tyrants,

के साम्राज्य में छिपे रुस्तम के रूप में क्रियाशील रहा तब तक अंग्रेज उसे ईर्ष्या की दृष्टि से देखते रहे, परन्तु जब वह अपने प्रेमी स्वरूप में स्पष्ट रूप से सामने आया और अपने को प्यार करने वाली स्त्रियों को भी समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सका तो उसे शैतान की संज्ञा मिली।' यथार्थ में 'बाइरन' अंग्रेजी उच्चवर्गीय पतनोन्मुख व्यवस्था के आदर्श रूप को ही अपनी कहानियों द्वारा प्रस्तुत करता था। 'चाइल्ड हेरोल्ड' में उसने लिखा है कि—'वह पाप के लम्बे चक्रव्यूह में भ्रमण कर चुका है और अपनी असफलता पर पश्चात्ताप नहीं किया है। आह कई के लिये भरा है, पर प्यार एक को किया है, पर वह प्रेयसी भी उसकी नहीं हो सकी है।'[1] सचमुच उसके नायकों का अहं एवं कलुष 'मिल्टन' के शैतान-सदृश है और निराशा तथा प्रभावोत्पादकता नारी-संबंधी उपन्यास के नायकों-सदृश। 'बाइरन' ने अपनी कल्पना-प्रधान कविताओं में आत्म-चित्रण को उपस्थित करके एक नवीन रूप में उन्हें प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।"[2] 'मैकाले' के अनुसार वह अपनी कविता, कहानी तथा अन्य विविध चित्रणों के आरम्भ, मध्य और अन्त सभी जगह उपस्थित है।

वासना की अतिशयता के बावजूद वह प्रथम प्रेम के आनन्द की स्मृति को अवसादपूर्ण ढङ्ग से प्यार करता था। 'डान जुआन' में कुछ ऐसे पद्य हैं जिनमें 'हैडी' के प्रति 'जुआन' के प्रेम का चित्रण है। वह उन प्रारम्भिक दिनों को कभी भी नहीं भूल सकता था जब उसके हृदय, आत्मा एवं प्रज्ञा-शक्ति पूर्ण सहयोग के साथ क्रियाशील थे और नाड़ी-संस्थान एवं रक्त में एक विचित्र स्पन्दन था। फिर भी बाइरन को हम पवित्र एवं निष्कलुष प्रेम का कवि नहीं कह सकते। उसकी गेयता, वासना और अतृप्ति के दो छोरों के बीच हिल्लोलित होती है। वह अपने व्यवहार में पूर्ण स्वतन्त्र न था। अतएव उसमें स्वर्ग के उस निषिद्ध फल के सदृश आकर्षण था जिसको खाने से 'आदम और ईभ' को रोका गया था। इसी को ध्यान में रखकर उसने कहा है—'आह तुम्हारा आनन्द था और मेरा कलुष। हे प्रियतमे! अगर तुम क्षमा कर सको तो क्षमा कर दो। परन्तु यह हृदय जो तेरा हो चुका है निष्कलुष रूप से अपनी जीवन-यात्रा पूरी करेगा। तुम जो भी सोचो, मनुष्य के कटु प्रहार इसे झुका या मोड़ नहीं सकते।[3] परन्तु उसकी यह

---

[1] Child Harold.

[2] Vaughn Hugh—Romantic Poets, *Byron*.

[3] Ah ! thine be the gladness and mine be the guilt.
Forgive me adored one, for sake if thou wilst.
But heart which is thine, shall expire undebased,
And man shall not break it—whatever thou may'st.

प्रतिज्ञा मानव-प्रहारों से विच्छिन्न होकर उसके विचारों के क्षितिज पर बिखर गई और उसके हृदय के टूकड़े उनमें छितराकर चमक उठे। परन्तु यह निराशा उसके प्रेमपूर्ण गीतों को न समाप्त कर सकी। वह उसे और भी आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने में संलग्न हो गया। अब इसका मेरुदण्ड (उसकी निम्नता द्वारा उद्‌भूत) प्रतिशोध था। उसमें नैतिकतावादियों को चिढ़ाने तथा समाज के प्रति कर्त्तव्य से पराङ्मुख होने के भाव का भी दर्शन होता था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त से ही इंगलैंड में इस प्रकार की भावना में घृणास्पद आनन्द लेने की प्रवृति का प्रादुर्भाव हो चुका था। अपने काल में 'बाइरन' इसका मुख्य प्रतिपादक रहा। 'अगर 'कीट्स' ने प्रेम में कष्ट झेल कर भी अपने प्रेमियों को अवसाद-ग्रसित करने वाली स्त्रियों का चित्रण किया जिससे 'प्रीफेलाइट' प्रभावित थे तो 'बाइरन' ने भी उस नियम-विहीन प्रेम का चित्रण किया जिससे 'स्विनबर्न तथा फ्रांस एवं इंगलैंड के 'डीकेडेण्ट' काल के लेखक प्रभावित हुए। वह प्रेम में उस आनन्दपूर्ण उल्लास को चित्रित कर सकने में असमर्थ था जो 'शेली' जैसे लेखकों को वायव्य कल्पना की ओर उन्मुख कर सका। वह कीट्स की तरह रोमांच का चित्रण न कर सका, फिर भी अपनी असाधारण अभिलाषा के अनुसार सामाजिक चित्र उपस्थित करके वह उस प्रकार के प्रेम से अपने को परिचित कर सका।'[1] गेयता की दृष्टि से वह 'शेली' से हीन कोटि का कलाकार है, फिर भी जिस प्रकार का क्रान्तिकारी स्वरूप वह चित्रित करना चाहता था, उसमें उसे पूरी सफलता मिली है।

छायावादी कवि

मानवतावाद

जयशंकर 'प्रसाद' का मत है कि जब तक समाज के उपकरण के लिये कवि की लेखनी ने कार्य न किया हो, तब तक केवल उसकी उपमा और शब्द वैचित्र्य तथा अलंकारों पर भूलकर हम उसे एक ऐसे कवि के आसन पर नहीं बैठा सकते जिसने अपनी लेखनी से समाज की प्रत्येक कृतियों को स्पन्दित कर उसमें जीवन डालने का उद्योग किया है। छायावादी कवि अपनी 'मधुमती भूमिका' के बावजूद भी देशकाल एवं समाज का सफल चित्र प्रस्तुत कर सके हैं। उनका मत हैं—

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर
मानव तुम सबसे सुन्दरतम। (पन्त)

[1] एन इंट्रोडक्सन टू स्टडी आफ रोमांटिक पोयट्री—डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० २०३।

ये कवि यथार्थ में मानव-जीवन की संकीणताओं का विरोध करके मानव को पूर्ण मुक्त करना चाहते थे। इसीलिये आधुनिक ज्ञान के विविध रूढ़ि-विरोधी प्रभावों से प्रभावित होकर आत्माभिव्यक्ति के माध्यम से आत्मप्रसार एवं समाज की संकीण-ताओं के सर्वनाश का महामन्त्र फूंकते दृष्टिगोचर होते हैं। छोटे से जीवन की लघु सीमा में बँधे क्षुद्र भावों को लेकर कवि इस पृथ्वी पर प्रेम के जो प्रशस्त मार्ग प्रस्तुत करता है वह यथार्थ में रूढ़ि-शृंखला विरोधी है। उसका कहना है कि—

> 'ताल-ताल से सदियों के जकड़े हृदय-कपाट
> खोल दे रे कर कठिन प्रहार,
> आये अभ्यन्तर संयत चरणों से नव्य विराट
> करे दर्शन पाये आभार।'[1] (निराला)

'द्रुत झरो जगत के जीण पत्र' में कवि का क्रान्तिकारी विचार मुखरित हुआ है। 'झरे जाति कुल, वर्ण धन, अन्ध नीर से रूढ़ि रीति छन' के उदघोष द्वारा कवि सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन का पक्षपाती दृष्टिगोचर होता है। पर ये कवि बाइरन की तरह केवल क्रान्ति के समर्थक मात्र नहीं हैं। ये वाद की व्यवस्था पर भी दृष्टिपात किये हैं। इनमें शेली की तरह एक आदर्श व्यवस्था का स्वप्न निहित है। यथा—

> 'ज्ञान-वृद्ध निष्क्रिय न जहाँ मानव-मन,
> मृत आदर्श न बन्धन सक्रिय जीवन,
> रूढ़ि रीतियाँ जहाँ न हों आराधित,
> श्रेणि वर्ग में मानव नहीं विभाजित।
> धन बल से हो जहाँ न जनश्रम-शोषक
> पूरित भव जीवन के निखिल प्रयोजन
> ऐसा स्वर्ग धरा में हो समुपस्थित
> नित मानव-संस्कृति किरणों से ज्योतित।'

'निराला' ने अपने 'तुलसीदास' में सांस्कृतिक अधःपतन के पश्चात् परिवर्तन का संकेत किया है। 'करना होगा यह तिमिर पार, देखना सत्य का मिहिर द्वार' इसी की ओर संकेत करता है। इसीलिये कवि 'वासना की मुक्ति मुक्ता त्याग में त्यागी' जैसे अमर संदेश दे सका है।

---

[1] इन्दु, कला ३, किरण ५, जयशंकर प्रसाद।

'कामायनी' जो छायावादी काव्य की प्रमुख उपलब्धि है, सामयिक समस्याओं के एक सुस्थ एवम् सुन्दर स्वरूप को प्रस्तुत करती है। काम की आकाशवाणी का एक दृश्य लीजिए—

'यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि,
द्वयता में लगी निरन्तर ही वर्णों की करती रही वृष्टि।
अनजान समस्यायें गढ़ती, रचती हों अपनी ही विनिष्ट।
कोलाहल कलह अनन्त चले एकता नष्ट हो बढ़े भेद।
अभिलषित वस्तु तो रहे दूर हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद ॥

द्वयता में सतत रत आधुनिक मानव-जीवन का इससे अच्छा चित्र और क्या हो सकता है। आज के 'काम-पुत्रों' के लिये 'काम' की यह वाणी शतशः ठीक है। जिस प्रकार का नग्न ताण्डव, विभीषिका, ईर्ष्या, द्वेष, उत्पीड़न, शोषण एवम् विश्रृंखलता से आज समाज पीड़ित है उसका इससे अधिक उपयुक्त चित्र अन्यत्र नहीं मिल सकता। पुरातनता एवं शाश्वतता की ओट में शोषण का जो वीभत्स प्रयत्न आज क्रियाशील है उस पर 'प्रसाद' जी का निम्नांकित विचार दर्शनीय है—

'पुरातनता का यह निर्मोक, सहन करती न प्रकृति पल एक।
नित्य नूतनता का आनन्द, किये हैं परिवर्तन में टेक ॥'

सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। समाज इस अन्धविश्वास तथा परम्परा के केंचुल को बिना त्यागे एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता।

आज का युग बुद्धिवाद की क्रोड़ में प्रश्रय पा रहा है। मानव, बुद्धि द्वारा नित नवीन प्रयोग की सामग्री का सृजन कर अपने को सुखी बनाना चाहता है। पर काम की उपर्युक्त भविष्यवाणी के अनुसार वह सुखी नहीं अपितु दुःखी है। इसका मूल कारण यह है कि मात्र बौद्धिकता सर्वदा सत्यानाशी रही है। बुद्धि के साथ हृदय का सामंजस्य होना परमावश्यक है। आज का युग तरह-तरह के सत्य की गवेषणा का दावा करता है। किन्तु समाज में कुछ ऐसा भी है जो 'स्पर्श से तर्ककरों के बनता छुईमुई है।'

छायावादी कवि 'भारतीय ग्राम-दशा' पर दृष्टिपात किये हैं। उनका कहना है कि 'यह तो मानव-लोक नहीं रे, यह तो नरक अपरिचित; यह भारत का ग्राम सभ्यता-संस्कृति से निर्वासित।' छायावादियों में कवि पन्त समाज की समस्याओं के प्रति विशेष रूप से जागरूक हैं। 'प्रसाद' के भारतवर्ष की गरिमा में लिखे गये

गीतों तथा 'निराला' की 'विधवा' 'भिक्षुक', तथा 'वह तोड़ती पत्थर' आदि रचनाओं में आज के समाज के लिए एक संदेश निहित है। श्रमजीवी जनता का एक चित्र लीजिए—

'ये नाप रहे निज घर का मग,
कुछ श्रमजीवी धर डगमग डग,
भारी है जीवन भारी पग।'

छायावादियों को समाज की सारी दीनता एवं दुर्बलता से सहानुभूति है। इसीलिए वे स्पष्ट शब्दों में कह सके हैं 'जो दीन हीन पीड़ित निर्बल, मैं हूँ उनका जीवन संबल।' परन्तु यह तो तभी संभव है जब हम लोक-समस्याओं पर जमकर दृष्टिपात करें और उनका निराकरण करें। इस सन्दर्भ में छायावादी कवि का कहना है 'आओ लोक-समस्याओं का खुल कर करें विवेचन।'

सामाजिकता से ही प्रभावित एक दूसरे स्वरूप का इन छायावादियों में दर्शन होता है। इसे हम इनकी 'राष्ट्रीयता' के नाम से अभिहित कर सकते हैं। छायावादी कवि राष्ट्रीय कवि नहीं हैं फिर भी जहाँ कहीं उनकी इस भावना को अभिव्यक्ति मिली है वह अद्वितीय है। 'हिमाद्रि तुङ्ग शृंग से' तथा 'हिमालय के आँगन में' जैसी कवितायें किसी भी राष्ट्र के राष्ट्रगीत के आसन पर समासीन की जा सकती हैं। इन कवियों ने जन-उद्‌बोधन के लिये कुछ उद्‌बोधन-गीत भी लिखा है। उदाहरण-स्वरूप हम निम्नांकित कविता ले सकते हैं——

'बढ़ो अभय विश्वास चरण धर
सोचो वृथा न भव-भय कातर,
ज्वाला के विश्व के चरण,
जीवन चरण समुद्र संतरण।
सुख-दुःख की लहरों के सिर पर
पग धर पार करो भवसागर।'

महादेवी की निम्नांकित पंक्तियाँ भी उद्‌बोधन का उचित स्वरूप प्रस्तुत करती हैं——

'चिर सजग आँखें उनींदी,
आज कैसा व्यस्त बाना,
जाग तुझको दूर जाना।
अखिल हिमगिरि के हृदय में,
आज चाहे कम्प हो ले,

या प्रलय के आसुओं में,
शून्य अलसित व्योम रो ले ।
पर तुम्हें है नाश पथ पर
चिह्न अपने छोड़ जाना ।'

पराधीन राष्ट्र, विदेशी उत्पीड़न का महान् शोषण, देशी लोगों के बीच चलते हुए महान् संघर्ष आदि से ये कवि अछूते न रहे । द्रष्टव्य है कि इनके राष्ट्रगीतों में देश के भूतपूर्व ऐश्वर्य एवं महानता की पृष्ठभूमि ही अधिक दृष्टिगोचर होती है। 'प्रसाद' एवं निराला अतीत को स्वर्णिम समझते हैं। परन्तु हर पराधीन देश में राष्ट्रीयता का उदय पुनरुत्थान की भावना से होता है । विजेता जाति विजित को शोषित करने के लिये सभी प्रकार की शक्तियों का अपहरण करती है। भारतीयों ने वर्तमान पराधीनता के अपमान को भूलने के लिये अतीत के स्वर्णयुग का सहारा लिया और वर्तमान की हार का उत्तर अतीत की जीत से दिया । जो जाति वर्तमान में विभाजित थी वह अतीत की पृष्ठभूमि पर एक हो उठी। इस प्रकार अतीत के पुनरुत्थान ने संपूर्ण देश को एक जातीय एवं राष्ट्रीय पुनरुत्थान की भावना से अनुप्राणित कर दिया ।

सौन्दर्य-चित्रण

सौन्दर्य पर दृष्टिपात करते समय, इसके दो रूप हमारे सामने आते हैं— (१) प्रकृति-सौन्दर्य, (२) रमणी-सौन्दर्य । प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण पिछले अध्याय में हो चुका है, फिर भी रमणी-सौन्दर्य से प्रकृति का इतना तादात्म्य है कि उसको बिल्कुल अलग करना समीचीन न होगा। छायावादी सौन्दर्य से विशेष रूप में आकृष्ट हैं। यथा—

'तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा-स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याणि,
त्रिवेणी की लहरों का गान ।
उषा का उर में था आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में वास,
विचारों में बच्चों की साँस ।'

रीतिकालीन सौन्दर्य अपनी स्थूलता के कारण कवियों की गर्हित मनोवृत्ति का प्रतीक बन गया। उत्कृष्ट सौन्दर्य सर्वदा रहस्य-रंजित होता है, इस बात को वे न

पहचान सके। परिणामस्वरूप उनके सौन्दर्य-चित्रण में इतिवृत्तात्मकता, अश्लीलता तथा नग्न चित्रण अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। द्विवेदी-युगीन कठोर नैतिकता के कठघरे में उस काल का सौन्दर्य-चित्रण सिमट कर रह गया। इस जड़ प्रवृत्ति के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया हुई जो छायावादी सौन्दर्य एवं प्रेम के रूप में दृष्टिगोचर हुई। परन्तु छायावाद में सौन्दर्य के मांसल चित्रण के साथ ही, हृदयगत भाव का भी विपुल चित्रण सम्मुख आया। यह उसकी नवीन उपलब्धि का द्योतक था। एक उदाहरण लिया जा सकता है--

'गिरा हो जाती सनयन,
नयन करते नीरव भाषण।
श्रवण तक आ जाता है मन
स्वयं मन करता बात श्रवण।
अश्रुओं में रहता है हास,
हास में अश्रुकणों का भास।
श्वाँस में छिपा हुआ उच्छ्वास
और उच्छ्वासों में ही श्वाँस।

'नयन प्रजन्त कटाच्छ विराजहीं कुछ, पुच्छन को जाहिं पै पुच्छत लाजहीं' अथवा 'सिय सुषमा किमि जाइ बखानी, गिरा अनयन, नयन बिनु बानी' को पूर्ण मुखर कर सूक्ष्म अभिव्यक्ति छायावाद के इन वर्णनों मे मिली है। इसका मूल कारण यह था कि छायावादी कवि ने सौन्दर्य-भावना के प्रथम दर्शन के साथ ही एक रहस्यवेत्ता-जिज्ञासु की तरह पूछा था—

'तुम कनक किरण के अन्तराल में
लुक छिपकर चलते हो क्यों,
नतमस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन रसकण ढरते,
हे लाज भरे सौन्दर्य बता दो
मौन बने रहते हो क्यों?'

उसकी यह जिज्ञासा भी निराधार नहीं थी। अगर उसने रीतिकालीन दृष्टिकोण अपना कर स्त्री के साढ़े तीन हाथ शरीर को ही सब कुछ समझ लिया होता तो वह भी तुलसी के इष्ट राम से कहला सकता था कि—

'बन्धन हमारी कामकेलि को तो तोड़िबो,
तजनो विचार को कै व्यंजन विचारु है,

मान की जवनिका कि कंज मुख मूदिबो को
सीता जी को उत्तरीय सब सुख को सार है।'

(केशव; रामचन्द्रिका से)

परन्तु विचारणीय यह है कि छायावाद स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता का समर्थक था। इसी प्रवृत्ति के कारण कुछ लोगों ने उसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह की संज्ञा दी। छायावाद जीवन के इतिवृत्तात्मक यथार्थ चित्रों का उस सीमा तक चित्रण न प्रस्तुत कर सका जिस सीमा तक वह उससे अपेक्षित था। हृदय-मंथन के आधार पर उसमें जिस भाव-जगत् का सृजन हुआ उसका आधार सूक्ष्म सौन्दर्य था। उदाहरण के लिए निम्नांकित कविता ली जा सकती है—

'चंचला स्नान कर आवे,
चन्द्रिका पर्व में जैसी,
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी।'

अथवा कवि पन्त के शब्दों में—

'नील रेशमी तम का कोमल
खोल लोल कच भार।
तार तरल लहरा लहरांचल
स्वप्न विकच स्तन हार।
शशि कर सी लघुपद सरसी में
करती तुम अभिसार।
दुग्ध फेन शरद ज्योत्स्ना में
ज्योत्स्ना सी सुकुमार।'

परन्तु यह सौन्दर्य ऐसा सौन्दर्य नहीं है जिसका ये कवि रसास्वादन न कर सकें। ये तो विविध अनुभावों का सहारा लेकर उसे विविध रूप में हमारे समक्ष रख सके हैं और इसी चित्रण में ये अपने को विविध आलोड़न-प्रलोड़न भी प्रदान कर सके हैं। यथा—

'एक पल मेरी प्रिया के दृग-पलक
थे उठे पर सहज ही नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो, प्रणय सम्बन्ध था।

लाज की मादक सुरी सी लालिमा
फैल गालों में नवीन गुलाब से,
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित स्वरों के सीप से ।'

इसी सौन्दर्य की मसृणता से प्रभावित होकर महादेवी कह पड़ी थीं–

'नयन श्रवण मय श्रवण नयन मय आज हो रही कैसी उलझन ।
रोम-रोम में होती री सखि एक नया उर का सा स्पन्दन ।
पुलकों से भर फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले थे ।

छायावादियों का यह सौन्दर्य-चित्रण सामान्य उपमा एवम् रूपकों के आधार पर नहीं प्रस्तुत किया जा सकता था, अतएव इसके लिए उन्होंने प्रकृति का आश्रय लिया। प्रकृति से उन्होंने भावनात्मक-चित्रण के विविध रूपों को प्राप्त किया। वह अपने उर को ढाल कर श्रम-जर्जर चराचर पर स्नेह एवं वेदना से सने गीतों को गा-गाकर, मधुर स्वप्न ढालने की अद्भुत क्षमता इन्हें प्रदान कर सकी। 'सोने से दिन, मोती सी रात पर गुलाबी प्रात के मिटने तथा रंगने से' ये विस्मय विमुग्ध होकर पूछ बैठते–

'मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं, ।
विद्युत् के चल स्वर्ण-पाश में, बँध हँस देता रोता जलधर ।
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों पर लहराता सागर ।
दिन निशि को देता निशि दिन को
कनक रजत के मधु प्याले हैं
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ।

कवि प्रसाद भी कह उठते हैं—

'लहरों में यह क्रीड़ा चंचल,
सागर का उद्वेलित अंचल,
है पोंछ रहा आखें छल-छल
किसने यह चोट लगाई है ।

प्रकृति के इसी सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पल्लव में कवि 'पन्त' पूछ उठते हैं—

देख वसुधा का यौवन भार,
गूँज उठता है जब मधुमास ।

बिधुर उर केसे मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्‌वास ।
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेसा मुझे भेजता मौन ।'

नारी-सौन्दर्य

नारी सौन्दर्य चित्रण में छायावादी कवियों को विशेष रुचि थी । इस निखिल-छवि की नारी के रोम-रोम से उन्हें अपार स्नेह था । कवि पन्त ने लिखा है--

'तुम्हारे गुण हैं मेरे गान, मृदुल दुर्बलता ध्यान,
तुम्हारी पावनता अभिमान, शक्तिपूजन सम्मान ।
अकेली सुन्दरता कल्याणि, सकल ऐश्वर्यों की सन्धान ।
तुम्हीं इच्छाओं के अवसान, तुम्हीं स्वर्गिक आभास ।
तुम्हारी सेवा में अनजान हृदय है मेरा अन्तर्ध्यान ।'

उपर्युक्त पद्य छायावाद की नारी कल्पना का उदाहरण है । छायावादी कवि इस बात को जानता है कि नारी महिमामयी, शक्तिमयी एवं सृष्टि की अधिष्ठात्री है फिर भी उसका कुतूहल कम नहीं होता वह बार बार पूछता है—

'कौन हो तुम विश्व माया कुहुक सी साकार
प्राण सत्ता के मनोहर, भेंद सी सुकुकार ।'

अथवा

कौन-कौन तुम परिहृत वसना
म्लान मना भू-पतिता सी
' वात-हता विच्छिन्न लता सी
रति-श्रान्ता ब्रज-वनिता सी ।'

परन्तु इस प्रकार के चिन्तन में कवि ने उसे ऐसा अमूत रूप प्रदान कर दिया कि वह कल्पनामात्र बन गई और शब्द भी उसका सम्भव वर्णन कर सकने में असमर्थ हो गये । कवि उसे नन्दन तमाल के तरु सी स्पर्शहीन या दृगों के सम्मुख खड़ी होने पर भी, उसके रूपरंग एवं रेखाओं से ओझल हो जाने के कारण हृदय के शान्त पवित्र एवं उज्ज्वल आभास मात्र की अनुभूति कह कर संतुष्ट हो गया । कवि ने अखिल विस्मयाकार, निखिल कल्पनामयी अप्सरा, अकथ अलौकिक, अमर अगोचर आदि विशेषणकों से अलंकृत किया और अन्ततोगत्वा उसे भावनाओं का आधार भी माना ।

छायावाद में नारी चित्रण दो रूप में हुआ है—(१) रूप-चित्रण, (२) भाव-चित्रण।

रूप चित्रण के अन्तर्गत शारीरिक-सौन्दर्य का भावनात्मक चित्रण हुआ है। छायावादी काव्य के नारी चित्रण की मूल आधारशिला यही भावनात्मक चित्रण है। यथा—

'पागल हुई मैं अपनी ही मृदु गन्ध से,
कस्तूरी मृग जैसी
पश्चिमी जलधि में,
मेरी लहरीली नीली, अलकावली समान
लहरें उठती थी मानो चूमने को मुझको
और सांस लेता था समीर मुझे छूकर।'

द्रष्टव्य यह है कि इस भाव-सौन्दर्य-पूर्ण सूक्ष्म-चित्रण के बावजूद छायावाद में नारी का मांसल चित्रण भी हुआ है।

'उभरे उरोज कुन्तल खोले
एकाकिनि कोई क्या बोले
वह सुन्दर है साँवली सही,
तरुणी है हो षोडशी रही।'

छायावाद में नारी को देवि, सहचरि, प्राण की भी संज्ञा मिली है। जहाँ तरुणी रूप में भी चित्रण हुआ है, वहाँ आदर्श सलज्ज तरुणी का ही चित्र सामने आता है। प्रेयसी रूप भी इसमें अधिक सफलतापूर्वक चित्रित है। इस रूप में वह निम्नांकित रूप में प्रस्तुत की गई है——

'विन्दु में थी तुम सिन्धु अनन्त
एक स्वर में समस्त संगीत।
एक कलिका में अखिल बसन्त
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत।'

प्रेमिका रूप में 'नारी' इन कवियों के वर्णन का प्रिय-विषय है। इसके साथ आलोड़न-प्रलोड़न, हर्ष-विषाद, सफलता, असफलता के चित्र अनुपम हैं। इसके अतिरिक्त ग्राम युवती, ग्राम वधू और आधुनिक 'अप्टू डेट' स्त्रियों का चित्रण भी हुआ है। परन्तु इन सब स्वरूपों में उसका नारी रूप अक्षुण्ण है। एक विधवा का चित्रण देखिए—

'वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप-शिखा सी शान्त भाव में लीन,

वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छूटी लता सी दीन
दलित भारत की विधवा।'

नारी चित्रण में छायावादी कवि के मन का अवसाद उस कवि के व्यक्तित्व को निरन्तर विविध रंगों से रंगता रहा है। कवि मानव-जीवन के सौन्दर्य के पुंजीभूत रूप को अपने में ही निहित करके उसके उपभोग का आकांक्षी है। पर ऐसा कर पाने में वह असमर्थ है। परिणामस्वरूप उसमें निराशा का प्रादुर्भाव होता है। इस अवसाद की अभिव्यक्ति के झिलमिल ताने-बाने से छायावादी काव्य निर्मित हुआ है। कवि का अनुभव है—

'शशि मुख पर घूँघट डाले,
अन्तर में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आये।'

परन्तु यह 'तुम' कवि की जीवन-गोधूली में प्रवेश करके भी उसका नहीं बन पाता। अतएव वह कह उठता है—

'मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं,
स्वप्न देखकर जाग गया,
आलिगन में आते आते
मुस्कुरा कर भाग गया।'

आधुनिक वातावरण के प्रभाव से छायावाद में आधुनिक विचारों के अनुसार नारी का चित्रण किया गया है। यथा—

'आज मनुज-जग से मिट जाये
कुत्सित लिंग विभाजन।'

छायावाद एक विद्रोही स्वर लेकर अवतरित हुआ था। नारी का किसी प्रकार की परम्परा से आबद्ध होना उसके लिए असह्य था। युग की विचारधारा भी इसी ओर उन्मुख हो रही थी। अतएव छायावादी कवि, जननी, सखि और प्यारी के विविध रूप को स्वीकार करने वाली नारी को, युग की निर्मम कारा से मुक्त करने का आह्वान लेकर आया। उसने नारी का यथार्थ उद्बोधन करके उसे सभी गुणों का आगार बताया। अतएव समाज के भय-कल्पित-बन्धन को तोड़कर पंक से ऊपर उठे हुए कमल की तरह अपने ही अन्तर विकास से जीवन को प्रफुल्लित करने की क्षमता रखनेवाली नारी, उसके लिए वासना की पुत्तलिका न होकर प्रतिष्ठित

मानवी के आसन पर समासीन दीख पड़ी। उसने नारी के उस रूप को पहचान कर उसे अभिव्यक्ति दी। यथा—

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग-पग तल में,
पीयूष स्रोत ही बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।

'छायावादी' कवि ने नारी की प्रशस्ति करते हुए 'उसे' एक स्वर में समस्त-संगीत, 'एक कलिका में अखिल बसन्त' के साथ ही 'धारा में स्वर्ग पुनीत' के उद्घोष से आभूषित किया। उसे उसने ऐसी वरदायिनी शक्ति माना जिससे अद्भुत कार्य संपादित हो सकते थे। यथा—

छू छू जग के मृत रजकण
कर दो तृण तरु में चेतन,
मृन्मरण बाँध दो जग का,
दे प्राणों का आलिंगन।'

यह केवल कोरी काल्पनिक भावना नहीं अपितु इसका एक दृढ़ आधार है। छायावादी कवि तो स्वीकार करता है कि—

'तुम्हारी सेवा में अनजान,
हृदय है मेरा अन्तर्ध्यान,
देवि, माँ, सहचरि प्राण।'

इस प्रकार छायावादी कवियों की सौन्दर्य-भावना अद्वितीय है। 'रीतिकाल में सौन्दर्य ज्वालामय था जिसमें मरने जीने का स्वाँग रचने की आवश्यकता अधिक जान पड़ती थी। परन्तु इस युग का सौन्दर्य शान्त तथा शीतल है। उसमें उन्माद के साथ-साथ प्राणमयी धारा प्रवाहित होती है। कर्म करने के एक विश्वास को दृढ़ रखने की शान्तिदायिनी प्रेरणा प्राप्त होती है।[1]

प्रेम

छायावादी कवि प्रेम के उन्मुक्त गायक हैं, प्रसाद ने स्पष्ट कहा है—

'उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।'

---

[1] डा० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक कविता में स्वच्छन्द धारा, पृ० ६१।

'पन्त' भी इसी की प्रशस्ति में 'उच्छ्वास' में लिखते हैं—

'अनिल सा लोक लोक में,
हर्ष में और शोक में,
कहाँ नहीं है स्नेह, साँस सा सब के उर में।'

उनका यह विश्वास है—

'बँधे है जीवन तार
सबमें छिपी हुई है यह झंकार,
हो जाता संसार नहीं तो दारुण हाहाकार।'

निराला का कहना है—

'प्रेम सही ही तुम असूत्र हो,
उर उर के हीरों के हार,
गुंथे हुए प्राणियों को भी
गुंथे न कभी सदा ही सार।'

इस प्रकार के आह्वान से तृप्ति न मिलने पर 'पन्त' ने 'अनंग' और 'प्रसाद' ने कामायनी में 'काम' पर कवितायें लिखीं। 'पन्त' जी का अनंग पौराणिक अनंग की स्मृति पर आधुनिक सूक्ष्म 'अनंग' कल्पना का प्रतिस्थापन है। उनका कहना है —

'ऐ असीम सौन्दर्य सिन्धु की
विपुल बीथियों के श्रृंगार
मेरे मानस की तरङ्ग में
पुनः अनंग बनो साकार।'

प्रेमपथिक प्रसाद के संपूर्ण जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा 'काम' के आधार पर ही हुई है। 'प्रसाद' के मनु को काम-गोत्रजा कामायनी तो आनन्द लोक में ले ही जाती है, स्वयं काम भी समय-समय पर आत्म-पुकार द्वारा एक संदेश दे जाया करता है। 'प्रसाद का 'काम' न केवल पौराणिक काम से भव्य उदात्त एवं आधुनिक है बल्कि 'पंत' के अनंग से भी अधिक व्यापक है।[1]

मानव, सृष्टि के आदिकाल से ही अपनी काम-तृप्ति का विविध उपक्रम रच रहा है। पर वह न तब संतुष्ट हुआ और न अब। साकार काम के भस्मीभूत होकर शिव तत्व में मिल जाने के पश्चात् निराकार काम को ही 'मन्सथ' की संज्ञा दी गयी, इसीलिये काम की निम्नांकित प्रतिध्वनि में—

---

[1] डा० नामवर सिंह : छायावाद, पृ० ४१।

'प्यासा हूँ मैं अब प्यासा
संतुष्ट ओघ से मैं न हुआ।

चिरन्तन काल से चली आती मानव संतान की काम अतृप्ति का दर्शन मिलता है। परन्तु इस अतृप्ति के परिणाम स्वरूप उत्पन्न परिस्थितियाँ प्रायः पूर्व परिचित परम्पराओं से भिन्न है। प्रसाद के मनु 'काम' के आगमन पर जिस विचित्र दशा के बीच होकर गुजरते है वह दर्शनीय है—

'श्रुतियों में चुपके चुपके से
कोई मधु धारा घोल रहा।
इस नीरवता के परदे में
जैसे कोई कुछ बोल रहा।
है स्पर्श मलय के झिल मिल सा
संज्ञा को और सुलाता है।
पुलकित हो आँखें बन्द किये
तन्द्रा को पास बुलाता है।
उठती है किरणों के ऊपर
कोमल किसलय के छाजन सी।
स्वर का मधु निःस्वन रन्ध्रों में
जैसे कुछ दूर बजे वंशी।
था व्यक्ति सोचता आलस में
चेतना सजग रहती दुहरी।
कानों के कान खोल करके
सुनती थी कोई ध्वनि गहरी'

'प्रसाद' की कामायनी में इस प्रकार प्रेम का नवीन स्वरूप चित्रित हुआ है। आनन्दवादी होने के कारण, प्रसाद ने, इस काव्य में रस की शृंगार एवं शान्त दो सीमायें स्वीकार की हैं। पूरे काव्य में, रति का निर्वचन होने के बावजूद इसका अन्त 'शम' में होता है। 'कामायनी' में श्रद्धा एव 'मनु' का प्रथम मिलन प्रेम की अन्तर्दशाओं के चित्रण में सफल है। साहचर्यजन्य प्रमाद में, रागात्मक कुतूहल बना रहता है जिसके आधार पर वे इस सत्य का दर्शन करते हैं—

'नित्य परिचित हो रहे, तब भी रहा कुछ शेष।
गूढ़ अन्तर का छिपा रहता रहस्य विशेष।'

प्राय: प्रेम की यही दशा रहती है। श्रद्धा का सामीप्य लाभ करने पर 'मनु पूछ बैठते हैं, 'कौन हो तुम खींचते यों मुझे अपनी ओर।' श्रद्धा संकेत रूप में इसका उत्तर भी देती है, फिर भी मनु कह पड़ते हैं कि 'हे अतिथि मैंने तुम्हें इसके पहले भी देखा था, पर उस समय तुम इतने शोभा संपन्न न दीख पड़े थे।' इसके पश्चात् ही 'मनु को मदिर घन में वासना के गीत गूँजते सुनाई पड़े। उनकी वेदना की परिधि चक्राकार घूमने लगी। उनकी धमनियों में नवीन रक्त का संचार हुआ और नारी मूर्ति उन्हें साकार विश्व माया कुहुक-सी दीख पड़ने लगी। उसे उन्होंने 'प्राण सत्ता के मनोहर भेद सी सुकुमार' की संज्ञा से आभूषित किया। उनके वक्ष में मधुर ज्वाला धधक उठी।'[1] उस समय प्रकृति भी उसी भाव के अनुकूल रङ्गों में रँगी दीख पड़ी। 'मनमथ' के मन-मथ देने का यह क्रियात्मक चित्रण इसके पूर्व साहित्य में अनुपलब्ध है।

परन्तु 'कामायनी' में इस आदर्श प्रेम तक पहुँचने के पहले ही 'प्रसाद' ने प्रेम को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। प्रथम तो इनमें यौवनकालीन प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ जिसकी सफलता एवं असफलता को चित्रित करने में इनकी प्रतिभा को चार चाँद लगा। परन्तु इस अवस्था की शान्ति के पश्चात् इस प्रेम के गंभीर स्वरूप का चित्रण भी वे सफलतापूर्वक कर सके। उन्होंने मानव जीवन वेदी पर विरह एवं मिलन के परिणय के पश्चात् सुख-दु:ख का नर्तन देखा था। अतएव वे इस आँख एवं मन के खेल से पूर्णरूपेण परिचित थे।

'पन्त' के प्रेम की विशेषता उनकी शैशव-सुलभ सरलता में निहित है। इसमें न मधु का-सा मिठास है और न ज्वार का-सा उफान। इसमें छोटे से छोटे पहाड़ी झरने की सरलता है। 'उच्छवास', 'आँसू' एवं 'ग्रंथि' की सरल बालिका को, जिस भोलेपन के साथ पन्त जी ने स्मरण किया है, उसके सत्य एवं सरल संबंध को जिस सरलता के साथ विचित्र किया है और उसके विछोह में जिस तरह सारा हृदय खोल कर रख दिया है वह बेजोड़ है।'[2] पन्त का अभिमत है 'शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल कमनीय।' कवि के बचपन के साथी किशोरावस्था के साथी बन जाते हैं। परन्तु यह साथ निभ नहीं पाता। कवि बालकों सदृश विकल हो उठता है। जब भी उसकी स्मृति उसके मस्तिष्क में आती है तो उसके प्राण जुगनू की तरह इधर-उधर उड़कर उसकी खोज करने लगते हैं। कवि के हृदय में एक टीस उठती है और वह कह पड़ता है—

---

[1] डा० नामवर सिंह : छायावाद पृ० ५४।

[2] डा० नामवर सिंह : छायावाद पृ० ५७।

'करुण है हाय प्रणय,
नही दुरता है जहां दुराव
करुण है वह भय
चाहता है जो सदा चाव।'

कहीं-कहीं पर प्रेम के करुण स्वरूपों को भी पन्त ने बड़ी सहृदयता से चित्रित किया है। यथा–

'अभी तो मकुट बन्धा था माथ,
हुए कल ही हल्दी के हाथ
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी चुम्बन शून्य कपोल,
हाय रुक गया वहीं संसार
बना सिन्दूर श्रंगार।'

पन्त ने प्रेम को हृदयपूर्ण पर मस्तिष्कहीन स्वीकार किया है। नव दम्पतियों के प्रेम की भावना को भी 'आज रहने दो यह गृह काज प्राण रहने दो यह गृह काज' जैसी पंक्तियों द्वारा पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में कविवर पन्त प्रत्येक पंक्ति में भाव के एक स्वरूप को चित्रित करने में सफल एवं सक्षम हैं। 'ग्रन्थि' तक पहुँचते-पहुँचते यह निराश प्रेमी अपनी विवशता में कह पड़ता है—

'शैवलिनि जाओ मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल आलिंगन करो तुम गगन का,
चन्द्रिके चूमो तरङ्गों के अधर,
... ...
पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है।'

निराला क्रान्तिकारी कवि थे। प्रेम को दो आत्माओं की पृथक् मिलन-सत्ता के रूप में स्वीकार करते थे। इस अवस्था में इन युगल-प्रेमी आत्माओं के बीच किसी भी प्रकार का व्यवधान उन्हें स्वीकार न था। उनके अनुसार—

'दिव्य देहधारी ही कूदते हैं इसमें प्रिये
पाते हैं प्रेमामृत, पीकर अमर होते हैं।'

वे सदा सर्वदा युगल-आत्माओं में एक अनुभव की स्थिति को स्वीकार करते हैं। इसीलिये वे कहते हैं—

'बहने दो, रोक टोक से कभी नहीं रुकती है
यौवन मद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती हैं ।'

कवि को प्रेम के क्षेत्र में जाति एवं वर्ण की मान्यतायें अमान्य है—

'दोनों हम भिन्न वर्ण
भिन्न जाति भिन्न रूप
भिन्न धर्म भाव पर
केवल अपनाव से प्राणों से एक थे ।'

'जूही की कली' से लेकर 'गीतिका' के गीतों तक निराला के प्रेम गीत बिखरे पड़े हैं। 'तुलसीदास' एवं 'राम की शक्ति पूजा' में प्रेम की इस अन्त:सलिला का दर्शन होता है। उदाहरण स्वरूप निम्नांकित पंक्तियाँ ली जा सकती है—

याद आया उपवन,
विदेह का, प्रथम स्नेह का, लतान्तराल मिलन,
नयनों से नयनों का गोपन, प्रिय संभाषण ।
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन ।
काँपते हुए किसलय, झरते पराग-समुद
गाते खग-नव जीवन-परिचय-तरु मलय-वलय ।
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय
जानकी नयन कमनीय, प्रथम कम्पन तुरीय ।'

युद्ध के क्षेत्र के बीच भी, स्वाभाविकता पर बिना किसी प्रकार का आघात किये, इस प्रकार प्रेम के विविध स्वरूप को सूक्ष्मतापूर्वक चित्रित कर देना, 'निराला' की प्रेम व्यंजना की सफलता का प्रतीक है। यहाँ कवि ने प्रत्येक बात को शृङ्गार की अजस्र धारा से पुष्ट किया है : इसमें एक आह्वान के साथ ही अनुभूति और प्रथम दर्शन का उन्माद भी है; फिर भी अश्लीलता किसी प्रकार नहीं आ सकी है।

'महादेव' 'मीरा' की तरह प्रेम की अनन्य गायिका हैं। उन्होंने स्पष्ट उद्घोष किया है—

''जाने क्यों कहता है कोई,
मैं तम के परदे में खोई ।
मैं कण-कण में ढाल रही सखि आंसू के मिस प्यार किसी का ।
मैं पलकों में पाल रही सखि यह सपना सुकुमार किसी का ।

'फ्रायड' के आधार पर मनोविश्लेषण करने वाले व्यक्ति यह कह सकते हैं कि मानव का प्रत्येक क्रियाकलाप वासना द्वारा प्रेरित होता है अतएव इसमें भी किसी प्रेमी एवं प्रियतम की चर्चा है। बात भी कुछ हद तक ठीक है कि 'काम' मानव जीवन की मुख्य प्रेरक शक्ति है; फिर भी जीवन में ऐसे क्षण भी होते हैं जब व्यक्ति अपनी काम भावना से क्षणिक मुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक विचार करता है। उसकी भावनायें परिष्कृत होकर उदात्तावस्था को पहुँच जाती हैं। काम स्वत: ऐसी मनोवृत्ति है जिसको परिष्कार के द्वारा उदात्तावस्था की ओर उन्मुख किया जा सकता है। प्राय: हर प्रणयानुभूति में लौकिक से अलौकिक की ओर उन्मुख होने का बीज निहित रहता है क्योंकि इन दोनों प्रकार के प्रेम का मूल तत्व एक है। लौकिक प्रेम के बीज अलौकिक प्रेम का यथास्थान चित्रण महादेवी में मिलता है। वे स्पष्ट से कहती हैं--

> **कैसे कह दूँ अलि सपना है,**
> **मेरे मूक मिलन की बात,**
> **भरे हुए अब तक फूलों में,**
> **मेरे आँसू उनके हास।**

महादेवी पर आक्षेप करते हुए कतिपय आलोचक कहते हैं कि वे अनुमान के आधार पर लिखती हैं। कुछ लोगों का मत है कि उनमें, अनुभूति की सच्चाई नहीं है। कुछ लोग मानते हैं कि इन कवियों को रहस्य की अनुभूति होती ही नहीं। बात जो भी हो महादेवी तो स्पष्ट रूप से कहती हैं--

> **'जो न प्रिय पहचान पाती।**
> **दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत सी तरल बन।**
> **क्यों अचेतन रोम पाते, चिर व्यथा मय सजग जीवन!**
> **किसलिये हर साँस में सजल दीपक राग गाती।,**

निष्कर्ष

छायावादी एवम् स्वच्छन्दतावादी कवियों पर दृष्टिपात करने से हमें ज्ञात होता है कि वे यथार्थ में सौन्दर्य एवं प्रेम के कवि थे; परन्तु इसके उन्माद में वे मानवता का तिरस्कार न कर सके। इस प्रकार मानव प्रेम, प्रेम एवं सौन्दर्य की की त्रिवेणी के संगम से इनका काव्य पूर्णरूपेण अलंकृत था। इस भावना में प्रत्येक कवि अपनी निजी मान्यता के आधार पर क्रियाशील होता दृष्टिगोचर होता था। 'वर्ड्सवर्थ' प्रकृति से परे मानव को हेय दृष्टि से देखता था। उसकी क्रान्ति की भावना भी एक बार प्रज्ज्वलित हो कर बुझ गई थी। उसके अन्दर प्रेम की उस

तीव्रता एवं वायव्य-दीप्ति का दर्शन नहीं होता जो 'शेली' के अन्दर दृष्टिगोचर होती है। 'कीट्स' के सौन्दर्य एवं प्रेम का एक विशिष्ट आधार था, फिर भी वह 'शेली' की तरह क्रान्तिकारी न था। 'बायरन' प्रेम, सौन्दर्य एवम् क्रान्ति इन तीनों दृष्टियों से अपने समकालीन कवियों से भिन्न था। 'शेली' अनन्य प्रेम एवम् विशुद्ध प्लेटोनिक सौन्दर्य का कवि अवश्य था। छायावादियों में उसके प्रेम एवं सौन्दर्य सम्बन्धी धारणा का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ। 'पन्त' भी कहीं-कहीं उसी की तरह प्लेटोनिक प्रेम के विवेचन में रत दीख पड़ते थे। 'प्रसाद' उस प्रभाव से दूर रह कर भी प्रेम के चित्रण में अद्वितीय थे।

क्रान्ति की दृष्टि से 'शेली' की करुण पुकार एवम् 'बाइरन' के विध्वंसक, उद्बोधन का छायावादी काल के हिंदी साहित्य में कम दर्शन होता है। सामाजिक परिवर्तन एवम् मानवता के उदारता की जो अदम्य अभिलाषा 'शेली' एवम् 'बाइरन' में दीख पड़ती है, वह अद्भुत है। छायावादी साहित्य में इसका अभाव है। छायावादी कवि मानव उद्धार के प्रेमी अवश्य थे, पर उसके लिए वे क्रान्ति के स्थान पर बौद्धिक परिवर्तन के मुखापेक्षी थे। 'निराला' का अपराजेय व्यक्तित्व यथास्थान चतुर्दिक क्रान्ति का पक्षपाती अवश्य दीख पड़ता है, फिर भी उसमें वैसी समरसता नहीं है जैसी 'शेली' में दिखाई पड़ती है, या वैसी क्रान्ति का स्वरूप नहीं है जो 'बाइरन' में मिलती है। क्रान्ति के अभाव में ये कवि मानव कल्यण के लिए मानवता को उद्बुद्ध एवम् प्रबुद्ध किए हैं। इनका स्वर जनमानस की चेतना को झकझोर कर उसे सचेत बना सका है। इस प्रकार अपने विचारों के वैयक्तिक स्वरूप को इन कवियों ने इस प्रकार चित्रित किया है जिससे आगत तथा अनागत में एक समन्वय स्थापित किया जा सका है।

७

अन्य प्रवृत्तियाँ

मानवतावाद, सौन्दर्य, प्रेम एवम् प्रकृति चित्रण, इन चार प्रवृत्तियों की व्याख्या' पिछले अध्यायों में प्रस्तुत की गई है। फिर भी कुछ अन्य ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिन पर अध्ययन की दृष्टि से विचार कर लेना परमावश्यक है।

रहस्य भावना

स्वच्छन्दतावाद में रहस्य भावना को प्रायः सभी आलोचकों ने स्वीकृति प्रदान की है; पर छायावाद एवम् रहस्यवाद को लेकर पर्याप्त विवाद रहा है। परन्तु इस विवेचन में जाने से पहले, हमें यह देख लेना समीचीन होगा कि रहस्य-वाद क्या है ? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि अपनी अन्तःस्फुरित, अपरोक्ष अनुभूति द्वारा, सत्य, परम तत्व, अथवा ईश्वर का साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है।[1] आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।' डा० गंगा प्रसाद पांडेय के शब्दों में रह-स्यवाद हृदय की दिव्य अनुभूति है। श्री परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार 'रहस्यवाद, काव्य की एक धारा विशेष को सूचित करता है। वह प्रधानतः, उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति को सिद्ध करता है जो विश्वात्मक सत्ता की प्रत्यक्ष गंभीर एवम् तीव्र अनुभूति के साथ सम्बन्ध रखती है। आचार्यप्रवर वाजपेयी का छाया-वाद एवम् रहस्यवाद का विवेचन विचारणीय है। उनका अभिमत है कि प्रसादजी के अनुसार विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति या शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य लहरी के 'शरीरं त्वं शम्भो' का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है। वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्रकृति सौन्दर्य के द्वारा 'अहं' का 'इदं' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है[2]।'

---

[1] रहस्यवाद : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६३५।

[2] महादेवी वर्मा—शची रानी गुर्टू — यामा का दार्शनिक आधार—वाजपेयी

बाजपेयी जी ने 'व्यष्टि सौन्दर्य दृष्टि' को 'छायावाद' तथा समष्टि सौन्दर्य दृष्टि' को 'रहस्यवाद' माना है। इनको स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'व्यष्टि सौन्दर्य बोध एक सार्वजनीन अनुभूति है। यह सहज ही हृदयस्पर्शी है। यह सक्रिय एवम् स्वावलम्बिनी काव्य चेतना की जन्मदात्री है। समष्टि सौन्दर्य उच्चतर अनुभूति है।'[1]

पाश्चात्य देशों में रहस्यवाद का पर्याप्त विवेचन हुआ है। 'आर्थर विलियम हापकिन्स' ने रहस्यवाद को तीन प्रकार का माना हैं—

(१) प्रकृति रहस्यवाद
(२) मानवता रहस्यवाद
(३) चर्च रहस्यवाद

'चर्च रहस्यवाद' या धार्मिक संप्रदायों से संबंधित[2] रहस्यवाद का प्रत्येक देश पर किसी न किसी प्रकार प्रभाव पड़ा है, पर प्रथम दो प्रकार की रहस्य भावना ने छायावाद' एवम् स्वच्छन्दतावाद को विशेष रूप से प्रभावित किया है। ये दोनों ही वाद इन्हीं से संबद्ध रहे हैं।

'प्रकृति रहस्यवाद' 'स्वच्छन्दतावाद' एवम् 'छायावाद' में पूर्ण विकसित रूप में उपस्थित हुआ है। विश्व-सुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप इसी पर आधारित है 'वर्डस्वर्थ,' 'शेली,' 'ब्लेक,' 'पन्त,' 'जयशंकर,' 'निराला,' 'महादेवी' आदि की कविताओं में इसका दर्शन होता है। 'वर्ड्सवर्थ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। उसके अनुसार प्रकृति के कण-कण में एक चिरन्तन सत्ता व्याप्त है। प्रकृति ही यथार्थ में वह आवरण है जिसके झीने पट में वह सत्ता छिपी रहती है। प्रकृति सामीप्य द्वारा इसका दर्शन किया जा सकता है। 'प्रील्यूड' में 'आल्प्स पर्वत' पर परिभ्रमण करते हुए, उसे इसका आभास मिला है। 'लाइन्स' नामक कविता में उसने स्वीकार किया है कि—'लम्बी अनुपस्थिति के बावजूद प्रकृति के ये सुन्दर स्वरूप मेरे लिये वैसे नहीं थे जैसे कि प्राकृतिक दृश्य अन्धे के लिये होते हैं। मैं अपनी थकान के क्षणों में उनकी मधुर अनुभूति का ऋणी हूँ।'[3]

---

[1]महादेवी वर्मा—शची रानी गुर्टू—यामा का दार्शनिक आधार—बाजपेयी।

[2]मिस्टिसिज्म ओल्ड एण्ड न्यू—मिस्टिसिज्म इन पोयट्री, सर ए० डब्ल्यू हॉपकिन्स।

[3]These beauteous forms through a long absence
Have not been to me as a landscape to a blind man's eye.
But I have owned to them.
In hours of weariness, sensations sweat.

'वर्ड्सवर्थ' का मस्तिष्क एवम् हृदय यथार्थ में पूर्व अनुभव द्वारा उद्‌बुद्ध एवम् स्मृति में संकलित इन अनुभूतियों द्वारा पूर्णरूपेण प्रभावित था। परिणाम स्वरूप, उसके विचार उस शान्ति के परिचायक बन सके जो क्षतिपूर्ण तथा विरोपक थी। कवि ने अपनी इस विचित्र अनुभूति को चित्रित करते हुए कहा है—'यह वह स्वर्गीय अनुभूति है जिसमें रहस्यमय ढंग से थका देने वाले इस अबोध विश्व का भार हल्का हो जाता है और नश्वर शरीर के स्पन्दन तथा मानवीय रक्त की गति-विधि निलम्बित हो जाती है। हम इस अवस्था में अपने शरीर में सुषुप्ति का अनुभव करते हैं, फिर भी हमारी आत्मा परम संजीव हो उठती है।'[1] इस प्रकार की शारीरिक सुषुप्ति तथा आत्म-जागृति की अवस्था ही सच्ची रहस्यवादी अवस्था कही जा सकती है। इसी अवस्था में कवि प्राकृतिक वस्तुओं के दर्शन द्वारा समाधि अवस्था को प्राप्त होकर इस प्रकृति के अन्तराल में छिपे हुए रहस्य का दर्शन कर सकने में सफल होता है। इसी अवस्था को कवि ने 'ब्लेसेड मूड' की संज्ञा से अभिहित किया है इस अवस्था की प्रादुर्भूति के साथ ही सभी सांसारिक बन्धन समाप्त हो जाते हैं। बाह्य दृष्टि से तो आत्म विस्मृति का भाव जाग्रत होता है, पर अन्तःकरण सतत जागरूक रहता है। 'वर्ड्सवर्थ' के शब्दों में 'आध्यात्मिक जागरण शारीरिक सुषुप्ति का कारण है।'[2] इसी के पश्चात् कवि अपनी अन्तर्दृष्टि द्वारा सजीव के अन्तरतम में प्रवृष्ट करके' उनके रहस्यों को जान सका है।[3]

'वर्ड्सवर्थ के इस रहस्यवादी विचार की प्रगति के तीन स्तर हैं। उसका शैशव प्रकृति द्वारा उद्‌बुद्ध आनन्द प्रदाता अनुभूतियों के प्रति विशेष रूप से सतर्क था। इस अवस्था को हम ऐन्द्रिय अनुभूति की अवस्था मानते हैं, फिर भी इस ऐन्द्रिय अनुभूति का प्रकृति के साथ ऐसा तादात्म्य था कि उसे—'इसी में अपने व्याकुल हृदय के लिए कभी न असफल होनेवाले आनन्द के सिद्धान्त तथा

[1]That blessed mood in which burthen of mystery
In which heavy and weary weight of all unintellegible world.
Is lighted, until the breath of this corporeal frame
And even the most, motion of our human blood
Almost suspended, we are laid asleep
In body and become a living soul.

[2]Spiritual awakening follows bodily sleep.

[3]See into the life of things.

विशुद्ध रजोवृत्ति की प्राप्ति होती थी।'[1] परन्तु वह इन प्रारम्भिक अनुभवों को उदात्त बना सका। यह अवस्था यथार्थ में उसके लिए आध्यात्मिकता का प्रतीक बनकर उसे मानवीय भाग्य पर विचार करने के लिये उद्यत कर सकी। उसने लिखा है कि—'मैं अब प्रकृति पर एक विश्वासी युवक की तरह दृष्टिपात नहीं करता। इसमें मुझे मानवता के शान्त एवं करुण संगीत के स्वर सुन पड़ते हैं।' इस प्रकार प्रकृति चिन्तन द्वारा कवि मानव-प्रकृति चिन्तन के रहस्यमय स्वरूपों का दर्शन कर सका। परन्तु इस स्थल पर प्रकृति उसे चिरन्तन सत्ता का आगार दीख पड़ी। अब प्रकृति उसके लिये अनुभूति का विषय बन गई। उसमें उसे उस सर्वव्यापी का आभास मिला, जो यथार्थ में मानवीय आत्मा से संबद्ध था। वर्ड्सवर्थ ने इसी संबंध को निम्नांकित पंक्तियों द्वारा हृदयंगम कराया है—'प्रकृति ने अपने क्रिया कलापों से उस उस मानवीय आत्मा को संबद्ध किया जो प्रत्येक व्यक्ति में उपस्थित है।'[2]

शेली भी सर्वात्मवाद के सिद्धान्त में विश्वास करता था। अधिक सूक्ष्मता पूर्वक विचार करने से हमें 'शेली' एवं 'वर्ड्सवर्थ' की इन मान्यताओं में स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है। 'फ्रैंकथिली' ने सर्वेश्वरवाद की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'सर्वेश्वरवाद उस सिद्धान्त को कहते हैं, जो यथार्थ को स्वरूप एवं सार रूप में एक मानता है और सामंजस्य भावना को सचेतन और ईश्वरीय समझता है। इस ज्ञान के आधार पर ईश्वर न सृष्टि से विलग है और इससे दूर। वह इसी में है और इसके कण-कण में व्याप्त है। वह अनुभवातीत होने के बावजूद भी सर्वव्यापी है। व्यक्तियों एवं विशिष्ट उपादानों की इससे अलग कोई सत्ता नहीं है, वे या तो इस विश्वजनीन क्रिया के परिणाम हैं या इस पूर्णता का एक अंश। आवश्यकतानुसार सभी वस्तुयें ईस्वर से उद्‌भूत होती हैं।'[3]

---

[1] In thee for this uneasy heart of ours, I find
A never failing principle of joy,
And purest passion.

[2] To her fair work did nature link,
The human soul that through me ran.

[3] By pantheism we mean that doctrine, which conceives of reality as one in essence and form, and thinks of this unity as somehow rational and divine. Hence according to this teaching.

इस दृष्टि से वर्ड्सवर्थ पर विचार करने पर हमें उसका सर्वेश्वरवाद इसके अनुकूल दीख पड़ता है, पर शेली में उपर्युक्त विचारधारा पूर्णरूप से नहीं मिल पाती। उसने 'ट्रांसेण्डेंण्ट और इम्मानेन्ट' शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। उसकी कविता में समय की गतिविधि में क्रियाशील रूप में उपस्थित तत्व पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं पा सके हैं, फिर भी वह उस शाश्वत दीप्ति को भिन्न रूप से आवेष्टित कर सका है। वह जीवन के जाल को मानव, पृथ्वी, पशु, वायु, जल आदि के द्वारा अविवेकपूर्ण ढंग से बुना मानता है। उसके अनुसार इस सृष्टि की दीप्तिमयता, उस अनुभवातीत प्रकाश को अपूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित करने के कारण ही इस रूप में दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार 'शेली', प्रकृति एवं जीवन, मैटर एवं स्पिरिट के द्वन्द्व का एक चित्र उपस्थित करता है। परन्तु उसका विश्वास है कि इस द्वन्द्व में सत्य ही अन्ततोगत्वा विजयी होता है।

शेली प्रकृति को उस परम सत्ता का पूर्ण प्रतिबिम्ब नहीं मानता। इसीलिये अपने चित्र में वह उस प्रकृति द्वारा प्रच्छन्न आत्मा को अस्पष्ट एवम् प्रतीक रूप में उपस्थित करता है। उसके इस प्रकार के चित्रण कल्पना के विविध रंगों से रंगे हैं। अगर कभी वह सर्वचेतनतावाद का अपनी कविता में चित्रण करता है तो उसका मुख्य उद्देश्य दर्शन एवम् कवित्व के सामंजस्य द्वारा कविता को उदात्त बनाना है। वह हमें ताराखचित शून्य में इसलिये ले जाता है कि उसके द्वारा हम इसके अमित प्रकाश पुंज एवम् प्रेम का रसास्वादन कर सकें। 'माउण्ट ब्लैंक' में पर्वत उसके लिए उस शक्ति का प्रतीक है जो अपनी शान्ति में इस विश्व से दूर अनअभिगम्य रूप में पड़ा रहता है।

इन विचारों के रहते हुए उसके प्रकृति चित्रण में अनन्त शक्ति का चित्रण हुआ है। 'हिम टू इंटेलेक्चुअल ब्यूटी' में उसने स्वीकार किया है कि 'अदृश्य शक्ति की विचित्र छाया, इस विविध विश्व तथा मानव हृदय का अस्थिर तथा चंचल पंखों से अवलोकन करती है।' 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड में उसने इस बात को व्यक्त किया है कि 'यह ऐश्वर्यमय पृथ्वी किसी उत्कृष्ट सौन्दर्य

God is an entity not separate from world and remote from it, but in it and of it—immanent and transcendent, every thing partakes of nature of God. The particular objects and individuals. have no absolute existence of their own, but are either modes of the universal substance, or parts of the divine whole. Moreover all things arise from God by necessity.—Pantheism in *Encyclopaedia of Religion* by Frank Thilley.

की छाया है ।' इस प्रकार इस बात को स्वीकार किया जा सकता है कि 'शेली' भी प्रकृति के रहस्य में विश्वास करता था। फिर भी अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रकृत रूप से प्रकृति का रहस्यवादी कवि वर्ड्सवर्थ ही है।

छायावादी कवियों में भी प्रकृति रहस्यवाद का दर्शन होता है। महादेवी ने लिखा है कि जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तन की विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयत्न किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतना में और दूसरा ससीम हृदय में समाया हुआ है, तो प्रकृति का एक-एक-अंश अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा ।'[1] प्रकृति महादेवी के लिए विराट सत्ता का आवास है—

'लय गीत मदिर गति ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर ।
आलोक तिमिर सित असित चीर,
सागर गर्जन रुन झुन मँजीर ।
उड़ता झंझा में अलक जाल
मेघों में मुखरित किंकिणि स्वर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर ।
रवि ससि तेरे अवतंस लोल
सीमन्त जटिल तारक अमोला
चपला विभ्रम स्मिति इन्द्रधनुष
हिमकण बन झरते स्वेद, निकरा
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर ।'

महादेवी 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की भावना को मान्यता देती हैं। इस ज्ञान के साथ ही व्यष्टि एवं समष्टि उनके लिए प्रायः एक बार एकाकार हो उठे हैं। इसी आधार पर अपने अङ्गों को उन्होंने कहीं-कहीं विराट प्रकृति का अंश माना है। उन्हें यह विश्वास होने लगा कि उनकी निःश्वासों से ही झंझावात बहता है। प्रलय के घन को तरह उनके आँसू में उत्पात छिपा है। उनके हृदय की टीस ही विद्युत की कौंध है। तात्पर्य यह कि वे उसी विराट् सत्ता का अंश हैं जो प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है। इस प्रकार उनके प्रियतम की स्मृति से अनुप्राणित यह प्रकृति उनके शृंगार का एक अनुपम साधन बन गई है। इसीलिए उसका आह्वान करती हुई वे कहती हैं—

[1] अपनी बात : यामा ६ ।

रंजित कर दे यह शिथिल चरण
ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर
ला रजनी गन्धा का पराग।
यूथी की मीलित कलियों से, दे मेरी कबरी संवार।
पाटल के सुरभित रङ्गों से
रङ्ग दे हिम सा उज्ज्वल दुकूला
गुंथ दे रशना में अलि गुन्जन।
से पूरित झरते बकुल फूल।
रजनी से अंजन माँग सजनि दे मेरे अलसित नयन सार।'

यह है उनका श्रृंगार और प्रिय मिलन की भावना। वाजपेयी जी के अनुसार महादेवी 'सगुण साकार' कोटि की रहस्यवादिनी है। यहाँ दिव्य व्यक्तित्व का प्रेममय करुणामय एवं आनन्दमय होना स्वतः स्वीकृत है। कभी-कभी वे इस सीमा का अतिक्रमण करके निर्गुण निराकर की ओर भी उन्मुख हुई हैं। उनका कहना है कि 'जड़ चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन जड़ के बिना आकाश शून्य। इन दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा में हो, चाहे किसी बाद के अन्तर्गत हो, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो चाहे अपार्थिव की, चाहे दोनों में अविच्छिन्न संबंध की, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मानव हृदय से प्रवाहित हुई है।'[1] फिर इतनी बात का ज्ञान होने के बावजूद उनकी अनुभूति की सचाई पर अविश्वास करना अनुचित है। प्रकृति 'महादेवी' के श्रृंगार की वस्तु है, प्रियतम की ओर संकेत करनेवाली सहचरी है, उनकी आत्मा की छाया है और उनके जीवन का अंश है। 'अपने असीम की ओर बढ़ती हुई 'महादेवी' प्रकृति के कण-कण से परिचित होती हुई आगे बढ़ी हैं और सबका क्रन्दन पहचान कर आश्वस्त हो गई हैं। उनकी दृष्टि गहरी भी है विशाल भी।'[2]

पन्त छायावादियों में प्रकृत रहस्यवाद के प्रमुख कवि है। प्रकृति के रहस्यात्मक चित्र उनकी कविताओं में प्रभूत मात्रा में उपस्थित हैं।

'शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर

[1] यामा, पृ० ११।
[2] महादेवी वर्मा : शचीरानी गुर्टू, महादेवी और प्रकृति, पद्मसिंह कमलेश पृ० ७६।

हो उठता चंचल चंचल।
....

देख वसुधा का यौवन भार,
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्‌गार,
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने सौरभ के मिस कौन,
संदेश मुझे भेजता मौन।',

अंग्रेजी कवि वर्ड्‌सवर्थ की ही तरह वे भी कह उठते हैं—

'आत्मा है, सरिता के भी
जिससे सरिता सरिता है
जल जल है लहर लहर रे
गति गति, सृति चिर भरिता है।'

उनका मत है—

'एक ही तो असीम उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास;
ताल जल-निधि में हरित विलास
शरत अम्बर में नील विकास;
वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास
काव्य में रस कुसुमों में बास।'

'प्रसाद' प्रकृति को शक्ति से अपूर्ण मानते हैं। उन्हें इस में एक अखण्ड सत्ता का आभास मिलता है। उनकी निम्नांकित पंक्तियाँ, इस दृष्टि से दर्शनीय है—

'महा नील उस परम व्योम में अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण, किसका करते हैं सन्धान।
छिप जाते हैं और निकलते, आकर्षण में खिंचे हुए,
तृण वीरुध लहलहे हो रहे, किसके रस में सिंचे हुए।
सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ,
सदा मौन से प्रवचन करते, जिसका वह असितत्व कहाँ।'

प्रकृति के रहस्यपूर्ण वातावरण में निराला की बुद्धि भी रमी है। यथा—

'अस्ताचल रवि, जल छल—छल छवि,
स्तब्ध विश्व कवि जीवन उन्मन,

मन्द पवन बहती सुधि रह रह
परिमल की कह कथा पुरातन ।
दूर नदी पर नौका सुन्दर
दीखी मृदुता बहती ज्यों स्वर।
वहाँ स्नेह की प्रतनु देह की
बिना गेह की बैठी नूतन
ऊपर शोभित मेघाभासित
नीचे अमित नील जल दोलित
ध्यान – नयन – मन चिन्त्य प्राण धन
किया शेष रवि ने कर अर्पण ।

इस प्रकार प्रकृति रहस्यवादी कवि के रूप में जयशंकर प्रसाद, पन्त, महादेवी तथा वर्ड्सवर्थ एवम् शेली के दर्शन होते हैं ।

आर्थर विलियम हापकिस के अनुसार मानवता रहस्यवाद में हमें मानव प्राणी के अन्दर एकता की भावना का दर्शन होता है । इसका उद्देश्य ऐसे अनुभव को चित्रित करना है जिसके आधार पर हम जीवन को सही रूप में समझ सकें । समाज-सेवा को इसका मूल आधार माना जा सकता है। 'स्वच्छन्दतावादी' एवम् 'छायावादियों' में यह प्रवृत्ति भी पूर्णरूप से विद्यमान थी । 'मानवतावाद' में इसका निरूपण किया गया है ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद में 'रहस्यवाद' के विविध रूपों का चित्रण हुआ है ।

प्रतीक योजना

प्रतीक शब्द प्रतिपूर्वक 'इण' धातु से बना है । 'गतिः गमनम्, गतिः प्राप्तिः, गतिर्ज्ञामम्' के अनुसार, इसका अर्थ चलना, प्राप्ति या पहुँचना और ज्ञान होता है । प्रति इण गतौ में 'इण' का 'ई' ही शेष रहता है । इसमें विषय प्रत्यय और दीर्घीकरण से 'प्रती' बन जाता है और 'स्वार्थे 'कप्' प्रत्यय के योग से प्रतीक शब्द सिद्ध हो सकता है । इस सिद्धि के अनुसार प्रतीक का अर्थ हुआ, वह वस्तु जो अपनी मूल वस्तु में पहुँच सके अथवा वह चिन्ह जो मूल का परिचायक हो ।'[1] भारतीय साहित्य-शास्त्र में उपलक्षणम् शब्द का प्रयोग हुआ है । 'एक पदेन तदर्थान्यं पदार्थ कथनमुपलक्षणम्' के अनुसार जब कोई वस्तु इस रूप में प्रयुक्त हो कि वस्तु से उसी के समान अन्य वस्तुओं का अवबोध हो तो उसे शब्द के उपलक्षण रूप में प्रयुक्त माना जायगा ।

[1]छायावाद के गौरव चिन्ह : प्रो० क्षेम, पृ० २३६ ।

कुछ लोग 'प्रतीक' को अंग्रेजी शब्द 'सिम्बल' का हिन्दी अनुवाद मानते है। उनके अनुसार इस शब्द का संस्कृत साहित्य में इस रूप में प्रयोग नहीं हुआ है।

'प्रतीक' शब्द का समुचित मूल्यांकन करने के लिये हमें 'प्रतीकवाद' के इतिहास पर दृष्टिपात कर लेना चाहिए। १९वीं शताब्दी में यह फ्रांस से आरम्भ होकर धीरे-धीरे इंग्लैंड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों में फैल गया। इस विचारधारा के मुख्य प्रतिपादक मेलार्मे का कहना है कि कविता का आनन्द उसे क्रमशः समझकर रस लेने में निहित है। स्पष्ट कथन से इसका तीन चतुर्थांश आनन्द नष्ट हो जाता है। इस वाद के प्रवर्तकों का अभिप्राय एक विशिष्ट अभिव्यंजना शैली से था जिसमें शब्दों के अर्थबोध, स्वरूपबोध, एवं चित्रबोध के स्थान पर उनके द्वारा मनोस्थितियों के प्रकाशन की व्यवस्था की गई थी।'[1] परन्तु इसके साथ ही 'इस विचारधारा के पीछे यह दार्शनिक धारणा थी कि यह वस्तुजगत किसी रहस्यमय सूक्ष्म जगत् की प्रतिच्छाया है और उसका प्रत्येक पदार्थ, उस रहस्यमय जगत् के सूक्ष्म पदार्थ का प्रतीक है।'[2]

प्रतीकवादी प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति, संवेदना, एवं बोध की भिन्नता की स्वीकृति के साथ ही प्रत्येक भाव, अनुभाव एवं संवेदना की भिन्नता के परिपोषक थे। वे अभिव्यक्तिकर्ता कवि के महत्व को स्वीकार करते थे। उनका विचार था कि अनुभव एवं उस अनुभव की अभिव्यक्ति इतनी क्षिप्र गति से क्रियाशील होती है कि सामान्य भाषा के द्वारा उन्हें अभिव्यक्त कर सकना दुष्कर है। इसके साथ ही लेखक के हृदय में उठने वाले भावानुभाव भी अपनी निजता की इकाई में इतने भिन्न होते हैं कि उन्हें पकड़ कर तद्वत अभिव्यक्ति दे पाना कठिन है। फिर भी कवि अपने व्यक्तित्व एवं अनुभव की विशिष्टता के आधार पर इन्हें अभिव्यक्ति प्रदान करता है। ये कवि के अनुभव उसके देश, काल तथा सामाजिक व्यवस्था से संबद्ध होते हैं। इसलिये इनका परिवर्तन साहित्य का परिवर्तन होता है। साहित्य का परिवर्तन, प्रतीकों में परिवर्तन के लिये भी लेखकों को बाध्य करता है, परन्तु प्रतीकों के परिवर्तन की गति कुछ मन्द होती है। ये किसी भी साहित्यिकवाद या राजनीतिक मत की तरह क्षिप्र गति से नहीं बदलते। प्रायः यह देखा जाता है कि उपमान तो पुराने हैं केवल उसके प्रयोग में नवीनता आ गई है।

प्रतीकों के सदा दुहरे अर्थ होते हैं, प्रथम बाह्य दूसरे आन्तरिक। इसीलिये प्रत्येक ऐसी कला को प्रतीक माना गया है जिसमें अवचेतन के व्यक्तिगत एवं जातीय

[1] **मूल्य एव मूल्यांकन—प्रतीकवाद : डा० रामरतन भटनागर।**

[2] **वही।**

तत्व सम्मिलित हों। 'फ्रायड' ने कला प्रतीकों में दमित अवचेतन की इच्छाओं की चर्चा की है। इसके अतिरिक्त 'युंग' ने उसी कला को प्रतीक माना है जहाँ जातीय एवम् सांस्कृतिक तत्वों की अभिव्यक्ति हुई हो। अतः 'फ्रायड' ने कला में बौद्धिकता, तथा युंग' ने जातीय तत्वों की अनिवार्यता को महत्व दिया है। फ्रायड ने कलाओं को रति इच्छाओं से भी सीमित कर दिया है। युंग ने उसमें मानव प्राणियों की उत्कट इच्छाओं का विस्तार किया है। उन्होंने कला में मूलादर्शात्मक (आर्की-टाइपल) आकांक्षाओं तथा आकृति पूर्ण धार्मिक प्रतीकों को स्वीकार किया है।' 'स्टेकेल' ने कलाओं में नैतिक तथा धार्मिक प्रतीकों को ग्रहण किया है।[1]

स्वच्छन्दतावादी एवम् छायावादी साहित्य में प्रतीकों का प्रभूत प्रयोग हुआ है। जब 'ब्लेक' इस बात को कहता है कि एक गायक चिड़िया पूरे स्वर्ग को हिला सकती है, तो उसका तात्पर्य केवल छोटी चिड़िया से नहीं अपितु उस शक्ति-पुंज से है जो उस प्रकार का कार्य कर सकती है। 'बाइरन' के प्रत्येक नायक की सफ-लता, असफलता, इच्छा एवम् अभिलाषा अदम्य उत्साह एवम् क्रान्तिकारी भावना उसके व्यक्तित्व के उसी अंश के प्रतीक के रूप में चित्रित है। 'कीट्स' ने अपनी 'नाइटिंगेल' को उस सौन्दर्य का प्रतीक माना है जो परिवर्तन एवम् मृत्यु का विषय नहीं है। इस चिड़िया की संगीत के सूक्ष्म आकर्षण के वशीभूत होकर तथा स्वयम् अपनी कल्पना के अदृश्य पंख पर सवार होकर कवि रोमांस एवम् प्रकृति के प्रांगण में प्रवेश करता है जहाँ कष्ट एवम् विषाद से उसे मुक्ति मिलती है। उसकी 'मेड्-यूसा' 'ईभ' एवं 'हेलेन' आदि नायिकायें, आदर्श सौन्दर्य की प्रतीक हैं। 'एण्डिमिअन' में ग्रीक गड़ेरिये और देवी की कहानी कवि की आत्मा के उस साहस पूर्ण कार्य का प्रतीक है जो आवश्यक सौन्दर्य से तादात्म्य स्थापित करना चाहता है। अपनी कविता 'स्लीप एण्ड पोयट्री' में उसने लिखा है 'अत्यधिक विचित्रता के साथ तत्पर होकर उस रथ का वाहक आगे बढ़ने के लिए जल्दी करता है।'[2] यहाँ रथा-रोही भी प्रतीक है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों में 'शेली' प्रतीक के प्रयोग में अत्यधिक कुशल है। 'परदे' का प्रतीक इसकी कविताओं में दृष्टिगोचर होता है। आरम्भिक अवस्था

---

[1]आधुनिक हिन्दी साहित्य के बदलते हुए मानों का अध्ययन, रमेश प्रसाद मिश्र।

[2]Most awefully intent;
The driver of those steeds is forward bent
And seems to Listen.

से लेकर, उसकी कविता की परिपक्वावस्था तक यह 'परदे' का प्रतीक विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। 'क्वीन मैब' में वह कहता है कि यह परदा अच्छाई और सौन्दर्य को आक्रान्त किये रहता है। 'एपिप्साइचिडिअन' में कवि आनन्द पूर्वक उस घड़ी का इन्तजार करता है जब 'एमिली' के साथ वह उस स्थल पर पहुँचेगा जहाँ एक ऐसी कन्दरा है, जिसके बीच से सजग दिन भी नहीं झाँक सकता। यहाँ ऐसा 'परदा' है जिसमें हमारी शान्ति छिपी है। 'रीभोल्ट आफ इस्लाम' में भी परदे द्वारा मनुष्य के सत्य एवम् सौन्दर्य के छिपाने की बात आई है। इसीलिये 'सिन्थिया' कहती है कि 'सशक्त शब्दों द्वारा मैंने उस पटल को फाड़ डाला, जो प्रकृति, सत्य, स्वतन्त्रता एवम् प्रेम को छिपाये हुए था।'

शेली का विश्वास था कि मानव मस्तिष्क एवम् विश्व में अच्छाई एवं बुराई में निरन्तर युद्ध चला करता है। 'उल्लू' एवं 'सर्प' द्वारा 'रीभोल्ड आफ इस्लाम' में यही बात प्रतिपादित की गई है।। उल्लू और सर्प पुन:पुन: अपने युद्ध को नये सिरे से प्रारम्भ करते हैं। यह बाद सत्य, स्वतन्त्रता एवम् न्याय की हत्या करनेवाले अन्या-यियों के विरुद्ध पीड़ित मानवता के युद्ध का प्रतीक है। 'शेली' ने विष के प्रतीक का भी प्रयोग किया है। यह विष उसकी आत्मा में गंभीरतापूर्वक जड़ीभूत हुई बुराई का संकेत करता है। अधिक गंभीरतापूर्वक विचार करने पर उसे ज्ञात होता है कि बुराई एवं उत्पीड़न की गंभीर भावना विष के सौन्दर्य के साथ लिपटी हुई है।

'शेली' ने नाव एवं नदी के प्रतीक का भी प्रयोग किया है। जीवन एवम् कविता दोनों ही क्षेत्रों में नाव उसे आध्यात्मिक चिन्तन की ओर उन्मुख करती है। नदी की धारा उसे मानव जीवन की धारा की याद दिलाती है। 'ऐडोने' में 'बजड़ा मानव आत्मा का प्रतीक बन गया है।

छायावादी कवियों में प्रतीक का जमकर प्रयोग हुआ है। निराला ने लिखा है—

> 'मैं अकेला देखती हूँ आ रही
> मेरे दिवस की सान्ध्य वेला।
> पके आधे बाल मेरे
> हुए निष्प्रभ गाल मेरे
> चाल मेरी मन्द होती आ रही
> हट रहा मेला।'

(निराला — गीतिका)

यहाँ मेला 'शब्द' 'अरे मन ये दो दिन का मेला रहेगा. न कायम जगत का झमेला रहेगा' के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। हट रहा मेला से कवि ने सांसारिक आकर्षण एवं विकर्षण के ह्रास की ओर संकेत किया है। निराला की निम्नांकित कविता में भी प्रतीकों का अच्छा प्रयोग हुआ है।

> 'वहाँ नयनों में केवल प्रात, चन्द्र ज्योत्स्ना ही केवल गात,
> रेणु ही छाये रहते पात, मन्द हो बहती सदा बयार
> हमें जाना उस जग के पार।'

पद्य में प्रात तथा रेणु आशास्फूर्ति एवं शीतलता के प्रतीक हैं। निराला की 'जूही की कली' में भी प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

> 'विजन बन बल्लरी पर
> सोती थी सुहाग भरी, स्नेह-स्वप्न-मग्न
> अमल, कोमल, तनु तरुणी ? जूही की कला
> दृग बन्द किये शिथिल पत्रांक में
> वासन्ती निशा थी।
> विरह विधुर प्रिया संग छोड़
> किसी दूर देश में था पवन
> जिसे कहते हैं मलयानिल।
> याद आई बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात
> आई याद चांदनी से धुली हुई आधी रात
> आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात।
> फिर क्या ? पवन
> उपवन, सर,' सरिता, गहन गिरि कानन
> कुंजलता पुंजों को पार कर
> पहुँचा जहाँ उसने की केलि,
> कली खिली साथ।

पुनः कली को जगाने के लिए—

> 'निर्दय उस नायक ने
> निपट निठुराई की
> कि झोंकों की झड़ियों से
> सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली

मसल दिये गोरे कपोल गोल ।
चौंक पड़ी युवती
हेर प्यारे के सेज पास
नम्रमुखीं हंसीं खिलीं ।
खेल रंग प्यारे संग ।'

इसमें जूही की कली का मानवीकरण हुआ है । वह प्रोषितपतिका के रूप में चित्रित की गई है । किन्तु अन्त में उसका प्रवासी पति लौट आता है । एक वियोगी तरुणी के प्रवासी पति के मिलने के साथ कली के खिलने का क्रम भी चित्रित किया गया है ।'[1] इसके अतिरिक्त 'कुकुरमुत्ता', 'बादल राग', 'तुलसी दास', 'रामशक्ति की पूजा' आदि कविताओं में भी प्रतीकों का यथास्थान प्रयोग हुआ है ।

प्रसाद प्रतीकों के नवीन प्रयोग के अमर शिल्पी हैं । उनका आँसू तो प्रतीकों का भांडार है । कवि प्रतीक रूप में ही अपने जीवन के प्रेम को एक विशिष्ट आवेष्टन के अन्दर सजाकर चित्रित करने में पूर्णतः सफल हो सका है । यहाँ यह आध्यात्मिकता का आवेष्टन इतना झीना पड़ गया है कि उससे प्रेम की लौकिकता ही अधिक झलकती दृष्टिगोचर होती है ।

'झंझा झकोर गर्जन था
विद्युत थीं नीरद माला,
पाकर इस शून्य हृदय को
सबने आ घेरा डाला ।'

फिर क्या था—

'विष प्याली जो पी ली थीं
वह मदिरा बनी नयन में
सौन्दर्य पलक प्याले का
अब प्रेम बना जीवन में ।'

अगर अतिशयोक्ति नहीं तो कहा जा सकता है कि ये ही दो पद्य प्रसाद के 'आँसुओं से लिखी हुई कहानी को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त कर देते है । 'झंझा-झकोर गर्जन, विद्युत, नीरद माला' आदि कवि की तीव्र, विशुद्ध व्यथा तथा निराशा के प्रतीक हैं । 'विष प्याली' और 'मदिरा' प्रेम के कड़वे घूंट के लिये आते हैं । 'पलक प्याले' का सौन्दर्य आँखों की मोहक मादकता के लिये प्रयुक्त हुआ है । इसके अतिरिक्त भी

[1] क्रान्तिकारी कवि निराला, बच्चन सिंह ।

प्रसाद ने पतझड़ को उदासी, बसन्त को सरसता, तथा मोती को अश्रु का प्रतीक माना है।

कामायनी में तो प्रतीकों का प्रयोग अपनी पूर्ण उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हो सका है। 'मनु' एवं श्रद्धा के सहयोग से मानवता के विकास का रूपक कामायनी में परम आकर्षक बन पड़ा है। 'मनु' मन, श्रद्धा, कामना, इड़ा, बुद्धि और किलात, आकुलि, पुरोहित आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक है। मानव, मानवता का प्रतीक है और देवता इन्द्रियों के। वृषभ धर्म का प्रतीक हैं, सोमलता भोग का। सोमलता से आवृत्त वृषभ भोग संयुत धर्म का प्रतीक है।

'कामायनी' में तीन और प्रतीक आये हैं, एक त्रिलोक है। त्रिलोक, ज्ञान लोक, भावलोक तथा कर्मलोक के लिये आया है। किसी भी वस्तु की इच्छा उत्पन्न होने के पहले ज्ञान होता है। ज्ञान ही इच्छा को प्रेरणा देता है। इच्छा ही कर्म के लिए उत्साहित करती है। केवल इच्छा, केवल ज्ञान और केवल कर्म एक दूसरे से संबद्ध हुए बिना पंगु हैं।

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न हैं,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें,
यह विडम्बना है जीवन की।'

परन्तु जब इन तीनों में समन्वय स्थापित हो जाता है तो—

'स्वप्न स्वाप जागरण भस्म,
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत, पर निनाद में,
श्रद्धा युत मनु बस तन्मय थे।'

दूसरा शब्द मानसरोवर है। मानसरोवर के लिए शतपथ ब्राह्मण में मनोरव सर्पण शब्द आया है। यह स्थान कैलाश पर्वत पर स्थित है और श्रद्धा की सहायता से यहीं पहुँचने पर मनु को पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है। अतः कामायनी में मानसरोवर शब्द के प्रयोग को समरसताजन्य आनन्द का प्रतीक माना जाता है।

तीसरा अर्थ 'जल प्लावन' है। 'जल' वासना का प्रतीक है। अत्यधिक वासनोन्माद होने पर इन्द्रियाँ वस्तुतः वासना की बाढ़ में डूब जाती हैं। अतः ऐसी अवस्था में चेतना को जल-माया से आवृत्त मान सकते हैं।

महादेवी जी छायावादियों की तरह प्रतीकों का प्रयोग करती हैं। वे दीपक को साधना, मंदिर को हृदय, शूल को पीड़ा और फूल को सुख मानती हैं। दीप-

शिखा कवयित्री के मन का प्रतीक है। महादेवी जी ने स्वत: लिखा भी है कि 'जीवन एवं मरण के इन तूफानी दिनों में रची हुई कविता ठीक ऐसी ही है जैसे झंझा एवं प्रलय के बीच में स्थित मन्दिर में जलने वाली, निष्कम्प दीप शिखा।' महादेवी ने निम्नांकित कविता में संभवत: अपने ही विषय में लिखते हुए कहा भी है—

> 'जन्म से मृदु कंज उर में
> नित्य पाकर प्यार लालन
> अनिल से चल पंख पर फिर
> उड़ गया जब गन्ध उन्मन।
> बन गया तब सर अपरिचित
> हो गई कलिका विरानी
> निठुर वह मेरी कहानी।'

उपर्युक्त कविता में प्राय: रेखांकित शब्द प्रतीक अर्थ में ही प्रयुक्त हैं।

Evelyn underhill ने साहित्य में प्रतीकों को तीन श्रेणी में विभाजित किया है—

(१) परम सत्ता के साक्षात्कार के लिये खोज या यात्रा—यथा मनु
(२) परम सत्ता के प्रति प्रेम
(३) परम सत्ता के प्रति विकास एवं परिवर्तन।

इनकी व्याख्या पीछे रहस्यवाद में की जा चुकी है। आध्यात्मिक प्रेम एवं विवाह के प्रतीक महादेवी जी में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। आन्तरिक अनुभूति की तीव्रता के बल पर वे चिरन्तन मिलन आकांक्षा, वेदना एवं हर्ष के चित्रफलक पर इस मिलन के स्पष्ट तथा धूमिल चित्र अंकित करने में सफल हैं। इसीलिये वे प्रिय से दूर रहकर भी अखण्ड सुहागिनी बनी रहती हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद में प्रतीकों का प्रभूत प्रयोग हुआ है। इन प्रतीकों में कुछ सार्वभौम प्रकृतियों के प्रतीक है। नदी की धारा, जीवन धारा का प्रतीक है। प्रकृति का क्षुब्ध मानस प्रक्षुब्धता का प्रतीक है। नाव, शरीर या आत्मा का, लाल रंग अनुराग, श्वेत पवित्रता, शूल कष्टों का प्रतीक है। इसी प्रकार कवि-कल्पना अदृश्य पंखों का प्रतीक है। पर ऐसे साम्य प्राय: नहीं दीख पड़ते। इनका मूल कारण व्यक्ति की प्रतिभा, अनुभूति तथा सामाजिक परंपरा में भिन्नता है। साथ ही इन प्रतीकों के पीछे व्यक्ति के सौन्दर्य-

दर्शन, चिन्तन, सामाजिक परंपरा की निरन्तरता तथा कला-रुचियों की दीर्घ परंपरा होती है। इन्ही तीन संबन्धों पर आधारित होकर इन प्रतीकों का चयन देश की जलवायु, वनस्पति, इतिहास एवम् जाति के अनुकूल होते हैं।'[1] छायावादी एवम स्वच्छन्दतावादी काव्य में ऐसा हुआ है। इनमें प्रतीक किसी पिटी-पिटाई परंपरा पर आधारित नहीं रहे हैं। 'कवि ने बड़ी ईमानदारी एवं साहस से अपने अन्तरतम में प्रवेश करके ऐतिहासिक-पौराणिक पात्रों के सहारे या प्रतीकों द्वारा अपनी भावनाओं का सुनिश्चित आलेखन किया है। इस दिशा में उसकी उपलब्धि अप्रतिम रही है। अपने भीतर डूब कर कवि ने अनन्त विषय ढूँढ़ निकाले हैं और उसके अपने चित्रण में हमें अपना बोध मिला है। अन्य दिशाओं में कविता की जो हानि हुई वह कवि की इस स्वोपलब्धि से पूरी हो गई और इससे नए काव्य क्षेत्रों का विकास हुआ है।'[2]

छायावादी एवम् स्वच्छन्दतावादी कवियों का आदर्श सौन्दर्य के प्रति विशेष आग्रह रहा। उनका यह विश्वास था कि कला के माध्यम से ये इसे अभिव्यक्ति दे सकने में सक्षम हैं। कल्पना के क्षणों में ये कवि जिस ऊर्जस्वित अनुभव के बीच से हो कर गुजरे, उसका अभिव्यक्तीकरण इनके लिए अत्यावश्यक था। परिणामस्वरूप कवियों ने इस लोकोत्तर आनन्द की प्रतीति को वाणी देना परमावश्यक समझा। नये अनुभवों को नये प्रतीकों की आवश्यकता थी स्वच्छन्दता वाद में अधिक नहीं पर छायावाद ने अपने नवीन प्रतीकों के आधार पर इस समस्या का उचित समाधान ढूँढ निकाला। परंपरित प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ, फिर भी उसकी पृष्ठभूमि में एक नवीन संदेश अन्तर्निहित दृष्टिगोचर हुआ। 'एण्डिमिअन' में कवि अपनी प्रेम कथा के आधार पर ऐसी साहसपूर्ण कहानी उपस्थित कर सका, जिसमें कवि की आत्मा का आदर्श सौन्दर्य के साथ समन्वय स्थापित हुआ। 'रीभोल्ट' आफ इस्लाम' का कवि उल्लू और सर्प की लड़ाई द्वारा उस चिरन्तन युद्ध का संकेत कर सका है जिसको 'गेटे' की निम्नांकित पंक्तियाँ प्रस्तुत करती हैं—

> Two souls alas ! are lodged within my breast,
> which struggle there for undivided reign.

जयशंकर प्रसाद के मनु, मानव की व्यक्तिवादी चेतना तथा आध्यात्मिकता के प्रयोक्ता और अन्वेषक के रूप में उपस्थित होते हैं, तो निराला की रत्नावली स्वयं शारदा का रूप ग्रहण कर के उद्‌बोधन एवं सांस्कृतिक उत्थान का कार्य करती है। फिर

---

[1] आधुनिक काव्य साहित्य के बदलते हुए मानों का अध्ययन, रमेश प्रसाद मिश्र।

[2] मूल्य एवं मूल्यांकन : डॉ० रामरतन भटनागर, पृ० १६।

भी इन कवियों में उनके दैनिक जीवन के आलोड़न-प्रलोड़न और उत्थान-पतन संबंधी अनुभूतियाँ भी प्रतीकों का रूप लेकर उपस्थित हुई हैं। महादेवी के प्रिय के चिरंतन खोज संबंधी प्रतीक ऐसे हैं जिनका 'प्रीरेफेलाइट' और 'मेटाफिजिकल्स' को छोड़ कर अंग्रेजी में कम प्रयोग हुआ है।

प्रतीकवाद साहित्य को एक अभिनव देन है। स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी कवियों ने 'कल्पना को नए पंख दिये हैं। उन्होंने जहाँ एक ओर स्थूल वस्तु-जगत की भौतिकता को छिन्न-भिन्न कर उसके भीतर आध्यात्मिकता के दर्शन कराये हैं वही दूसरी ओर अन्तश्चेतना मूलक अन्तर्बोध के द्वारा आत्मा की अतल गहराइयों में उतरने का साहस किया है। उनकी कृतियाँ भावी जीवन के लिये प्रकाश स्तम्भ का काम करेंगी और जीवन के प्रति हमारी आसक्ति बढ़ायेंगी। विज्ञान एवं दर्शन की अधुनातन उपलब्धियों से कम कविता की उपलब्धि नहीं है, यह तो आज प्रमाणित ही हो चुका है। मानव-चेतना में जिस स्वर्णोदय का आभास आज मिलने लगा है उसके निर्माण में प्रतीकवादी काव्य-साधना का योगदान कम महत्वपूर्ण न रहेगा'

अहं ईगो (ego)

योगवाशिष्ठकार ने लिखा है—

'अहंकार क्षयेदेहे, किलावश्य विनश्यति
मूले क्रकच संलूने सुहयानिव पादयः ।। १६।३४

अर्थात् महान् वृक्ष जिस प्रकार अपने तने से खड़ा रहता है उसी प्रकार अहंकार ही देह को धारण करता है। मूल की ओर से काटने से जैसे वृक्ष गिर पड़ता है, उसी प्रकार अहंकार के नाश से शरीर नष्ट हो जाता है।

पुनः—

मनश्चैव जड़ं मन्ये, संकल्पात्कम शक्तिमत ।
क्षेपणोखि पाषाण: प्रेर्यते बुद्धि निष्चयै. ।।
बुद्धि निश्चयरूपैव जड़ा सत्तैव निश्चयः ।।
खाते नेव सरिन्नूनं साहंकारणे वाह्यते ।।,
योगवाशिष्ठ-निर्वाण प्रकरण पूर्वार्द्ध सर्ग २८० (२०-२१)

अर्थात् संकल्पात्मक शक्ति जो मन है वह भी जड़ है, क्योंकि वह फेंके गये निश्चयों के द्वारा पत्थर के समान प्रेरित होता है। बुद्धि भी निश्चयात्मक सत्ता का जड़ रूप ही है। जिस प्रकार खाई या गड्ढे के अनुसार जल का प्रवाह होता है उसी प्रकार अहंकार के अनुसार बुद्धि का बहाव होता है।

इस उपर्युक्त उद्धरण से सिद्ध होता है कि प्राचीनकाल से ही 'अहं' की शक्ति को महान् विचारकों एवं लेखकों ने मान्यता प्रदान की है। आधुनिक युग मनो-विश्लेषण का युग है। इस युग ने भी अहं के सिद्धान्त को स्वीकार करके 'योगवाशिष्ठकार' की सम्मति को मान्य ठहराया है। 'फ्रायड' ने आधुनिक युग में अहं की विचित्र व्याख्या उपस्थित की है। उनके अनुसार 'मन का चेतन अंग जब परिवेश के संपर्क में रहता है। तब वह वास्तविकता के नियमों का पालन करता है किन्तु, उसकी इच्छायें दबी रहती हैं और सामाजिक बन्धनों के कारण जिनकी पूर्ति नहीं होती वे मन के अचेतन अंश में स्थित रहती हैं। पहले फ्रायड मन के इस चेतन अंश को ही अहं कहता था और उसके अचेतन अंश को इदम् (इड) का नाम देता था परन्तु पीछे अनुसन्धान करने पर उसे ज्ञात हुआ कि जो इच्छायें अहं की स्वीकृति मात्र नहीं हो पातीं उनका वह दमन करता है और प्रतिरोधपूर्वक उन्हें अचेतन मन में स्थित करता है। इस प्रकार 'फ्रायड' उसे अंशतः चेतन और अंशतः अचेतन मानने लगा है। इसका चेतन अंश समाज के नियमानुसार काम करता है किन्तु अव-चेतन अंश मन के आन्तरिक प्रदेश अथवा 'इड' में डूबा रहता है और सुख के नियम का पालन करता है यह अहं समाज एवं 'इड' की मध्यस्थता करने की कोशिश करता है। क्यों कि एक ओर तो यह चेतनापूर्ण 'इड' की इच्छाओं का पालन करता है और दूसरी ओर 'इड' की उन असंस्कृत इच्छाओं का दमन करता है जो सामाजिक परिवेश के नियमों से मेल नहीं खातीं। यदि 'अहं' सफलता के साथ 'इड' के परिवेश की माँगों के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है तो वह संगतिपूर्ण सुव्यवस्थापित और परिवेशों में समायोजित रहता है। यदि ऐसा नहीं करता तो उसमें अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है क्यों कि 'इड' तो सदैव अचेतन और अव्यवस्थित रहता है। इसमें व्यक्ति के जीवन की सभी मूल प्रेरक शक्तियाँ तथा जीवन और मृत्यु की वृत्तियाँ निवास करती है।'[1]

फ्रायड ने इन अहं एवं इड के अतिरिक्त एक 'उच्च अहं (सुपर इगो) का उल्लेख किया है। यह अहं का आदर्श और सचेतन रूप है। इस उच्च अहं में विधि और निषेध रहते हैं जिनका वह अहं से पालन कराने का प्रयत्न किया करता है। यह उच्च अहं (सुपर इगो) केवल व्यक्तियों में ही माना जाता है। यह उच्च अहं अहं का ही एक विकसित रूप है। नैतिक दृष्टि से अहं से महान् होने तथा उसपर बलपूर्वक शासन करने के कारण इसे उच्च अहं कहा जाता है। कभी कभी यह 'इड' तथा अहं दोनों की संमिलित शक्ति का नियंत्रण करने में सफल होता है।

---

[1] मनोविज्ञान : डा० यदुनाथ सिनहा, पृ० ५३४।

इस प्रकार फ्रायड के अहं सिद्धान्त का जब हम साहित्य पर प्रयोग करते हैं तो हम देखते हैं कि प्रायः स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी साहित्यकारों ने इसका उपयोग किया है। इन कवियों को रुढ़ि के विरुद्ध क्रान्तिकारी, तथा नवीन परम्परा एवं विचार मूलक पद्धति का सृजन करना था अतएव उन्होंने जो कुछ भी कहा है उनमें इनकी अनुभूति पर यथा स्थान इनके अहं का अधिकार दृष्टिगोचर होता है। अहंकार का ही एक अंश आत्मप्रसार की भावना भी है। इस दृष्टि के इन कवियों का प्रकृति, और पुरुष, के अतिरिक्त सृष्टि से सम्बन्ध है। भारतीय दर्शन में 'आत्मा वारे द्रष्टव्य' की अनुभूति होने के पश्चात् 'अयमात्मा ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत्व-मसि' का विश्वास प्राप्त होते-होते 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का ज्ञान एक परिष्कृत अहं द्वारा ही प्राप्त होता है। इस दृष्टि से अहं साहित्य का एक अंग रहा है और बाद में भी रहेगा।

स्वच्छन्दतावादी कवियों में 'बाइरन' तो अहं के नग्न स्वरूप का परिचायक है। उसके साहित्य का मन्थन करने के पश्चात् ऐसा लगता है कि फ्रायड के 'अहं' 'इड' तो उसमें पूर्णरूपेण क्रियाशील हैं पर उसका उच्च अहं (सुपर इगो) असफल और मूक रह गया है। वह तो अपनी क्रान्ति की भावना से प्रेरित होकर यहाँ तक कह पड़ा है कि जहाँ तक सम्भव होगा, पृथ्वी के निरंकुश लोगों के विरुद्ध मैं पत्थरों को भी जाग्रत करूँगा।[1] उसकी यह विशेषता थी कि वह स्वयं अपने व्यक्तित्व के अहं से ही अपने सभी नायकों को सृजित करता था'। मेकाले ने ठीक ही कहा है कि वह अपनी कविता के आरम्भ, मध्य और अन्त सभी में उपस्थित था। 'शेली' ने 'प्रोमीथीयस अनबाउण्ड' में तत्कालीन समाज की बुराइयों को उपस्थित करके उसमें अचानक परिवर्तन द्वारा प्रस्तुत आदर्श विश्व का गान किया है।[2] गोकि इसके लिए कुछ सामग्री 'एचीलीज' के 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' से ली गयी है। फिर भी 'शेली' का अहं उस मध्यस्थ मनोवृत्ति को स्वीकार कर सका जिसमें निरंकुश 'जियस' तथा मानवता के दूत 'प्रोमीथियस' में समन्वय स्थापित किया गया है। अतएव मानवता के उद्धार के इस प्रश्न पर वह 'एचीलीज' से भिन्न दृष्टि से सोचने के लिए बाध्य हुआ है। 'कामायनी' के नायक 'मनु' के द्वारा भी प्रसाद जी ने अहं को विविध स्वरूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया है। उनमें भी फ्रायड के 'अहं' 'इड' और 'उच्च अहं' का चित्रण दिखाई पड़ता है। जहाँ मनु का अहं सामा-

---

[1] I will teach if possible, the stones,
To rise against earth's tyrants.

[2] Clutton Brock-Shelley the man and the poet.

जिक नियमों के पालन में रत है वहाँ (इगो) का स्वरूप चित्रित है, परन्तु ज्यों ही वह इड़ा पर आधिपत्य द्वारा अपनी सुखेच्छा का परिपोषक बन जाता है उनमें (इड) का समावेश हो जाता है। 'उच्च अहं' का दर्शन हमें उस स्थान पर होता है जहाँ मनु पुनः श्रद्धा द्वारा नियन्त्रित होकर आदर्श व्यवस्था में विश्वास करना शुरू कर देते हैं। 'श्रद्धा' में हमें आदर्श अहं पुंजीभूत रूप में दृष्टिगोचर होता है, पर इड़ा में 'इड' की कल्पनाएँ पूर्ण रूप से साकार नहीं होतीं।

निराला सचमुच अविजेय पौरुष के व्यक्ति हैं। उनमें 'अहं' अपने पूर्ण उदात्त रूप में दृष्टिगोचर होता है। वे स्वच्छन्दतावादियों की तरह स्पष्ट कह पड़ते हैं कि 'मैंने मैं शैली अपनाई।' इतना ही नहीं अपितु—

'तोड़ो तोड़ो कारा
पत्थर की, निकले फिर
गंगा जलधार।'

इससे कवि मानो घोषणा करता है कि बिना सड़ी-गली परम्पराओं में आमूल परिवर्तन के उस नवीन विचारधारा का जन्म नहीं हो सकता जिसमें गंगा-जलधारा जैसी पवित्रता हो।

प्रेम एवं सौन्दर्य के जो विविध रूप हमें दृष्टिगोचर होते हैं उनमें इन कवियों के अहं का ही सहयोग है। स्वच्छन्द प्रेम का स्वरूप इसी का परिणाम है। सांस्कृतिक मूल्यांकन तथा आधुनिक पतन पर जहाँ कहीं भी ये दृष्टिपात करते हैं उसमें इनके अहं का उच्च रूप दृष्टिगोचर होता है। 'प्रसाद' के राष्ट्र-प्रेम का यही आधार है। निराला भी 'तुलसीदास' के आरम्भ में ही जहाँ कह पड़ते हैं—

'भारत के नभ का प्रभा-पूर्य
शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित रे आज – – –

वहाँ उनकी इसी भावना को ठेस पहुँची जान पड़ती है। इसीलिये तो वे कह पड़े थे कि—

'करना होगा यह तिमिर पार
देखना सत्य का मिहिर द्वार।'

सौन्दर्य-प्रेम, क्रान्ति, सांस्कृतिक मूल्यांकन आदि सभी रूपों में किसी न किसी प्रकार कवि के अहं का ही रूप दृष्टिगोचर होता है। जहाँ पर कवि वेदान्त दर्शन को अपना कर चला है वहाँ पर भी इसी प्रकार की भावना के दर्शन होते हैं। सारांश यह कि इन सभी रूपों में इनका अहं-प्रसार ही दृष्टिगोचर होता है।

इस सन्दर्भ में एक बात पर और भी विचार कर लेना आवश्यक है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैलिनोवेस्की का कहना है कि, व्यक्तिगत स्वार्थों एवं सामाजिक नियंत्रणों का उचित संतुलन हो तो संस्कृति आश्वस्त एवं विकास की संभावनाओं से आपूर्ण रहती है। यदि यह संतुलन अव्यवस्थित हो जाता है तो एक ओर अराजकतावाद और दूसरी ओर अधिनायकवाद का प्रादुर्भाव होता है।[1] अहं का सृजन से सम्बन्ध होने पर इस बात की ओर दृष्टिपात करना परमावश्यक हो जाता है कि इसे इतना उच्छृंखल एवं स्वार्थपूर्ण नहीं होने देना चाहिए कि वह असामाजिक हो जाय। 'बाइरन' अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादियों में इस तरह का कवि रहा है। कुछ आलोचकों ने उसके इस दोष को व्यंग्य का नाम देकर गुप्त रखने का प्रयत्न किया है फिर भी कहीं-कहीं उसकी अनुभूतियों का चित्र असामाजिक हो गया है। छायावादियों में भी जहाँ उन्मुक्त कामुकता का प्रच्छन्न नर्तन हुआ है वहाँ असंतोष की भावना ही उत्पन्न होती है। आज के तथाकथित प्रतीकवादी कवि जो निम्न प्रकार की अभिव्यंजना करते हैं इस उच्छृंखल कोटि में रखे जाते हैं।

'कल, कल की कल से है
पर आज न जाने दूँगी;
व्याप रही कैसी मादकता
आज तुम्हें हर लूँगी।'

आज नई कविता के कवि एवम् समीक्षक इस बात की ओर ज़रूर व्यस्त हैं कि कविता में निर्वैयक्तिकता होनी चाहिए। इसे हम 'छायावाद' के विरुद्ध प्रतिक्रिया का नाम दे सकते हैं। 'निराला' के काव्य का प्रचण्ड ओज, 'पन्त' का मधुर स्वरूप, 'प्रसाद' का आभिजात्य और रसमय संवेदन तथा 'महादेवी' का नारी-सुलभ विरह-गाम्भीर्य छायावादी काव्य के व्यक्तिगत पक्ष के प्रमुख तत्व हैं। बच्चन की रचनाओं में यह वैयक्तिकता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। छायावादी काव्य में वेदना की विवृति व्यक्तिगत भूमि पर ही हुई। उसमें विषाद तथा अवसाद से लेकर आत्मघाती दुश्चिन्ताओं तथा अलंकारिक करुणा का प्रसाद है। यह कहा जा सकता है कि कवि का व्यक्तित्व ही उसकी बीन बन गया है। इसी बाँसुरी में वह अनुभूतियों को भर कर उत्कृष्ट राग-रागिनियों की सृष्टि कर सकता है।[2] आज इस ओर प्रयत्न होता दृष्टिगोचर हो रहा है कि कविता कवि की ही बीन न बन कर सबकी बीन बने। अतएव कविता में निर्वैयक्तिकता का आग्रह हो चला है। इस

---

[1] शुभेकर की एस्थेटिक एक्सपीरियेंस एण्ड ह्यूमैनिटीज से उद्धृत।

[2] डॉ० रामरत्न भटनागर : मूल्य एवं मूल्यांकन, पृ० ६३।

सम्बन्ध में जिन महापुरुष को उदाहृत किया जाता है वे हैं इलियट महोदय। इनके अनुसार 'कला परम्परा के प्रति कवि का आत्म-समर्पण है। कवि को निरन्तर अपने व्यक्तित्व से (जो उसका है, उससे) अधिक मूल्यवान् वस्तु को समर्पित करना पड़ता है। सतत् आत्मबलि और व्यक्तित्व की परिसमाप्ति में ही कविता की प्रगति निहित है। उनका कहना है—

"What happens is a continual surrender of himself, as he is at the moment to something more valuable. The progress of an artist is a continual self-sacrifice, a continual extinction of personality."—*Tradition and Individual Talent—Selected Prose, P. 26.*

इतना ही नहीं बल्कि—

"The poetry is not turning lose of emotion, but an escape from emotion, it is not expression of personality, but an escape ftom parsonality."—*Ibid.*

इस विषय के संबंध में अधिक विस्तार के साथ यहाँ कहना संभव नहीं है । परन्तु इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि सब्जेक्टिव और आब्जेक्टिव के अन्दर कोई निश्चित सीमा निर्धारित कर सकना मुश्किल है, क्योंकि एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है। फिर कवि भी इसी समाज के बीच रहता है, उठता है बैठता है। वह इससे प्रभावित होता है। उसकी दु:ख, सुख, आशा, अभिलाषा आदि से संबंधित एक चाह होती है। वह स्थितप्रज्ञ योगी तो है नहीं जिसने अपनी इन्द्रियों को पूर्णरूपेण अन्तस्थ कर लिया है। उसके लिए पूर्ण निर्वैयक्तिक होना असम्भव है। परन्तु वह पूर्ण वैयक्तिक भी नहीं हो सकता। हाब्स ने बहुत पहले ही कहा था कि "Man is nasty brutish and short. Man is enemy to man". यह बात आज भी उतनी ही सत्य है जितनी पहले थी । मनुष्य की सभी अभिलाषायें, सभी आकांक्षायें, काव्य का विषय नहीं बन सकतीं। उनमें उसे चुनाव करना ही पड़ेगा। अगर किसी असंयत प्रकृतिस्थ विचार को वह अभिव्यक्त करता भी है तो उस पर एक झीना आवरण तो डाल ही देना पड़ेगा । आज जो इस प्रकार की बात चल रही है कि कवि किसी भी अनुभूति या भूख को काव्य में व्यक्त कर सकता है वह उचित नहीं है। यह तभी होगा जब मानव पशु बन जाय। कहावत भी है 'नंगा नाचे फाटे क्या।' 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' काव्य के उपजीव्य रहे हैं, और रहेंगे। कविता चाहे आत्मगत हो या विषयगत, वह अपने सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के आदर्श को कभी छोड़ नहीं सकती।

इधर इलियट महोदय के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ है। उन्होंने 'आज

पोयट्री एण्ड पोयट्स में 'यीट्स' पर विचार व्यक्त करते हुए जो लिखा है वह विचारणीय है।

"There are two forms of impersonality. That, which is natural to mere skilful craftsman and that which is more and more achieved by maturing artist. That first is that of what I called anthology piece. The second impersonality is that of a poet, who out of intense and personal experience is able to express a general truth retaining all particularity of his experience to make of it a general symbol." (Page 225)

निर्वैयक्तिकता दो प्रकार की होती है। एक तो वह जो कुशल कलाकार के पास स्वाभाविक रूप से रहती है और दूसरी वह जिसको एक परिपक्व कलाकार प्राप्त कर सकता है। प्रथम के अन्दर 'ऐंथोंलाजी पीस' को रखा जा सकता है। द्वितीय प्रकार की निर्वैयक्तिकता उस कवि की निर्वैयक्तिकता है जो अपने गहन एवं व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर व्यापक सत्य को अभिव्यक्त करने में रत रहती है।

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि रचना-शिल्प पर आधारित निर्वैयक्तिकता निम्न कोटि की वस्तु है और रचना की आभ्यान्तरिक निर्वैयक्तिकता का स्थान उच्च कोटि का है। आज भी इलियट अपने को निर्वैयक्तिकता के पचड़े से दूर नहीं कर सका है, फिर भी काव्य के आन्तरिक संबंध के विषय में उनका मत महत्वपूर्ण है। आज के लोग अगर इलियट की इस बात को समझ सकें तो स्वच्छन्द धारा के प्रति प्रतिक्रिया समाप्त हो जाय।

पुरातनता का व्यामोह

प्राचीनता की ओर एक जिज्ञासु की दृष्टि से देखकर उसकी दन्तकथाओं एवं सांस्कृतिक तथा धार्मिक उपाख्यानों का आधुनिक पृष्ठभूमि में नवीन दृष्टिकोण से निर्वचन इन कवियों की विशेषता है। 'शेली' और 'कीट्स' पर मध्यकालीन तथा ग्रीक देश की देवकथाओं का प्रभाव पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है। स्वच्छन्दतावादियों में 'जयशंकर' अपने भूतकालीन इतिहास से अत्यधिक प्रभावित दीख पड़ते हैं। यों इन पर आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, शैवागम वेदान्त दर्शन, थियासोफिकल सोसायटी तथा रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

'शेली' पर प्लेटो के प्रभाव की हम पूर्व अध्यायों में चर्चा कर चुके हैं। यहाँ शेली और कीट्स पर यूनान के अन्य प्रभावों की ही चर्चा की जायगी। हिन्दू देवताओं की तरह ग्रीक देवता भी अपना ऐतिहासिक स्थान रखते हैं। ग्रीस की यह विशेषता रही है कि उसने ऐसे भी देवताओं को जिनको वहाँ मान्यता नहीं मिल

सकी, अपने मंदिरों में स्थापित करके महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। ग्रीक देवता कुछ हिन्दू देवताओं से मिलते-जुलते हैं। होमर ने अपनी कृतियों में जिन भी देवताओं का चित्रण किया है वे अनुभूत न होकर मानवीय दीख पड़ते हैं, उनका प्रेम-व्यवहार भी हमारे इन्द्र से मिलता-जुलता है। वे भी इन्द्र की ही तरह घृणा और ईर्ष्या में रत दिखलाये गये हैं। वे भारतीय देवताओं की तरह मानवीय भाग्य के निर्माता के रूप में चित्रित हैं। ग्रीक दुःखान्त नाटकों में उनको भाग्य के रूप में चित्रित किया गया है और उनके द्वारा उत्पन्न की हुई विपत्तियों का विविध चित्रण उपस्थित हुआ है। 'स्विनबर्न' में उनके इस स्वरूप को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है।

इन देवताओं के इसी आदर्श मानव-स्वरूप के कारण ही स्वच्छन्दतावादी कवि उनसे अधिक आकर्षित हुए। 'वर्ड्सवर्थ' ने 'दी वर्ल्ड इज टू मच विद अस' में ईसाई धर्म में प्रकृति-प्रेम की कमी से रुष्ट होकर लिखा है कि—'हे भगवान्! मैं पुरानी परम्पराओं में लिप्त पैगन होना पसन्द करूँगा, क्योंकि इस विश्वास से मैं सुन्दर चरागाह पर खड़े होकर, उस दृश्य को देखने में समर्थ हो सकूँगा जो मेरी तनहाई को दूर कर सकेगा। समुद्र से उठते हुए 'प्रोटीयस' को देख सकूँगा और 'ट्राइटन' को अपनी टेढ़ी शंख फूँकता सुन सकूँगा।'[1] 'लाओडेमिआ' में भी कवि ने ग्रीक देवकथाओं का उपयोग किया है। यह कथा हमारे देश के 'सावित्री-सत्यवान' से कुछ साम्य रखती है। 'लाओडेमिआ' का पति 'प्रोटीसिलियस' ट्रोजन भूमि पर शापवश युद्ध में मारा गया। लाओडेमिआ ने देवताओं से प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना सुन ली गई। वह तुरन्त मृत्यु के पश्चात् भी लौटकर चला आया। 'लाओडेमिआ' आतुर होकर उसे आलिगन करने के लिये अग्रसर हुई। इस पर 'अशान्त मनोवेगों' को नियन्त्रित करने का जो संदेश उसको पति ने दिया वह महत्वपूर्ण है। उसने कहा कि 'देवगण आत्मा की अशान्ति को नहीं बल्कि गंभीरता को मान्यता देते है।'

'शेली' ने होमर की कई देव-प्रार्थनाओं का अनुवाद भी किया था और साथ ही, देवताओं के प्रति उसके दृष्टिकोण से भी परिचित था। फिर भी ग्रीक देवकथाओं के निरूपण में 'कीट्स' 'शेली' से अधिक पटु है। 'शेली' की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी की उसके चित्रण में ग्रीक देवता भी उसी के विचारों के अभि-

---

[1] "O God, I'd rather be
A pagan suckled in creed outworn,
... ...
Have sight of proteus rising from the sea
Or hear old Triton blow his wreathed horn."

व्यक्तीकरण के माध्यम हो जाते थे। 'अपोलो' और 'पैगन' का जहाँ भी उसने चित्रण किया है वे उसकी इसी मनोवृत्ति के द्योतक मात्र हैं। शेली 'आरफीयस' के 'यूरिडाइस' को खो देने के बाद के अवसाद से परम प्रभावित था। फिर भी जहाँ उसका आरफियस अपने संगीत छेड़ता है उसमें 'शेली' के ही विचारों का स्पन्दन दृष्टिगोचर होता है।

ग्रीक देवकथाओं का विशिष्ट स्वरूप हमें 'कीट्स' में मिलता है। वह इन ग्रीक कथाओं में अपने स्वप्नों के लिये एक ऐसा स्थल पा सका था जहाँ उसके प्रेम एवम् सौन्दर्य की प्यास बुझ सकी थी। 'ली हण्ट' को उसने लिखा था 'कि रोमांस-पूर्ण ग्रीक विश्व के ओझल होते ही सभी आकर्षण और सौन्दर्य समाप्त हो गया।' ग्रीक-विषय पर 'एण्डिमिअन' उसकी प्रथम कविता है। 'गाडेस आफ मून' लेटमस की पहाड़ियों पर सोने वाले गड़ेरिये से प्रेम की अभिव्यंजना करती है। 'इंडियन मेडेन' इसमें 'सिन्थिया' की प्रतिद्वन्द्वी होने के साथ ही विश्व-सौन्दर्य की प्रतीक है। 'एण्डिमिअन' में सत्य एवम् सौन्दर्य के विविध स्तरों के बीच की खोज कवि के आदर्श सौन्दर्य की खोज बन जाती है। 'एल्गिन मार्बल' पर लिखी गई कविता में वह मानवीय नश्वरता एवम् अनश्वरता की तुलना करता है। यह चतुर्दशपदी 'मार्बल' के कलात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा कवि के उसके अधिक समय तक बने रहने के विचार से अधिक प्रभावित है। इसी प्रकार 'ओड टू ग्रेशियन अर्न', 'हाइ-पीरियन', 'ईभ आफ सेण्ट एग्नीज' आदि पर किसी न किसी प्रकार ग्रीक देवकथाओं एवं चित्रकलाओं आदि का प्रभाव है।

'बाइरन' भी ग्रीस को वही देन दिया जो देन मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' द्वारा भारत को दिया। उसके लिये भूत का इतना महत्व नहीं था जितना वर्तमान का। अतएव वह उसके वर्तमान के लिये प्रयत्नशील था। वह सदा-सर्वदा ग्रीस के भूत ऐश्वर्य को उसकी तात्कालिक गुलामी की पृष्ठभूमि में ही देखता था और उसका यह विश्वास था कि उसको स्वतन्त्र होना चाहिए, जिससे वह अपनी भूतकालीन स्मृतियों की पुनः रक्षा कर सके।

इसके अतिरिक्त इन सभी कवियों में मध्यकालीन देवकथाओं का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। छायावादी कवि भी प्राचीनता के प्रेमी थे। इन कवियों ने औपनिषदिक ज्ञान का पर्याप्त उपयोग किया है। पन्त कहते हैं—

> **'गा कोकिल सन्देश पुरातन,**
> **मानव-दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन,**
> **वह न देह का नश्वर रज-कण**
> **देश काल हैं उसे न बन्धन**
> **मानव का परिचय मानवपन।'**

यहाँ मानव शाश्वत ज्योतिस्वरूप माना गया है। महादेवी का रहस्यवाद भी उपनिषदों से विशेष अनुप्राणित है। वे आत्मा को बीन और रागिनी दोनों ही मानती हैं। गायक के लिए अपने को अभिव्यक्त करने का मुख्य माध्यम वीणा है, वीणा के लिए गायक। इसलिए वे कह पड़ती हैं कि—'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागनी भी हूँ।' उनकी आत्मा सदैव जागृत है। वे सदैव उसके सामीप्य-लाभ के लिए चिन्तित रहती हैं; वे सदैव अनुभव करती हैं कि 'प्रियतम मुझी में है,' अतएव उसके परिचय की आवश्यकता ही क्या है?

प्रसाद 'चित्राधार' एवं 'कानन-कुसुम' में इसी सृष्टि में ब्रह्म के विलास-चिह्न को पाते हैं। उनके लिए विमल इन्दु की विशाल किरणें उसी का पता बताती दृष्टिगोचर होती हैं। अतएव वे प्रसन्न होकर कह पड़ते हैं—

'आत्म-सर्मपित करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर,
प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम में, विश्व स्वयं ही ईश्वर है।'

'जागो एक बार' में निराला ने 'शांकर अद्वैत' दर्शन की भी याद दिलाई है—

'तुम हो महान् तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता कामपरता,
ब्रह्म हो तुम
पदरज भी है नहीं पूरा यह विश्व भार
जागो फिर एक बार।'

प्रसाद की 'कामायनी' में ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि से कथासूत्र लेकर शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर जिस आनन्दवाद की स्थापना की गई है वह महान् है। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' तथा 'तुलसीदास' में विगतकालीन देवकथा के आधार पर आधुनिक वैचारिक पृष्ठभूमि में जिस चिरन्तन सत्य की स्थापना हुई है वह आज के बुद्धिवादी युग के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ है।

'रिचर्ड्स' ने कहा है कि 'बुद्धिसंयुक्त महान् देवकथायें कल्पना मात्र नहीं हैं। वे मानव की आत्मा की पुकार हैं अतएव उनके पास हमारे चिन्तन के लिए अनन्त सामग्री है। वे अपने प्रक्षेपण में प्रतीकात्मक ज्ञान, सहयोग एवं स्वीकृति में यथार्थ प्रस्तुत करती हैं। इसी प्रकार की दन्तकथाओं में जन-इच्छा एकत्रित होती है, हमारी शक्तियाँ परिष्कृत होती हैं और हमारा विकास नियंत्रित होता है।'[1]

उपर्युक्त सन्दर्भ में रिचर्ड्स ने कॉलरिज की कल्पना के सन्दर्भ में जो कुछ भी

---

[1] Coleridge on Imagination in 'Principles of Literary Criticism' by *Richards*.

कहा है वह मान्य है। सचमुच हर साहित्य की देवकथाओं में एक ऐसा चिरंतन संदेश छिपा हुआ है जो आधुनिक मानव को अपनी मुक्ति का मार्ग दे सकता है। स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी कवियों ने इसे खूब पहचाना था। स्वच्छन्दतावाद के हाथ में तो यह सौन्दर्य-प्रेम और क्रान्ति का उन्नायक होकर रह गया, पर छायावाद में इसका उस चिरन्तन-सत्ता से गठबंधन हुआ जो हमारे आध्यात्मिक दर्शन की पृष्ठभूमि है। कुछ लोग अपने अत्यधिक भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण आज 'दर्शन' नाम से चिढ़ते हैं। खास तौर से छायावाद की कोई भी दार्शनिक पृष्ठभूमि मानने के लिए वे तत्पर नहीं जान पड़ते। उनके लिये पुराने ऐतिहासिक आदर्श का आधुनिक पृष्ठभूमि में मनन, चिन्तन और उसके द्वारा मार्गदर्शन ही प्रमुख है। इन लेखकों में प्राचीन इतिहास को भी आधुनिक पृष्ठभूमि में रखकर नवीन दृष्टिकोण एवं नवीन अन्तर्दृष्टि से उसका मन्थन करके नया संदेश देने की प्रवृत्ति रही है। हिन्दी छायावादी कवियों में प्रसाद प्रमुख हैं। उनके नाटकों में आज के लिए जो राष्ट्रीय संदेश है, वह महान् है। उनके नाटकों के गीत राष्ट्रगीत बन सकते हैं।

साहित्य भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों के लिए एक देन है। कोई भी राष्ट्र अपनी पुरातनता से विच्छिन्न होकर जीवित नहीं रह सकता। वर्तमान, पुरातनता की पृष्ठभूमि में अपना मूल्यांकन करके भविष्य को एक महत्वपूर्ण देन दे सकता है। भूत एवं वर्तनाम का समन्वय ही भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इस बात को इन दोनों ही धारा के कवियों ने समझा था। अतः उनका अतीत-चित्रण केवल अतीत का यशोगान मात्र नहीं अपितु वर्तमान पृष्ठभूमि में उस अतीत के अध्ययन द्वारा वर्तमान को एक संदेश देने तथा भविष्य के लिए कुछ महत्वपूर्ण सत्य छोड़ने का प्रयत्न है।

पलायनवाद-निराशा

छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद के कवियों पर पलायन का आक्षेप किया जाता है। इस सन्दर्भ में विविध दृष्टिकोण सामने आते हैं। सर्वप्रथम वे लोग इन कवियों पर निराशावाद एवं वेदनातिशयता का आक्षेप करते हैं। पुनः इस पृष्ठभूमि में उनके लिए यह कह देना सामान्य हो जाता है कि जीवन की यथार्थ कटुता से ऊब कर इन कवियों ने किसी आदर्श लोक में पलायन करके इससे सर्वदा अपने को मुक्त रखने का प्रयत्न किया है।

जहाँ तक स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी कवियों की वेदना का प्रश्न है वह तो सर्वमान्य है। 'वर्ड्सवर्थ' की वेदना कुछ भिन्न प्रकार की थी। वह उस युग की अतिभौतिकता से अत्यधिक दुःखी था, अतएव वह इस का अन्त चाहता था।

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का गायक कवि बाद को इसके दुष्परिणामों को देखकर इसका विरोधी हो गया। उसे मानवता से सच्चा प्रेम था, फिर भी वह मानवता को सदा-सर्वदा प्रकृति के ही प्रांगण में हँसता, विनोद करता, उसी से प्रेरणा ग्रहण करता, देखना चाहता था। इसी पृष्ठभूमि का सहारा लेकर उसने मानव के कष्टों को भी चित्रित करने का प्रयत्न किया है। पर 'शेली' 'कीट्स', 'बाइरन' आदि की कविताओं में व्यक्तिगत असफलता, आशा-निराशा, अभिलाषा तथा महत्वकांक्षा के चित्र हैं। उनकी एक आदर्श दुनिया थी। जब भी वे उसको प्राप्त करने में असफल होते हैं तो बच्चों की तरह मचल कर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर देते हैं। 'शेली' के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व ने उसकी प्रेम-कल्पनाओं को अतिशयता से रंजित कर दिया था। प्लेटो के विचारों ने 'शेली' में और भी चार चाँद लगा दिया। जिस आदर्श सौन्दर्य के लिए वह मचल पड़ा वह सरलतापूर्वक प्राप्त नहीं किया जा सकता था। वह निराशावादी हो गया। उसका व्यक्गित जीवन भी उसे इस ओर अभिमुख करने के लिए उसके विरुद्ध ही सतत् क्रियाशील रहा। परिणाम यह हुआ कि प्रायः सभी कविताओं में वह निराशा का चित्र प्रस्तुत करता गया।[1] उसने लिखा है, 'कम महत्वपूर्ण लोगों में एक व्यक्ति आया जो क्षीणकाय था। वह उनमें छाया के सदृश दीख पड़ता था। वह मित्ररहित था। वह समाप्त होते हुए झंझावात के अन्तिम जलद-खण्ड-सदृश था जो गरजते ही अपनी समाप्ति की सूचना देता है।'[2] 'स्टेंजा रिटेन इन डीजेक्शन नीयर नेपुल्स' में यह चित्रण और भी स्पष्ट है। कवि इस समय आशा, शान्ति, संतोष आदि से रहित है। इसी दुनिया में अन्य लोग हैं जिनको जीवन की उपलब्धियाँ घेरे रहती हैं और वे इसीलिए जीवन को आनन्दमय समझते हैं। पर कवि के लिए इस जीवन का अर्थ कुछ और ही है। वह विश्व, जीवन एवं समय को पुकार कर पूछता है कि क्या जीवन का आनन्द उसके लिये लौट सकेगा? उसे उत्तर भी मिलता है कि वह कभी नहीं लौट सकता है। इसीलिये कवि 'वेस्ट विण्ड' से कह पड़ता है कि—'मैं जीवन के कण्टकाकीर्ण स्थान पर पड़ा

---

[1] Amidst others of less note came one frail form,
A phanton among men, a companianless
As the last cloud of expiring storm
Whose thunder is its knell,

[2] O lift me as a wave, a leaf, a cloud,
I fall upon the thorns of life. I bleed,
A heavy weight of hours has chained and bowed,
One too like thee, tameless, swift and proud.

हुआ हूँ और मेरे शरीर से खून निकल रहा है। काल के एक गुरु भार द्वारा मेरी आत्मा दबी हुई है। याद रखो मैं भी तेरे सदृश क्षिप्र एवम् घमंडी था, पर इस समय निस्सहाय हूँ। अतः तुम मुझे एक लहर, पत्ती एवम् जलद के सदृश इस जीवन के पंकिल पंथ से बाहर कर दो।' बाइरन के जीवन में भी एकाकीपन एवं तनहाई की भावना, वेदनापूर्ण अवसाद का रूप ले लेती है। उसकी वेदना यौवन के असंतोष के परिणाम स्वरूप उद्भूत हुई थी। वह आहें तो कई के लिए भर चुका था, पर केवल एक को प्राप्त करना चाहता था। वह एक भी उसकी न हो सकी। जिस प्रकार टूटा शीशा, अपने विच्छिन्न टुकड़ों द्वारा, एक ही प्रतिमा की अनेक प्रतिच्छाया प्रदर्शित कर सकने में समर्थ होता है, उसी प्रकार उसके विदीर्ण हृदय से उस प्रतिमा को न प्राप्त कर सकने के विविध अवसादपूर्ण स्वरूप प्रकट हुए। वह उनसे मुक्त होने के लिए प्रकृति की क्रोड़ में गया, परन्तु वहाँ भी उसे उसी कष्ट की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती रही। किसी भी प्रकार इस कष्ट से मुक्ति न मिलने के कारण उसकी आत्मा अत्यन्त प्रतिशोधपूर्ण हो गई। उसके हृदय में वह अग्नि थी जो एक बार जल चुकने के कारण बुझना नहीं जानती थी। इसकी ज्वालायें, तीव्र से तीव्रतर होती गयीं। उसमें एक प्राणघातक जलन थी। उसने 'चाइल्ड हेरोल्ड' में इस भावना को अभिव्यक्त किया है।

'कीट्स' अपने जीवन में सौन्दर्य का अनुपम उपासक था। फिर भी उसे जिस कटु अनुभव के बीच होकर गुजरना पड़ा, उससे उसके जीवन में परिवर्तन आया। व्यक्तिगत प्रेम की असफलता, बन्धु-विछोह तथा शारीरिक बीमारी के कारण उसका मन जर्जर हो गया। इस प्रकार का जीवन उसके लिए आशा और निराशा का एक अन्तर्द्वन्द्व बन गया। इसी से ऊबकर उसने 'ओड ट नाइटिंगेल' में ऐसे स्थल पर जाने की भावना व्यक्त की, जो इस संसार के अवसाद से पूर्ण मुक्त, आदर्श और मंगलमय हो।

छायावादी कवियों की भी व्यक्तिगत आशा और अभिलाषा थी। ये भी स्वच्छन्दतावादियों की तरह प्रेम की घर-फूंक मस्ती में निरन्तर रत रहते थे। उन्हें इस प्रेम के दौरान में इस बात का अनुभव हो चुका था कि 'हृदय खोल कर मिलने वाले बड़े भाग्य से मिलते हैं।' वे इसे अच्छी तरह जानते थे कि 'यह प्रेम का पन्थ कराल है री तरवार की धार पै धावनो है;' फिर भी वे विवश होकर यही कहा करते थे—

> 'डरो नहीं जी तुमको मेरा उपालम्भ सुनना होगा
> केवल एक तुम्हारा चुम्बन इस मुख को चुप कर देगा '

ये कवि भी स्वच्छन्दतावादी कवियों की तरह प्रेम के तानेबाने बुनते रहे। पर

इसमें उन्हें इसकी शीतलता के प्रतिकूल ज्वाला का ही अनुभव हुआ, आनन्द के स्थान पर अनन्त हाहाकार ही उनके हिस्से पड़ा। परिणाम यह हुआ कि कवि निराश होकर कह पड़ा—

'शैवलिनि जाओ मिलो तुम सिन्धु से
अनिल आलिंगन करो तुम गगन का
चन्द्रिके चूमो तरङ्गों के अधर
पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है।'

अथवा

'मादकता से आये तुम
संज्ञा से चले गये,
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे उतरे हुए नशे से।' (प्रसाद)

अजातशत्रु में बिम्बसार ने कहा है—

'आह जीवन की क्षणभंगुरता देख कर भी, मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है………। मनुष्य व्यर्थ महत्व की आकांक्षा में मरता है। अपनी नीची किंतु सुदृढ़ परिस्थिति में उसे संतोष नहीं होता। वह नीचे से ऊँचे चढ़ना ही चाहता है, चाहे फिर-फिर गिरे तो क्या।'[1]

'कामायनी' काल तक यह नीचे से ऊँचे चढ़ने की प्रवृत्ति कवि में किसी न किसी प्रकार बनी रही। इसीलिए चिन्ता सर्ग में उन्होंने लिखा है—

'चिन्ता करता हूँ मैं जितनी उस अतीत की उस सुख की।
उतनी ही बनती जाती हैं, रेखायें नभ में दुःख की।'

ऊर्जस्वित व्यक्तित्व के 'निराला' के हृदय में भी एक टीस उठती है और वे कह उठते हैं—

'जीवन ही दुःख की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो कहा नहीं।'

वेदना की इस विवृत्ति के कारण इन कवियों के लिये—

'वेदना ही अखिल ब्रह्माण्ड यह,
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में,
तारकों में व्योम में है वेदना।'

जैसी भावनायें उनका कण्ठहार बन गईं।

ऐसी स्थिति में 'ले चल मुझे भुलावा देकर' अथवा 'पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है' आदि को देखकर इन पर पलायनवादी होने का आरोप लगा दिया गया। बाह्य दृष्टि से यह ज्ञात भी होता है कि निराशाकुल हृदय इससे मुक्ति पाने के लिए अवश्य किसी न किसी आदर्श लोक का सृजन करके, उसकी ओर उन्मुख

[1] अजातशत्रु, पृ० २८।

हुआ होगा। इसमें शक नहीं कि वेदनातिशयता से मुक्त होने के लिए इनमें छटपटा-हट का दर्शन होता है और "ये जीवन में दुःख अधिक या कि सुख" जैसी पहेली बुझाते हैं। इसी प्रयत्न में इनको 'तुझको पीड़ा में ढूढ़ा तुझमें ढूढ़ूँ मैं पीड़ा' का अनुभव होता है और ये उसे समझते हुए कह पड़ते हैं—

'अवसाद को मैंने विदा कर दिया। ऐसा विचार है कि उसको कभी न ग्रहण करूँगा। लेकिन ऐसा ज्ञात होता है वह मुझे चाहता है।'[1]

अतएव ऐसा ज्ञात होता है कि आरम्भ में अवसाद से मुक्ति पाने के लिए ये कवि अवश्य उत्सुक थे। परन्तु जीवन में ज्यों-ज्यों उसके समीप पहुँचे और उसे समझे, त्यों-त्यों वह इनके जीने का आधार बन गया। उन्हें इस बात का अनुभव हुआ कि जीवन में मिलन के पश्चात् विछोह अवश्य होता है। इस प्रकार इस प्रत्यभिज्ञान के साथ ही वे जीवन के अवसादपूर्ण क्षणों के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण अपनाते दृष्टिगोचर हुए। ऐसी स्थिति में आलोचकों का उन्हें 'पलायनवादी' कहना कितना उचित है, इसे गंभीरता से समझना पड़ेगा।

दूसरी बात यह है कि ये स्वच्छन्दतावादी एवम् छायावादी कवि सदा-सर्वदा निराशावादी दृष्टिकोण नहीं अपनाये हैं। जीवन के ऐसे क्षण भी थे जिनके प्रति ये पूर्ण आशावादी थे। शेली 'ओड टु वेस्ट विण्ड' में एक ओर तो स्वीकार करता है कि वह जीवन के कण्टकाकीर्ण मार्ग में उलझ गया है और उसके शरीर से रक्त निकल रहा है; फिर भी वह अन्त में उससे कहता है कि 'मेरे निष्क्रिय विचारों को उन पत्तियों की तरह संसृति में बिखेर दो जो सूखी होने के बावजूद भी नवीन वस्तुओं के सृजन का कारण बनती हैं। इस कविता के मन्त्रोच्चार द्वारा मेरे शब्दों को मानवता में इस प्रकार प्रसारित करो जैसे तीव्र हवा अधबुझी अग्नि को उसकी राखों के साथ इधर-उधर बिखेरती है। हे वायु! तुम यथार्थ में भविष्य के उद्घोष हो। सत्य यह है कि शिशिर का आगमन वसन्त के आने का सूचक है।'[2]

---

[1] To sorrow,
I bade good morrow,
And thought to leave her far away behind.
But cheerly, cheerly; she loves me dearly—*Keats*.

[2] "Drive my dead thoughts, over the universe,
like the withered leaves to quicken a new birth.
... ...
The trumpet of prophecy, O wind.
If winter comes, can spring be far behind."

पन्त का अभिमत है—

'जग जीवन में उल्लास मुझे
नव आशा, नव अभिलाष मुझे
चाहिए विश्व को नव जीवन,
मैं आकुल ये उन्मन-उन्मन।'

निराला भी इसी आशा का संदेश देते हैं—

'जग को ज्योतिर्मय कर दो
प्रिय कोमल पदगामिनी।
......
हँस हँस निज पथ आलोकित कर
नूतन जीवन भर दो।'

उपर्युक्त विवेचन द्वारा यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि इन कवियों के जीवन में निराशा एवं उससे मुक्ति का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है, फिर भी इसके साथ ही साथ निराशाजनित अवसाद को ही इन्होंने अपने गले का हार भी बनाया है और यथास्थान निराशा के पश्चात् अदम्य आशावादी स्वर का घोष भी किया है। ऐसी स्थिति में सामान्य रूप से वास्तविकता का ज्ञान कर लेना टेढ़ी खीर है। इसी-लिए इन्हें पलायनवादी, निराशावादी, आशावादी, आदि अनेक संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। अतएव इन तीनों दृष्टिकोणों के बीच यह जान लेना कि ये क्या हैं, परमा-वश्यक है।

पलायनवाद आधुनिक दुनिया की विषमताओं, कष्टों एवं निराशाओं से ऊब कर तृप्ति एवं सुख के अयथार्थ लोक में परिभ्रमण करने का मुखापेक्षी है। पलायन-वादी यथार्थ में जीवन से नहीं भागता, उसके सुखों से नहीं भागता, भागता है तो उसके दुःखों से। ऐसी स्थिति में वह अपने जीवन के दुःखों के प्रति भले ही अन्यमनस्क हो जाय, फिर भी अपने तथा समाज के सुखों की महत्वाकांक्षा तो उसे आन्दोलित करती ही रहती है और इस स्थिति में किसी महत्वपूर्ण सृजन को समाज को मिलने की संभावना रहती है। साहित्य इसका साक्षी है कि यथार्थ जीवन से पलायन करने के पश्चात् चिन्तन एवं आत्म-मंथन द्वारा व्यक्ति महत्वपूर्ण आदर्श दे सके हैं जो आज भी मानवता के अलंकार हैं।

छायावादी एवं स्वच्छन्दतावादी कवि पलायन द्वारा केवल आदर्श लोक की कल्पना नहीं साकार करना चाहते थे। उनका आदर्श तो यथार्थ-संयुत वह आदर्श था जिनमें उनके अहं के अन्तर्चिन्तन के यथार्थ चित्र भी थे। अतएव इसे हम यथार्थ की पूर्ति कहें चाहें पलायन की वृत्ति, परन्तु यह परिणामातीत मन की एक आवश्यक प्रेरणा तो है ही।'[1] इसी वृत्ति के कारण वे यह नहीं कह सकते कि सभी राष्ट्रों, वर्गों एवं मनुष्यों को मैं घृणा करता हूँ परन्तु रूप से मेरी घृणा का पात्र वह पशु-तुल्य मनुष्य है।'[2] यहाँ तो वे स्पष्ट रूप से कहते हैं'—

[1] महादेवी : आधुनिक कवि, पृ० २११।
[2] गुलीवर्स ट्रैवेल्स।

'जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल खेल रे नाविक,
जीवन के अन्तस्तल में
नित बूड़-बूड़ रे भाविक ।'

उनके लिये तो 'विहंग एवं सुमन सुन्दर हैं, पर मानव सुन्दरतम है। इसी से उन्होंने जहाँ पलायन भी किया है, वहाँ वह बुद्धिक्षेत्र में न होकर भावक्षेत्र में है। श्रीमती महादेवी ने लिखा है, जैसे यथार्थ से साक्षात् करने में असमर्थ छायावाद का भावपक्ष में पलायन संभव है, उसी प्रकार यथार्थ की सक्रियता स्वीकार करने में असमर्थ प्रगतिवाद का चिन्तन में पलायन सहज है। विचार कर देखा जाय तो 'जीवन से केवल भाव-जगत में पलायन उतना हानिकर नहीं, जितना बुद्धिपक्ष में पलायन, क्योंकि एक हमारे कुछ क्षणों को गतिशील कर जाता है और दूसरा हमारा सम्पूर्ण सक्रिय जीवन माँग लेता है' ।' भावक्षेत्र में बिना पलायन किये पूर्ण रससंयुत काव्य का सृजन कर सकना असंभव है, अतएव इस यथार्थ क्षेत्र से भावनात्मक क्षेत्र में प्रश्रय लेने को पलायन नहीं कहा जा सकता। वह तो आदर्श व्यवस्था में विश्वास करने वाले कवि का रूप है।

अतएव छायावादी एवं स्यच्छन्दतावादी कवियों को रूढ़ अर्थ में पलायनवादी नहीं सिद्ध किया जा सकता। 'छायावादी पलायनवादी नहीं। वास्तविकता यह नहीं कि छायावाद सामाजिक यथार्थ से ऊबता है; वैयक्तिक चेतना से अधिक अनुराग रखता है, आत्म-केन्द्रित है। सत्य यह है कि इन कवियों ने जीवन के निषेधात्मक दृष्टिकोण को प्रश्रय न देकर, इस संसार को ही अपना लक्ष्य माना है। छायावाद की काव्यधारा, जीवन-भावना की मूल शिक्षा से दूर, संसार के निषेध से आवृत्त, छूछे आदर्शवाद के वायवीय कल्पना-लोक में टिके हुए, भावानुभूत्याभास पर आधारित नहीं है। वह ऐसी काव्य-त्रिपथगा है जो जीवन-सत्य के कमण्डल से निकल कर केवल, भौतिक सत्यों की ही भूमि पर न बह कर, जीवनपोषी मानों की ऊँचाई के आकाश एवं उनके मूल्यों के पाताल को भी पावन किए है। इसमें आई हुई निराशा, वेदना एवं औदात्य की झिलमिल छायाएँ भी पलायन नहीं, क्षोभ, घृणा एवं असंतोष की दिशाओं से जीवन की ओर चलने वाली भाव-चिन्ता-धारा के विविध रूप है।'[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'इन दोनों ही धाराओं के कवि सामाजिक परिवर्तन से अपरचित हैं, छायावादी एवं स्वच्छन्दतावादी काव्य-जगत से अन्य किसी रहस्यमय सत्ता में विश्राम लेते हैं, वे जीवन का सामना नहीं करना चाहते, उनका संपूर्ण जीवन-दर्शन काल्पनिक एवं एकान्तिक है, इस तरह के आक्षेपों से इनके नवोन्मेषपूर्ण साहित्य को नहीं ठुकराया जा सकता।'[2]

---

[1] छायावाद की काव्य-साधना।
[2] आधुनिक कवि : नंददुलारे वाजपेयी।

१

शेली और पन्त

'शेली' और 'पन्त' दो भिन्न कालों एवं भिन्न देशों में प्राय: एक सी ही परिस्थिति की उपज हैं। शेली अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन की प्रादुर्भूति हैं तो 'पन्त' भारतीय छायावादी आन्दोलन की मानसिक क्रान्ति की। विचार-साम्य के कारण इन कवियों में कुछ साम्य दृष्टिगोचर होता है, पर यह ऐसा साम्य है जिसमें देश-काल का वैषम्य अपने स्वरूप में बना हुआ है। यथास्थान अनुकरण की प्रवृत्ति का भी दर्शन होता है। सांस्कृतिक वैषम्य के बावजूद काव्य के मूल स्वर में एकता होते हुए भी अन्त:सलिला विचारधारा में कहीं-कहीं भिन्नता है। उस पर संस्कृति का जो झीना पट पड़ गया है उसके कारण उनको सही रूप में समझ सकने में कुछ कठिनाई होती है।

जीवन

शेली का जन्म ४ अगस्त १७९२ में एक संकीर्ण मनोवृत्ति वाले मध्यवर्गीय काउण्टी परिवार में हुआ था। उसकी आरम्भिक शिक्षा घर पर उसके बहनों के साथ हुई थी। वह १८०२ ई० में ब्रैण्टफोर्ड के 'सिअन-हाउस' स्कूल में भरती हुआ। उसका विद्योपार्जन का अनुभव विचित्र था। वह निरंकुशता से घृणा करता था, पाशविक शक्तियों का विरोधी था और कालेज के श्रान्तिदायक कार्य उसकी स्वतन्त्र मनोवृत्ति का परिपोषण न कर सकने के कारण, उसे घृणास्पद दीख पड़ते थे। अपनी मस्ती में रत रहने वाला यह व्यक्ति पाठ्य-पुस्तकों की क्या परवाह करता, परिणामस्वरूप वह ग्रीक भाषा के अध्ययन की ओर उन्मुख हुआ और उसमें प्रवीणता भी प्राप्त की।

१८०८ से उसका केम्ब्रिज का जीवन आरम्भ हुआ। क्रान्ति की भावना उसके हृदय के अन्तस्तल को झकझोर रही थी। पह तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से भी असंतुष्ट था। परिश्रम एवं पाठचेतर पुस्तकों के अध्ययन के द्वारा वह अपने को सतत् योग्य बनाता रहा। स्वतन्त्र चिन्तन से प्राप्त उपलब्धियों के आधार पर उसकी 'नेसेसिटी आफ एथेइज्म' नामक पुस्तक प्रकाश में आई। विश्व-

विद्यालय से संबद्ध अधिकारियों के कान खड़े हो गये। उसकी यह क्रिया अवज्ञा मानी गयी। शेली झुकने को तैयार न था, अतएव वह विद्यालय से निष्कासित कर दिया गया।

शेली अपने जीवन के १९ वें वर्ष में 'हेरियट वेस्टब्रुक' के संपर्क में आया और वे परिणय-सूत्र में आबद्ध हुए। कारण विशेष से इन दोनों में पट न सकी अतएव वह गोडविन परिवार की ओर उन्मुख हुआ। वेस्टब्रुक से संबंध-विच्छेद होते ही वह गोडविन के प्रणय-सूत्र में बँधा। यहीं उसके प्रेम का अन्त हुआ। एक बार 'एमिली विविआनी' की ओर भी आकृष्ट हुआ, पर तीव्र नियंत्रण के कारण यह घटना हृदय की कसक का रूप लेकर रह गयी।

पन्त का जन्म सन् १९०० ई० में 'कौसानी' में हुआ था। बचपन में ही इन्हें मातृ-वियोग सहन करना पड़ा। किशोरावस्था के पूर्व ये लज्जालु स्वभाव के व्यक्ति थे और परियों की कहानी सुनना बहुत पसन्द करते थे। आरम्भिक शिक्षा गाँव में समाप्त करके १९११ में अलमोड़े के गवर्नमेण्ट स्कूल में भरती हुए। १९१७ ई० में मिडल की परीक्षा पास करके, अध्ययनार्थ काशी आये। बचपन में साधु-समागम से वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई थी। 'रामायण', 'महाभारत', 'वैराग्य-शतक' आदि पुस्तकों का अध्ययन उसी समय आरम्भ हो गया था। १९११ में इलाहाबाद के म्योर सेन्ट्रल कालिज में अध्ययन का क्रम चल ही रहा था कि अचानक गान्धी जी के असहयोग-आन्दोलन से प्रभावित होकर अध्ययत से विरत हो गये। अब पंडित शिवाधार पांडेय के सहयोग से अंग्रेजी का अध्ययन करने लगे। अंग्रेजी के अतिरिक्त दर्शन, उपनिषद् एवं बँगला साहित्य का भी पठन-पाठन चलता रहा। १९२६ में पिता की मृत्यु के कारण अचानक आ पड़े संकट को भी वरदान समझ कर इन्होंने झेला।

व्यक्तित्व

शेली शरारती, आकर्षक, प्यार करने योग्य, स्वतन्त्र, दृढ़ और उदार प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसकी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें, लम्बे घुँघराले बाल, कोमल शरीर एवं क्षीण पर सशक्त काया आकर्षण का प्रमुख केन्द्र थी। ऐसा कहा जाता है कि उसका पूरा व्यक्तित्व तेजस्वी, प्रदीप्त, उत्साहपूर्ण तथा विविध असामान्य प्रतिभा से आपूर्ण था। उसके सामयिक व्यक्तियों ने उसे पुष्प-सदृश कहा है। एक के अनुसार वह उस आकर्षक एवं सुकोमल पुष्प के सदृश है जिसका सर अत्यधिक वर्षा के कारण झुक गया है और उसमें उस फूल-सदृश पीलापन है जो प्रकाश से

दूर है। एक अन्य व्यक्ति का विचार है कि वह उस फूल की तरह आकर्षक एवं कोमल है जो मलयानिल में भी म्लान है।[1]

छायावादी कवियों में पन्त का व्यक्तित्व भी अत्यन्त आकर्षक है। वे बहुत कुछ शेली से मिलते हैं। घुँघराले बाल, स्नेह-सिक्त मदमादी आँखें, यौवन-वेष्टित शरीर, विहँसता मुखमंडल, स्वर तथा चाल में अतीव माधुर्य एवं कोमलता, अत्यंत सुकुमार व्यक्तित्व—सब कुछ मिलाकर उनका व्यक्तित्व आकर्षक है। बच्चन जी के शब्दों में 'पन्त जी ऐसे व्यक्तियों में' ही नहीं हैं, जो युग की शक्तिमान् प्रवृत्तियों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया रखते हैं, अपितु वे उन व्यक्तियों में भी हैं जो युग को प्रभावित करते हैं।

सामान्य शारीरिक साम्य के बावजूद उनकी प्रकृति में पर्याप्त असाम्य है। 'शेली' जीवन के आरम्भ से क्रान्तिकारी हैं, पन्त जनभीरु। एक जीवन को आह्वान मान कर संघर्षरत रहता है पर दूसरा इससे दूर भागता है। एक अपने प्रेम तथा क्रान्ति का भुक्तभोगी है, पर दूसरे के लिए सब कुछ भावी है।

प्रकृति-प्रेम

पंत एवं शेली दोनों ही प्रकृति के अनन्य प्रेमी कवि हैं। शेली का कहना है कि 'शान्ति या एकाकीपन के उन क्षणों में जब हम मनुष्यों से घिरे हों, फिर भी वे हमें अपनी सहानुभूति न प्रदान करते हों, हम फूल, घास, जल और आसमान को प्यार करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में वसन्त के हर हिलने वाले पत्ते तथा हवा हम लोगों के हृदय से एक अव्यक्त संबंध स्थापित करती हैं। वाणीविहीन वायु में एक वाग्मिता, तथा प्रवाहित प्रपातों में एक संगीत है जो हमारे हृदय से अव्यक्त रूप से सम्बद्ध होने के कारण हमारी आत्मा को अतीव आनन्द में नर्तन के लिए बाध्य करते हैं और हमारी आँखों से रहस्यमय कोमलता के अश्रु प्रवाहित हो उठते हैं। ये आँसू एकान्त में किसी प्रेयसी के द्वारा प्राप्त गान अथवा राष्ट्रीय सफलता से प्राप्त आनन्द के कारण निकले हुए आँसुओं से किसी भी प्रकार कम नहीं।'[2]

पन्त का अभिमत है कि 'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है। कवि-जीवन से पहले मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुन कर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।'

[1] हिस्ट्री ऑफ इंगलिश लिटरेचर : सी रिकेट, पृ० ३३६।
[2] एसे आन लव : शेली।

इस प्रकार दोनों कवियों के शब्दों पर ही अगर दृष्टिपात करके देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही प्रकृति के कवि हैं, दोनों ही उसके क्रिया-कलापों का तन्मय होकर अध्ययन करते हैं और दोनों ही उसे अपने माध्यम से साहित्य-सर्जन का साधन बनाते हैं।

अपने प्रारम्भिक जीवन में ये कवि प्रकृति के तटस्थ दर्शक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ प्रकृति उनके लिए ऐसी शक्ति है जो अपनी इच्छानुसार कार्य संपादित करती है और ये मन्त्रमुग्ध होकर उसका निरीक्षण करते रहते हैं। 'वीणा' की वीणा के झंकार से मुग्ध होकर कवि सर्वप्रथम प्रकृति रानी के शतशत विकीर्ण सौन्दर्य का आवाहन करता है। वह प्रकृति के रूप-वैभव एवं ज्ञान-वैभव के अन्तराल में प्रवेश करके प्रकृति के दिव्य स्वरूपों का निष्पक्ष उद्घाटन कर सके, यही उसकी कामना है। 'इस समय वह छाया से प्रार्थना करता है कि उसका मनस्ताप हरे, सरिता से प्रार्थना करता है कि उसी के समान गा सके, अन्धकार से प्रार्थना करता है कि अपने ही समान रंगीन बनाकर जीवन व्यतीत करना सिखलावे। निर्झर को देखकर वह कामना करता है कि उसी के समान आँसुओं का दान दे सके।' वह कहता है—

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।'

शेली भी अपनी क्लाउड नामक कविता में कहता है—

'मैं प्यासे फूलों के लिए समुद्र एवम नदी से बरसात ले आता हूँ।
मैं पत्तियों के लिए वह आवश्यक छाया प्रदान कर सकता हूँ
जिससे दोपहरी के आतप से बच कर शान्तिपूर्वक वे स्वप्न देख सकें।'[1]

यथार्थ में इस अवस्था में प्रकृति उनकी प्यासी एवं अतृप्त आत्मा के लिए विविध संमोहन के रूप में प्रस्तुत थी।

परन्तु उनकी यह अवस्था अधिक समय तक न स्थिर रह सकी। उनमें परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन के मूल में हमें कटु सांसारिक अनुभूतियों का दर्शन होता है। इसी अन्य उपयुक्त आश्रय के अभाव में वे प्रकृति की ओर उन्मुख

---

[1] I bring fresh showers, for the thirsty flowers,
From the sea and the streams.
I bear light shade for the leaves, when laid
In their noon day dreams.

हुए परन्तु कटु प्रहारों, अनुभूतियों एवं अतृप्त वासनाओं को जिन्हें, उन्हें भूल जाना चाहिए था, वे भूल न सके। परिणामस्वरूप उनका प्रकृति प्रेम इन्हीं रंगों से रँग उठा। नारी-विषयक कल्पनायें प्रकृति के माध्यम से व्यक्त हुईं। 'एपिप्साइचिडियन' का निम्न पद इसका ज्वलन्त प्रमाण है—"अपने यौवन के स्पष्ट स्वर्णिम प्रभात में कल्पित द्वीप के प्रकाशपूर्ण स्थल पर, परम शान्तिदायक निद्रा उत्पन्न करने वाले ऐन्द्रजालिक पर्वतों एवं कन्दराओं के मध्य, विचित्र स्वप्नों के वायु-सदृश लहरों पर जो उसके कोमल पदों को किसी काल्पनिक समुद्रों के अन्तरीप पर जाने का माध्यम प्रस्तुत करते हैं, वह मुझसे इतने अधिक प्रकाश से प्रकाशित मिली कि मैं उसे देख भी न सका।'[1]

पन्त ने तो स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि 'प्रकृति को मैंने अपने से अलग सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है।'[2] ऊपर शेली तो प्रिया-मिलन की अलौकिक पृष्ठभूमि देकर ही शान्त हो गया है, पर पन्त को तो प्रिया के संमिलन के पश्चात् प्रकृति उसी की छाया-सदृश दीख पड़ती है—

'आज मुकुलित कुसुमित सब ओर।
तुम्हारी छवि की छटा अपार।
फिर रहे उन्मद मधु-प्रिय भौंर
नभ पलकों से पंख पसार।

— — —

---

[1] In the clear golden prime of her youth's dawn,
Upon the fairy isles of sunny lawn,
Amid enchantad mountains and caves,
Of divine sleep, and on air like waves,
Of wonder level dreams, whose tremulous floor,
Paved her light steps, on imagined shore,
Under gray break of some promontory.
She met me robed in such exceeding glory
That I beheld her not.

[2] **आधुनिक कवि, पृ० ६।**

[3] O lift me as a wave, a leaf a cloud,
I fall upon the thorns of life, I bleed.

प्रिये कलि-कुसुम-कुसुम में आज
मधुरिमा मधु सुषमा सुविकास ।
तुम्हारी रोम-रोम छवि लाज
आ गया मधुवन में मधुमास ।'

अथवा

'तुम्हारी आँखों का आकाश
सरल आँखों का नीलाकाश
खो गया इसमें खग अनजान
मृगेक्षिणि इसमें खग अनजान ।

ये प्रकृति में किसी परात्पर सत्ता का आभास भी पाते हैं । शेली का 'बादल' मानव-सम्बन्धों की स्मृति जागृत करता है । 'स्काइलार्क' में भी उन प्रवृत्तियों का चित्रण हुआ है जो मानव-जीवन में सुलभ नहीं होतीं । 'एडोने' में प्रकृति पुनरावर्तन की क्रिया में रत है । इसके मूल में शेली के 'बादल' का वही दिव्य संदेश निहित दृष्टि-गोचर होता है कि मैं 'बदल सकता हूँ, पर समाप्त नहीं हो सकता ।' यहाँ प्रकृति की पृष्ठभूमि में नश्वर को भी अनश्वर चित्रित किया गया है । यथा—

'हे उषा ! तुम 'एडोने' के लिये शोकग्रस्त मत होओ ।
तुम अपनी ओस की बूँदों को शोभामय ढंग से बिखेर दो;
क्योंकि जिस आत्मा के लिये तुम इतनी शोकग्रसित हो वह
तुमसे दूर कहीं अन्य स्थल पर नहीं गयी है ।'[1]

पन्त की प्रकृति में भी इस प्रकार की भावना निहित है । यथा—

'क्षुब्ध जल-शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथ कर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना बिथुरा देती अज्ञात
उठा तब लहरों से कर मौन
न जाने मुझे बुलाता कौन ।'

---

[1] Mourn not for Adonais thou young dawn,
Turn, all the dew to the splendour, far from thee,
The spirit thou lamentest is not gone.

प्रकृति में इन दोनों कवियों की निराशा के चित्र भी मिलते हैं—

> 'हे (पछुआ हवा !) तुम मुझे एक लहर, पत्ती एवं
> जलद के सदृश उबार लो। मैं जीवन के कण्टकाकीर्ण
> मार्ग पर गिर पड़ा हूँ। शरीर से रक्त निकल रहा है।'

इस प्रकार पन्त भी कहते हैं कि—

> 'शैवलिनि जाओ मिलो तुम सिन्धु से
> अनिल आलिंगन करो तुम गगन का।'

पन्त एवं शेली प्रकृति की सामान्य पवित्रता के प्रेमी हैं। शेली के प्रकृति-चित्रण में तो उसके भयंकर विनाशात्मक रूपों का भी समावेश हुआ है, पर पन्त का प्रकृति-चित्रण उसकी अनुभूतियों के आधार पर क्रियाशील होता है। इन दोनों कवियों ने प्रकृति-प्रेम में अपनी 'मिथ-मेकिंग' शक्ति का उपयोग किया है। ये जब भी प्रकृति पर दृष्टिपात करते हैं तो उनमें अनन्त जिज्ञासा की भावना का दर्शन होता है। आरम्भिक अवस्था में दोनों ही कवि मानव से प्रकृति को महान् समझते हैं; इसकी पथरीली शान्ति में उन्हें मानव के उत्थान एवं पतन के दृश्य मिले हैं। जीवन, मृत्यु, सामाजिक विजय एवं पराजय से सम्बद्ध आध्यात्मिक अगम्यता को मानवीय जड़ता, मूर्खता एवं पाशविकता की तुलना में इन्होंने अधिक परोपकारी माना है। यथार्थ में दोनों कवि, प्रकृति के बाह्य स्वरूप से विशेष रूप से संबद्ध न होकर उसके आन्तरिक स्वरूप में लीन हैं। पर कुछ समय पश्चात् उनकी इस मनोवृत्ति में परिवर्तन हुआ है। अपने बाद के चित्रण में ये मानव का प्रकृति पर आधिपत्य स्वीकार करने लगे हैं। यहाँ प्रकृति इनके लिये 'देवि, माँ, सहचरि, प्राण' आदि सभी पृष्ठभूमियों में उपस्थित दृष्टिगोचर होती है।

मानव-प्रेम

'शेली' का व्यक्तित्व एक क्रान्तिकारी का व्यक्तित्व था। वह दासता से मुक्ति को मानवता की सबसे महान् विजय के रूप में स्वीकार करता था। उसे विश्वास था कि दासता ही उत्पीड़न एवम् शोषण की जननी है। वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का समर्थक था। उसके अनुसार मानव-प्रेम समाज को विश्रृंखलित होने से बचा सकता था। वह प्रेम को एक ऐसी शक्तिसंपन्न सत्ता के रूप में स्वीकृति प्रदान करता था जो सृष्टि के कण-कण को सौन्दर्य से अलंकृत तथा स्पन्दित कर सकती थी। वह जीवन के दुष्कृत्य, कलुष तथा अपावन भावनाओं से किसी भी प्रकार सहयोग कर सकने में असमर्थ था। मानव-प्रेम, स्वतन्त्रता की अदम्य आकांक्षा तथा शोषण के विरोध के कारण वह सभी प्रकार की राजनीतिक,

धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं का कटु विरोधी हो गया था। उसके अनुसार ये मानव-संस्थायें कल्याण के स्थान पर बंधन का प्रयोग करके मानवता को शोषण एवम् परतन्त्रता की जंजीरों से आबद्ध कर देती थीं। 'सिमान्स' के शब्दों में, 'बुराई से किसी भी प्रकार का समझौता न करने वाली फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति की प्रवृत्ति ने एक दिन के अन्दर परंपरा एवम् अविश्वास जनित अन्धरूढ़ियों को तोड़ने का प्रयत्न किया था। शेली क्रान्ति की इसी भावना का अब भी पुजारी था। वह यथार्थ में प्रकृति-सौन्दर्य, प्रेम के व्यापक स्वरूप, मानव की पूर्णता एवम् परंपरा-विद्रोह में अडिग विश्वास रखता था।'[1] अतएव उसका व्यक्तित्व उसी के कवित्वमय शब्दों में बरस पड़ा है, हृदय की भावनायें उसी की सीमित शृंखलाओं को तोड़कर निकल पड़ी हैं। अमेरिका में 'रीपब्लिकन' की सफलता तथा 'फ्रान्स' में बोनापार्ट की असफलता पर अभिव्यक्त किए गए मनोभाव उसके विश्व-प्रेम के परिचायक हैं। 'रीभोल्ट आफ इस्लाम' का नायक शेली की प्रतिमूर्ति है। वह शेली की ही तरह जन-मानस को चेतन एवम् उदबुद्ध करना चाहता है। इसी पुस्तक के 'प्रीफेस' में शेली ने लिखा है कि 'उसका उद्देश्य पाठकों के हृदय में स्वतन्त्रता, न्याय तथा अच्छाई के सिद्धान्त में एक ऐसा शालीन उत्साह उत्पन्न करना है जो हिंसा, गलत-फहमी और ईर्ष्या के द्वारा समाप्त न किया जा सके।'[2]

परन्तु इस दृष्टि से जब हम पन्त पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें शेली की वह दीप्ति, अन्याय एवम् अत्याचार का सबल विरोध, क्रान्ति का विश्वव्यापक प्रभाव तथा प्रेम को एक मात्र चिरन्तन सत्ता मानने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। कवि ने अपने कुछ संबोधन-गीतों में समाज को उदबुद्ध करने का प्रयत्न किया है। कवि 'गुंजन' में 'सबके उर की डाली' को देखने का प्रयत्न करता हुआ आगे बढ़ता है और 'युगान्त' तक पहुँचते-पहुँचते सभी जड़-जर्जर परंपराओं को नष्ट-भ्रष्ठ कर देने का आह्वान करता है। उसकी आकांक्षा है—

'गा कोकिल बरसा पावकगण,
नष्ट भ्रष्ट हों जीर्ण पुरातन।
ध्वंस-भ्रंश, जग के जड़ बन्धन,
झरें जाति कुल, वर्णपूर्ण धन।
अन्ध नीड़ से रूढ़ि रीति छन।'

---

[1] शेली—इ० एम० यल० साइमन्स।

[2] प्रीफेस टू रिवोल्ट आफ इस्लाम : शेली।

'ग्राम्या' में पहुँचते-पहुंचते कवि में यथार्थ जीवन-चित्रों का समावेश उसे पूर्णता की ओर उन्मुख करता है। कवि ग्रामदशा पर अश्रुपात करते हुए कहता है—

'यह तो मानव लोक नहीं रे, यह तो नरक अपरिचित।'

कहीं-कहीं कवि ने भूमण्डल का गाना गाने का भी प्रयत्न किया है। स्वर्ण-धूलि की पतिता के प्रति उसके निम्नांकित विचार दर्शनीय हैं—

'मन से होते मनुज कलंकित।
रज की देह सदा से कलुषित।
प्रेम पतित पावन है तुमको।
रहने दूंगा मैं न कलंकित।1'

'स्वर्ण-धूलि' में अरविन्द के प्रभाव के कारण कवि मानव-मंगल एवं आध्यात्मिक विकास की ओर उन्मुख होता है फिर भी इन सबके बावजूद वह शेली की क्रियाशील क्रान्तिकारी भावना से अछूता रह गया है। विश्व-बन्धुत्व का गान मात्र सिद्धान्त की बात होती है, परन्तु उसके लिए कमर कसकर क्रियाशील रूप में अपने अमर संदेश देना तथा उसकी विजय को अपनी विजय एवं पराजय को अपनी पराजय समझना सच्चे क्रान्तिकारी कवि का आदर्श है। पन्त अपने कोमल नीड़ में बैठकर सुधार का गीत गाने वाले हैं और शेली ने विश्व की ज्वालामयी लपटों से झुलसने का भय होते हुए भी उसमें कूद कर पीड़ित मानवता को नवचेतना का संदेश दिया है जो मानव-मुक्ति के विकास-क्रम का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम है। इस प्रकार इस दृष्टि से शेली एवं पन्त में पर्याप्त अन्तर है। एक क्रान्ति की जलती दीपशिखा है, सिद्धान्तों का क्रियाशील रूप है तो दूसरा इसकी बुझी हुई राख की गरमी मात्र से अपने को अलंकृत करके संतुष्ट होने वाला व्यक्ति। एक क्रान्ति के बादलों के गर्जन-तर्जन, घोर-रव तथा विद्युत् कौंध के पश्चात् ऐसी उपल-वृष्टि करता है जिससे अन्याय का समूल नाश हो सके तो दूसरा इसकी घुमड़ के द्वारा केवल एक संदेश मात्र दे पाता है, जो सुधारात्मक प्रकृति से अधिक और कुछ नहीं है। एक में विश्व-नियामक होने की प्रबल भावना का दर्शन होता है और दूसरे में व्यक्ति-नियामक बन कर उसके परिष्कार का प्रयत्न।

प्रेम

शेली के व्यक्तिगत जीवन पर दृष्टिपात करते समय 'हैरियट बेस्टब्रुक', 'मेरी गाडविन', तथा 'अमीलिया विविआनी' का नामोल्लेख किया गया है। पन्त ने भी अपनी कविता 'ग्रंथि' में अपने प्रेम का एक चित्र दिया है। वास्तव में शेली

के प्रेम की स्वतन्त्रता एवं स्वच्छन्दता का पन्त में दर्शन नहीं होता । भारत में साहित्य को भावों एवं विचारों की परिष्कार भूमि माना गया है । यहाँ वासना भी अपने परिष्कृत रूप में साहित्य में अपनायी जाती है । छायावादी आन्दोलन कुछ अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी मनोवृत्ति को चित्रित कर सका है, फिर भी शेली जैसी स्वच्छन्दता पन्त में नहीं दृष्टिगोचर हुई है । शेली ने लिखा है 'तुम पूछते हो प्रेम क्या है ? यह यथार्थ में सबके प्रति वह सशक्त आकर्षण है, जिसमें हम अपनी भावनाओं, विचारों या सामान्य रूप से अन्य की सीमाओं के परे, अपने अन्दर एक अपूर्ण अथवा रिक्त वैमत्य का अनुभव करते हैं और इसी आधार पर अपने अनुभव से संलग्न उपादनों में एक चेतना का संचार करते हैं।...यह एक ऐसा बन्धन या स्वीकृति है जो केवल मानव को मानव से ही नहीं, अपितु संसृति के प्रत्येक उपादानों को एक दूसरे से संबद्ध करती है । अगर हम इसका बौद्धिक निराकरण ढूढ़ें तो हमें लोग अन्यथा समझ सकते हैं । अगर हम विचार के आधार पर कुछ कहें तो कह सकते हैं कि हमारे मस्तिष्क के नव्य विचार नवीन दृष्टि से दूसरे के मस्तिष्क में उत्पन्न हुए हैं । अगर हम इसका अनुभव करें तो कह सकते हैं कि दूसरे के शरीरस्थ नाड़ी-जालों का स्पन्दन हमारे शरीरस्थ नाड़ी-जाल के अनुसार क्रियाशील है, उनकी आँखों की ज्योति दीप्तिमय होकर, पिघल कर हमारी आँखों की ज्योति से मिलकर एकाकार हो गई है ।'[1] पन्त ने लिखा भी है—

'रसिक वाचक कामनाओं के चपल,
समरसुक व्याकुल पगों से प्रेम की;
कृपण वीथी में विचर कर कुशल से
कौन लौटा है हृदय को साथ ला ।'

अथवा

'प्रणय की पतली उँगलियाँ क्या किसी
गान से विधि ने गढ़ीं ? जो हृदय को
याद आते ही विकल संगीत में,
बदल देती हैं भुलाकर मुग्ध कर ।'

शेली के प्रेम की सबसे बड़ी विडम्बना कल्पना के आधार पर सौन्दर्य के मूर्तिमान् स्वरूप को प्राप्त करने के विचार में निहित थी । इसी विचार

---

[1] **एसे आन लव : शेली ।**

के कारण वह प्रेम के क्षेत्र में विविध त्रुटियाँ करता रहा। उसको 'सॉक्रेटीज' के शब्दों में सौन्दर्य का पूर्ण, विलग तथा अनश्वर समुद्र, जो पवित्र, स्पष्ट, पूर्ण, शुद्ध नैतिकता से अबाधित, तथा मानव-जीवन के सभी संस्पर्शमय खोखले अहं से मुक्त हो, ग्राह्य है। शेली विराट सत्ता के सौन्दर्य पर मुग्ध है। वह अदृश्य संसार के अनन्त वैभवसंपन्न स्वरूप का प्रेमी है और उसके लिए इस महान् सृष्टि में जो कुछ भी ग्रहणीय है वह सौन्दर्य है। अतएव जिस भी प्रेयसी को वह प्यार करता है, वह उसकी कल्पना द्वारा परिवर्तित होकर उसके स्वप्नों का अङ्ग बन जाती है। यथा 'प्रेम, जीवन, प्रकाश, देवत्व तथा स्पन्दन से पूर्णरूपेण आभूषित एवं नश्वर प्रतिमा परिवर्तित हो सकती है पर समाप्त नहीं हो सकती। वह किसी दीप्तिमय शाश्वतता की प्रतिमूर्ति है। वह किन्हीं स्वप्निल स्वप्नों की छाया है।'[1] उसके इस प्रकार के कल्पनाधिक्य के लिये हम 'प्लेटो' के प्रभाव को ही उत्तरदायी ठहरा सकते हैं। इस प्रकार की कल्पनाप्रवण सौन्दर्य-प्रतिमा का उस पर प्रभाव भी पड़ता रहा। यथा 'अचानक तुम्हारी छाया मेरे ऊपर पड़ी, मैंने चिल्ला कर कहा कि मैं अपनी पूरी शक्ति उसे समर्पित करूँगा।'[2] प्लेटो के आधार पर वह अपनी प्रेयसी को अपनी आत्मा के अंश के रूप में स्वीकार करता है। प्लेटो के ही शब्दों में वह प्रेमियों के मिलन को दो शरीर में एक आत्मा अथवा दो हृदयों में एक ही संवेदनशील स्पन्दन की उपाधि से अभिहित करता है। आदर्श में स्वीकृति प्रदान करने के बावजूद व्यवहार में शेली इसे ग्रहण नहीं कर पाया है। परिणामस्वरूप उसका संपूर्ण जीवन प्रेम के झंझावात द्वारा उजाड़ दी गयी वाटिका के रूप में परिणत हो जाता है। 'एपिप्साइचिडिअन' में भी वह प्रथम तो इसी आदर्श सौन्दर्य की ओर उन्मुख होता है जो उसकी स्वप्निल यात्रा में उसके यौवन के उषाकाल में प्राप्त हुआ था। परन्तु कुछ समय पश्चात् वह अपनी कविता में उस

---

[1] A mortal shape endued
With love and life and light and deity
And motion, which may change, but cannot dug.
An image of some bright eternity,
A shadow of some golden dream.

[2] Sudden thy shadows fell on me,
I shrieked and clasped my hands in ecstasy
I vowed that I would dedicate my powers to thee.

सौन्दर्य की खोज में संलग्न दृष्टिगोचर होता है जो ऐंद्रिय आनन्द प्रदान कर सके; परन्तु जब वह इस स्वप्न को भी साकार कर सकने में असमर्थ हो गया तो पुनः उसने नश्वर प्रतिमा में अपनी आत्मा की छाया ढूँढ़ने का प्रयत्न किया। इसीलिये इस प्रतिमा को उसने 'ब्राइड आफ माइ सोल' की उपाधि से अभिषिक्त किया। परन्तु इस अभागे को यही अनुभव हुआ कि 'कष्ट का विषय है जिन पंखयुक्त शब्दों पर चढ़कर मेरी आत्मा प्रेम की विशिष्ट सृष्टि का अवगाहन कर सकी वे मेरी इस उड़ान के लिए गुरुतर बन्धन सिद्ध हुए।'[1] पन्त की कविताओं में प्रच्छन्न क्रिया-कलाप अधिक है। शेली जैसी स्वच्छन्दता का दर्शन इनमें कम हो पाता है। फिर भी इनका अनुभव है—

> 'अविरल इच्छाओं में ही नर्तन,
> करते अबाध रवि शशि उडुगण
> दुस्तर आकांक्षा का बन्धन।
> रे उडु क्या जलते प्राण विकल
> क्या नीरव-नीरव नयन सजल
> जीवन निसर्ग रे व्यर्थ विफल।
> एकाकीपन का अन्धकार
> दुस्सह है उसका मूक भार
> इसके विषाद का रे न पार।

पन्त भी यथास्थान शेली जैसी कल्पना की सुकुमार सृष्टि करने के लिए उद्यत हैं। यहाँ वे कुछ अंश में 'प्लेटॉनिक' कहे जा सकते हैं। यहाँ उनके स्वप्निल सौंदर्य की झाँकी दर्शनीय है।' 'भावी पत्नी' के प्रति कविता में वे कहते हैं—

> 'मृदूर्मिल सरसी में सुकुमार
> अधोमुख अरुण सरोज समान
> मुग्ध कवि के उर के छू तार
> प्रणय का सा नव गान।
> तुम्हारे शैशव में सुकुमार
> पा रहा होगा यौवन प्राण।

---

[1] Woe is me,
The winged words, on which my soul pierce
Into the height of love's rare universe
Are chains of lead, around its flight of fear.

स्वप्न सा विस्मय सा अम्लान
प्रिये प्राणों की प्राण ।

दुःख की बात है कि भावना की यह 'पत्नी' पन्त के लिये भावी ही रही। एक बार 'ग्रंथि' में ऐसा अवसर आया भी जब कवि को कुछ आशा बँधी। उसे अनुभव हुआ कि एक क्षण के लिये उसकी प्रियतमा के दृग-पलक ऊपर उठकर नीचे गिरे थे। उसे इसका आभास भी मिल चुका था कि 'चपलता ने इस विकम्पित पुलक से, दृढ़ किया मानो प्रणय-संबन्ध था।' कवि मन ही मन कह पड़ा था—

'कौन मादक कर मुझे है छू रहा
प्रिय तुम्हारी मूकता की आड़ में।'

पन्त भी शेली की तरह प्रेम का स्वप्निल ताना-बाना बुनने लगे पर थे वे भी इस ज्योत्स्ना-स्नात स्वप्न-लोक के विहङ्ग बने ही थे कि अचानक क्रूर नियति के कराल हाथों ने उनका पंख काट दिया और वे निराश्रित होकर गिर पड़े। शेली की तरह पन्त भी करुण क्रन्दन कर उठे और एक टीस निकल पड़ी—

'हाय मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रंथि-बन्धन हो गया, वह नव कुसुम
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।'

अतएव कवि निराश होकर कह पड़ा 'शैवालिनि जाओ।' इस समय कण-कण उसे प्रेम की गाथा सुनाता दृष्टिगोचर होने लगा, नदी दौड़ कर सिन्धु से मिलने लगी, पवन गगन का आलिंगन करने लगा और चाँदनी तरङ्गों का अधर चूमने लगी, पर इस सबके बावजूद कवि का हृदय कंगाल ही बना रहा। वह नियति को सम्बोधित करते हुए कह पड़ा—

'हा अभय भवितव्यते किस प्रलय की
घोर तम से जन्म तेरा है हुआ।
तू सरल कोमल कुसुम दल में कहाँ
है छिपी रहती कठिन कण्टक बनी।
स्वर्ण मृग तेरा पिशाचिनि हर चुका
इष्ट कितनों के हृदय का है अहा।'

शेली की ही तरह पन्त भी प्रेम की अखण्डता में विश्वास करते है। यथा—

'अनिल-सा लोक-लोक में,
हर्ष में और शोक में,
कहाँ नहीं है प्रेम ? साँस सा सबके उर में ।'

पन्त एवं शेली दोनों प्रेम में अपनी प्रिया को प्रकृति के कण-कण में परिव्याप्त देखते हैं । शेली के ही स्वर में स्वर मिलाकर पन्त ने भी लिखा है कि 'तुम्हारे छूने में था प्राण, सङ्ग में पावन गङ्गा-स्नान ।' ये कवि अपनी प्रियतमा की छाया को प्रकृति में व्याप्त पाने के कारण ही अपने सीमित व्यक्तित्व का विराट के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं । 'अमीलिया' को सम्बोधित करते हुए शेली ने कहा है कि 'हे स्वर्गीय देवदूत (अमीलया) ! तुम मानवी होने योग्य नहीं हो । तुम यथार्थ में इस स्त्री के दीप्तिमय शरीर द्वारा आच्छादित हो । तुम में ज्ञान, प्रेम एवं अमरत्व जैसी चीजें निहित हैं जो सामान्य बुद्धि के लिए दुर्वह हैं । तुम शाश्वत अभिशाप से घिरी शुभकामना हो । तुम इस अंधकारपूर्ण विश्व की प्रच्छन्न विजय हो । तुम बादलों से दूर चमकते हुए चन्द्रमा हो, या इन मृतक लोगों में एक सजीव प्रतिमा हो । तुम यथार्थ में झंझावात के ऊपर चमकता हुआ तारा हो । तुम प्रकृति की कला के सामंजस्य हो । तुम वह दर्पण को जिसमें सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में ऐश्वर्यमय प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है ।'[1] पन्त का भी विचार है

'तुम्हारे रोम रोम से नारि, मुझे है स्नेह अपार
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि मुझे है स्वर्गागार ।

---

[1] Seraph of heaven, too gentle to be human,
Veiling beneath that radiant form of woman,
All that is unsupportable in thee,
Of light and love and immortality.
Sweet benediction in eternal curse
Veiled glory of this lampless universe.
Thou moon beyond the clouds, thou living from
Among the dead, thou star above the storm.
Thou harmony of nature's art, thou mirror,
In whom as in splendour of the sun,
All shapes took glorious form, which thou gazed on.

तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु औ हास
सृष्टि के उर की साँस;
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान
तुम्हीं स्वर्गिक् आभास।
तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अन्तर्धान।
देवि माँ सहचरि प्राण।'

उपर्युक्त कविता प्रेम के क्षेत्र में इनकी निराशा के कारण पर स्पष्ट प्रकाश डालती है। 'शेली' और 'पन्त' जिस आदर्श सौन्दर्य के ग्राहक रहे, वह जीवन में कम मिलता है। उसका संसार भावनाओं का संसार है। जब वे इसकी सीमा का अतिक्रमण कर वैयक्तिक जीवन में आदर्श खोजने की भूख को अभिव्यक्त करने लगते हैं तो वहीं से कवि के जीवन में अवसाद का आरम्भ हो जाना स्वाभाविक है। न तो वह कभी मिलता है और न उसकी चाह तृप्त होती है। स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद में निराशावाद तथा निराशा की अतिशयता का यही मुख्य कारण है। वे समझौता करने में असमर्थ हैं। अगर जीवन में आदर्श एवं यथार्थ का समझौता नहीं हो सकता तो वहीं से मानव अपने कष्टों का द्वार खोल लेता है। पन्त के जीवन में यह समझौता किसी न किसी रूप में उपस्थित दिखलाई पड़ता है, पर शेली इसे अपने जीवन में न अपना सका। वह टूटता गया, गलता गया, पचता गया, जीवन की कठिनाइयों ने उसे जर्जर कर दिया, सत्य बार-बार उसकी आँखों के समक्ष आकर कौंध गया पर उसके आदर्श सौन्दर्य की खोज उसे प्रताड़ित करती रही। वह क्या जानता था कि व्यावहारिक जीवन की भावना और कल्पना में आदर्श मिलते नहीं। वह क्या जानता था कि दुनियाँ में 'हेरियट वेस्टब्रुक', 'मेरी गाडविन', 'अमीलिया विविआनी' का दर्शन होता नहीं। काश वह इसको पहचान सका होता!

युग-द्रष्टत्व एवं अनागतदर्शिता

'कवेरिदं कार्यं भावो वा' के अनुसार कवि द्वारा संपन्न होने वाले कार्य को काव्य कहते हैं। काव्य के अर्थ में कवि शब्द है, अतएव व्युत्पत्ति द्वारा इसका अर्थ समझ लेना चाहिए। 'कु' धातु में अच् प्रत्यय जोड़ने से कवि शब्द बनता है। 'कु' का अर्थ है व्याप्ति, आकाश। फलतः कवि श्रेष्ठ द्रष्टा कहा जा सकता है। श्रुति कहती है 'कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू।' परिभू वह है जो अपनी अनुभूति के क्षेत्र में सब कुछ समेट ले और स्वयम्भू वह है जो अपनी अनुभूति के लिये किसी का

ऋणी न हो। अर्थ निकला कि काव्य उसी मनीषी की सृष्टि है जो अपनी अनुभूति में सर्वज्ञ और अपने आप में पूर्ण हो। लौकिक साहित्य में कवि शब्द का संकीर्ण अर्थ में प्रयोग हुआ है। किसी विशिष्ट और रमणीय शैली में काव्य-सृजनकर्त्ता के नाम से अभिहित किया जाता है, फिर भी कवि के लिए नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा एवं वर्णन-निपुणता अनिवार्य मानी गई हैं। इसलिए कवि को प्रजापति एवं कवि-कर्म को काव्य-संसार की मान्यता दी गई है।'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि अपने काव्य-सृजन के समय द्रष्टा एवं स्रष्टा दोनों ही रूपों को अपने अन्दर समाहित किये रहता है। उसका सृजन उसके स्रष्टा धर्म से संबंधित है और सृजन में नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के आधार पर भूत का वर्तमान के पटल पर प्रयोग करके भविष्य के लिए बलवती आशा दे जाना द्रष्टा धर्म से। आचार्य वाजपेयी जी ने ठीक ही लिखा है कि 'कवि के व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से उत्सर्जन करने वाली प्रेरणा ही काव्यानुभूति बनकर उस कल्पना-ब्यापार का संचालन करती है जिससे काव्य बनता है। कल्पना एवं काव्य की मुखर वर्णमयता में समस्त वर्णभेद एवं वाद-भेद तिरोहित हो जाते हैं। मानव-कल्पना की यह अनुभूति नित्य एवं शाश्वत है। चिरन्तन विकास की सरिता, इसे चिरकाल से खींचती चली आ रही है और चिरकाल तक खींचती चली जायगी।'[1] यहाँ हमारा विवेचन केवल इस बात से संबद्ध है कि चिरकाल से चली आती हुई तथा चिरकाल तक चलने वाली इस परम्परा को कवि के रूप में शेली और पन्त की कौन-सी देन है ?

शेली और पन्त प्रथम युगद्रष्टा हैं और फिर मानवता के अमर संदेशवाहक होने के कारण युगस्रष्टा भी। उनका विश्वास है कि विनाश के बाद सृजन होता है। परिवर्तन किसी भी वस्तु की परिसमाप्ति नहीं होता। आज भी मानवता अगर विश्व-नियामक अपने इन कवियों की ओर दृष्टिपात करे तो उनके लिए पर्याप्त आशा है। इनकी कविता में हमें निराशा का चित्र प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है, पर यथार्थ में ये निराशावादी नहीं, अपितु इनकी निराशा में आशा का एक परम प्रबुद्ध स्वर छिपा है।

शेली के रूप में विश्व में 'दुष्कृत्य' की समस्या पर प्रकाश डालने वाले एक अमर कवि का दर्शन होता है। अपनी कविता के आरम्भ से ही कवि इसके

---

[1]आधुनिक साहित्य : आचार्य नंददुलारे बाजपेयी, पृ० ४१९ !

कारण एवं उसके निषेध के विविध साधन ढूँढ़ने में संलग्न है। उसकी यह धारणा है कि इसके सर्वनाश के पश्चात् मानव का पूर्ण उत्थान संभव हो सकता है। 'शेली' 'यह मानता है कि 'बुराई और भलाई में सतत् संघर्ष होता रहता है और दुर्भाग्य यह है कि बुराई ही विजय पाती जा रही है।' शेली के शब्दों में बुराई जीवन की कोई अप्रत्याशित घटना नहीं है, यह तो आधुनिक जीवन का सिद्धान्त बन गया है। यह सभी वस्तुओं एवं सभी नियमों में किसी न किसी प्रकार उपस्थित है। जीवन के दृश्य-पटल के पीछे 'भय' एवं 'आशा' दोनों ही छिपे हैं। आज की दुनिया में अन्याय के समूल नाश के बिना आशा को कोई स्थान नहीं है। परिणामस्वरूप यही भय विभिन्न रूप में निराशा का स्थान ग्रहण करता रहता है। सचमुच इस निराशा का काव्य के सृजन में विशेष महत्व है।

'क्वीन माब' तक पहुँचते-पहुँचते शेली की यह भावना दृढ़ हो जाती है कि विश्व का नियन्त्रण आवश्यकता नामक अन्धी शक्ति के हाथ में निहित है। मानव इस बुराई से लड़कर उसका प्रतिकार करने के लिए स्वतन्त्र नहीं है। यहाँ उस पर 'गाडविन' का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

'रीभोल्ट आफ इस्लाम' के आरम्भ में ही कवि इस आवश्यकता की चर्चा करता है, परन्तु इस विवेचन में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मानवीय इच्छा ही इतिहास में निर्देशक तत्व रही है। इस पुस्तक में शेली ने यह प्रतिपादित किया है कि अच्छाई का प्रसार हमें केवल दैवी इच्छा पर नहीं छोड़ देना चाहिए। 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' तक आते-आते शेली अपने इस विचार में पर्याप्त दृढ़ हो गया है कि हम आत्मसुधार द्वारा ही बुराई का नाश कर सकते हैं। आत्म-परिष्कार के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह घृणा का त्याग कर के प्रेम को स्थान दे। यहाँ प्रेम को उसने इस बुराई पर विजय प्राप्त करने का एक मात्र साधन माना है। उसका विचार है कि प्रेम ही सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है।

यथार्थ में शेली का पूरा काव्य क्रान्ति एवं प्रेम से सम्बन्धित है। पर इस दृष्टि से जब हम पन्त पर दृष्टिपात करते हैं तो उनमें विभिन्न विचारधाराओं का एक जंगम दिखाई देता है, फिर भी, उससे अपने काम की चीज सरलता से निकाल ली जा सकती है। 'पन्त' 'ईश्वर का चिर विश्वास मुझे' के साथ ही साथ 'प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर' का गुणगान करते दष्टिगोचर होते हैं। शेली को भी सचराचर तो प्रिय था परन्तु ईश्वर का विश्वास वह रूढ़िबद्ध व्यवस्था के अनुसार नहीं करता था। पन्त का एक राजनीतिक एवं सामाजिक आदर्श है। वे किसी भी तन्त्र को मानव-सत्य के नियमों से परिचालित मानते हैं। उनके नायक 'नीलरतन' के शब्दों में 'मनुष्य को शासन-पद्धति या उसके नियमों का

आविष्कार नहीं करना है, उसे केवल सत्य की जिस प्रणाली से समस्त विश्व चलता है, उसे पहचान लेना है।'[1] पुनः कमला के शब्दों में, 'हमारा आदर्श शासक वर्ग के शासन के बाह्य रूपरङ्गों से लुब्ध न होकर एवम् शासन-नीति को हृदय की पवित्र वस्तु मानकर जनता के हृदय में व्यवधान ही नहीं खड़ा होने देता। हमारा दण्ड-विधान मानव-सद्भावनाओं का द्योतक नहीं। कारागार सबसे बड़े शिक्षालय हैं। हम दण्ड के बदले चारित्रिक शिक्षा देते हैं।' उनका सामाजिक आदर्श भी डॉ० खेर के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—'जिस प्रकार व्यक्ति समाज का मान नहीं हो सकता, उसी प्रकार समाज भी व्यक्ति का मान नहीं बन सकता। हमारे सामाजिक एवम् वैयक्तिक आदर्शों के वैषम्य एवम् विभिन्नता इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। समाज एवम् व्यक्ति में सामंजस्य स्थापित करना ही पड़ेगा। इसके लिए व्यक्ति के हृदय को शिक्षित करने की आवश्यकता हैं क्योंकि शिक्षा हृदय की साधना है............। बुद्धि से जान लेना, जान लेना नहीं है। हृदय की शिक्षा में ही विश्व-संस्कृति के, मानव-प्रेम के एवम् समस्त जीव-कल्याण के मूल अन्तर्निहित हैं। जन्म-मरण, सुख-दुःख, जीवन के बाह्य विरोधी एवम् प्रतीक-आविर्भावों के बीच, मनुष्य को अपनी सहज बुद्धि से काम लेकर एक बार सामंजस्य स्थापित करना ही पड़ता है। मनुष्य के अधिक से अधिक असंतोष का कारण बुद्धिजन्य है। जीवन के सम्यक् ज्ञान से ही जीवन का उपयोग हो सकता है। समस्त निरोधों के भीतर जीवन की अविच्छिन्न एकता खोजकर, उस पर हृदय केन्द्रित करना होता है और तब मनुष्य, जीवन के उन चरम सूत्रों को ग्रहण कर लेता है जिसके छोरों में बँधे हुए सुख-दुःख आदि द्वन्द्व तुला के पलड़ों की तरह उठते गिरते हैं। इसी चरम सूत्र को ग्रहण करना, अनेकता में एकता को दिखाना, कलाकार का काम है।'[1]

दोनों ही कवियों के आधारभूत विचारों को ऊपर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। कवि के जीवन का अपना एक आदर्श होता है और उसकी काव्य-साधना में जीवन के आदर्शोन्मुख अथवा यथार्थवादी तत्व निहित रहते हैं। कवि की साधना भी किसी सत्य विशेष को अपना मानदण्ड मानकर क्रियाशील होती है। पन्त की विचारधारा की यह विशेषता है कि वह विविध दर्शनों को अपना प्रेरणा-स्रोत मानकर चली है। वे वेदान्त दर्शन के प्रेमी हैं तो अरविन्द आदि का प्रभाव भी उन पर पड़ा है। वे एक ओर साम्यवादी हैं तो दूसरी ओर

---

[1] डॉ० नगेन्द्र : पन्त, पृ० ३५।

[2] वही, पृ० ३६।

गान्धीवादी । वे अगर मानवतावादी हैं तो पलायन के भी पर्याप्त चित्र उनमें उपलब्ध होते हैं । वे अगर जनतन्त्रवादी हैं तो क्रान्ति के स्वर भी यथास्थान उनके साहित्य में मिल जाते हैं । कोई एक निश्चित विचारधारा उनके काव्य का मेरुदण्ड बनकर हमारे समक्ष उपस्थित नहीं होती । विविध विचारों के साथ प्रयोग ही उनका मुख्य उद्देश्य है । पर 'शेली' के अन्दर एक निश्चित विचारधारा आरम्भ से अन्त तक विद्यमान है । उसका एकमात्र उद्देश्य विश्व में फैली दुष्कृति का निराकरण है । इसी विचार से संबद्ध जितने भी प्रयोग उस छोटी उम्र में सम्भव हो सके हैं, उसकी कविता में दीख पड़ते हैं । प्रेम, राजनीति, धर्म आदि के लिए उसके पास एक तुला है, एक मापदण्ड है, और एक प्रतिमान है । इस प्रकार के निश्चित निराकरण का प्रयत्न पन्त में भी परिलक्षित होता है । विविध विचारधाराओं में उनका प्रतिपाद्य किसी न किसी रूप से उपस्थित है । फिर भी इनमें शेली जैसी एकनिष्ठता का अभाव है ।

अब रही जीवन संदेश देने की बात । इस पर दृष्टिपात करने के पहले एक बात अवश्य समझ लेनी चाहिए कि संदेश भी वही दे सकता है जिसके जीवन की पकड़ गहरी हो । पन्त जी आज भी हमारे बीच उपस्थित हैं । शेली मुश्किल से तीस वर्ष की अवस्था पा सका । फिर भी वह अन्याय को जला डालने के लिए उद्यत ज्वाला की शिखा सिद्ध हुआ । पन्त के सामंजस्यवादी दृष्टिकोण में इस बात का अभाव है । जहाँ पर उन्होंने मार्क्सवादी के रूप में सामाजिक या आर्थिक क्रान्ति का उद्घोष किया है वहाँ भी उनमें शेली की दीप्ति नहीं दृष्टिगोचर होती । शेली की कवितायें प्रत्येक अवस्था में मानव के आत्म-कल्याण से संबंधित है । 'वेस्ट विण्ड' में अपने जीवन के अति करुणामय स्वरूप का चित्रण करने के पश्चात् भी वह हवा से यह प्रार्थना करता है कि वह उसके विचारों को घर-घर पहुँचा दे, क्योंकि अगर जीवन में अन्याय रूपी शरद् या विपत्ति रूपी शरद् आ चुकी है तो यह इस बात को सूचित करती है कि बसन्त का आगमन भी होगा । कुछ लोगों को अनिश्चित एवं दूर भविष्य पर टिकी इस आशावादिता में उसके पराजय का स्वर ही सुन पड़ा है । बात ऐसी नहीं है । परिस्थितियाँ से टूट कर भी अपने सिद्धान्तों पर अटल रहने का यह ज्वलन्त प्रमाण है । उसका विश्वास है कि इसी द्रष्टा की भावना से एक दिन जनकल्याण संभव हो सकेगा । इस बात को और भी स्पष्ट करने के लिए 'रीभोल्ट आफ इस्लाम' का उदाहरण लिया जा सकता है । इस पुस्तक में 'लाओन' एवं 'सिथना' दोनों ही पूर्णरूप से पराजित हैं, मानव पुनरुत्थान की भावना भी घपले में पड़ चुकी है । फिर भी वह अपनी आशा को भविष्य के गर्भ में डालकर शान्त

नहीं हो गया है । 'प्रोमीथियस अनवाउण्ड' के अन्तिम दृश्य में वह जो कुछ भी प्रस्तुत कर सका है वह उसके पूर्ण स्वप्न का सार्थक एवं साकार रूप कहा जा सकता है ।

पन्त ने भी 'युगान्तर' में अपने स्वप्नों को मुखरित करने का प्रयत्न किया है । 'गा कोकिल बरसा पावक गण ' के आह्वान के पश्चात् उनमें नव निर्माण की भावना का दर्शन होता है । यथा—

'रच मानव के हित नूतन मन
वाणी वेश, भाव नव शोभन
स्नेह सुहृदयता हो मानस घन
करे मनुज नव जीवन यापन ।'

'युगवाणी' में कवि ने समस्त बन्धनों के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित किया है । 'ग्राम्या' में देश की वास्तविक स्थिति के बारे में वे पूर्ण सतर्क हैं । 'स्वर्णकिरण' तक आते-आते कवि का आशावादी स्वर पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हो गया है । यहाँ उनमें शेली की अनागतदर्शिता का रूप स्पष्ट है । यहाँ कवि मानव-जीवन को शोभावृत्त करके नव युग के दर्पण का आशा भरा स्वर देता है । वह न केवल भारत अपितु सारी मानवता के कल्याण का मुखापेक्षी है । वह मुक्तकंठ से भू-मंगल का गान गाते हुए कहता है—

'महाप्राण रे विश्व चेतना हमें चाहिए केवल,
भू मंगल के साथ आज परिणीत व्यक्ति का मंगल ।'

वह शेली के ही 'इफ विन्टर कम्स' के स्वर में कह पड़ता है—

'फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम से
मानव अन्तर हो अन्तःस्मित,
संयम तप की सुन्दरता से
जग जीवन शत दल दिक् प्रहसित ।'

यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ये दोनों कवि युगद्रष्टा एवं अनागतदर्शी रहे हैं । अन्तर केवल इतना है कि शेली आरम्भ से अन्त तक एक निश्चित सिद्धान्त पर दृढ़ दिखाई देता है, पर पन्त में समयानुकूल परिवर्तन होता रहा है ।

गीतिकाव्य

स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद की कविता में गेयता प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। यही इनका विशिष्ट गुण है। 'जाफ्रॉय' के शब्दों में गीतिकाव्य एवं काव्य पर्यायवाची शब्द हैं। उनमें उन सभी तत्वों का अन्तर्भाव होता है जो आह्लाद-जनक एवं सजीव हैं। 'गमर' के अनुसार गीतिकाव्य वह अन्तर्निरूपिणी कविता है जो वैयक्तिक अनुभूतियों से पोषित होती है और इसका संबंध घटनाओं से नहीं भावनाओं से होता है और यह समाज के परिष्कृत अवस्था में निर्मित होती हैं। 'हडसन' के अनुसार वैयक्तिकता की छाप गीतिकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता है किन्तु वह व्यक्ति वैचित्र्य में सीमित न रहकर व्यापक मानवीय भावनाओं पर आधारित होता है जिससे प्रत्येक पाठक उसमें अभिव्यक्त अनुभूतियों तथा भावनाओं से तादात्म्य स्थापित कर सके।' 'ब्रूनेटियर के अनुसार गीतिकाव्य में कवि भावानुकूल लयों में अपनी आत्मनिष्ठ वैयक्तिक भावना व्यक्त करना चाहता है।' हीगेल के अनुसार जब विश्व हृदय में प्रविष्ट कर कवि अपनी आत्मानुभूति को व्यक्त करता है और उसी प्रकटीकरण में वह चित्तवृत्तियों के अनुसार कविता का सृजन करके उसमें काव्योचित माधुर्य एवं मसृणता का समावेश करता है तो उसे गीति कहते हैं। महादेवी जी के अनुसार 'गीतिकाव्य वह है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।'

उपर्युक्त परिभाषाओं को दृष्टि में रखकर हम गीति के निम्नांकित छः तत्व निर्धारित कर सकते हैं—

(१) भावात्मकता, (२) वैयक्तिकता, (३) संगीतात्मकता, (४) कोमल कान्त पदावली, (५) संक्षिप्तता और (६) मुक्तक शैली।

उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखकर हम 'शेली' और 'पन्त' का विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे। 'सिमॉन्स' ने इस दृष्टि से शेली तथा अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों की तुलना करते हुए लिखा है कि 'शेली के समसामयिक अन्य कवियों में किसी में भी इस परिमाण में गेयता नहीं पाई जाती। हम उसके छोटे गीतों, संबोधन गीतो तथा नाट्य गीतों पर दृष्टिपात करने पर इस बात को स्वीकार करते हैं कि वह परमोत्कृष्ट प्रकार का स्वतः स्फुरित गान अंग्रेजी साहित्य को प्रदान कर सका।'[1] 'ट्रेलवानी' का कथन है कि मुझे उसमें दो सिद्धान्तों के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु उपलब्ध न हो सकी। प्रथम सशक्त तथा अनुत्तरदायित्व पूर्ण स्वतं-

---

[1] शेली : जे० ए० सिमॉन्स।

त्रता और द्वितीय सभी प्रकार के विचारों के प्रति सहिष्णुता ।[1] 'अर्नेस्ट राइस' ने अपनी 'लिरिक पोएट्री'[1] नामक कविता में 'सिमान्स' के विचारों का समर्थन किया है। शेली ने स्वत: लिखा है कि—'तर्क की तरह कविता ऐसी शक्ति नहीं है जो इच्छा के निश्चय द्वारा क्रियाशील होती है। एवं व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मैं कविता करूँगा। महा्‌ से महान्‌ व्यक्ति भी ऐसा नहीं कह सकता, क्योंकि सृजन में रत मस्तिष्क उस बुझे हुए कोयले के सदृश है जो रुक-रुक कर चलने वाली हवा के प्रभाव से क्षणिक चमक प्राप्त कर लेता है। यह शक्ति फूल के रंग की तरह उसके अन्तःकरण से स्फुरित होती है। हमारी प्रकृति का चेतन अंश द्रष्टा नहीं है। अपनी मौलिक प्रतिभा तथा शक्ति में अगर अनुभव स्थायी हो सकता तो फिर प्राप्त परिणाम की भविष्यवाणी करना असम्भव हो जाता। परन्तु विडम्बना यह है कि ज्यों-ज्यों सृजन आरम्भ होता है प्रेरणा स्खलित होने लगती है। इस प्रकार महान्‌ कविता जो कभी लिखी गई है वह कवि के प्रारम्भिक मौलिक विचार की प्रतिच्छाया है।'[2] इस उद्धरण द्वारा कवि स्पष्ट रूप से कहना चाहता है कि कविता स्वतः स्फुरित है, प्रयत्न सापेक्ष्य नहीं। उसके अनुसार 'मानव ऐसा यन्त्र है जिस पर बाह्य एवं आभ्यान्तरिक प्रभाव पड़ते रहते हैं। जिस प्रकार आओलियन वाद्ययन्त्र पर सतत-परिवर्तनशील प्रभाव विविध संगीत उत्पन्न करता है, उसी प्रकार मनुष्य पर भी विविध प्रभावों का असर होता है। किन्तु मनुष्य सजीव होने के कारण यन्त्र से भिन्न रूप में क्रियाशील होता है। वह संगीत ही नहीं उत्पन्न करता अपितु एक सामंजस्य भी पैदा करता है।[3] 'पन्त' का भी कहना है—

'वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
निकल कर आँखों से चुपचाप
हुई होगी कविता अनजान।'

ये भी शेली की तरह मानते हैं—कि स्वतः स्फुरित विचार अवश्य काव्यमय होंगे। उनका मत है 'कविता के विचार ऐसे सस्वर होने चाहिए जो उन सबकी तरह हों जिनके रस की लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित

---

[1] रिकलेक्शन आफ लास्ट डेज आफ शेली एण्ड बाइरन : ट्रेलवानी।
[2] डिफेन्स आफ पोएट्री : शेली।
[3] वही।

कर सकें, जो झंकार में चित्र एवं चित्र में झंकार हों'। 'जिनका भाव संगीत धारा की तरह रोम-रोम में प्रवाहित हो सके।' इसी को चित्रराग कहते हुए वे मानते हैं, 'काव्य संगीत के मूल तन्तु स्वर हैं न कि व्यंजन। जिस प्रकार सितार में राग का रूपक प्रकट करने के लिए केवल स्वर के तार पर ही संचालन किया जाता है और शेष तार केवल स्वर पूर्ति तथा मुख्य तार को सहायता देने के लिए झंकृत किए जाते हैं, उसी प्रकार कविता में भी भावना का रूप स्वरों के संमिश्रण तथा उनके यथोचित स्वरूप में निर्भर रहता है।'[1] इस प्रकार सिद्धान्त में ये कवि गीतात्मकता के पूर्ण समर्थक दीख पड़ते हैं।

उनके काव्य पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' शेली के प्रयत्न निरपेक्ष्य, स्वतःस्फुरित गीतात्मकता का परमोत्कृष्ट प्रमाण है। अंग्रेजी गीति पर ग्रीक—ग्रीक-रोमन—प्रभाव परिलक्षित होता है। 'फोक सांग' से इसे उद्भूत मानने के कारण स्वतः स्फुरित गीतात्मकता इसमें प्रमुख रूप में दृष्टिगोचर होती है। परन्तु 'फोक सांग' का विशेषज्ञ, अगर क्लासिकल प्रभाव को अपनाकर चले तो वह संगीत की विविध शक्ति एवं अभिव्यक्ति को भी समृद्धि प्रदान कर सकता है। 'फोक सांग' की विशेषता है कि इसमें एक स्वर होता है और 'क्लासिक गीत' बहुस्वरीय होते हैं। संगीत की विविधता के कारण वे विविध भावनाओं को अभिव्यक्त करने के सफल माध्यम हैं। यही क्लासिक गीति परम्परा स्पेंसर, क्रेशा, मिल्टन, पोप से होती हुई कालिन्स तथा वर्ड्सवर्थ तक पहुंची है, परन्तु शेली की कविता में वह पूर्णता को प्राप्त हुई है।' 'हेलास' नामक कविता में इसका अच्छा प्रयोग हुआ है।

'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' शेली के उत्कृष्ट गीतों का संग्रह है। गीति के सभी संभव प्रयोग इसमें दृष्टिगोचर होते हैं। गेयता शेली की प्रायः सभी कविताओं में उपस्थित है। उसके छोटे प्रगीत परम आकर्षक एवं आह्लालादकारी बन पड़े हैं।

पन्त भी अपनी 'वीणा' की झंकार के साथ जो गीतिमयता झंकृत कर सके, उससे हिन्दी साहित्य को बड़ी आशा बंधी। उनकी आरम्भिक रचनाओं में कुछ समय तक यह आशा पल्लवित एवं पुष्पित होती रही। उनके आरम्भिक गीतों में भावना की जो स्वच्छन्दता, कोमलता एवं रमणीयता पाई गई, भाषा का जो अनुपम मिठास एवं परिष्कृति देखी गई, वह कदाचित् विश्व के थोड़े कवियों की रचना में देखी और पाई गई होगी। इसीलिए 'वीणा' 'उच्छ्वास' एवं 'पल्लव'

[1] **पल्लव की भूमिका, पृ० १७–२७।**

के कवि में यदि हिन्दी काव्य अपने उच्चतम भविष्य एवं उज्जवलतम भविष्य का आभास पाने लगा तो यह अनुचित या असंगत न था। 'वीणा' की मीठी झंकार से लेकर 'पल्लव' में परिवर्तन के मन्द्र गम्भीर संगीत तक 'पन्त' का विकास-क्रम अत्यन्त स्वाभाविक एवं उपयुक्त रीति से परिस्फुट हुआ। 'वीणा' की अभिनव कोमल आदर्शवादिता और तरल भावना से आरम्भ होकर 'उच्छ्वास' के ईषत् वैयक्तिक प्रेम की चर्चा में किशोर वय सुन्दर झाँकी देखते हुए हम ग्रन्थि में वियोग या विच्छेद की एक मर्म अनुभूति तक पहुँचते है[1]। परन्तु पल्लव में सामान्य परिवर्तन का चिह्न परिलक्षित होने लगता है। इसमें कवि अवसाद से मुक्त होकर अपनी कल्पना के आधार पर यौवन के गीत गा सका है। 'अतः स्वभावतः उसमें अनुभूति एवं भावोन्माद का संयम नहीं हो सकता। इसी कारण 'पल्लव' में 'पन्त' जी की कृतियों की अपेक्षा उद्गीतियाँ अधिक हैं और कला रसिकों को यह कृति सर्वोत्कृष्ट जँचती है[2]। 'परिवर्तन' ही कवि के इस प्रगीत से पलायन की दिशा का सूचक है। इसमें परिवर्तनमय विश्व की करुण अभिव्यक्ति इतनी संवेदनशील हो उठी है कि वह सहज ही सभी हृदयों को अपनी सहानुभूति के कृपा-सूत्र में बाँध लेना चाहती है। 'निराला जी के शब्दों में' परिवर्तन किसी भी बड़े कवि की कविता से निस्संकोच मैत्री कर सकता है। वस्तुतः परिवर्तन के इस स्वरूप में भविष्य के हिन्दी प्रगीत की सर्वोच्च आशा निहित थी। आचार्य नन्ददुलारे जी ने ठीक ही लिखा है कि 'सन् २५ के ३५ तक हमें मिलना था शेली का विद्रोही स्वर, उसकी वहदिगन्त गामिनी पुकार जो युग को नहीं, युगों को अपने नैसर्गिक आह्वान से चकित एवं विस्मित कर देती है; पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि मिला हमें 'ज्योत्स्ना', 'गुंजन', 'गीतिका' एवं कुकुरमुत्ता।'[3]

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के समय इन कवियों को जिस प्रकार का राष्ट्र-गीत देना चाहिए था, वे न दे सके। शेली में यह क्रान्तिकारी उत्साहपूर्ण-रूपेण दष्टिगोचर होता है। उसे अन्याय का विरोध करना था। वह इसे समूल नष्ट करना चाहता था चाहे वह जहाँ कहीं भी हो। इसीलिए अमेरिका में डेमोक्रैट्स की सफलता एवं फ्रान्स में बोनापार्ट की असफलता पर लिखे गए प्रगीत महत्वपूर्ण हैं। 'प्रसाद' में यह कमी पूरी अवश्य हुई पर उनके काव्य में नहीं

---

[1] आधुनिक साहित्य की भूमिका : आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी पृ० ३१।

[2] पन्त : डॉ० नगेन्द्र, पृ० ६६।

[3] आधुनिक साहित्य की भूमिका : आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी।

नाटकों में। 'शेली' जैसा उदात्त एवं तेजस्वी स्वर 'पन्त' की गीतियों में न मिल सका।

इन दोनों प्रगीतिकारों में प्रायः साम्य भी है। दोनों की योग्यता उच्च कोटि की है। दोनों में उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप है। ये प्रगीत प्रायः भावात्मक हैं। इनमें चित्त-वृत्ति विशेषका अभिव्यक्तिकरण हुआ है। इनके प्रगीत मुक्तक तथा प्रबन्ध दोनों ही में हैं। दोनों प्रगीतकारों में आत्मा के आशान्वित स्वर तथा करुण पुकार के दर्शन होते हैं, उनकी अन्तर्दृष्टि एवं भविष्य कल्पना का स्वर मिलता है और इसका प्रभाव तीव्र गति से पड़ता है। दोनों के प्रगीतों में प्रकृति के उपादानों का प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष

'कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो नियम के अन्दर परिपोषित होते हैं। उनका संपूर्ण जीवन प्रकृति के निम्न तथा उच्च सिद्धान्तों के बीच संघर्ष करने में बीतता है। इन लोगों को सैद्धान्तिक पुरुष कहा जाता है– – –यह भी सम्भव है कि कुछ ऐसे व्यक्ति भी दृष्टिगोचर हों जिनमें केवल एक मनोवृत्ति क्रियाशील रहती है। इनको देखने से ऐसा लगता है मानों उनका पूरा व्यक्तित्व मलयानिल द्वारा एक निश्चित दिशा में ले जाया जा रहा है, इस विचार की प्रतिमूर्ति दुनिया में कम लोग मिलते हैं; फिर भी इनके अनुरूप व्यक्ति मिल सकते हैं और शेली उन्हीं व्यक्तियों में से एक था।'[1] यथार्थ में पन्त प्रथम कोटि के व्यक्तित्व की सीमा के अन्दर और शेली द्वितीय कोटि की सीमा के अन्दर दृष्टिगोचर होता है। हम इन कवियों का जितना ही सामीप्य लाभ करते हैं उतना ही इनका व्यक्तित्व निखर कर विचारोत्तेजक और प्रेरक बन जाता है। यथार्थ में ये दोनों ही कवि स्वप्नद्रष्टा हैं। वे विहंग के स्वर्ण पंख पर बैठ कर अन्तरिक्ष में विचरते हैं। अमर सत्यों के प्रतिपादन के लिए इन्होंने अमर ऐसी कृतियों का सृजन किया है जिन्हें काल के क्रूर थपेड़े भी अपने गर्भ में कभी न समाहित कर सकेंगे।'[2]

---

[1] एसे आन शेली : वाल्टर बेजेहाट।
[2] साहित्य दर्शन : शचीरानी गुर्टू।

२

निराला और कीट्स

द्वन्द्व बन्ध ध्रुव तोड़-फोड़ कर पर्वत कारा,
अचल रूढ़ियों की कवि तेरी कविता धारा;
मुक्त अबाध आनन्द रजत निर्झर सी निःसृत-
गलित ललित आलोकराशि, चिर अकलुष अविजित।
स्फटिक शिलाओं से तू वाणी का मन्दिर,
शिल्प बनाया ज्योति कलश निज यश का धर चित।
शिलीभूत सौन्दर्य, ज्ञान, आनन्द अनश्वर,
शब्द शब्द में तेरे उज्ज्वल जड़ित हिम शिखरा।
शुद्ध कल्पना की उड़ान, भव भास्वर कलरव,
हंस अंश वाणी के तेरी प्रतिमा नित नव।
जीवन के कर्दम से अमलिन मानस सरसिज,
शोभित तेरा वरद शारदा का आसन निज।
अमृत पुत्र कवियशः काव्य तब जरा-मरण-जित,
स्वयम् भारती से तेरी हृत्तन्त्री झंकृत।' (पन्त)

'निराला' तथा 'कीट्स' दोनों ही अपनी-अपनी परम्परा में अद्भुत कलाकार के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, शचीरानी गुर्टू ने अपने 'साहित्य-दर्शन' में निराला एवं 'ब्राउनिंग' की तुलना प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। हमारे अध्ययन का मुख्य केन्द्र-बिन्दु स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद है। 'ब्राउनिंग' इसकी सीमा के अन्दर नहीं आता। प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात करते हुए हम भले ही ब्राउनिग को स्वच्छन्दतावादी धारा के कुछ अवशेषों का कवि मान लें, पर वह पूर्ण स्वच्छन्दतावादी कवि नहीं है। शचीरानी जी का विवेचन तर्कसंगत है। विचारक गायक एवं संघर्ष रत व्यक्ति के अतिरिक्त धार्मिक भावना की दृष्टि से भी वह निराला से साम्य रखता है। काव्यकला के विविध प्रयोगों का दोनों में दर्शन होता है। पर दोनों के मूल काव्य में अन्तर है। एक 'विक्टोरिया

काल' के प्रभाव में पला है दूसरा गान्धी युग के छायावादी प्रभाव में। यथार्थ में दृष्टिपात करने पर स्वच्छन्दतावादियों में कीट्स निराला के अधिक समीप ठहरते हैं। इसी दृष्टि से यह विवेचन प्रस्तुत है।

आरम्भिक जीवन

कीट्स का जन्म १७९५ ई० में हुआ था। उसके पिता एक व्यापारिक मनोवृत्ति के व्यक्ति थे और माता भी प्रमोदप्रिय थी। उनमें कलाकार की प्रतिभा के दर्शन नहीं होते। बचपन से ही कीट्स में कोईअसामान्य प्रतिभा विद्यमान न थी। वह न तो महान् स्वप्नद्रष्टा था और न अत्यधिक अध्ययनशील। वह खेल-कूद में विशेष उत्साह दिखाता था और झगड़ालू प्रकृति का था। चौदहवें वर्ष में उसकी चेतना अचानक जगी और वह इन बाह्य खेल के साधनों को त्याग कर अध्ययन रत हुआ। उसके अध्ययन का मुख्य विषय प्राचीन साहित्य था। बचपन में ही पिता की मृत्यु के पश्चात् उसके अभिभावक ने उसे डाक्टरी पढ़ने के लिए बाध्य किया। वह इस ओर उन्मुख अवश्य हुआ फिर भी अपने अवकाश के क्षणों को पुस्तकों के अध्ययन में ही लगाता रहा। परिणामस्वरूप कवि के मस्तिष्क ने मनुष्य की चीर फाड़ में किसी भी प्रकार अपने को व्यस्त न पाकर उसे त्याग दिया। 'स्पेंसर' और होमर' उसके मुख्य आकर्षण केन्द्र हुए। बाद में 'लीहण्ट' से परिचय होने पर कवि उससे विविध प्रेरणा ग्रहण करता रहा। इसी समय उसकी मित्रता प्रसिद्ध चित्रकार 'रोबर्ट हेडन' से भी हुई। 'लीहण्ट' के अतिरिक्त 'वर्डसवर्थ 'लैम्ब' और 'शेली' भी कवि के मूल प्रेरणा स्रोत रहे।

निराला, महाप्राण निराला, युगपुरुष निराला, आदि विविध नामों से अभिहित किए जाने वाले इस महान् क्रान्तदर्शी कवि का जन्म १८९६ ई० की बसन्त पंचमी को हुआ था। 'सूर्यकान्त' बचपन से ही सूर्य की तरह दीप्तिमान व्यक्तित्व के बालक थे। इनके सौन्दर्य से आकर्षित होकर महाराज महिषादल के छोटे भाई इन्हें गोद लेना चाहते थे। पर वह समय आने के पहले ही वे इस दुनिया से चल बसे। घर का वातावरण पवित्र हिन्दू-संस्कार से पूर्ण था। कभी-कभी 'निराला' का विद्रोही स्वर उसके विरुद्ध क्रियाशील हो उठता था। तो मूल्यस्वरूप उन्हें पर्याप्त मार खानी पड़ती थी। निराला ने स्वयम् लिखा है कि 'मारते-मारते पिता जी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के पश्चात् इकलौते पुत्र को वे मार रहे हैं। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी सा हो गया था। चार पाँच साल की उम्र से ही एक प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील हो गया था और प्रहार की हद भी ज्ञात हो गयी थी। प्रारम्भिक शिक्षा

बंगला में होने के साथ ही साथ अंग्रेजी का अध्ययन चलता रहा। 'हिन्दी' की ओर आकर्षित करने का श्रेय उनकी पत्नी मनोहरा देवी को है।

निराला जी ने आरम्भ में बंगला में कवितायें कीं और रवीन्द्र, माइकेल मधुसूदन दत्त आदि की रचनायें मनोयोग से पढ़ीं। इसी समय अध्ययन की ओर उन्मुख होने से थोड़ा दर्शन का भी ज्ञात प्राप्त किया।

जीवन संघर्ष

आरम्भिक जीवन में जो भी दर्शनीय बात दीख पड़ती हैं वह यह कि किस प्रकार बचपन से ही ये कवि बौद्धिक, नटखट एवं स्वतन्त्र प्रकृति के थे। बचपन के बाद अध्ययन में भी ये उसी तन्मयता से लगे जिससे बचपन में खेला करते थे। परिणामस्वरूप छोटी अवस्था में ही गम्भीर चिन्तन आरम्भ हुआ। पर जीवन एवं जगत के चिन्तन के साथ ही इसकी कटुता एवं विद्रूपता से इनका परिचय हुआ। सबसे कटु अनुभव इन्हें जीवन में प्रियजनों के विछोह के रूप में हुआ। पिता पहले ही मर चुके थे, कीट्स को अपने जीवन काल में ही 'भाई टाम' की मृत्यु आँखों देखनी पड़ी। इसी समय उसका दूसरा भाई भी उसे छोड़कर अमेरिका चला गया। पर कवि निराला के जीवन में तो इससे भी भयंकर तूफान आये। माँ से बचपन में ही वियुक्त होकर बीस वर्ष की अवस्था में पिता को भी खो बैठे। इसके दो वर्ष बाद पत्नी एवं बड़े भाई इन्हें छोड़कर परलोकगामी हुए। एक मात्र पुत्री 'सरोज' जिसके लिए कवि सामाजिक बन्धनों के वहिष्कार पर भी तुला और तोड़ा, वह भी कवि को त्याग कर चली गयी। परिणामस्वरूप इन दोनों कवियों के जीवन में घनीभूत निराशा आ जमी।

दूसरा सबसे बड़ा विरोध जो उन्हें सहन करना पड़ा वह आलोचकों का विरोध था। 'एण्डिमिअन' के प्रथम भाग के निकलते ही जिस प्रकार की कटु आलोचना का कीट्स को सामना करना पड़ा वह सर्व ज्ञात है। हिन्दी में भी निराला जी के सर्वतोमुखी व्यक्तित्व से चिढ़कर बिना समझे बूझे, पुरातनता के व्यामोह में उन पर तरह-तरह के आक्षेप किए गए। परिणामस्वरूप इन दोनों कवियों में इस नासमझी के प्रति खीझ होना स्वाभाविक ही था। कुछ अंग्रेजी लेखकों का तो विचार था कि कीट्स 'एण्डिमिअन' की अनर्गल आलोचना से दुखी होकर अकाल ही काल-कवलित हुआ। बात जो भी हो, पर इतना तो स्पष्ट है कि कभी-कभी इस प्रकार की दूषित मनोवृति साहित्यकार की प्रतिभा को सदा-सर्वदा के लिए समाप्त कर देती है।

इसके अतिरिक्त जीवनयापन के लिए भी इन्हें तरह-तरह से संघर्षरत रहना पड़ा। कभी-कभी पैसे की अत्यन्त कमी इन्हें अखर जाती थी; फिर भी दोनों कवि अपनी प्रतिभा द्वारा काव्य को विविध रूप में अलंकृत करते रहे।

व्यक्तित्व

कीट्स का वर्णन करते हुए 'ली हण्ट' ने लिखा है कि 'वह मझले कद का व्यक्ति था। उसके मुख का निचला हिस्सा ऊपरी हिस्से से छोटा था। उसके कन्धे चौड़े थे। उसके चेहरे से शक्ति एवं संवेदना टपकती थी। उसके मुख को देखने से एक विचित्र भाव जाग्रत होता था। उसका ऊपरी ओष्ठ कुछ मोटा था और निचले ओष्ठ को ऊपर से ढँके रहता था। ठुड्ढी सशक्त थी, और कपोल कुछ धँसे हुए थे। आँखें बड़ी, भूरी और चमकदार थीं। किसी भी सामान्य दुखप्रद विचार से इनमें अश्रु की बूँदें भर जाती थी। उनके बाल भूरे थे और लटों के रूप में उसके कन्धे तक बिखरे हुए थे।'[1]

निराला बहुत ही विशाल व्यक्तित्व के युग-पुरुष थे। गजराज की मस्ती मृगराज का ओज, चट्टान की दृढ़ता, निर्झर सी मुक्त तरलता, आकाश की विराटता एवं धरती की सहनशक्ति का कुछ भी अनुमान है तो आप निराला के निराले व्यक्तित्व की कल्पना कर सकते हैं। विशाल, सुगठित, एवं उदात्त भावयुक्त ग्रीक प्रतिमा की भाँति शरीर वाले निराला हजारों की भीड़ में अकेले 'दृष्टिगोचर होते थे। उनकी मल्ल देह आज भी अपने शानदार अतीत का स्मरण कराती है। डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है—

> "वह सहज विलम्बित मन्थर गति जिसको निहार
> गजराज लाज से राह छोड़ दे एक बार।
> काले लहराते बाल देख, सावन विशाल
> आर्यों का गर्वोन्नत प्रशस्त अविनीत भाल।
> अब वन्य जन्तुओं का पथ में रोदन कराल।
> एकाकीपन के साथी हैं केवल शृंगाल।'

व्यक्तित्व में वैषम्य के होते हुए भी इनकी अनुभूतियों में साम्य था। दोनों ने एक तरह से इसी विश्व की कटुता से हार खाकर बीमारी अवस्था में अपने जीवन-क्षणों को गिनते हुए अन्तिम बार आँखें मूद लीं। एक छब्बीस वर्ष तक ही इसका भुक्त-

---

[1] ए हिस्ट्री आफ इंगलिश लिटरेचर : सी रिकेट।

भोगी था पर दूसरा ६४-६५ वर्ष तक इसी के साथ खपता रहा। उनकी जीवित मौतों को जीने का त्योहार बनाने का प्रयत्न चला अवश्य फिर भी इन्हें निराश होकर कहना पड़ा—

'दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो कहा नहीं।

अथवा

'धिक जीवन जो पाता ही आया विरोध
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।'

अथवा

'अवसाद को मैंने इस उद्देश्य से विदा कर दिया कि मैं उसे सर्वदा के लिए त्याग दूँगा। परन्तु आशा की वस्तु यह है कि वह मुझे परम प्यार करने लगा है। वह मेरे प्रति सहृदय एवं दयालु है। मैं उसे धोका दे सकता हूँ, पर कहना यही पड़ता है कि वह मेरे प्रति परम कृपालु है।'[1]

उनके कविता संबंधी विचार

कीट्स एवं निराला दोनों ही जागरूक कलाकार थे। ये अपने कवि जीवन में सदा प्रयत्नपूर्वक कवि, काव्य एवम् उसके कर्तृत्व पर दृष्टिपात करते रहे। कीट्स ने अपने पत्रों में कविता संबंधी विचारों को विशेष अभिव्यक्ति दी है। 'एण्डिमिअन' की समाप्ति के पश्चात् प्रकाशक को लिखे हुए पत्र में उसने कहा है कि, 'मेरा विचार है कि कविता को 'फाइन एक्सेस' के द्वारा हमको स्तम्भित करना चाहिए न कि विलक्षणता द्वारा। यह पाठ के विचार एवम् स्मृति की अभिव्यक्ति के सदृश ज्ञात होनी चाहिए। कवि का सौन्दर्य संस्पर्श अपूर्ण नहीं होना चाहिए। उसकी बिम्ब सृष्टि स्वतःस्फुरित होती रहनी चाहिए। अगर कविता कवि की कल्पना को स्वतः स्फुरित रूप में नहीं प्राप्त होती तो अच्छा है कि इसकी प्रेरणा ही उसे न मिले।' कविता की विशिष्टता के विषय में उसका मत है कि'

---

[1]To sorrow I bade good morrow,
And the thought to leave her far away behind,
But cheerly cheerly, she loves me dearly,
She is so constant to me and so–kind,
I would deceive her, but she is so constant and so kind.

इसका कोई आत्महित (सेल्फ) नहीं होता। यह सब कुछ है और कुछ भी नहीं है। यह आनन्द एवम् कष्ट दोनों को अपना विषय बनाती है। यह एक रसानभूति पूर्ण आनन्द में विचरण करती है। यह आनन्द अच्छा, बुरा, भद्दा, उत्कृष्ट, ऊँचा, नीचा, अखण्ड भावनापूर्ण या खण्ड भावनाओं वाला, थोड़े में सामान्य या उदात्ती-कृत सभी प्रकार का हो सकता है। 'आरम्भ में कीट्स कविता को एक आवश्यक पूर्ति मानता था। वह कविता के उपादानों को बिना किसी प्रकार परिवर्तित किये, बिना उसका बौद्धिकीकरण किए उसके दृश्य स्वरूप में स्वीकार करने का समर्थक था और उस पर किसी प्रकार सिद्धान्त का बोझ नहीं लादना चाहता था। परन्तु बाद में उसने कविता एवम् दर्शन में एक समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया उसका यह सोचना कि 'महाकवि को महा विचारक भी होना चाहिए' इसी ओर संकेत करता है। उसने इसी आशय को अपने 'टेलर' को लिखे पत्र में अभिव्यक्त किया। है। उसके विचार हैं कि 'मुझे अब ऐसा लगता है कि प्रारम्भ के दिन समाप्त हो रहे हैं। मुझे अब इस विश्व के परे ज्ञान के संग्रह में ही आनन्द है। मुझे ऐसा लगता है कि मानवता का कल्याण कर सकने वाले विचार से अन्य कोई अधिक उपयुक्त खोज नहीं है। कुछ लोग इसे अपनी समाज कल्पना द्वारा पूर्ण करते हैं, कुछ अपनी बौद्धिकता द्वारा। अर्थात् विभिन्न लोग इसे विभिन्न रूप में प्राप्त करते हैं। मेरे लिए यह मार्ग अध्ययन, विचार एवम् प्रयोग का है। मैं भी अनन्त विलासिता एवं दर्शन के उत्कृप्ट प्रेम के दो किनारों के बीच चक्कर काटता रहा हूँ। अगर मुझे प्रथम प्राप्त होता तो मैं प्रसन्न ही होता। परन्तु चूँकि पहले विचार को प्राप्त करने में मैं असमर्थ हूँ अतएव द्वितीय को ही ग्राह्य समझता हूँ।' कवि कीट्स का उद्देश्य मिल्टन की तरह महान कविता लिखना था। ऐसी दशा में उसके दर्शन का शाब्दिक अर्थ नहीं होना चाहिए। मिडल्टनमुरे ने ठीक ही लिखा है कि इसका 'तात्पर्य मानव जीवन के रहस्य का पुनरावलोकन था। अगर कवि अपने मानवता के कल्याण के उद्देश्य में सफल होना चाहता है तो उसके लिए इस उद्देश्य की उपलब्धि आवश्यक है। इस बात को दृष्टिपथ में रखते हुए 'हाइपीरियन' के दूसरे भाग में कीट्स ने, कवि एवं समाज का सम्बन्ध स्थापित करते हुए कवि से उत्कृष्ट कृर्तत्व एवं उसके स्वप्नों में विभेद करने का प्रयत्न किया है। 'प्रोलोग' में यह अन्तर स्पष्ट है। यथा—

'कल्पना अपने विलक्षण स्वप्नों के आधार पर अपने लिए एक

स्वर्ग का निर्माण करती है, असभ्य लोग भी इसकी उच्च

उड़ान द्वारा स्वर्ग का ध्यान किया करते हैं । अफसोस यह
है कि इन लोगों ने आलेख्य पत्र अथवा जगली पत्रों पर संगीतमयी ध्वनियों
की गतिविधि का निरीक्षण नहीं किया है । इसीलिये बिना
किसी प्रकार का विजय चिह्न प्राप्त किये वे जीवित रहते हैं,
स्वप्न देखते हैं और मर जाते हैं । कविता केवल शब्दों के उपयुक्त
माध्यम द्वारा उनके स्वप्नों को चित्रित कर सकती है । यही
कल्पना को इस माध्यम से दुःखप्रद बन्धन एवम् निष्क्रिय आकर्षण
से बचा सकती है ।'[1]

उपर्युक्त कविता में कीट्स की यह धारणा कि कवि की तरह सामान्य व्यक्ति भी स्वप्नदर्शी होता है, यथार्थ है । परन्तु उसके अनुसार कवि की यह विशेषता है कि वह इस स्वप्न को बरबाद होने से बचा सकता है । कवि का स्वप्न धर्मान्ध व्यक्ति के स्वप्न स भिन्न कोटि का होता है । कवि विश्व बन्धुत्व का समर्थक होता है और सामान्य धर्मान्ध व्यक्ति मानवता के सीमित अश का दर्शक होता है ।

इस कविता में जो स्वप्न वर्णित है उसका भी अपना महत्व है । कवि अपने को ग्राम्य दृश्य में पाता है, उसके लिए फलों का भोजन रखा है । वह उसको खाता है । इसके उपरान्त एक पारदर्शक रस पान करता है । अचानक उसे नींद आ जाती है । जगने पर अपने को एक बड़े मन्दिर के चबूतरे पर पाता है । इस चबूतरे पर एक महान मूर्ति है जो सुगन्धित पदार्थों से उस मूर्त्ति की अर्चना कर रही है । ज्योंही वह उस मूर्ति के पास जाता है, वह कह पड़ती है—

---

[1] Fantacies have their dreams where with they weave
A paradise for their seat, the savage too
From forth the loftiest fashion of his sleep
Guesses at heaven, pity these have not
Traced upon the vellum, or wild indian leaf.
The shadows of the melodious utterance,
But bare of laurel they live dream and die,
For poesy alone can tell her drames.
With fine spell of words, alone can save
Imagination from sable chain, and dumb enchantment.

'अगर तुम इन सीढ़ियों पर चढ़ नहीं सकते तो वहीं संगमरमर पर मर जाओ जहाँ पर तुम खड़े हो।'[1]

अचानक वह हतप्रभ एवं निश्चेतन हो जाता है अतएव उसमें एक नवीन जीवन का संचार किया जाता है। अब वह इस चबूतरे के पास पहुँचने में सक्षम होता हैं और देवी से उस रहस्य को स्पष्ट करने की प्रार्थना करता है। देवी कहती है–

'कोई भी व्यक्ति तब तक न तो इस ऊँचाई तक चढ़ सकता और न उस छाया तक लौट सकता है, जब तक इस दुनियाँ की विपत्तियाँ उसके लिये यथार्थ विपत्ति का रूप नहीं ले लेतीं और इस प्रकार उसकी नींद हराम नहीं हो जाती।'[2]

यही विषय स्लीप एण्ड पोएट्री' का भी प्रतिपाद्य है। कवि यहाँ वर्ड्सवर्थ की तरह कविता में मानव की शान्त परन्तु करुण पुकार को सुनने की अपेक्षा रखता है। 'उसके अनुसार कविता का प्रमुख उद्देश्य मानव का मित्र बनकर उसकी चिन्ता का निवारण तथा उसके विचारों का उदात्तीकरण करना है।'[3]

उपर्युक्त कविता का एक संदेश है। यथार्थ में गुणी व्यक्ति मन्दिर की शरण न लेकर यथार्थ विचारों के रङ्गस्थल में संघर्ष रत रहते है। कवि अभी तक इस स्वरूप से अवगत नहीं हो सका था। एक सुअवसर उसे प्राप्त होता है जिससे वह आत्मपरिष्कार द्वारा इसे समझ सके। कवि इस अवसर से लाभ उठाकर मात्र स्वप्निल तानों-बानों की निस्सारता को समझता हुआ, इस सत्य को हृदयंगम कर सकने में सक्षम होता है कि 'कविता का स्फुरण मानव-दुख की अग्नि में तप्त होने के बाद ही संभव हो सकता है।'

'कीट्स' के इन विचारों के संदर्भ में जब हम 'निराला' पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें कुछ साम्य अवश्य दृष्टिगोचर होते हैं। 'कीट्स' की तरह निराला'

---

[1] If thou canst not ascend these steps,
Die on the marble where thou art.

[2] None can usurp this height, return that shade,
But those to whom the miseries of the world,
Are miseries, and will not let him rest.

[3] The great end of poetry,
That it should be a friend
To soothe the cares and lift the thought of man.

के व्यक्तित्व की उत्कृष्टता के पुँजीभूत स्वरूप को हम उनकी काव्य त्रिवेणी में अन्तःसलिला सरस्वती की तरह सर्वत्र पाते हैं। कवि ने अपने व्यक्तित्व के उसी अंश को काव्यमय बनाया है जो सार्वभौमिक सत्य बनकर जन-जन की आत्म-पुकार को उद्वेलित कर सकने में समर्थ है। वे इस रूप में वैयक्तिक होते हुए भी निर्वैयक्तिक हैं। महादेवी जी ने ठीक ही लिखा है कि 'जीवन की दृष्टि से निराला जी किसी दुर्लभ सीप में ढले, सुडौल मोती नहीं हैं जिसे अपनी महार्घता का साथ देने के लिए, स्वर्ण एवं सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के लिए, अलंकार का रूप चाहिए। वे तो अनगढ़ पारस के भारी शिला खण्ड हैं। न मुकुट में जड़ कर कोई उनकी गुरुता सम्हाल सकता है और न पद-त्राण बनाकर कोई उसका भार उठा सकता है। वह जहाँ है वहीं उसका स्पर्श सुलभ है।' 'साहित्य के नवीन-युगपथ पर निराला जी की अंक संसृति गहरी, स्पष्ट, उज्ज्वल और लक्ष्यनिष्ट रहेगी। इस मार्ग के हर फूल पर उनके चरणचिन्हन एवं हर शूल पर उनके रक्त का रङ्ग है।'

यथार्थ में निराला ने अपने कर्तृत्व द्वारा छायावाद का मार्ग प्रशस्त किया है। द्विवेदी युग की बँधी बँधाई परिपाटी से कविता को मुक्त करना उस समय परमावश्यक कार्य था। छायावादी कवि के रूप में युग-प्रवर्तन निराला ने जिस उद्बोधन-स्वर का घोष किया वह यथार्थ में अपेक्षित और अनिवार्य था। उनकी इच्छा थी—

> **'ताल ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय कपाट**
> **खोल दे रे कर कठिन प्रहार,**
> **आये आभ्यन्तर संयत चरणों से नव्य विराट्**
> **करे दर्शन पाये आभार।'**

परन्तु इस क्रान्ति में हमें नियमहीनता एवं छूछे आत्मप्रसार की भावना का दर्शन नहीं होता। कवि सर्वदा सामाजिक हित को ध्यान में रखकर अग्रसर होने वाला व्यक्ति है। उन्हीं के शब्दों में 'सामाजिक हिताहित की चिन्ता न करके मनमाना साहित्य सृजन करना वैसा ही है जैसा महमूद मियां को अपने बकरे को पूँछ की ओर से जिबह करना। 'कीट्स' की तरह उनका भी विचार है कि 'कला वह है जिसमें मनुष्य के मन का चित्र दिखलाया गया है।'[1] कला का अकारण भेद वैसे ही है जैसे व्याकरण का। 'कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अलंकार, अनुप्रास

---

[1] **रवीन्द्र : कविता कानन, निराला।**

रस या ध्वनि की सुन्दरता नहीं, अपितु इन सभी से संबद्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है, पूरे अंग के सत्रह साल की सुन्दरी की तरह देह की क्षीणता, पीनता में, तरंग की चढ़ती-उतरती हुई भिन्न वर्णों की बनी वाणी में क्रमशः मन्द मधुरतर होकर लीन हुई। जैसे केवल बीज से पुष्प की कला विकसित नहीं होती, न अंकुर से, न डाल से, न पौधे से, जड़ से लेकर तना डाल, पल्लव और फूल के रंग-रेणु गन्ध तक फूल की पूरी कला के लिए जरूरी है, वैसे ही काव्य की कला के लिए काव्य के पूरे लक्षण आवश्यक हैं।'[1] साहित्य की चिर नवीनता, स्वतन्त्रता एवं व्यापकता की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं कि 'हम साहित्य में बहुत दिनों की भूली हुई उस शक्ति को आमंत्रित करना चाहते हैं, जो अव्यक्त रूप से सबमें व्यक्त, अपनी ही आँखों से विश्व को देखती हुई, अपने ही भीतर उसे डाले हुए, पानी की तरह सहस्र ज्ञान-धाराओं में बहती हुई स्वतन्त्र, किरणों की तरह सब पर पड़ती हुई मधुर, उज्ज्वल, अम्लान, मृत्यु की तरह नवीन जन्मदात्री, सर्वशाखाओं की तरह अगणित प्रसार से फैली हुई प्रत्येक मूर्ति में चिर कमनीय है।'[2] उनके अनुसार बृहत् साहित्य यानी ऊँचे भावों से भरा हुआ साहित्य कभी देश-काल और संख्या में नहीं रहा है, उसी से देश-काल एवं संख्या का अभी तक कल्याण हुआ है। 'परन्तु इन विचारों के बावजूद निराला के शब्दों में कवि के संकल्प को जानने की आवश्यकता है। निराला भी कीट्स की तरह सजग कलाकार हैं। वे एक ओर तो कहते हैं कि 'मैंने मैं शैली अपनाई' परन्तु उनका यह जयघोष भी है—

'दुख की छाया पड़ी हृदय पर मेरे
झट उमड़ वेदना आई
उसके निकट गया मैं धाय,
लगाया उसे गले से हाय।'

परन्तु इस प्रयत्न में भी कवि की अनुभूति है—

'बार बार हार मैं गया,
खोआ जो हार मैं नया,
उड़ी धूल तन सारा भर गया

---

[1] **मेरे गीत एवं कला-निबन्ध : निराला।**

[2] **प्रबन्ध पद्म : निराला।**

नहीं फूल जीवन अविकच है;
यह सच है।'

फिर भी वे तुलसीदास में कह पड़ते है—

'करना होगा यह तिमिर पार
देखना सत्य का मिहिर द्वार।
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय।'

इसी जीवन के प्रखर ज्वार में बहने के कारण कवि विश्वासपूर्वक कह पड़ता है—

'मैंने जो दिया ज्ञान जनता का है
जन ताका है।'

इसीलिये कविता का आह्वान करता हुआ कवि कहता है—

'आज नहीं मुझे और कुछ चाह,
अर्द्ध-विकच इस हृदय कमल में आ तू,
प्रिये छोड़ बन्धन मय छन्दों की छोटी राह।
गज-गामिनि यह पथ तेरा संकीर्ण-कंण्टकाकीर्ण,
कैसे होगी उससे पार।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों कवि अपने कर्तृत्व के प्रति सदा जागरूक रहे हैं। दोनों ही जीवन की कठिनाइयों को कविता में मुखरित कर सकने में समर्थ हैं। दोनों के अन्दर कला की उदात्त भावना के दर्शन होते हैं। दोनों ही काव्य को कल्पना के अस्पष्ट, झिल-मिल ताने-बाने से परे एक व्यापक पृष्ठभूमि प्रदान करने के समर्थक हैं। 'दोनों ही साहित्य में नवीनता, स्वतन्त्रता एवं व्यापकता की अपेक्षा रखते हैं। दोनों ही कविता को आत्मस्फुरित प्रक्रिया मानते हैं। दोनों ही इसे सोद्देश्य मानते हैं। दोनों ने कविता के लिये दर्शन को अनिवार्य माना है और समाज के दुखों के सम्यक ज्ञान के अन्दर ही कविता की मूल प्रेरणा को स्वीकार किया है। इस प्रकार मार्ग के हर फूल पर उनके चरण चिह्न एवम् हर शूल पर उनके रक्त के अंकित होने की बात पूर्णरूपेण सत्य है।

सौन्दर्य-प्रेम

कवि के मुख्य उपजीव्य सत्य एवं सौन्दर्य हैं। ये दोनों ही कवि इनके उन्मुक्त गायक हैं। कीट्स ने भी लिखा है 'सत्य ही सौन्दर्य है और सौन्दर्य ही सत्य है।' 'उसकी विवेचना पर विविध विरोधी मतों का संग्रह तैयार

क्रिया जाय तो एक पुस्तक तैयार हो सकती है। डा० ब्रिजेज के अनुसार ये पंक्तियाँ अनुपयुक्त विचारों की अभिव्यक्तीकरण हैं। 'रिचर्ड्स ने इसे 'स्यूडोस्टेटमेंट' कहा है। 'मिडलटन मुरे' ने इन पंक्तियों को कविता के सूक्ष्म सामंजस्य के परे ठहराया है। ये विवेचन सर्वमान्य हैं। पर द्रष्टव्य यह है कि ये शब्द कीट्स द्वारा नहीं कहे गये हैं बल्कि, इसे 'ग्रेशियन अर्न' कहता है। साथ ही 'ग्रेशियन अर्न' इस प्रकार की पृष्ठभूमि भी प्रदान करता है जिसमें इनको सर्वाशंतः नहीं तो अशंतः ठीक कहा जा सकता है। कवियों के लिये 'ग्रेशियन अर्न' का जो संदेश है वह मानवीय विपत्ति में आनन्द का संदेश है। इनके जीवन पर दृष्टिपात करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि दुख के अनन्त सागर में इसी सत्यं शिवं, सुन्दरम् का सामंजस्य कवि को प्रेरणा प्रदान करता रहा है। इसके अभाव में वे कवि और द्रष्टा हो ही नहीं सकते।

इस बात को और भी स्पष्ट करने के लिये सौन्दर्य दर्शन पर दृष्टिपात कर लेना चाहिए। पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियों में कुछ ऐसे लोग हैं जो सौन्दर्य को विषयगत या भौतिक वस्तु मानते हैं और कुछ ऐसे हैं जो उसे आध्यात्मिक बतलाते हैं। प्रथम वर्ग के लोगों के अनुसार 'सौन्दर्य हमारे अंगों की एक क्रमिक रचना या गठन है जो हमारे परंपरागत स्वभाव, रीति-रिवाज या मनोभाव के द्वारा हमारी आत्मा को आनन्द या संतोष प्रदान करता है।'[1] इस वर्ग के लोग उस पदार्थ में ही सौन्दर्य का दर्शन करते है जो सब प्रकार से ठीक हो और देखने में प्रिय लगे और परिणाम भी जिसका मंगलमय हो।

आध्यात्मवादी विचारक सत्य एवं सौन्दर्य को दैवी गुणों से संपन्न मानते हैं। उनके अनुसार अनन्त का शान्त में संवेदनशील प्रकटीकरण ही सौन्दर्य है। भारतीय मनीषियों ने भी इस पर दृष्टिपात किया है। महाकवि कालिदास के शब्दों में 'किमि वहि मधुराणां, मंडनं नाकृती नाम्', 'यदुच्यते पार्वति पाप वृत्तये, न रूप मित्यव्यभिचारितद्वचः' तथा 'क्षणे क्षणे यन्नवता मुपैति तदेव रूपं रमणीयताय:' आदि के द्वारा इस के विविध रूपों पर दृष्टिपात किया गया है। ये भी पाश्चात्य विचारकों की तरह व्यक्तिवादी एवं आध्यात्मवादी दोनों ही वर्गों में आते हैं। रवीन्द्र ने मानव सुख-सौन्दर्य के साथ उसमें चेतना की दीप्ति, बुद्धि की स्फूर्ति एवं हृदय के लावण्य को समन्वित करके इसी व्यक्तिवादी एवं आध्यात्मवादी समन्वय पर बल दिया है। वस्तुतः सौन्दर्य को वाह्य एवं आन्तरिक दोनों रूपों में स्वीकृति प्रदान करना अधिक उपयुक्त है।

---

[1] ए हिस्ट्री आफ ऐसथेटिक्स : बोसांके।

कीट्स एवं निराला भी इस समन्वयवादी सौन्दर्य के ही समर्थक हैं। कीट्स का कहना है—

एक सुन्दर वस्तु सदा सर्वदा आनन्दप्रद है
इसका आकर्षण बढ़ जाता है। यह कभी भी निरर्थक
एवं निष्प्रयोजन नहीं हो सकती। यह हम लोगों के लिए
ऐसा शान्त-निकुंज सुरक्षित रखेगी जिसमें स्वप्न पूर्ण
निद्रा स्वास्थ्य और शान्ति पूर्ण स्पन्दन निहित रहेंगे'।[1]

निराला का भी कहना है—

'अलि अलकों के तरल-तिमिर में, किस की लोल लहर अज्ञात,
जिसके गूढ़ मर्म में निश्चित शशि सा मुख ज्योत्स्ना सी गात।'

यथार्थ में सौन्दर्य ही अपने विविध रूपों में इन कवियों की भावना को रंग कर अभिव्यक्तीकरण का माध्यम प्रदान करने में सक्षम है। सौन्दर्य की अन्तर्मुखी साधना इनकी कविता के शत-शत स्वरों में मुखर हुई है। इसी सौन्दर्य के आधार पर ये अन्तर्जगत की कल्पना द्वारा दृश्य-जगत् के प्रत्येक स्पन्दन को सौन्दर्य-रंजित कर सके हैं और विराट भावना को भी अपने सीमित दायरे के अन्दर अभिव्यक्त कर सके हैं। मानव-सौन्दर्य ही नहीं अपितु प्रकृति के नानाविध सौन्दर्य को भी मानवीय रूप प्रदान कर के ये अपनी कला को सजाने में समर्थ रहे हैं। इस प्रकार इनके चित्रण में अन्ततः एवं बाह्य भावनाओं का सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है।

परन्तु इनके सौन्दर्य चित्रण सर्वत्र आनन्दपूर्ण एव उल्लासमय नहीं हैं। इन्हें इस बात का ज्ञान हो गया था कि अवसाद भी चिरन्तन सौन्दर्य का एक अंश है। कीट्स का विचार है कि यह 'अवसाद नश्वर सौन्दर्य का अथवा नश्वर आनन्द का सहगामी है। आनन्द के मन्दिर में यह प्रच्छन्न रूप से सदा निवास करता है।'[2]

---

[1] A thing of beauty is a joy for ever,
Its loveliness increases, it will never pass into nothingness
But still will keep a bower quiet for us.
And a sleep full of sweet dreams, and hath a quiet breathing.

[2] She must dwell with buauty—beauty that must die
And joy whose hand is ever at his lips biddding adieu.
Ay in the very temple of delight
Veiled melancholy has her soveran shrine.

फिर भी ये कवि ऊँघते, कराहते विशीर्ण हृदय को अपने हाथ में दबाये, यदा-कदा पार्थिव सौन्दर्य का गीत गाने के लिये सन्नद्ध दृष्टिगोचर होते हैं। 'कीट्स' अपने जीवन में 'फैनी ब्राउन' को न भूल सका और निराला अपने जीवन में अपनी प्रेयसी की स्मृति को न भुला सके। कीट्स अपने कराह के स्पन्दनों को अभिव्यक्त करता हुआ कहता है—

'अगर तुम मेरी दमित आत्मा को निर्धन, निस्तत्व एवं क्षणिक दर्प से अधिक महत्व देती हो तो प्रेम के इस पावन सागर को किसी दूसरे के स्पर्श से अपावन न होने दो, या अभिमंत्रित 'केक' को निर्मम हाथों से न तोड़ो। सद्यः प्रस्फुटित इस प्रेम पुष्प को और कोई न छूने पाये। अगर तुम ऐसा नहीं चाहती तो मेरी आँखों को प्रणय व्यथा को चिर विश्रान्ति में सो जाने दो।'[1]

निराला भी अपनी स्मृति पर छाये हुए प्रणय-अवसाद की बेचैनी को चित्रित करते हुए कराह उठते हैं—

> 'आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात
> आई याद चाँदनी से धुली हुई आधी रात।'

'स्मृति' शीर्षक कविता में तो उनकी यह भावना और भी स्पष्टता से अभिव्यक्ति पा सकी है—

> **जटिल जीवन-नद में तिर-तिर**
> **डूब जाती हो तुम चुप चाप।**
> **सतत द्रुत गति मयि अयि फिर फिर**
> **उमड़ करती हो प्रेमालाप।**
> **सुप्त मेरे अतीत के गान**
> **सुना प्रिय हर लेती हो ध्यान।**

---

[1] Ah! if thou prize my subdued soul above
The! poor, the fading, brief pride of an hour,
Let none profane my holy sea of love
Or with a rude hand break,
The sacramental cake—
Let no one touch the new budded flower.
If not, let my eyes close
Love! on their last repose.

आँसुओं से कोमल झर झर
स्वच्छ निर्मल जल कण से प्राण।
सिमट सट सट अन्तर भर भर
जिसे देते थे जीवन दान,
वही चुम्बन की प्रथम हिलोर
स्वप्न स्मृति दूर, अतीत अछोर

जहाँ इनकी सौन्दर्योन्मुखी प्रवृत्ति, प्रकृति प्रेम का प्रश्रय लेकर चली है, वहाँ ये अपनी सूक्ष्मदर्शिका दृष्टि से अनुपम चित्र उपस्थित कर सकने में सक्षम हैं।

कभी-कभी ये सौन्दर्य के प्रति रहस्यवादी ढङ्ग से दृष्टिपात करते दृष्टिगोचर होते हैं। इस स्थल पर इनकी भावना सघन एवम् गुम्फित होकर कुछ दुरूह हो हो जाती है। निराला में यह प्रवृत्ति कीट्स की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। यथा—

'रश्मि से दिनकर की सुन्दर
अन्ध वारिद उर में तुम आप,
तूलिका से अपनी रच कर
खोल देती हो हर्षित चाप।
जगा नव आशा का संसार
चकित छिप जाती हो उस पार,
पवन में छिप कर तुम प्रतिपल
पल्लवों में भी मृदुल हिलोर।
चूम कलियों के मुद्रित दल
पत्र छिद्रों में गा निशि भोर;
विश्व के अन्तस्तल में चाह
जगा देती हो तड़ित प्रवाह।'

इस प्रकार ये सौन्दर्य के उन्मुक्त गायक हैं। इनके सौन्दर्य में सत्य का आवश्यक समावेश है। यही सत्य इन्हें सौन्दर्य के अवसादमय उपकूलों का दर्शन कराता है। जीवन की कटुता से इनकी सौन्दर्य भावना को एक मोड़ मिला है। फिर भी यह स्थिति इनकी सौन्दर्यानुभूति एवं स्मृति के माध्यम से इनकी कवित्व शक्ति में चार चांद लगा देती है। इनमें हमें शेली जैसे स्वतन्त्र-सौन्दर्य का दर्शन नहीं होता, पर जिस प्रकार के सौन्दर्य की गवेषणा इन कवियों द्वारा की गयी है वह भी शेली की कविता में अनुपलब्ध है। ये अपनी सौन्दर्य-वृत्ति में अन्तर्मुखी रहे हैं, फिर इनमें बाह्य के प्रति तिरस्कार नहीं अपितु आह्वान का भाव दृष्टिगोचर

होता है। बाह्य सौन्दर्य ही इन्हें आन्तरिक सौन्दर्य की ओर उन्मुख करने में सक्षम है। इन्होंने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से सौन्दर्य का प्रतिपादन किया है। कला का स्वरूप इतना उत्कृष्ट है कि पाठक उनमें किसी प्रकार की विभाजक रेखा आसानी से नहीं खींच सकता। परन्तु इस तुलना में जिस बात को विशेष रूप से हृदयंगम करना है वह इन पर विविध प्रभाव है। मध्ययुगीन इटली के अतीत वैभव और ग्रीक कला से कीट्स अत्यन्त प्रभावित था। उसकी कला-प्रवण आत्मा ग्रीस के अतीत के अन्तराल में प्रविष्ट करके सौन्दर्य के विविध उपादान ढूँढ़ निकालती थी। 'अतएव ग्रीक निवासियों की भाँति उसका सौन्दर्य चित्रण ऐसी मूच्छंना में उपस्थित है जो कल्पनाशील अतिरंजित सूक्ष्मता के प्रति एक जिज्ञासा जगा जाता है। उसकी क्लासिकल प्रतिभा, प्रत्यक्षत: सौन्दर्य तरङ्गों को उद्वेलित करती हुई, अंतरात्मा की प्रतिच्छाया के रूप में उपस्थित हुई है और सौन्दर्य की ऐन्द्रिक परिधि में भी वह उस अपार सत्य की ओर उन्मुख है जहाँ द्रष्टा कलाकार की आत्मा उद्भासित होकर ज्ञान स्फुलिंलगों में एक रूप हो गई है।[1] कवि निराला की सौन्दर्य-चेतना रवीन्द्र, विवेकानन्द एवं भारतीय अतीत से मुख्य रूप से प्रभावित है। इसलिए इस प्रकार की मनोवृत्ति में जो भी सामान्य अन्तर परिलक्षित हुए हैं, उनकी जड़ में ये प्रभाव क्रियाशील हैं।'

प्रकृति प्रेम

कीट्स एवं निराला दोनों ही प्रकृति के अनन्त प्रेमी थे। कीट्स का प्रकृति-प्रेम आरम्भिक अवस्था में विशुद्ध प्रकृति प्रेम था। वह प्रकृति में किसी प्रकार की सहानुभूति को ढूँढ़ने का पक्षपाती न था। अतएव वह इस दृष्टि से सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों से भिन्न दृष्टिकोण का व्यक्ति था। वह 'वर्ड्सवर्थ' या 'शेली' की तरह सभी बाह्य उपादानों को अपने व्यक्तित्व की प्रसार-भूमि के रूप में नहीं स्वीकार करता था। फिर भी उसके पास एक ऐन्द्रिय अवबोध क्षमता थी जो प्रकृति को सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में चित्रित कर सकने में समर्थ थी। इस दृष्टि से वह अपने पूर्ववर्ती कवियों की तुलना में अधिक प्रवीण था। कीट्स, वर्ड्सवर्थ की तरह प्रकृति पर रहस्यमय अनुभूति की उपलब्धि के लिये दृष्टिपात नहीं करता था। उसका उद्देश्य सजीव एवं विकासशील वस्तुओं में अविश्लेषित आनन्द की खोज करना था। अतएव इस दृष्टि से उसके अवबोध की क्षमता अत्यन्त प्रभावोत्पादक थी। कवि प्रकृति के प्रांगण में निजत्व का अनुभव करता था। उसका विचार था—

---

[1] साहित्य दर्शन : शची रानी गुर्टू।

'प्रकृति कवियों की निर्माता और संसृति के मधुर आनन्द का आगार थी। भविष्य द्रष्टा एव कवि को प्रकृति के प्रकाश का यही उत्कृष्ट स्वर्ग पुन:-पुनः लिखने के लिए बाध्य करता रहा है।'[1]

निराला के अनुसार भी प्रकृति 'स्मृति' के आधार नवोन्मेषशाली विचारों को प्रादुर्भूत करने में सक्षम होती है, यथा–

'यमुने तेरी लहरों में
किन अधरों की आकुल तान,
पथिक पिया सी जगा रही है
किस अतीत के नीरव गान।'

कहीं-कहीं ये प्रकृति के अत्यन्त संमोहक चित्र खींचने में समर्थ हैं! उनकी अधिकांश कवितायें जीवनव्यापी प्रकृति तत्वों से निष्णात हैं। इनके लिये भी प्रकृति प्रेरणा स्त्रोत रही है। ये भी कीट्स की तरह प्रकृति को उसके विशुद्ध रूप में प्यार कर सके हैं। निम्नलिखित कविता में 'सन्ध्या' का चित्र बहुत ही उपयुक्त बन पड़ा है–

'डूबा रवि अस्ताचल,
सन्ध्या के दृग छल छल।
स्तब्ध अन्धकार सघन,
मन्द गन्ध भार पवन,
ध्यान लगन नैश गगन,
मूँदे पल नीलोत्पल।'

और भी–

'देकर अंतिम कर, रवि गए अपर पार
श्रमित चरण आये गृहजन निज द्वार।
अम्बर पथ से मन्थर सन्ध्या श्याम
उतर रही पृथ्वी पर कोमल पद भार।'

---

[1] Maker of sweet poets, dear delight
of this fair world............

....

For what has made the sage or poet write,
But this fair Paradise of nature's light.

प्रकृति के दृश्यों में सामान्य रूप से आनन्द लेने के अतिरिक्त यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति भी इनमें दृष्टिगोचर होती है, पर सबसे मुख्य प्रवृत्ति मानवीकरण की है। निराला की इस प्रवृत्ति का दर्शन उनकी उपर्युक्त कविताओं में होता है। 'जूही की कली' को तो लेखक ने एक नायिका के रूप में चित्रित किया है। इसमें मानवीय भावनाओं का अति सूक्ष्म चित्रण हुआ है। निराला ने आरम्भ से ही प्रकृति का सहानुभूति पूर्ण चित्रण किया है। फिर भी इसमें ओज है। यथा—

'गरजे सावन के घन घिर-घिर,

नाचे मोर बनों में तिर-तिर।

जितनी बार चढ़े मेरे भीतर

छन्द से तरह-तरह तिर।

तुम्हें सुनाने को मैंने भी, नहीं कहीं कम गाने गाए।'

'कीट्स' की कविताओं में भी कवि को इस प्रकृति का दर्शन होता है। ' 'ओड टु नाईटिंगेल' में कवि ने 'बुलबुल' को शाश्वत गान का प्रतीक माना है। 'एण्डिमिअन' 'इज़ावेला' 'ईभ आफ सेण्ट एग्नीज' आदि कविताओं में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। मानवीकरण के समान्तर चलने वाली ऐन्द्रियता की प्रवृत्ति भी इन कवियों में मिलती है। परन्तु यह ऐन्द्रिय अवबोध की प्रवृत्ति उनके प्रेम-मात्र से संबंधित नहीं है। कवि इसे व्यापकता, गम्भीरता एवं पूर्ण सजीवता प्रदान करने में समर्थ है। यही ऐन्द्रिय अवबोध कभी-कभी उन्हें प्रकृति में नारी की छाया देखने के लिए बाध्य करता है।

अपनी कविताओं में ये कवि, प्रकृति के उपकरणों द्वारा सुन्दर चित्र विधान प्रस्तुत करते हैं। कीट्स में यह गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। ये कभी-कभी गत्यात्मक चित्रों द्वारा प्रकृति को सजीव बनाते हैं। यथा—

'नुपुरों की रुनझुन-रुनझुन नहीं,

सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा चुप चुप चुप।'

कीट्स की 'ओड टु साइके' नामक कविता इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। कवि इस कविता में जिस भी वस्तु को लेता है, वह उसकी उपयोगिता पर भी दृष्टिपात करता है, वह अपने को मन्दिर के पुजारी के रूप में प्रस्तुत करता है। प्राकृतिक उपादानों को लेकर मानसिक पृष्ठभूमि का इतना सूक्ष्म पर पूर्ण चित्र दे सकने की क्षमता कीट्स की कला का अनुपम उदाहरण है। यहाँ यथार्थ में कवि कल्पना उसके हृदय में अन्तर्निनादित होती हुई अपने स्पन्दनों को वह यथार्थ अभिव्यक्तीकरण

प्रदान कर सकी है जिसमें उत्कृष्ट सर्जन के साथ ही मानवीय मस्तिष्क एवं प्रकृति की सजीव आत्मा का एक साथ तादात्म्य स्थापित हो गया है। कवि 'निराला' 'जूही की कली' में यही विराट पृष्ठभूमि अपनाये हैं। इसमें कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान नहीं अपितु विधायक कल्पना का वह स्वरूप परिलक्षित होता है जो काव्य-सृजन एवं चिन्तन दोनों के लिये अपेक्षित है।

इन कवियों के जीवन संघर्ष का भी इनकी प्रकृति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। जीवन की कटु अनुभूतियों से परिचित होने के कारण ये इस सत्य से अवगत हैं कि इस दुनिया में दु:ख अधिक है और सुख कम। परन्तु ये बस दुख को आत्म परिष्कार का साधन मान कर उससे संतुष्ट नहीं हो जाते। वे बार-बार हार जाने की बात को अपने हृदय में संजोकर निरन्तर आगे बढ़ते रहते हैं। फिर भी उनके पीछे पड़ा हुआ यह दुख उन्हें मुक्त नहीं कर पाता है। परिणाम यह हुआ कि अगर इसकी अतिशयता उन्हें इससे मुक्ति पाने के लिए पलायन की ओर ले गई तो वह पलायन भी इनके लिए वरदान बन गया। उसमें इनका चिन्तन और भी निखर उठा और ये प्रकृति की पृष्ठभूमि में नश्वर एवं अनश्वर का सुलझाव ढूँढ़ने लगे। 'कीट्स' की 'ओड टु नाईटिंगेल' और 'निराला' की 'मैं और तुम' कवितायें इसके उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं। फिर भी 'निराला' जहाँ इस प्रकार की कविताओं में पूर्ण दार्शनिक बन जाते है वहीं कीट्स इसे एक जिज्ञासाकुल हृदय से देखता हुआ इसका अनुभव करता है। 'कीट्स' ने अपने एक पत्र में लिखा है—'मुझे यदि वर्तमान घड़ियों में आनन्द नहीं मिलता तो में आनन्द की खोज न करता। इस क्षण से परे मुझे कुछ भी स्तम्भित नहीं कर सकता। अस्त होता हुआ सूर्य मुझे सर्वदा मेरे सही कर्त्तव्य का ज्ञान कराता है। अगर चहचहाती हुई गौरैया मेरी खिड़की के निकट दृष्टिगोचर होती है तो मैं उसके आनन्द का सहयोगी बन जाता हूँ। किसी को विपत्तिग्रस्त सुनकर मुझ पर प्रभाव पड़ता है। मैं सोचने लगता हूँ कि इससे छुटकारे का कोई मार्ग उपलब्ध नहीं। फिर भी व्यक्ति अपनी आत्मा के आधार पर अपनी क्रियाशीलता बनाये रखेगा।' विपति के प्रतिकूल यही क्रियाशीलता उन कवियों के काव्य का रहस्य है। 'कालरिज' की तरह ये कवि भी अपने विगत जीवन के झंझावातों से प्रभावित तथा 'बायरन' की तरह अपने वर्तमान से असंतुष्ट थे। 'वर्ड्सवर्थ' एवं 'शेली' की तरह इनका भी एक प्रकृति दर्शन था। प्रकृति का जो विशुद्ध रूप इन कवियों में दृष्टिगोचर हुआ वह अद्वितीय और अनुपम था, अपनी 'तरंग के प्रति' कविता में निराला ने जिज्ञासाकुल हृदय से पूछा था—

किस अनन्त का नीला अंचल हिला हिला कर,
आती हो तुम सजी मंडलाकार।
एक रागिनी में अपना स्वर मिला मिला कर,
गाती हो ये कैसे गीत उदार।

'कीट्स की कविता में प्रकृति अपने कोमल स्वरूपों के साथ दृष्टिगोचर होती है, पर 'निराला' में कोमल एवं कठोर दोनों स्वरों का दर्शन होता है। यथा—

'निशा के उर की कली खिली।
भूषण बसन सजे गोरे तन
प्रीति भीति काँपे पग उर मन,
बाजे नूपुर रुन रिन, रनझन,
लाज विवश सिहरी।'

कठोर एवं मन्द्र स्वर का भी दर्शन होता है—

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर
राग अमर अम्बर में भर निज रोर।
झर-झर-झर निर्झर गिरि सर में,
घर, मरु, तरु मर्मर सागर में,
सरित तड़ित गाते चकित पवन में,
मन में विजन गहन कानन में,
आनन आनन में रव घोर कठोर।'

कहीं प्रकृति में इन कवियों की कल्पना शक्ति का पूर्ण रंगीन चित्र भी उपस्थित हो जाता है। यथा—

'उधर मालती की चटकी जो कली
चाँदनी ने झट चूमे उसके गोल कपोल
और कहा बस बहन तुम्हारी सूरत कैसी भोली।
....
मन्द तरंगों की यमुना का काला काला रंग,
और गोंद पर उसकी ये सोते हैं कितने तारे।
कैसे प्यारे प्यारे।'

'कीट्स' भी बसन्त का चित्रण करता हुआ कहता है—

'जो तुम्हें अभी तक तुम्हारे प्रांगण के बीच नहीं देख पाया है, या जो लोग निरुद्देश्य होकर तुम्हें खोजा करते हैं वे तुम्हें निश्चिन्त अवस्था में अन्न की ढेर के पास पा सकते हैं। उस समय तुम्हारे बाल यथार्थ में इधर उधर बिखरे होंगे।'[1]

इस प्रकार ये दोनों हो कवि प्रकृति प्रेमी रहे हैं। पर इनके इस प्रकृति प्रेम में साम्य एवं वैषम्य दोनों दृष्टिगोचर होता है। जीव और ब्रह्म की बुझौवल और रहस्य के जो चित्र हमें निराला में मिलते है वे कीट्स में नहीं मिलते। 'कीट्स' में प्रकृति-पुरुष विषयक भारतीय धारणा का भी अभाव है। फिर भी जिस प्रकार की निर्वैयक्तिकता हमें 'कीट्स' के प्रकृति-चित्रण में मिलती है वह 'निराला' में नहीं दृष्टिगोचर होती। यद्यपि इन दोनों ने ही इस दृष्टि से सतर्कता बरतने का प्रयत्न किया है फिर भी 'निराला' का व्यक्तित्व किसी न किसी सीमा तक उसमें 'कीट्स' की अपेक्षा विशेष रूप में उपस्थित दृष्टिगोचर होता है।

विराट् कल्पना के कवि

पिछले पृष्ठों में दोनों कवियों की कविता एवं दर्शन संबंधी विचारधाराओं का विवेचन किया गया है और यह दिखाने का प्रयत्न हुआ है कि ये कवि इनसे अन्योन्याश्रय संबंध स्थापित कर सके हैं। कल्पना के आधार पर दर्शन एवं देव-कथाओं के माध्यम से कवि विराट् पृष्ठभूमि का सर्जन करता है। कीट्स ने 'एण्डिमिअन' में लिखा है--

'फिर भी एक विराट् विचार मेरे संमुख नर्तन किया करता है। मैं इससे अपनी स्वतन्त्रता इकट्ठी करता हूँ और इसमें ही मुझे कविता का लक्ष्य मिल जाता है।'[2]

---

[1] who hath not seen thee, oft amid thy store
Sometimes, whoever seeks thee abrod may find,
Sitting careless on granary floor,
Thy hair soft lifted by winnowing wind,

[2] Yet there ever rolls a vast idea before me
And I glean therefrom my liberty,
Thence too I have seen the aim and end of poesy.

निराला ने भी लिखा है कि—

'ताल ताल से रे सदियों के
जकड़े हृदय कपाट,
खोल दे कर कठिन प्रहार।
आये आभ्यन्तरण चरणों से संयत नव्य विराट,
करे दर्शन पाये आभार।'

इन कवियों के 'विराट-विचार' एवं 'संयत नव्य विराट' की भावना इस प्रकार इनकी कविता का केन्द्र बिन्दु रही है।

इसके यथार्थ विवेचन के लिए हमें, 'एण्डिमिअन' 'हाइपीरियत ए व्हिजन' 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्ति पूजा' पर दृष्टिपात करना पड़ेगा। 'एण्डिमिअन' में 'इण्डिअन मेड' मानवीय राग का प्रतीक है और 'मून गाडेस' कल्पना प्रवण राग का। अन्ततोगत्वा यह संघर्ष की स्थिति सुलझा दी जाती है। कवि को इसके लिये मानवीय को अमानवीय में परिवर्तित करना पड़ता है। इस 'सुलझाव' के लिये कवि ने 'केभ आफ क्वायचूड' की कल्पना की है। यथार्थ में 'एण्डमिअन' मानवीय हृदय के अन्तर्द्वन्द्व का प्रतीक है। कवि के अनुसार एक दारुण वैमनस्य ने उसे शान्ति की इस गुफा में आने के लिए बाध्य किया है। शान्ति की गुफा का वर्णन करता हुआ वह कहता है—

> 'शून्य की इन दृश्य सीमाओं के परे एक कन्दरा है। यह मानव आत्मा की भ्रमणस्थली है। वह इसमें भ्रमण करके अपनी स्थिति का ज्ञान प्राप्त करती है। इसे चारों ओर से अन्धकार घेरे हुए है। यहाँ आत्मा विगत कष्टों का अवलोकन करती है। परन्तु वह रुदन करती हुई थोड़े समय तक भी वहाँ नहीं रुक पाती है, क्योंकि इन विपत्तियों की देखने से आगत विपत्तियों की संभव प्रताड़ना से वह दुखी हो उठती है। इस क्षेत्र में अनेक विष से बुझे हुए बाण निरुद्देश्य रूप से भ्रमण किया करते हैं। सभी कष्टों की यही उपयुक्त शरण-स्थली है।'[1]

---

[1] There lies a den
beyond the seeming confines of the space
Made for the soul to wonder in and trace,
Its own existence of remotest glooms.

यथार्थ में यह चित्रण देव-कथाओं के चित्रण से मिलता है। फिर भी न इसको हम स्वर्ग कह सकते हैं न नरक। यह चित्र भी कवि की विराट कल्पना द्वारा प्रादुर्भूत हुआ है। 'एण्डिमिअन' के लिखने के समय कीट्स ने 'बेली' को एक पत्र लिखा था। वह पत्र इस कवि की घोर निराशा पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।[1]
यथार्थ में 'केभ आफ क्वायचूड' में कवि ने इसी गम्भीर कष्ट में आत्म परिष्कार की आवश्यक शर्तों को निर्धारित किया है।[2] विष-पूर्ण तीर भी उस मानवीय कष्ट के प्रतीक हैं जो निःस्वार्थी व्यक्तियों को प्रताड़ित करते रहते हैं। नवीन उदबुद्ध चेतना ही कष्ट की वह अवस्था है जिसमें सभी व्यक्तियों का आत्म-परिष्कार हो सकता है।[3]

परन्तु इसी के पश्चात् कवि उस गुफा की शान्ति का वर्णन करता हुआ कहता है–

> 'बहुत ही कम व्यक्तियों को इस बात का अनुभव हुआ है कि, उस कन्दरे में कितनी शान्तिपूर्ण निद्रा आती है। कष्ट वहाँ प्रताड़ित नहीं करते। सुख भी किसी प्रकार की नीरसता नहीं उत्पन्न कर सकता। विपत्ति के झंझावत दरवाजे पर सतत् प्रहार किया करते है फिर भी अन्तःकक्ष में सभी कुछ शान्तिमय है।'[4]

Dark regions are around it where the tombs
Of burried griefs the spirit sees, but scarce
One hour doth linger weeping, for the pierce
of new born woe, it feels more inly smart
And in these regions many a venomed dart,
At random flies, they are the proper home of every ill,

[1] Self spirit ualisation into a kind of misery.

[2] keats & Shakespeare-Middleton Murray,

[3] Ibid,

[4] But few have ever felt, how calm and well
Sleep may be had in that deep den of all.
There anguish does not sting nor pleasure ball.
woe hurricanes beat ever at tha gate:
Yet all is still within and desolate.

कष्ट की अतिशयता ही शान्ति का रूप ले लिया करती है, परन्तु इसके तुरन्त बाद अगर शान्ति स्थायी न बन सकी तो पुनः कष्ट का उद्वेग मानव को प्रताड़ित करने लगता है। 'एण्डिमिअन' में हुआ भी ऐसा है। फिर भी इसे कवि के मनो-विश्लेषण का एक प्रमुख अङ्ग बना कर दृष्टिपात करना अधिक समीचीन होगा। इस प्रकार कवि साधारण सत्य को भी अपनी कल्पना के द्वारा विराट अन्वेषण का विषय बनाता है।

'हाइपीरीयन' में कुछ ऐसे पात्र भी हैं जो ऐतिहासिक कल्पना के विराट स्वरूप के प्रतीक हैं। फिर भी कवि जहाँ अपनी बात कहना चाहता है, वहाँ इस भावना का विशेष रूप से दर्शन होता है। उदाहरण स्वरूप हम उस स्वप्न के वर्णन को ले सकते हैं जो कवि को एक सन्देश देता है। इस प्रकार कीट्स में कल्पना की विराटता का दर्शन होता है। यह बात हमें 'शेली' और 'बायरन' में भी दृष्टिगोचर होती है। फिर भी इसके प्रयोग में वही अन्तर है जो 'कीट्स' 'शेली' और 'बायरन' में है।

हिन्दी में निराला और प्रसाद विराट कल्पना के कवि है। हमारा सौभाग्य है कि हमारी संस्कृति इन तत्वों से इतनी निष्णात है कि हमें अपनी भावनाओं के लिए दूसरे देश का मुखापेक्षी नहीं बनाना पड़ता। हमारा इतिहास विराट् व्यक्तित्व के पुरूषों से भरा पड़ा है। 'कामायनी' में कवि की इस कल्पना को ऐतिहासिक एवं रूपकतत्वों के कारण खुल कर क्रियाशील होने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। निराला जी ने इसका जो प्रयोग किया है वह उनकी वैयक्तिक प्रतिभा के ही अनुरूप है। प्रेम, क्रान्ति, रूढ़ि-विरोध, युग-धर्म, जिस भी पृष्ठभूमि पर लेखनी चली है वह अपनी विविधता के कारण उसके अन्तरतम को झंकृत करके एक विराट स्वरूप मानव के समक्ष रखती है। राम के चरित्र पर पर्याप्त साहित्य सर्जित हो चुका है। फिर भी निराला जी जब 'राम की शक्ति पूजा' में उसका आनयन करते हैं तो उनकी कल्पना उसमें चार चाँद लगा देती है। भाषा का ओज एवं कवि के मनोबल तथा वैयक्तिक प्रतिभा के समन्वय से उनकी इस भावना में और भी निखार आ गया है। युद्ध में राम का पराजय में दुखी होना, उनकी अश्रु बूंदों से चौंक कर हनुमान का विराट रूप धारण करना, पुनः शक्ति की उपासना द्वारा रावण पर विजय प्राप्त करना, सभी में एक नव्य विराट का दर्शन होता है। राम भी जो शक्ति, सौन्दर्य एवं शिवत्व के प्रतीक हैं, इस दासता के युग में मात्र शून्य के प्रतीक रह गये हैं। इनकी शून्यता को दूर करने के लिए ही 'निराला' ने राम को शक्ति संयुक्त बनाकर विजय कराया है। राम में अक्षय गुण निधियाँ संनिहित हैं, पर रावणत्व दारिद्रता मोह एवं अन्धकार है। वह अहंकार का प्रतीक है। रामत्व भी शक्ति से परे होने पर रावणत्व के वशीभूत हो जाता है। नर से परे बानर की एक

शक्ति है जो रामत्व को रावणत्व की विजय से बचाती है। बाद में इसकी प्रेरणा से रामत्व अपनी उपासना बुद्धि को प्रज्ज्वलित करके शक्ति संयुक्त होने पर रावणत्व पर विजय प्राप्त करता है। शक्ति की प्राप्ति के लिए बलिदान भी आवश्यक है, साधन एवं अग्नि परीक्षा के बीच भी गुजरना पड़ता है। अन्तिम कमल पुष्प शक्ति द्वारा चुराये जाने पर 'पूरा करता हूँ देकर मात: एक नयन' का उच्चारण करते हुए, महा फलक वाले प्रदीप्त ब्रह्म सर को हाथ में लेना, परीक्षा की परिणति का सूचक है। 'राम' का आकाश में उठकर शक्ति द्वारा रावणत्व की सहायता का आभास पाना भी अपना प्रतीक अर्थ रखता है। शक्ति साधना द्वारा प्राप्त होती है। जो उसके लिए प्रयत्नशील हो वह उसकी चेरी बनकर रहेगी। आज के युग में यह उतना ही सत्य है जितना भूत में था।

शक्ति के भी भारतीय दृष्टि से दो रूप हैं। शक्ति माया स्वरूप होने के कारण विद्या स्वरूपिणी और अविद्या स्वरूपिणी है। सतोगुण के आधार पर प्रयत्नशील होने पर मानव अपनी निरन्तर साधना द्वारा वह शक्तिपुंज पा सकता है जो रावणत्व' द्वारा प्राप्त शक्ति से महान है। 'सत्व के आधार पर साधना रत होने पर शक्ति 'रावणत्व' का त्याग कर सकती है। यह है संदेश जो निराला जी ने अपनी राम शक्ति पूजा द्वारा अपने युग को दिया है। यथार्थ में ब्रह्म सृष्टि के सृजन-पालन एवं संहार के लिए शक्ति की अपेक्षा रखता है। शक्ति से परे होने पर वह परात्पर ब्रह्म की स्थिति में आत्मस्थ लीन होता है। अतएव पालन, सृजन एवं संहार किसी भी उद्देश्य के लिये उसका शक्ति संयुक्त होना परमावश्यक है। यह 'निराला' की राम की शक्ति पूजा की वैचारिक विराट् पृष्ठभूमि है।

साधना में चक्रों के वर्णन पर भी निराला जी ने दृष्टिपात किया है। इनकी साधना कोरी साधना न रहकर यथार्थ पृष्ठभूमि पर साधक के विराट् मनोबल की प्रतीक है।

'तुलसी दास' में कवि 'तुलसीदास' 'निराला' के हनुमान की ही तरह आकाश में उड़ते हैं। वहाँ उसी के द्वारा कवि उन्हें अन्याय के प्रतिकार का संदेश देता है। हम क्षुद्र सीमाओं में बँधे हैं। इसमें 'स्व' के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। चरागाह में खूटे से बंधे पशु की तरह हम निश्चित सीमा में भ्रमण करते रहते हैं। 'तुलसीदास' का आरम्भ ही विशेष उद्देश्य का परिचायक है, फिर भी महाकवि अपने सीमित क्षेत्र से उठ नहीं पाता। वह अपनी मायाग्रस्त अवस्था में प्रिया के पास जाता है, पर प्रेयसी क्रुद्ध होकर कह पड़ती है—

'धिक धाये तुम यों अनाहूत
ओ दिया श्रेष्ठ कुल धर्म-धूत,
राम के नहीं काम के सुत कहलाये ।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़ चाम,
कैसी शिक्षा कैसे विराम पर आये ।'

इतना सुनते ही वह मात्र प्रेयसी न रह गई, वह तो उस रूप में कवि के समक्ष प्रस्तुत हुई जिसका वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में उपलब्ध है—

'देखा शारदा नील वसना
है सम्मुख स्वयं सृष्टि रसना
वरदात्री.........।'

फिर क्या—

'फूटा तरु अमृताक्षर अक्षर ।'

कवि की ज्ञान की आँखें खुल गईं और वह कह पड़ा—

'लो चढ़ा तार लो चढ़ा तार,
पाषाण खण्ड ये करो हार,
दे स्पर्श अहल्योद्धार सार उस जग का ।'

क्योंकि उसका उद्देश्य था—

'करना होगा यह तिमिर पार
देखना सत्य का मिहिर द्वार ।'

इस प्रकार की विराट् मानवीय कल्पना हिन्दी में क्या विश्व-साहित्य में अनुपलब्ध है। आज पौरुषप्रधान काव्यों की कमी है। 'निराला' ने अपने अपराजेय व्यक्तित्व से जिस पुरुषार्थ का शंखनाद फूंका है उसकी अभी भारत को आवश्यकता है। 'कीट्स' में प्रतीकों के माध्यम से विराटता का दर्शन भले हो जाय, पर निराला की पौरुष-मय विराट्ता को उसमें खोजने पर निराशा ही होगी।

काव्य का सहज शुद्ध रूप

किसी भी अवबोध को इस प्रकार प्रकट करने की क्षमता को जिससे सत्य एवं सौन्दर्य की नवीनताओं पर प्रकाश पड़ सके, विशुद्ध काव्य कहते हैं। विशुद्ध कवि यथार्थ में कविता की दृष्टि से अन्य कवियों से महान् है। इसका कारण

यह नहीं है कि वह जीवन से से दृष्टि हटा कर उसे किसी आदर्श सौन्दर्य की ओर उन्मुख करता है। वह तो किसी भी अन्य कवि की तुलना में अधिक विश्वास, आत्मबल एवं मनोबल के साथ अपने को समर्पित कर देता है। वह अन्य कवियों से अधिक दक्षता के साथ जीवन का निरीक्षण करके उसको अपने अनुभव का विषय बनाता है। इस दृष्टि से विशुद्ध कवि पूर्ण मानव है।'[1]

'राबर्ट ब्रिजेज्' कवि कीट्स को विशुद्ध एवं विशिष्ट काव्य-तत्त्वों से आभूषित मानते हुए लिखता है कि 'भाषा के सभी प्रभावशाली एवं महत्त्वपूर्ण स्रोतों को केन्द्रित करके, प्रयत्ननिरपेक्ष अभिव्यक्ति द्वारा, आशापूर्ण एवं आवेगपूर्ण क्षणों में सुरुचिपूर्ण कल्पना का रसास्वादन करना और बुद्धि को भी सत्य के नवीन स्वरूपों से प्रभावित कर देना विशुद्ध कविता का कार्य है।'

इस प्रकार विशुद्ध कविता, भाषा के माध्यम से, कवि के आशा एवं आवेग-पूर्ण क्षणों की सुरुचिपूर्ण अनुभूति होती है। कवि की कल्पना का भी इसमें विशेष हाथ होता है। इसमें जीवन से पलायन की भावना नहीं, बल्कि जीवन के प्रति निष्ठापूर्ण समर्पण की भावना है। इसमें जीवन का सत्य एवं उसकी व्याख्या निहित होती है। कुछ अंशों में यह जीवन के लोकोत्तर आनन्दों से संबंधित होने पर भी जीवन के सामान्य अनुभवों को भूल सकने में असमर्थ है।

इस दृष्टि से जब हम इन दोनों कवियों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि ये कवि स्वभाव से ही स्वप्न-द्रष्टा और कवि थे। इनका उद्देश्य विशुद्ध कवि बनना था। इनमें इनके काल की कविता की मनोवृत्ति, अनन्त के प्रति जिज्ञासा पूर्ण आदर्शों का आग्रह आदि भाव परिलक्षित होते हैं। इनमें इनके समय की प्रवृत्तियों के साथ ही आगत एवं अनागत प्रवृत्तियों के भी दर्शन होते हैं जो इनके व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य की परिचायक हैं। इनमें किसी वस्तु को तटस्थ दृष्टि से देखने की क्षमता है। उनकी यह तटस्थ वृत्ति जहाँ भी क्रियाशील हो सकी है वहाँ कविता बड़ी ही आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक बन सकी है। यथा—

> 'प्रिय यामिनी जागी,
> अलस पंकज दृढ़ अरुण मुख
> तरुण अनुरागी।
> खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
> पुष्ट ग्रीवा बाहु उर पर तिर रहे,
> बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,

---

[1] कीट्स एण्ड शेक्सपीयर : एम. मूरे।

ज्योति की तन्वी
तडित् द्युति ने क्षमा मांगी ।
हेर उर पर फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक् चली मन्द मराल,
गेह में पिय स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्ति मुक्ता त्याग में त्यागी ।

ये दोनों ही जन्मजात प्रतिभा के महान् कवि थे । इनकी व्यक्तिगत आत्मा सत्य की खोज में विश्व के कण-कण से प्रेरणा लेकर एक जिज्ञासु की भाँति संघर्षरत रही । ये इस संघर्ष में सफल और असफल होते रहे । इसी में सोने की तरह तप कर ये इतने निखर गये कि जहाँ कहीं भी इनकी लेखनी चली उसका व्यापक प्रभाव पड़े बिना न रहा । उदाहरण के लिये निम्नांकित कविता ली जा सकती है—

'मौन रही हार,
प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार ।
कण-कण का कंकण पिय किणकिण कर किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर उर लौट लाज रंकिणी,
और धुनि पायल कर रहे बार-बार ।
शब्द सुना है तो अब लौट कहाँ जाऊँ,
इन चरणों को छोड़ और शरण कहाँ पाऊँ,
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार ।'

व्यक्तिगत सुख एवम् दुःख को इनकी लेखनी समष्टिगत सुख एवम् दुःख में परिवर्तित करके जन-मानस के संमुख प्रस्तुत कर सकी है । 'ओड टु नाइटिंगेल' में इस विश्व से ऊब जाने के बाद भी कवि ने जिस क्षरता एवम् नश्वरता का परिचय दिया है, वह समष्टि अनुभूति का अङ्ग है । बुलबुल की वाणी चिरन्तन सत्य का प्रतीक बन कर उसके समक्ष उपस्थिति होती है । 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा,' 'तुलसीदास', 'सरोजस्मृति', में कवि का व्यष्टि समष्टि में तिरोहित होता दृष्टिगोचर होता है । व्यष्टि रूप में 'राम की शक्तिपूजा' निराला की शक्तिपूजा तथा तुलसी-दास की रत्नावली 'निराला' जी की मनोहरा है, फिर भी यह व्यष्टि रूप समष्टि रूप में इस प्रकार तिरोहित हो जाता है कि इसके भीतर कोई सीमारेखा निर्धारित कर सकना असम्भव है । इस प्रकार उनके अन्दर व्यष्टि एवं समष्टि का वह साम-जस्य भी दृष्टिगोचर होता है जिसको आलोचकों ने विशुद्ध काव्य का आवश्यक अङ्ग माना है। उनका कहना है –

'एक विशुद्ध कवि के जीवन में एक प्रच्छन्न औचित्य निहित है, क्योंकि विशुद्ध कवि होने के लिये यह परमावश्यक है कि वह अपने को उस अदृश्य सामंजस्य का एक विश्वसनीय चितेरा एवं माध्यम बना दे जो इस संसृति में दृष्टिगोचर होता है।'[1]

कवि 'कीट्स' तो अपनी कविताओं में नश्वरता और अनश्वरता के गीतों को गा सका है। उसकी खोज, आदर्श सौन्दर्य एवम् सत्य तक ही सीमित है। महाप्राण 'निराला' अपने रहस्यवाद के द्वारा अधिक सूक्ष्म सामंजस्य का भी अन्वेषण कर सके हैं। कीट्स एवं निराला इस अन्वेषण तक तो साथ-साथ हैं—

'मैं न रहूँगा गृह के भीतर,
जीवन में रे मृत्यु के विवर
यह ग्रहागर्त प्राचीन रुद्ध,
नवदिक् प्रसार वह किरण शुद्ध।'

किन्तु निम्नांकित रहस्यदर्शी स्तर तक आते-आते 'कीट्स' निराला से पीछे छूट जाते हैं—

'वहाँ कहाँ कोई अपना,
सब सत्य नीलिमा में लयमान।
केवल मैं केवल मैं केवल
मैं केवल मैं ज्ञान।'

कीट्स एवम् निराला दोनों ही के लिये जीवन के दुःखों से छुटकारा आवश्यक है, पर एक जहाँ नाइटिंगेल के गानों के साथ उड़ता दृष्टिगोचर होता है, 'ओड टु साइके' में 'साइके' का पुजारी बनना चाहता है वहीं निराला अपने दर्शन के उस रहस्यलोक में प्रस्थान करते हैं जहाँ—

'नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
... ...

[1] In the life of a pure poet is a secret fitness, because to be pure poet demands, that a man should make himself the faithful servant and obedient instrument of unseen harmony which is in the universe.—Keats & Shakaspeare by *M. Murray*

वहाँ केवल केवल वे लोल
नयन दिखलाते निश्छल प्यार ।
हमें जाना है जग के पार ।'

कवि 'कीट्स' अपनी दु:खद स्मृति से मुक्ति के लिए कविता के पंखों पर बैठ कर पलायन करता है । उस के इसी भाव से मिलती-जुलती स्मृति निराला की निम्नांकित कविता में निहित है—

'क्षण भर की भाषा में,
नव-नव अभिलाषा में,
उगते पल्लव-सी कोमल शाखा में,
आये थे जो निष्ठुर कर से मले गये ।

कीट्स एवम् निराला दोनों ही इस सृष्टि के पीछे किसी सूत्रधार की कल्पना करते हैं, पर यह धारणा निराला में जितनी स्पष्ट है उतनी कीट्स में नहीं । यथा—

'एक दिन थम जायगा रोदन तुम्हारे प्रेम अंचल में
लिपट स्मृति बन जायेंगे कुछ कन कनक सींचे नयन जल में ।'

अतएव इन अनुभूतियों के बाद भारतीय भक्त की तरह वे कह पड़ते हैं—

'जीवन प्रात समीरण सा लघु, विचरण निरत करो
तरु तोरण तृण-तृण की कविता छवि मधु सुरभि भरो ।'

यह भाव-स्तर कीट्स में नहीं मिलता । 'निराला' की जिज्ञासा 'तुम अखिल विश्व में, या अखिल विश्व है तुम में' अथवा 'तुम्हीं गाती हो अपना गान व्यर्थ में पाता हूँ सम्मान' आदि कवितायें अद्वैतवादी दर्शन पर आधारित हैं ।
फिर जहाँ—

'प्रिय कोमल पदगामिनी मन्द उतर
जीवन्मुक्त तरु तृण गुल्मों की पृथ्वी पर,
हँस-हँस निज पथ आलोकित कर
नूतन जीवन भर दो ।'

ऐसे भाव व्यक्त करते हैं, वहाँ ये द्वैत के कवि दृष्टिगोचर होते हैं । इस प्रकार कवि की वाणी कलाकार के हाथ, पहलवान की छाती और फिलासोफर के पैर वाले कवि निराला कई दृष्टियों से उन साहित्यिक कल्पनाओं का भी उपयोग कर सके हैं जो 'कीट्स' में नहीं दृष्टिगोचर होतीं ।

इसी सन्दर्भ में इन कवियों के मानवतावाद पर भी दृष्टि-निक्षेप कर लेना चाहिए। 'शेली' की तरह कीट्स की कविताओं में इसका स्पष्ट प्रतिपादन नहीं हुआ है। उसके पात्रों में अवश्य ही यह भावना अभिव्यक्ति पा सकी है। फिर भी सौन्दर्य-प्रेम एवम् मानव-कल्याण की भावना का अन्तर्द्वन्द्व उसके जीवन में समाप्त नहीं हो सका है। १६ वीं शताब्दी का सबसे बड़ा सौन्दर्य-प्रेमी कवि होते हुए भी वह मानव-हृदय के कष्टों एवम् यातनाओं को नहीं भूल सका है। प्रथम की पूर्ति तो वह कर चुका था पर दूसरे के क्षेत्र में प्रविष्ट होते ही मृत्यु के कराल हाथों द्वारा उठा लिया गया। इस भावना को, उसने 'हाइपीरियन' में अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयत्न किया है। वास्तव में महान् कवियों के लिए विश्व का कष्ट उनका कष्ट बन जाता है और वे जब तक उसे समाप्त नहीं कर देते उन्हें शांति नहीं मिल सकती। ऐसे कवि जो इस प्रकार के संघर्ष के बावजूद सुख की वंशी बजाते हैं, 'मोनेटा' के मंदिर के फर्श पर गल जाते हैं और कविता की पूर्णता को नहीं प्राप्त कर सकते। उसके लिये तो कवि भविष्यद्रष्टा, मानवीय गुणों से अलंकृत व्यक्ति तथा सभी अन्य मनुष्यों के लिए आनन्दप्रदाता प्रतिभा है। 'हाइपीरियन' की 'मोनेटा', जो कष्ट एवम् दारुण यातनाओं की प्रतीक है अपना निरावृत्त मुख कवि को दिखाती है। कीट्स देखते ही उसे ज्ञान और कष्ट का प्रतीक मानता है।

निराला में इस प्रकार के विवेचन भले न दीख पड़ें फिर भी वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि 'तोल तू ऊँच नीच सम तोल, एक तरु के से सुमन अमोल'। वे जन-कवि के रूप में दलित एवं शोषितों की आहों को भी वाणी देने में समर्थ हैं। 'भिक्षुक' और 'वह तोड़ती पत्थर' नामक कवितायें इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इस प्रकार ये दोनों कवि तटस्थ रूप से भी मानव-चित्रण प्रस्तुत कर सके हैं। इस पृष्ठभूमि में निराला कीट्स की अपेक्षा अधिक विशाल चित्रफलक उपस्थित कर सके हैं। पर इसके मूल में कीट्स की असमर्थता नहीं, कीट्स का कवि-जीवन अपने उत्थान एवं पतन के मात्र चार वर्षों का दर्शक रहा, पर कवि निराला अगर दीर्घ-जीवी नहीं तो भी जीवन के ६४-६५ वसन्तों का उपयोग करने वाले थे। उनका कवि-जीवन भी ४५-५० वर्ष तक चला। अतएव इस प्रकार का अन्तर स्वाभाविक है।

शैली

गेयता

कीटस एवं निराला दोनों ही अपनी गेयता के लिए प्रसिद्ध हैं। निराला ने अपनी गीतिका में गीतों का भाण्डार ही खोल दिया, पर कीट्स ने अपनी 'ओड'

में लिरिक कविता जैसी लम्बाई एवं गुण न होने पर भी उनको गेयता के गुणों से आभूषित किया। इनमें 'ओड टू नाईटिंगेल' की संगीतात्मकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'स्विनबर्न' ने लिखा है कि 'संगीतात्मकता की दृष्टि से भले ही अधिक संगीतमय कविता मिल जाय, पर इससे (कीट्स की कविता से) अधिक संमोहक कविता न तो विश्व देख सका है और न देख सकेगा।'[1]

निराला के गीतों में काव्य एवं संगीत दोनों के समन्वित रूप के दर्शन होते हैं। निराला 'गीतिका' में गीतों की शाश्वत सृष्टि के विविध रूप-विधान लेकर चले हैं। काव्य एवं संगीत की उनकी साधना 'गीतिका' में सफल हुई है। जितना ही उदात्त काव्य वहाँ है उतना ही संगीत। यद्यपि भूमिका से यह ध्वनित हो जाता है कि यहाँ संगीत की नई परंपरा स्थापित करने का उद्देश्य प्रमुख है, लेकिन उन्हीं के कथनानुसार 'मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है। गीतिका एक भविष्य अभिलाषा एवं उच्च आदर्शों की आशंसा से प्रणीत हुई है। यद्यपि प्रत्येक गीत व्यक्तिव्य का प्रकाश और अभिव्यक्ति होता है, तो भी गीतों को शास्त्रीय संगीत की नियमावली के अनुरूप ढालना और संगीत को काव्य से मुखर करना यहाँ मुख्य है।'[2] उन पर रवीन्द्र-संगीत का प्रभाव देखा जाता है। लेकिन मेरे विचार से यह बाह्य सीमा तक ही सीमित है। जहाँ तक सृष्टि का संबन्ध है; वह हिन्दी के निराला की अपनी सृष्टि है।

यों कीट्स की संगीतात्मकता वहाँ की परम्परा के अनुकूल है। फिर भी निराला का गेय पदों में काव्य एवं शास्त्रीय संगीत का समन्वय स्थापित करना आधुनिक युग के लिए एक नवीन उपलब्धि है। कीट्स की गीतात्मकता के मूल में कविता का मसृण भावोच्छ्वास है, पर निराला की गेयता के मूल में भावोच्छ्वास के साथ उनका पौरुष, शक्ति एवं ओज भी है।

चित्रात्मकता

'निराला' और 'कीट्स' दोनों ही ऐसे कलाकार हैं जिनकी कविताओं में चित्रात्मकता प्रचुर मात्रा में मिलती है। शायद ही इनकी कोई कविता इनके चित्रमय के विधान से रिक्त हो। ये दोनों शब्दचित्र उपस्थित करने में परम प्रवीण हैं। इनके काल्पनिक मनोभाव अपना अभिव्यक्तिकरण इसी प्रकार खोजते हैं, जिस प्रकार ये सजीव चित्र सुझाव देते हैं। 'एण्डिमिअन' 'हाइपीरियन',

---

[1] आर० ब्रिजेज : एसेज आन कीट्स।

[2] निराला : काव्य और व्यक्तित्व, पृ० ११७-११८।

'चपमैन्स', होमर' तथा उसके 'ओड' और 'सानेट' में ये प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। निराला के 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा', 'जूही की कली', 'सरोज-स्मृति' में इनका बड़ा सफल और मार्मिक रूप सामने आता है। एक दो उदाहरण इसके लिए पर्याप्त होंगे। 'इमैजरी' के साथ 'परसोनीफिकेशन' द्वारा इन कवियों ने इसको अधिक स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया है।

निराला की संध्या-सुन्दरी को हम देखें—

'मेघमय आसमान से उतर रही,
वह संध्या सुन्दरी परी-सी,
धीरे धीरे-धीरे।
तिमिरांचल में नहीं कहीं चंचलता का आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर,
किन्तु जरा गम्भीर नहीं है उसमें हास विलास।'

सूर्यास्त हो जाने पर संध्या का करुण स्वरूप दर्शनीय है—

'डुबा रवि अस्ताचल
संध्या के दृग छल-छल।'

यह चित्र अपने सुझाव की दृष्टि से अद्वितीय है।

इतना ही नहीं बल्कि स्पर्श, गन्ध, रंग आदि का भी इस चित्र को रंजित करने में हाथ है।

शैलीगत मौलिक उद्भावना

निराला एवम् कीट्स दोनों ने शैली में मौलिक उद्भावनायें की हैं। 'कीट्स' अपने 'ओड' और सानेट तथा चतुर्दशपदी में इस रूप में आये हैं, पर 'निराला' मुख्य रूप से अपने नवीन छन्दों में इस रूप में अवतरित हुए है। 'कीट्स' अपने ओड और चतुर्दशपदी को परम्परा की मान्यता को मानते हुए भी पूर्ववर्त्ती कमियों से उन्हें मुक्त कर सके। इस दृष्टि से वे समकालीन पूर्ववर्ती एवं परवर्त्ती कवियों से विशिष्ट हैं। 'निराला' जी की सबसे बड़ी विशेषता हिन्दी में नवीन छन्दों के प्रयोग में थी। यों 'निराला' ने अपने पूर्व चलते हुए छन्दों का भी प्रयोग किया है। संस्कृत, उर्दू, फारसी एवम् ब्रज छन्दों के कुछ फुटकल प्रयोग इनमें दृष्टिगोचर होते हैं। फिर भी ये साहित्य-क्षेत्र के अमर प्रयोक्ता रहे हैं। आवश्यकतानुसार ये छन्दों में काट-छांट, तोड़-मरोड़ के पक्षपाती रहे हैं। मनुष्य की तरह ये कविता की मुक्ति के भी हिमायती हैं। कॉलरिज का विचार था, 'श्रेष्ठतम कविता भी *बिना छन्द के सम्भव है*।' सर फिलिप सिडनी की धारणा थी कि 'विश्व की अनेक

बेजोड़ कवितायें छन्दों में लिखी गई हैं। किन्तु छन्द काव्य का अलंकार भले हो उसका मूलाधार नहीं है। ऐसे अनेक उत्तम कवि हो गए है जिन्होंने कभी तुक नहीं मिलायी है। पर आज ऐसे कवियों की भरमार है जो तुकबन्दी को महत्त्व देते हुए भी कवि कहे जा सकते हैं।' सम्भवत: इसी प्रकार की भावना निराला जी के मुक्त छन्द के पीछे भी है। वे यथार्थ में इस युग के छन्द-गुरु रहे हैं। अपनी प्रथम कविता 'जूही की कली' में ही निराला जी ने मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। मुक्त छन्द की प्रेरणा में भावों के मुक्त अभिव्यक्तीकरण का ही प्रश्न क्रियाशील है। 'निराला' जी का मत है कि मुक्त काव्य कभी भी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता। इससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।[1] 'निराला' केवल सिद्धान्तवादी न थे, वरन् सिद्धान्त का जीवन में प्रयोग करने वाले थे। इनके छन्दों को 'रबर छन्द', 'केचुआ छन्द' कहकर अपमानित करने का प्रयत्न चलता रहा। फिर भी ये अडिग से अपने मन्तव्य पर जुटे रहे। एक उदाहरण लिया जा सकता है—

'बन्द तुम्हारा द्वार,
मेरे सुहाग श्रृंगार,
द्वार यह खोलो;
सुनो भी मेरी करुण पुकार
जरा कुछ बोलो।
स्नेह रत्न में बड़े यत्न से आज
कुसुमित कुंज द्रुमों से सौरभ साज
संचित कर लाई पर कब से वंचित।'

इस प्रकार काव्य-क्षेत्र में निराला जी की हिन्दी साहित्य को बड़ी देन है। इस दृष्टि से वे कीट्स से विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।

अलङ्कार एवं भाषा

दोनों ही कवियों ने अलंकार के क्षेत्र में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विशेषण विपर्यय (ट्रांसफर्ड एपिथेट), परसोनीफिकेशन (मानवीकरण), ध्वन्यर्थ-चित्रण का प्रचुर प्रयोग किया है। रस की दृष्टि से इनमें श्रृंगार एवम् करुण की प्रधानता है। 'निराला' के व्यंग्यों में हास्य रस का भी पुट है। पर कीट्स की कविता में

---

[1] **निराला—परिमल की भूमिका, पृ० १४।**

इनका चित्रण न होने के कारण पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। इनकी भाषा पर्याप्त परिष्कृत है और भावों को वहन करने में सक्षम है। कीट्स का जीवन कुछ वर्षों तक ही सीमित था अतएव वह भाषा का अधिक विकसित रूप न उपस्थित कर सका, पर निराला भाषा के महापण्डित हैं। इस पर इनका पूर्ण अधिकार है। सरल हिन्दी से लेकर संस्कृत-प्रधान शैली तक इनकी कविता में बिखरी पड़ी है। भावानुकूल भाषा और शब्दों द्वारा अपेक्षित भाव-व्यंजना इनका अपना वैशिष्ट्य है। इनकी भाषा ओजपूर्ण है। कुछ लोगों ने इन पर क्लिष्टता का आरोप लगाया है, परन्तु इसका कारण यह है कि कवि (कभी-कभी) अपने आवेगों को संयत रख कर नहीं लिख सकता। एक बात कहते-कहते उसे उसी से सम्बन्धित दूसरी बात याद आ जाती है। अतएव वह अपने भावों पर अंकुश नहीं रख सकता। अंकुश वह रख सकता है जा भावों को सजाने और सुघड़ बनाने का प्रयास करता है। निराला यह नहीं करते। इसलिए उनके भावों की अविरल धारा में ऐसे प्रसंग प्रायः छूट जाते हैं जो साधारण पाठक के लिये प्रासंगिक होते हैं, और ऐसे प्रसंग आ जाते हैं जो साधारण पाठक की दृष्टि में प्रासंगिक नहीं जँचते। इसलिये उनकी कवितायें दुर्बोध हो जाती हैं।[1]

इस प्रकार शैली की दृष्टि से भी ये क्रान्तिकारी कलाकार ठहरते हैं।

विशेष

इधर 'कीट्स' सम्बन्धी आलोचना पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। प्रायः आलोचकों ने 'कीट्स' को मेटाफिजिकल सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। कुछ आलोचकों ने 'आर्नल्ड' के आधार पर कीट्स को शेक्सपीयर के सदृश कलाकार भी सिद्ध करने के लिये ज़मीन और आसमान के कुलाबे मिलाए हैं। प्रथम दृष्टि-कोण तो बिलकुल ही असंगत है। कीट्स मेटाफिजिकल नहीं है। हाँ, उसकी सौन्दर्य की खोज उसके जीवन-पर्यन्त बनी रही। उस खोज में यदा-कदा कुछ रहस्यमय स्वरूप दृष्टिगोचर अवश्य होते हैं, फिर भी वे कीट्स को रहस्यवादी भी बनाने के लिए अपूर्ण हैं। जहाँ तक कला का प्रश्न है, उसमें उसके उच्च कलाकार होने की सम्भावनायें अवश्य व्यक्त हैं। वह शेक्सपीयर भले न हो, परन्तु शेक्सपीयर अवश्य हुआ होता अगर वह कुछ और समय तक जीवित रह गया होता। आज के आलोचक २५ वर्ष की अवस्था में केवल ४-५ वर्ष कविता को दे सकने वाले

---

[1] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० ४६९।

'कीट्स' की परिस्थितियों से अनभिज्ञ हैं । विश्व-साहित्य में सम्भवत: ऐसे कम उदाहरण मिलेंगे जहाँ हमें ४-५ वर्ष के कर्त्तृत्व में इतनी ऊँचाई, विविधता, एवं कविता की पवित्रता के दर्शन हों ।

निराला के साथ प्राय: यह बात नहीं रही है । उनका जीवन पर्याप्त लम्बा रहा है । अपने जीवन-काल में ही वे कम से कम दो साहित्यिक आन्दोलनों के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं । दोनों पर ही खुल कर उनकी लेखनी चली है । 'छायावाद' काल में ही विविध प्रयोग की जो उच्च पृष्ठभूमि हमें उनमें दृष्टिगोचर होती है, वह 'छायावाद, का एक अंग होते हुए भी भविष्य के विकास की सूचक है । इसमें उनके मानवतावाद, रहस्यवाद, दार्शनिक भावना कविता के नये प्रयोग, प्रकृति-प्रेम इत्यादि की एक विशाल पृष्ठभूमि का दर्शन होता है । इस विविधता की दृष्टि से उनका 'कीट्स' से कुछ भिन्न होना स्वाभाविक है । १९ वीं शताब्दी के द्वितीय दशक में क्रियाशील कवि बीसवीं शताब्दी के ४ दशकों में निरन्तर क्रियाशील रहने वाले व्यक्ति जैसी विविधता ले आये, ऐसा सोचना अन्यायपूर्ण होगा । फिर भी ये दोनों कवि जिस भी पृष्ठभूमि पर क्रियाशील रहे हैं, वह महत्त्वपूर्ण है और भविष्य के लिए भी आशा केन्द्र रहेगी ।

कवि या लेखक केवल अपने काव्य के परिमाण के कारण आदर्श नहीं होते । उनके काव्य में प्रेरणा होती है, उसमें एक युग-धर्म एवं युग-सन्देश निहित होते हैं, वे भूत, वर्तमान एवं भविष्य के स्वरूप-निर्णायक होते हैं । वे देश और काल की सीमा में बँधे रहते हुए भी इससे पर्याप्त परे रहते हैं । 'कीट्स' और निराला' इन दोनों ही दृष्टियों से महान् हैं । जो भी साम्य एवं वैषम्य ऊपर दिखाया गया है वह विचारणीय है । उनके जीवन-संघर्ष, काव्य-दर्शन, कविता और दर्शन के सम्बन्ध, प्रकृति-प्रेम, शैलीगत प्रयोग, प्रतीकों के प्रयोग, भूत के प्रति विशिष्ट आग्रह, तटस्थ दृष्टि, अपनी सीमा में क्रान्तदर्शिता, विराट् कल्पना, सौन्दर्य प्रेम, मानव-प्रेम, आदिम जो भी साम्य हैं उसके मूल में हमें परिस्थितियों का साम्य ही दृष्टिगोचर होता है और जो वैषम्य है, उसमें, देश, काल, संस्कृति, संस्कार, धर्म, दो युगों की विभिन्नता तथा उनके कर्त्तृत्व का सीमित तथा कुछ व्यापक काल तक का प्रसार आदि पाया जाता है । ये यथार्थ में प्राय: एक-सी परिस्थिति में चलते हुए दो भिन्न काव्य-आन्दोलनों की उपज हैं ।

———

३

सी० जी० रोज़ेटी एवम् महादेवी वर्मा

जीवन एक विकट पहेली है। अनन्त काल से व्यक्ति उसकी गुत्थियाँ सुलझाने का प्रयत्न करता चला आ रहा है, पर वे किस अंश तक सुलझीं, इसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। 'सी० जी० रोज़ेटी' एवम् महादेवी वर्मा दो ऐसी कवयित्रियाँ हैं, जिनके जीवन में सुख अथवा आनन्द के क्षण आये, हृदय उनका आह्वान करने के लिये बढ़ ही रहा था कि वे क्षिप्र गति से अदृश्य हो गये। परिणाम यह हुआ कि दुःख से सतत् प्रताड़ित होने के कारण, इनका हृदय उसी को जीवन-सर्वस्व मान बैठा और प्रत्येक क्षण उस प्रियतम के विरह में जलकर ये अपने को सच्ची विभूति में परिवर्तित कर देने की साधना में तल्लीन हो गईं।

जीवन-परिचय

'सी० जी० रोज़ेटी' का जन्म ५ दिसम्बर १८३० को हुआ था। वह 'गैब्रियल रोजटी' की छोटी लड़की तथा कवि 'डांण्टे गैब्रियल रोज़ेटी' की बहन थी। बचपन से ही उसे कविता लिखने का शौक था। १६वें वर्ष में इसके प्रपितामह ने इसकी कविताओं को प्रकाशित कराया था।

'क्रिस्टिना' के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता उसका धार्मिक जीवन में विश्वास था। 'प्री रेफेलाइट' कवि क्रिश्चियन धर्म का परित्याग करके अपने ढंग से अपनी मुक्ति का रास्ता खोजने में व्यस्त थे। इनमें क्रिस्टिना ही एक ऐसी कवयित्री रही जो सर्वांशतः अडिग धर्म-विश्वास के साथ चर्च को स्वीकार करती हुई, धर्म-निर्दिष्ट मार्गों के अनुसरण में सतत् रत रही। कविता की तरह धार्मिक भावना भी बचपन से ही कवयित्री पर अपना संस्कार डाल रही थी। उसके लिये यह सौदा महँगा पड़ा। जीवन की व्यक्तिगत आकाक्षाओं एवम् ईश्वर-प्रेम में एक संघर्ष छिड़ गया। इससे वह जीवन में पर्याप्त समय पश्चात् मुक्त हो सकी।

श्रीमती महादेवी 'वर्मा' का जन्म १९०७ ई० में फर्रुखाबाद के एक संपन्न परिवार में हुआ। इनके पिता श्री गोविन्दप्रसाद वर्मा, एडवोकेट थे। इनकी

माता हेमरानी परम विदुषी, आस्तिक एवम् कलाप्रिय थीं। इनके पूजा के समय के भजनों से बालिका महादेवी पर आध्यात्मिकता का प्रभाव पड़ता गया। ये भी बचपन से ही कविता करती थीं।

छोटी अवस्था में ही डॉ० रूपनारायण वर्मा के साथ परिणय-सूत्रबद्ध होने के कारण शिक्षा में व्यतिक्रम आ गया। फिर भी कुछ समय पश्चात् वे इस अधूरे कार्य को पूरा करने के लिये आगे बढ़ीं। सन् १९२४ में एन्ट्रेंस, २८ में बी० ए० और पुनः एम० ए० पास किया। इसके पश्चात् वास्तविक गहन अध्ययन चलता रहा और वे वेदान्त, दर्शन एवम् बौद्ध दर्शन आदि से प्रभावित हुईं। इनका दाम्पत्य जीवन निर्बाध गति से न चल सका। परिणामस्वरूप सी० जी० रोज़ेटी की तरह ये भी विभिन्न अन्तर्द्वन्द्वों के बीच पड़ीं।

मानवता-संपन्न व्यक्तित्व—सहज करुणा

दोनों ही कवयित्रियों के पास सहानुभूति का अनन्त भंडार था और दोनों इसे अपनी माता से प्राप्त किए थीं। इनके पास जीव मात्र के प्रति सहानुभूति थी। सी० जी० रोज़ेटी की 'गोब्लिन मार्केट' कविता इसका प्रमाण है। 'महादेवी जी' की कविता में इसके लिए स्थान नहीं है किन्तु उनके गद्य में जिस प्रकार की अनन्त करुणा के दर्शन होते हैं, वह स्पृहणीय है। पारिवारिक जीवन की अस्वीकृति के बावजूद इनका एक विशाल परिवार था जिसमें पुरुषों एवम् स्त्रियों के अतिरिक्त फूल, वृक्ष, चिड़ियाँ और कीड़े-मकोड़े तक आते हैं। 'वे एक वृक्ष को उखाड़ कर दूसरे स्थान पर इसलिये नहीं लगाती थीं कि वह सूख न जाय। वे फूल को इसलिये नहीं तोड़ती थीं कि वह मुरझा न जाय। वे छोटे से छोटे जीव की भी मृत्यु अपनी आँखों से नहीं देखना चाहती थीं। 'अतीत का चलचित्र' तो उनके अश्रु-विन्दुओं से सिक्त कितनी अतीत की स्मृतियों को वर्तमान के पटल पर रख कर अपने यथार्थ चित्रण के कारण आज भी लोगों को अनन्त सहनुभूति से आप्लावित कर देता है।

यथार्थ में कवयित्रियों की इस अनन्त सहानुभूति से उनके सर्जन का झिलमिल ताना-बाना बुना गया है। सहानुभूति मानव-हृदय की वह क्षमता है जो पर-दुःख एवम् पर-उत्पीड़न को स्वदुःख एवम् स्वोत्पीड़न की सीमा तक ले आने में सक्षम है। जो दूसरों पर सहानुभूतिपूर्वक नहीं विचार कर सकता, वह अपने को भी सहानुभूति नहीं दे सकता। हो सकता है आधुनिक मनोविश्लेषक इसकी मूल सत्ता को

---

[1] महादेवी वर्मा : संपादिका शचीरानी गुर्टू, पृ० २५।

आत्म-अतृप्ति का कारण बतायें, पर द्रष्टव्य है कि आत्म-अतृप्ति से पहले भी मानव का कोई संस्कार उसके व्यक्तित्व में निहित होता है। आत्म-अतृप्ति उन्हीं में से किसी को उद्बुद्ध करके उभाड़ देती है। कभी व्यक्ति अहंवादी हो जाता है, कभी निराशावादी और कभी साधक। इस प्रकार इन सभी वृत्तियों में सहानुभूति का झिलमिल सूत्र किसी न किसी रूप में उपस्थित रहता है। इन कवयित्रियों की सहानुभूति भी, न केवल इनकी कविता की अपितु इनके जीवन की महान् शक्ति के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

व्यक्तित्व एवम् कला (सैद्धान्तिक आलोचना)

आज कविता में जीवनपरक आलोचना का विशेष आग्रह दृष्टिगोचर होता है। कवि के जीवन से कुछ प्रणय-सूत्र, उसके व्यक्तिगत संबंधों, सफलताओं एवं असफलताओं को लेकर मस्तिष्क पर बिना किसी प्रकार का जोर डाले, उसी को सर्वमान्य कसौटी मानकर कवि का जीवन प्रस्तुत करने की प्रथा का प्रचार हो चला है, पर कभी-कभी स्थिति लालबुझक्कड़ जैसी हो जाती है जो हाथी के पदचिह्नों को देखकर, पैर में चक्की बाँध कर हरिण को कूदने का तर्क करते हैं। 'महादेवी' एवम् 'सी० जी० रोजेटी' के अधिकांश आलोचकों को, इसी प्रकार अँधेरे में ढेलेबाजी करने जैसा कार्य करना पड़ा है। अतएव यहाँ कलाकृति एवम् कृतिकार के व्यक्तित्व के संबंध पर चर्चा कर लेना समीचीन होगा।

'फ्रांस' में 'सेंट व्यूव' ने कलाकार के परिवेश को ही सब कुछ मानकर उसकी दैहिक विकृति एवं दिनचर्या के आधार पर उसकी प्रकृति को ही काव्य में ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। उसके अनुयायी टेन ने उस सामाजिक पृष्ठभूमि को मान्यता प्रदान की जो आज के प्रगतिवादी साहित्य की आधारशिला है। 'गेटे' ने कला को रुग्ण मानस के परिष्कार के रूप में स्वीकार किया। 'शापेन हावर' ने इसी आधार पर कलाकार के बलिदानीपन की व्याख्या प्रस्तुत की और कला को पीड़ाजन्य बतलाया। 'नीत्शे' ने कला को कलाकार की अवचेतना की आत्मकथा माना। इस विचार-परम्परा को आगे बढ़ाते हुए 'मैक्स नार्डन' ने अपनी पुस्तक 'डीजेनरेशन' में यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि प्रतिभा स्वाभाविक विकार मात्र है। मोती जिस प्रकार सीप का विकार है, उसी प्रकार कला कलाकार की आत्मपीड़ा का आलेखन-फल अथवा उदात्तीकरण है।[1] इस प्रकार कुछ लेखकों की मान्यता के अनुसार लेखक की वैयक्तिक विकृतियों को कला के मूल में स्वीकृति

---

[1] मूल्य एवं मूल्यांकन : डॉ० रामरतन भटनागर, पृ० ६१-६२।

मिली। वे कलाकार के खंडित व्यक्तित्व को ही कला में प्रस्फुटित मानने लगे। पर सोचने की बात है कि क्या 'कृति' की आलोचना में इस विकृति की खोज को पूर्ण सफलता मिल सकी ? वस्तुतः विकृति कृतिकार के व्यक्तित्व का एक अंश है, पूर्ण व्यक्तित्व नहीं। फिर विकृति को ही आलोचना का मेरुदंड मानना आज के बुद्धिवादी युग की एकांगी उपलब्धि का ज्वलन्त प्रमाण है।

यहाँ भारतीय रस-दृष्टि पर भी एक दृष्टि डाल लेना असंगत न होगा। ये भारतीय मनीषी, मनोविकारों अथवा भावों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत करके,उसे कला के मूल में स्वीकार करते हैं, पर वे बार-बार इस सत्य की ओर ध्यान आकृष्ट करते दृष्टिगोचर होते हैं कि कलाकृति भावों के सामान्य रूप पर नहीं, अपितु उसके उदात्तीकरण और लोकोत्तरीकरण पर आधारित है। इस उदात्तीकरण की क्रिया में बुद्धि का सहयोग होता है और हृदय का भी। ज्ञान के लिए बुद्धि की अपेक्षा होती है और भाव के लिए हृदय की। एक अपने परिपुष्ट स्वरूप में दर्शन में परिणत हो जाता है और दूसरा रस में। इस प्रकार काव्यानन्द ब्रह्मानन्द न होकर, ब्रह्मानन्द-सहोदर होता है। रस-मीमांसकों की इस व्याख्या में ऊपर के पाश्चात्य विचारकों को एक मुँहतोड़ उत्तर निहित है।

काव्य में मात्र बुद्धि की सत्ता स्वीकर कर लेने से संप्रेषणीयता या संवेदन-शीलता का प्रश्न भी उलझ जाता है। कला का उपभोग संवेदन एवं संवेद्य के पारस्परिक सहयोग की अपेक्षा रखता है। संवेद्य के पूर्ण बौद्धिक स्तर पर तिर-स्कृत हो जाने के कारण संवेदन का रूप भी स्थिर नहीं हो सकता, क्योंकि ये दोनों ही एक दूसरे को सत्ता के लिए परमावश्यक हैं। जहाँ भी रस-संवेदन का प्रश्न उठता है, वहाँ उसके उपयोग के लिए बुद्धि का सहारा आवश्यक हो जाता है, क्योंकि काव्य-शिल्प के लिए इसकी अवहेलना असम्भव है। काव्य के मूल में इस प्रकार, रस-संवेदना के मूल-भाव तथा शिल्प के मूल में बुद्धि को स्वीकार कर लेने से रहस्यात्मक अभिव्यक्तीकरण का प्रश्न भी सुलझ जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि व्यक्तित्व क्या है और कलाकृति में इसका उप-योग किस प्रकार हो सकता है। 'राबर्ट हीन' ने कवि या कलाकार के सृजन के क्षणों की मन.स्थिति को ही व्यक्तित्व की संज्ञा से अभिहित किया है। हरबर्ट रीड ने इसे कलाकार के मन की विशेषता के रूप में स्वीकृत किया है और कलाकृति में इसकी स्थिति को अनिवार्य माना है। इस प्रकार एक बात निश्चित हो जाती है कि सृजन के क्षणों में भी कलाकार का एक व्यक्तित्व होता है। पर इसके साथ ही यह प्रश्न भी खड़ा होता है कि क्या कलाकार अपने व्यक्तित्व को अपनी कला

में जानबूझ कर प्रश्रय देता है। टी० एस० इलियट का विचार है—

> 'कलाकार की क्रिया सतत् आत्मोत्सर्ग एवं व्यक्तित्व के विलोप की क्रिया है। जितना ही पूर्ण कलाकार होगा—उसमें सर्जक एवं भोक्ता के व्यक्तित्व एवं मस्तिष्क के बीच का अन्तर उतना ही स्पष्ट होगा और उतना ही पूर्णता के साथ मस्तिष्क उन विषयों का पाचन एवं उदात्तीकरण करने में सफल होगा जो इसके विषय हैं।'[1]

परन्तु इसके साथ ही 'वैलेस स्टीवेन्सन' यह मानते हैं कि कलाकार के व्यक्तित्व की अनुपस्थिति में काव्य-सृजन संभव नहीं। पर सामान्य दृष्टिकोण के साथ विचार करने पर ये विचार, इसके अति छोर दीख पड़ेंगे।

इधर अपने विचारों को और व्यापकता प्रदान करते हुए 'इलियट' महोदय सार्वभौमिक व्यक्तित्व की ही निर्वैयक्तिकता स्वीकार करने लगे हैं। हमारी समझ में न तो कलाकार अपने व्यक्तित्व के प्रसरण को अपनी कलाकृति में सदा-सर्वदा घुसेड़ता है और न अपने निर्वैयक्तिक स्वरूप को। 'फ्लावेयर' का कहना ठीक है कि वह अपनी कृति में स्रष्टा की भाँति रहता है। वह उसमें रमा हुआ है, फिर भी अव्यक्त है। 'हेनरी' भी कलाकार को उसकी कृति में अव्यक्त रूप में उपस्थित मानते हैं। इस प्रकार कलाकृति में यथार्थ में कवि का व्यक्तित्व कम और उसकी चिन्तनमय अनुभूति अधिक दृष्टिगोचर होती है।

अतएव इस विवेचन के निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि 'काव्य में व्यक्तित्व के जिस रूप का प्रयोग होता है वह कवि के बहिर्जीवन का लेखा नहीं होता, वह तो अन्तर्मन की प्रतिच्छाया होता है। उसमें कवि का तथ्य नहीं सत्य बँधता है। कवि की दुर्बलताओं तथा विकृतियों से उसे सीधी रेखा द्वारा जोड़ा नहीं जा सकता। 'फ्रायड' के आधार पर काव्य को क्षतिपूर्ति या स्वप्न मात्र मानने का अर्थ हुआ कि उसमें मनुष्य के चेतन मन अथवा अन्य संस्कारों का उपयोग नहीं हुआ है। यह दृष्टि सर्वथा एकांगी है क्योंकि अचेतन ही व्यक्तित्व

---

[1] The process of an artist is process of continual self sacrifice, a continual extinction of personality—the more perfect the artist, the more completely separate in him will be the man who suffers and mind which creates, the more perfectly will the mind digest and transmute the passions which are its materials. —Selecteed Essays, pp. 77-81.

नहीं, उसमें चेतन मन की उपलब्धियाँ भी समाहित रहती हैं। अनुभूति में भले ही अवचेतनीय चित्त-भूमियों का उपयोग हो, अभिव्यंजना के लिये तो सचेतन मन चाहिए। अतः काव्य में संपूर्ण अविभक्त एवं सूक्ष्म व्यक्तित्व का उपयोग वांछनीय है जो आत्मानुभूति को श्रेष्ठ शिल्प का रूप दे सके, जिससे मन के सभी स्तरों को समाधान पूर्ण तोष मिल सके।'[1]

प्रेम

अब उपर्युक्त पृष्ठभूमि में अपना एक मापदण्ड स्थापित कर लेने पर इनके वैयक्तिक जीवन के प्रेम-व्यापार पर भी दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। प्रायः देखा जाता है कि मानव-जीवन में यौवन बसन्त का आगमन होता है। चित्तवृत्तियाँ अस्थिर हो उठती हैं और मनोविकार प्रबल। व्यक्ति के रोम-रोम से केवल काम का ही चिरन्तन संदेश प्रस्फुटित होता है। वह इसमें किसी को सदा-सर्वदा अपना बना लेने के लिए उद्यत हो जाता है। अगर अपना हो सका तो भावनायें कुछ संयत हो जाती हैं, अगर पारस की तरह कहीं वह हाथ से छूट पड़ा तो, कुछ समय के लिए निराशा एवं अवसाद का आ जाना स्वाभाविक होता है। इन कवयित्रियों के जीवन में भी इस प्रकार के क्षण अवश्य आये हैं। 'सी० जी० रोज़ेटी' के प्रणय-सम्बन्ध की बात तो सर्वविदित है, पर आधुनिक आलोचक महादेवी में भी इस प्रणय की असफलता को ढूंढ़ने लगे हैं। शचीरानी का मत है कि 'यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ पट पर ज्योत्सना छिटक रही थी, तभी अचानक विकल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट-सी रेखायें अङ्कित कर गई।'[2] वे पुनः लिखती हैं, 'महादेवी और क्रिस्टिना की साधनाओं में आत्म-समर्पण और कर्त्तव्य का उच्च आदर्श होते हुए भी वैयक्तिक वासानाओं के दमन का दम्भ नहीं············(यदा-कदा) प्रिय के सामीप्य के लिए उनका हृदय मचल पड़ता है।'[3]

> 'सजनि कौन तम में परिचित-सा सुधि-सा छाया-सा आता,
> सूने से सस्मित चितवन से, जीवन-दीप जला जाता।
> छू स्मृतियों के बाल जगाता,
> मूक वेदनायें दुलराता।

[1] मूल्य एवं मूल्यांकन : डॉ० रामरतन भटनागर, पृ० ६५।
[2] साहित्य-दर्शन : शचीरानी गुर्टू, पृ० २२१।
[3] वही, पृ० २३२।

हृत्तन्त्री में स्वर भर जाता—
बन्द दृगों में चूम सजल सपनों के चित्र बना जाता ।'

महादेवी जी के जीवन के आरम्भ में इस प्रकार की किसी अनुभूति विशेष का होना मनोवैज्ञानिक सत्य-सा जान पड़ता है। प्रश्न यह है कि आखिर उन्हें इस चिरन्तन विरह की कल्पना कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई ?

'सी० जी० रोजेटी' का जीवन एक खुली पुस्तक है । उसके स्वप्नों के नायक के रूप में हमें 'कालिन्सन' तथा 'केले' के दर्शन होते हैं। दोनों ही बार प्रेम, परिणय की प्रतिज्ञाओं से आबद्ध होता है पर धार्मिक भावनायें इसको सफलीभूत नहीं होने देतीं। उसकी दृढ़ धार्मिक भावनायें उसे किसी भी ऐसे व्यक्ति के प्रणय-सूत्र को नहीं स्वीकार करने देतीं जो उससे भिन्न धार्मिक विश्वास वाला हो। 'कालिन्सन' के सम्बन्ध को तो वह शीघ्र ही भूल गई, पर केले के सम्बन्ध को भूल सकना उसके लिए असम्भव हो गया—इसके परिणामस्वरूप उसके स्मृति-पटल पर इसके चित्र बार-बार अङ्कित हो जाते हैं और वह विह्वल हो उठती है । उसके विचारों में अशान्त समुद्र जैसी उत्ताल मिलन-आकांक्षायें उठने लगती हैं और वह कराह कर कह पड़ती है—

> 'मेरी आकांक्षा है कि मैं तुम्हारे मिलन के उस प्रथम दिन, प्रथम घड़ी एवं प्रथम क्षण को याद रख सकती। क्या ही अच्छा होता यदि मैं उस समय बता सकती कि मौसम कैसा था—सुहावना या उदास ! शीत का समय था या ताप का—वह तो (मेरे जीवन में) अलेख रह कर ही विस्मृति के गर्त में समा गया। मैं तब आगत-अनागत को देखने में कितनी अन्धी थी और अपने जीवन-वृक्ष के प्रस्फुटन को लक्ष्य में रखने में कैसी मन्दबुद्धि, जो न जाने कितने ही 'मई मासों' में पल्लवित नहीं हो पाया ।'[1]

---

[1] I wish I could remember that first day,
First, first moment of your meeting me,
If bright or dam the season it might be,
Summer or winter, for ought that I can say,
So unrecorded, did it slip away,
So blind was, I to see it and for see,
So dull to mark the budding of my tree,
That would not blossom for many a may.

प्रेम का सबसे बड़ा मार्ग है हृदय में एक अनुभूति का जग पड़ना और इसे अपने प्रेमी तक पहुँचा देना। प्रेमी की सदा यही अभिलाषा रहती है कि उसका प्रिय इस बात को जाने कि वह सचमुच उसके लिये तड़प रही है। परन्तु यह तड़पन तो तभी शान्त हो सकती है जब प्रिय-मिलन द्वारा हम उस शान्ति को उपलब्ध कर सकें जो चिरशान्ति का एक अंश है। इस मिलन के पश्चात् तो संसार के सभी परिवर्तन प्रेममय दीख पड़ने लगते हैं। इसी को लक्ष्य करके रोजेटी कहती हैं कि—

> 'मैं तुझे प्यार करती हूँ और तुम इससे अवगत हो, यह जान कर मुझे संतोष होता है। तुम इसे जानकर इस पर संदेह नहीं कर सकते। प्रेम अपने में अपना चिरलक्ष्य है। मेरी शपथ या धर्म-पिता का आशीर्वाद मेरे प्रेम को अधिक निश्चित एवम् सुस्पष्ट नहीं घोषित कर सकता। हे घटने वाले म्लान चन्द्रमा! जीवन का भी यही घटने-बढ़ने वाला क्रम है। जब परिश्रान्त आह्लाद की अवज्ञा कर प्रेम अपना पंख फड़फड़ा कर उभड़ जाता है तो हम उसके चिर-परिचित स्पन्दन से कम अवगत हो पाते हैं। हे मित्र! हमें जाकर चिरशान्ति में सो जाना चाहिए, कुछ समय में ही आयु का यह कष्ट समाप्त हो जायगा। पुनर्जीवित प्रेम का मार्ग, जीवन एवम् क्षय सभी कुछ प्रेममय है।'[1]

[1] I love you and you know it at least,
This comfort is mine own, in all my pain
You know it and can never doubt again,
And love's mere self is a countinual feast,
No oath of mine, or blessing word of priest,
Could make my love more certain, and more plain,
O weary noon ! still rounding still decrease d
Life wa nes, and when love folds his wings above,
Tired joy and less we feel, his conscious pulse,
Let us go fall asleep, dear friend in peace,
A little while and age and sorrow cease,
A little while and love reborn, annuls,
Life and decay and death, and all is love.

परन्तु यह आत्मसन्तोष एवम् प्रेम-प्रदर्शन की भावना उसे सन्तोष नहीं दे पाती। अन्त में प्रेम के यथार्थ रूप के लिये वह बिलख पड़ती है। वह स्पष्ट रूप से कह पड़ती है—

> 'मैं अपनी आखें बिछाये तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ, शीघ्रातिशीघ्र मेरे पास चले आओ। अगर तुम नहीं आते तो मुझ असहाय से जो भी करते बनेगा करूँगी। मैं इस प्रतीक्षा में उतावली हो रही हूँ कि तुम कब आओगे। तुम्हीं मेरे एकमात्र प्राणाधार हो। तुम्हारी ही आशाओं से मेरी आशा की दुनियाँ बँधी हुई है। तुम्हारे मिलन में भी तुम्हारे विछोह की एक हूक है जिसमें मुझको तुमसे अलग हो जाने का भय बना रहता है। जब में अपने सम्मिलन के क्षणों की अनुभूति की स्मृति करती हूँ तो आशा एवं निराशा के दो उपकूलों के बीच झूलती रहती हूँ। अरे मेरे प्रियतम! यह तो बताओ कि मेरे गीत कहाँ हैं जो मैं अपने जीवन के मधुर क्षणों में गाया करती थी और जिसको तुम बहुत पसन्द करते थे।'[1]

सांसारिक प्रेम की तन्मयता की यह सर्वोच्च भूमि है जिस पर कवयित्री पदार्पण कर चुकी है। उसे 'वह कैसी संजोग न बूझि परे जो वियोगहू आनि बिछोहत है' की अनुभूति होती है। जीवन में मिलन की अनुभूति एवं उसके उपालम्भ प्रेमो-

[1] Oh come back to me, who wait and watch for you,
Or come not yet, for it is over then.
And long it is before you come again.
So far between my pleasures and few.
While then you come not, what I do, I do,
Thinking now, when he comes my sweetest when—
For one man is my world, of all the men,
This wide world holds, oh love, my world is you,
How beit to meet you grows, almost a pang;
Because, the pang of parting comes so soon,
My hopes hangs waning waxing like a moon,
Between the heavenly days on which we meet.
Ah be but where are the songs, I sang
when life was sweet, because you called it sweet.

दीप्त करने के मुख्य साधन हैं। कवयित्री यहाँ अपने गान की सुधि दिला कर प्रेमी के हृदय में एक अनुराग उत्पन्न करती है । यथार्थ में प्रेम में पूर्वमिलन की स्मृतियों का बड़ा महत्त्व है । ये प्रेमाग्नि को शीतल न होने के मुख्य साधन हैं ।

'डॉ० नगेन्द्र' ने महादेवी पर विचार करते हुए उनकी प्रणयानुभूति को पार्थिव माना है । उनके अनुसार किसी अभाव ने ही उनके जीवन को एकाकिनी बरसात बना दिया है । 'शचीरानी गुर्टू' भी कहती हैं कि इनका प्रेम अलौकिक एवं आध्यात्मिक न होकर लौकिक प्रेम की सहानुभूति से उद्भूत है और काल्पनिक आवरण में लिपट कर रहस्यपूर्ण होता गया है । इनके काव्य में व्यक्तिगत जीवन में घटी घटनाओं के प्रतिबिम्ब हैं । 'काव्य में कवि-जीवन का तथ्य नहीं सत्य बँधता है, परन्तु विचारणीय यह भी है कि विषयीगत कविता में लौकिक जीवन का तथ्य ही काव्य का सत्य है ।' पिछले पृष्ठ पर कलाकृति में कलाकार के स्पष्ट रूप में विद्यमान रहने पर विचार किया गया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके आरम्भिक जीवन में इनकी प्रेमपूर्ण कविताओं में इन कवयित्रियों का व्यक्तिगत जीवन किसी न किसी रूप में प्रेरणा-स्रोत के रूप में उपस्थित रहा है । लेकिन यही भावना इनकी कविता में आद्योपान्त है, वह मानना अनुपयुक्त है । 'बी० आई० आर० इवान्स' ने इस बात पर प्रकाश डालते हुए कहा हैं कि 'यह समझना भ्रमपूर्ण है कि रोजेटी की सभी कविताओं में 'चार्ल्स वेजेहाट केले' का व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में उपस्थित है । किसी तरह क्रिस्टिना जार्जिना रोजेटी ने इन अनुभवों को प्राप्त कर लिया था जो उसकी कविताओं में उपस्थित हैं ।'[1]

आज इस मनोविश्लेषण के युग में मानसिक रति एवं कविता के संबंध पर भी विचार हुए हैं । उनका विचार है कि कल्पना इस मानसिक रति के झिलमिल ताने से काव्य का स्वरूप प्रस्तुत करती है । रति के साथ ही दिवास्वप्न की तरह मानसिक रति का महत्त्व वे इसलिये स्वीकार करते है कि यह उनके व्यक्तित्व में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है । बात जो भी हो, अगर हम इसको स्वीकृति दे भी सकते हैं तो उसी अवस्था में जब प्रेम की आँखमिचौनी के सिवाय अन्य कोई खेल, युवक या युवती के समक्ष प्रस्तुत न हो ।

इन कवयित्रियों के विषय में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति की तरह प्रेमजनित अन्तर्द्वन्द्व इनके जीवन में भी रहे हैं, पर वे ही इनकी

---

[1] English Poetry in later 19th Century, B. I. for Evans.

कविता की एकमात्र व्याख्या प्रस्तुत कर सकने में समर्थ हैं, या इनके काव्य के मेरुदण्ड हैं, यह एक अन्यथा बात होगी। लौकिक प्रेम कब धार्मिक या आध्यात्मिक प्रेम में परिणत हो जाता है यह कह सकना असंभव है। इसके साथ ही लौकिक एवं अलौकिक की न तो कोई विभाजक रेखा है और न तो कोई भिन्न माध्यम। हृदय ही दोनों का आगार है, बुद्धि ही दोनों का गन्तव्य निश्चित करती है। तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि जीवन-पर्यन्त आँसू बहाने वाली ये कवयित्रियाँ, सामान्य हाड़-मांस की इच्छाओं के ऊपर न उठ सकीं। आरम्भ की कवितायें अभाव की मनोवृत्ति की प्रतीक अवश्य हैं, फिर बाद में इनका उदात्तीकरण हुआ है और ये सामान्य मनोवृत्तियों से ऊपर उठ सकी हैं।

वेदना एवं विरक्ति

यथार्थ में इन दोनों ही कवयित्रियों के काव्य का मेरुदण्ड विरक्ति है। इनकी अनन्त सहानुभूति पर दृष्टिपात किया जा चुका है, इस बात की सम्भावना दृष्टि-गोचर होती है कि जीवन के सीमित क्षेत्र में न बँध सकने के कारण यह विरक्ति उनकी सहानुभूति के रूप में परिणत हो गई है जो उन्हें व्यक्ति से भले ही न परिचित करा सकी हो, पर सृष्टि के कण-कण में करुण स्पन्दन उद्वेलित कर देने में अवश्य सक्षम बना देती है। मेरी दृष्टि से उनकी विरक्ति की भावना का ही प्रतिफलन, अनन्त करुणामय अवसाद में हुआ है।

क्रिस्टिना ने अपने एक पत्र में डी० जी० रोज़ेटी को लिखा है कि 'मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि तुम जैसे अपनी स्मृति या चिन्ताओं से निराश हो, मैं भी कम या अधिक उसी अग्नि-परीक्षा से गुजर चुकी हूँ। मैं तब तक अपने को सम्हालती रही, जब तक मेरा जीवन मेरे लिये असह्य नहीं हो गया। इसके पश्चात् मुझे स्वीकृति तथा पाप-मुक्ति और आध्यात्मिक सलाह तथा अवर्ण-नीय शान्ति में शरण मिली।'[1] महादेवी ने भी लिखा है कि 'दुःख मेरे जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एकसूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारा एक-एक बूंद आसू भी जीवन को अधिक मधुर एवं उर्वर बनाये बिना नहीं रह सकता। मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है, पर दुःख को सबको बाँट कर 'विश्व-जीवन में अपने जीवन को तथा विश्व-वेदना में अपनी वेदना को

[1] Later 19th Century poetry—C. G. Rossetti, by *B. I. for Evans*.

इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल विन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।'[1]

इस प्रकार इन कवयित्रियों को पीड़ा अथवा विरक्ति से अधिक प्रेम है। अगर इन्होंने अपनी कल्पना में कोई आकर्षक सपने सँजोये तो जीवन ने उन्हें तोड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इसीलिये इनकी कविता में किसी ज्ञात पर खोये हुए सपने के बिखर जाने की टीस है। जब तक ये जीवन-स्वप्न इन कवयित्रियों को नहीं प्राप्त हो जाते, उन्हें चैन कहाँ। वे कभी-कभी इस खोये हुए सपने को पुनः वापस कर लेने के लिये उद्यत हैं—

> 'तुम मेरे स्वप्नों में चले आओ, जिससे मैं मृत्युवत् शिथिल इस जीवन को पहले की तरह बिता सकूँ। तुम मेरे पास चले आओ जिससे प्रत्येक स्पन्दन एवं श्वास का मूल्य जीवन-स्पन्दन एवं श्वास से चुका सकूँ। तुम पहले की तरह धीरे बोलना और धीरे झुकना।'[2]

अथवा—

> 'पुलक पुलक उर सिहर सिहर तन
> आज नयन क्यों आते भर-भर।
> सकुच सलज खिलती शेफाली
> अलस मौलश्री डाली-डाली।
> बुनते नवप्रवाल कुंजों में
> रजत-श्याम तारों से जाली।
> शिथिल मधुपवन गिन-गिन मधुकण
> हरसिंगार झरते हैं झर-झर,
> आज नयन क्यों आते भर-भर।'

इस अभाव की मादक स्मृतियाँ इनकी कविता में पर्याप्त मात्रा में उपस्थित हैं। 'क्रिस्टिना जार्जिना' के जीवन में मुख्य अन्तर्द्वन्द्व प्रेम एवम् धर्म से संबद्ध था।

---

[1] यामा की भूमिका, महादेवी।

[2] Oh come to me in dreams, that I may live
My very life again, though cold in death,
Come back to me in dreams, that I may give
Pulse for pulse, breath for breath,
Speak low—lean low.

महादेवी के जीवन में भी यह अन्तर्द्वन्द्व अपने अभाव की चाह को प्राप्त करने तथा इसका परिष्कार कर इसको उदात्त बनाने में निहित था। ये सामान्य हाड़-मांस का पुतला थीं परन्तु यह भी सही है कि इनमें धार्मिक भावना और आध्यात्मिक चेतना भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी। इनका कवि-जीवन इस धार्मिक भावना एवम् आध्यात्मिक चेतना के साथ ही साथ जीवन के सामान्य अन्तर्द्वन्द्वों में टक्कर लेने का परिणाम है। जीवन के सामान्य अभाव जितना ही इनको खटकते हैं, उस पर कवि-रूप में वे उतना ही चिन्तन करती हैं। इस चिन्तन-अवस्था में जीवन की निस्सारता को समझते-समझते ये विरक्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बना लेती हैं। इस विरक्तावस्था में जीवन में केवल एक चाह और एक अभिलाषा रह जाती है और वे उसे प्राप्त करने के लिए उन्मुख होती हैं। पहले इन अन्तर्द्वन्द्वों के कारण सांसारिक पक्ष प्रबल रहता है परन्तु ज्यों-ज्यों चिन्तन गहन होता जाता है इनके विचार भी उच्चतर भूमियों से गुजरते हुए, उच्चतम भूमियों को प्राप्त करते हैं, जहाँ सच्ची धार्मिक भावना तथा उत्कृष्ट रहस्यानुभूति शेष रह जाती है। 'महादेवी' अपने इस साधन-पक्ष में निरन्तर रत हैं, पर रोजेटी कभी-कभी ऊब कर मृत्यु की आकांक्षा करने लगती है। 'रिमेम्बर' कविता में वह अपने प्रियतम से कहती है कि वह उसे उस समय याद करे जब वह मर जाय। फिर चैतन्य होकर वह कह पड़ती है कि उसके लिए यह भी आवश्यक नहीं क्योंकि उसकी स्मृति से वह खिन्न होगा।
वह पुनः कहती है कि—

> अच्छा हो तुम मुझे भूलकर मुस्कुराओ क्योंकि अगर
> मुझे याद करोगे तो अवश्य खिन्न हो जाओगे।[1]

'सान्ग' नामक कविता में वह इस बात पर विचार करती है कि मृत्यु हो जाने से क्या होगा—

> 'मैं छाया एवं दृष्टि का अनुभव न कर सकूँगी।
> मैं कष्टपूर्ण स्थिति में गाती हुई बुलबुल को भी न
> सुन सकूँगी। - - -मैं स्पष्ट रूप से चीजों को याद कर
> सकूँगी या उन्हें भूल सकूँगी।'[2]

---

[1] Better by far, you should forget and smile,
Than that you should remeber and be sad.

[2] I shall not see the shadows I ahall not see the rain,
I shall not hear the nightingale.

इस कविता पर विचार व्यक्त करते हुए सी० एम० बावरा ने लिखा है कि 'रोज़ेटी में मृत्यु की अवसादपूर्ण इच्छा के दर्शन होते हैं फिर भी इनका दूसरे विश्व की इच्छाओं से कोई संबंध नहीं है। यह जागृति एवम् सुषुप्ति की मध्यावस्था है। यह वह अर्द्धचेतनता की अवस्था है जिसमें स्मृतियाँ धुँधली पड़ जाती हैं और तीव्र प्रेमानुभूतियाँ भी अस्पष्ट छाया मात्र हो जाती हैं।'[1] प्रेमजनित अवसाद की धूमिल रेखायें भी कभी-कभी उसके मस्तिक पर बिखर जाती हैं और वह कह पड़ती है कि—

> 'विगत रात्रि को न अँधेरा था न प्रकाश। उस समय मैंने एक स्वप्न देखा, शीतल ओस-कणों ने मेरे बालों को भिगो कर धूल-धूसरित कर दिया था। इसी समय तुम आये और कह पड़े 'क्या तुम मेरा स्वप्न देख रही हो?' तुमने मुझे इस बात से अवगत कराया कि मेरा वह हृदय जो तुम्हें देख कर उछल पड़ता था अब विशीर्ण हो गया है। मैंने अर्द्ध-निद्रावस्था में उत्तर दिया 'मेरा तकिया गीला है, मेरा चादर बदरंग है और मेरा बिस्तर पत्थर-सा सख्त है।' तुम किसी ऐसे साथी की खोज करो जो तुम्हारे लिये कोमल आश्रय बन कर मुझसे अधिक संवेदना प्रदान कर सके।'
>
> ... ...
>
> 'परन्तु उस अन्धकार के बीच मेरी नीरवता वज्र जैसे कड़क उठी। प्रात:काल मेरा मुख अवसादग्रसित हो गया था, मेरे केश सफेद पड़ गये थे और द्वार के प्रस्तर-खण्ड पर खून जम गया था जिसमें सनी हुई मैं लथपथ पड़ी रही।[2]'

Sing on as if in pain.

... ...

Haply I may remember and.
Haply forget.

[1] Romantic Imagination, *Bowara.*

[2] I dreamed last night, it was dark,
It was not iight—
Cold dews have drenched my planteous hair,
Through clay, you come to speak me there,
And do you dream of me? You said.

यह स्वप्न कवयित्री का रात्रि-स्वप्न नहीं है बल्कि उसका मानसिक स्वप्न है। वह स्वतः इस बात के लिए तत्पर है कि उसके प्रेमी को दूसरा प्रेम-पात्र ढूंढ़ लेना चाहिए क्योंकि स्वयं उसके पास आत्म-समर्पण का पूर्ण उपकरण नहीं; इस आत्म-समर्पण में उसका धर्म बाधक है। किसी भी विधर्मी को अपना जीवन-साथी बनाने में वह असमर्थ है। नारीत्व पुरुषत्व की खोज करके पूर्णत्व का मुखापेक्षी है, पर धर्म स्वयम् पूर्णता प्रदान करने का आश्वासन देकर उसे आत्म-समर्पण से विमुख कर देता है।

महादेवी हिन्दी साहित्य में दुखों की रानी कही जाती हैं फिर भी कुछ आलोचक उनकी पीड़ा की गहनता को अस्वीकार करते हैं। जैनेन्द्र का मत है, 'महादेवी प्यास को ही चाहती हैं, इससे अनुमान होता है कि प्यास को उन्होंने जाना ही नहीं है। घायल घाव नहीं चाहता। मालूम होता है उसकी गति घायल की है ही नहीं। महादेवी जी विरह एवं वियोग में रस ढूंढ़ती हैं। इसका अर्थ है कि वे उतनी विकलता का अनुभव नहीं करतीं;[1] पुनः डॉ० हजारी प्रसाद का कहना है कि 'यह मान्य नहीं दीख पड़ता। महादेवी जी की अनुभूतियों में सच्चाई नहीं है, इस बात से मैं सहमत नहीं हूँ। व्यक्तिगत अनुभूतियों की तीव्रता एवं मर्मस्पर्शिता में वे अद्वितीय हैं।'[2]

My heart was dust that used to leap to you,
I answered half asleep.
My pillow is damp, my sheets are red,
There is a leaden Testar to my bed,
Fnd you a warmer play fellow,
A warmer pillow for your head,
A kinder love to love than mine.

... ...

But through the dark my silence spoke
Like thunder, when this morning broke
My face was pinched, my hair was grey,
And the frozen blood was on the still
When stifling, in my struggle I lay.

[1] महादेवी वर्मा : शचीरानी गुर्टू, पृ० ५।
[2] हिन्दी साहित्य : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ४७६।

महादेवी स्वयं अपनी पीड़ा का निराकरण करती हुई कहती हैं कि 'जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर एवम् कुछ मात्रा में सब कुछ मिला है। परन्तु उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ सकी है। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है। इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग के कारण तथा उनकी संसार को दुःखात्मक समझनेवाली फिलासफी से मेरी असमय ही परिचय हो गया था।'[1] यथार्थ में उनकी इस उक्ति को समझने में प्राय: भ्रम हुआ है। लोग सीधे कह देते हैं कि सुख की अतिशयता दुःख का कारण नहीं हो सकती। पर यह बात जँचती नहीं। सुख की अतिशयता में मानव-मन सीमित रहता है। वह सब प्रकार के स्वार्थों को ही अपना अभिन्न श्रेय समझता है। परतु अगर इस सुख में दुःख की साधारण चिनगारी का समावेश हो जाता है तो वह उसके स्वप्नमय नीड़ों को भस्मसात् करके उसे जीवन के यथार्थ का अनुभव करा देती है। जीवन देखने में सुखमय हो सकता है, कल्पनाओं में सुखमय हो सकता है, पर यथार्थ की अनुभूति हो जाने पर वह प्रायः दुःख का ही पुञ्जीभूत रूप बन जाता है। 'महादेवी' के जीवन पर दृष्टिपात करने वाले कतिपय लोग इस बात पर भी क्यों नहीं दृष्टिपात करते कि सुख की सामान्य परिभाषा में वे कुछ विशिष्ट कल्पना-सुख प्राप्त करने में असमर्थ रहीं। आत्मसंकोच के कारण महादेवी की आरम्भिक कविता में सी० जी० रोजेटी की तरह वह आत्मबल नहीं दीख पड़ता कि वे उसे सही रूप में स्वीकार कर सकें। पर जीवन के आरम्भ में उनकी आकांक्षाओं की दुनिया उजड़ी है, उन्हें जीवन के यथार्थ का दर्शन हुआ है, विरह की प्रचण्ड आँधी चली है और कविता में उनके शत-शत स्वर फूट कर निःसृत हुए हैं। यही आरम्भिक दुःख की भावना सतत् आत्म-परिष्कार की जागरूक भावना से परिष्कृत होकर उनके रहस्यवाद की पृष्ठभूमि अदा कर सकी है। 'महादेवी' की रहस्यानुभूति तथा 'सी० जी० रोजेटी' की दुर्बल भावना के पीछे यही रहस्य है कि उनके अभाव की कल्पना ही चिरन्तन सत्य का आभास दे सकी है। परन्तु वे उस स्पर्श-मणि को एक बार प्राप्त कर लेने पर पुनः उसे उसी रूप में बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील दीख पड़ती हैं। उन्हें जीवन में ऐसे समय का भले ही सामना करना पड़ा हो जब वे विद्यापति की विरहिणी की तरह रुदन करके कह पड़ी हों—'कर से छुटल परसमणि रे कौन गेल अपनाई।' परन्तु वे इस सांसारिक पारसमणि को प्रिय की चिरन्तन खोज के पारसमणि में परिवर्तित कर देती हैं। सामान्य ऐहिक भावनाओं का रोदन शाश्वत विरह

[1] रश्मि की भूमिका : महादेवी वर्मा।

एवम् मिलन का प्रतीक बन जाता है। वे सतर्कतापूर्वक इस साधना की पृष्ठभूमि में अपने हृदय का सारा रस एकोन्मुख बना कर 'प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं' का राग अलापने लगती हैं।

कहा जा सकता है कि अन्ततोगत्वा इस खोज का कोई अन्त भी है, अथवा यह निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। द्रष्टव्य है साधक के लिए उसकी साधना केवल प्रिय-समिलन तक ही सीमित नहीं रहती, अपितु वह मिलन के पश्चात् भी कहीं बिछुड़ न जाय, इस बात के लिए भी चिन्तित रहती है। प्रत्येक रहस्यवादी साधक इस 'चिरआँखमिचौनी' की आशा-निराशा के ताने-बाने बुनता रहता है। अपनी साधना को उच्च भूमि पर सदा बनाये रखने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है, परिणामस्वरूप यह विरह एवम् मिलन का गीत निरन्तर उसके हृदय से निःसृत होता रहता है। प्रिय का अन्त नहीं तो प्रिय की साधना की निरन्तरता की ओर उन्मुख करने वाली वेदना का अन्त कैसे हो सकता है।

इस उपर्युक्त पृष्ठभूमि में हम महादेवी जी की वेदना के रूप को प्रस्तुत करना अधिक उपयुक्त समझते हैं वे स्पष्ट कहती हैं—

'इन ललचाई पलकों पर,
पहरा था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला,
उस चितवन ने पीड़ा का।'

इस 'पीड़ा' से कातर होकर वे कह पड़तीं हैं—

'वर देते हो तो कर दो ना,
चिरआँखमिचौनी यह अपनी,
जीवन में खोज तुम्हारी है,
मिटना ही तुम को छू पाना।'

पर न तो प्रियतम की चिरआँखमिचौनी का अन्त हुआ और न महादेवी के विरह का। अतएव उनका यह विश्वास हो गया—

'जलना ही प्रकाश उसमें सुख
बुझना ही तम है तम में दुःख।'

परिणामस्वरूप इस स्तर का ज्ञान होते ही विरह की प्रभविष्णुता एवम् दीप्तिमयता द्वारा उनके आभास का सुख मिलने की सम्भावना बढ़ी। तथा—

'एक करुण अभाव में चिरतृप्ति का संसार संचित,
एक लघु क्षण दे रहा, निर्वाण के वरदान शत-शत।

पा लिया मैंने किसे वेदना के करुण क्रय में
कौन तुम मेरे हृदय में।"

फिर अगर वेदना ही उस प्रियतम तक ले जाने का माध्यम है तो कवयित्री का यह कहना उचित ही है कि—

'मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें भरती आँसू के सगार।'

लेकिन फिर भी इसमें एक कसक है जो उन्हें कहने को बाध्य करती है—

'मेरे सजल मुख देख लेते
यह करुण मुख देख लेते।'

इस प्रकार सामान्य रूप से दृष्टिपात कर लेने पर यह भली भाँति ज्ञात हो जाता है कि दोनों ही कवयित्रियाँ वेदना की अतिशयता से पीड़ित हैं, पर एक में जहाँ इस वेदना से छुटकारे के लिए मृत्यु का आह्वान अपेक्षित है, वहीं दूसरी में वेदना के प्रति निष्ठापूर्ण मिलन का आह्वान दिखाई देता है। एक की वेदना का पर्यवसान अप्रतिम धर्म-विश्वास में होता है, तो दूसरे की वेदना अनन्त है। इन दोनों की वेदना जीवन के एक अपूरणीय अभाव को लेकर प्रारम्भ हुई परन्तु बाद में एक गहन चिन्तन में बदल गयी। अतएव इनकी यह सत्य है कि—

'पीड़ा का साम्राज्य बस गया, उस दिन दूर क्षितिज के पार
मिटना था निर्वाण जहाँ; नीरव रोदन था पहरेदार।'

धार्मिक भावना (रोज़ेटी) रहस्य-भावना (महादेवी)

इन दोनों ही कवयित्रियों में अनन्त प्रियतम के प्रति जिज्ञासा का भाव है। ये दोनों ही उनके प्रति पूजा-भाव रखती हैं। भक्ति की पृष्ठभूमि के परे कहीं-कहीं रहस्यवादी चिन्तन-धारा का भी दर्शन उनमें उपलब्ध हो जाता है। फिर भी जिस प्रकार के जीवन्त एवं मूर्तिमान् रहस्य का दर्शन हमें महादेवी में होता है वैसा 'रोज़ेटी' में नहीं। 'रोज़ेटी' की लौकिक भावना से धार्मिक भावना तक का परि-भ्रमण सरलतापूर्वक पहचान में आ जाता है, पर महादेवी की कवितायें रहस्यमय ही नहीं रहतीं, अपितु वे महादेवी को भी रहस्यमय बना देती हैं। जब क्रिस्टिना कह पड़ती है—

'यह निरर्थक धारणा कि मैं क्या से क्या हो गई होती मेरे अनुभव को अहर्निश प्रताड़ित करती हुई मेरे मस्तिष्क पर रातदिन छाई रहती है और मुझे शान्ति नहीं लेने देती। उत्तर की शीतल वायु ने

> मेरी सारी हरियाली को उजाड़ दिया। अब मेरा सूर्य पश्चिम दिशा में पहुँच चुका है।'

तो उसमें अकृत्रिमता एवम् स्पष्टता का दर्शन होता है। पर महादेवी के गीतों में उनकी अन्तर्व्यथा और साधिका के सजग व्यक्तित्व के निरन्तर उपस्थित रहने के बावजूद वह स्पष्टता नहीं।[1] 'क्रिस्टिना' यथार्थ में स्त्री थी और वह स्त्री के रूप में प्रेम-क्षेत्र में अपनी पराजय भी स्वीकार कर चुकी थी। वह सामान्य जीवन के छिद्रान्वेषण से ऊबकर अपनी धार्मिक भावना को और भी सजग करके भगवान के समक्ष पूर्ण आत्मसमर्पण के लिए उद्यत रहती थी। उसका यह भाव निम्नांकित पद में अभिव्यक्ति पा सका है—

> 'मैं अपने हृदय को अपने वश में रखूंगी। मैं अब मरूँगी नहीं जीवित रहूँगी। तुमने मुझे याद किया था। अब मैं तुम्हारे समक्ष खड़ी हूँ। मेरे लिये जो भी प्रेय है, उसे लेकर मैं जिस रूप में भी हूँ, उसी रूप में अपने को समर्पित करने के लिए आ गई हूँ। तुम मुस्कराओ, मैं गाऊँगी, अब अधिक प्रश्न न करूँगी।'[2]

वह इस प्रकार सन्नद्ध होकर भगवद्-शरणागति के लिए तत्पर हो जाती है। उसकी बाद की कविताओं में यही ईश-प्रेम पूर्णरूपेण व्यापक हो गया है। यहाँ उसके सांसारिक बन्धनों के गीत के लिए कम अवसर है। उसे इस बात का आभास हो चुका है कि यह विश्व क्षणिक है और इसके क्षरतत्त्व मुरझा कर सूख जाते हैं।

क्रिस्टिना का विश्वास था कि प्रेम अगर इस विश्व में नहीं सफल होता तो दूसरे विश्व में अवश्य सफल होगा। वह किसी मनुष्य की न बन सकी तो भग-

---

[1] The fruiless thought of what I might have been,
Hauntling me ever, will not let me rest.
And cold north wind has withered all my green;
My sun is in the west.

[2] I take my heart in my hand
I shall not die but live,
Before thy face, I stand
For thou callest such,
... ...
Smile thou and I shall sing
But shall not question much.

वान् की अवश्य बन सकती है। ऐसे आत्मसमर्पण द्वारा वह इस बात के लिए आश्वस्त थी कि पार्थिव प्रेम की असलफता, स्वर्ग-प्राप्ति के पश्चात् सफलता में परिणत हो जा जाती है। यह उसके लिए एक आशाप्रद सन्देश था, फिर भी वह पूर्ण आत्म-समर्पण की कठिनाइयों से अवगत थी। ये सभी बातें उसे नये सन्त की पृष्ठभूमि प्रदान करती थीं। 'ईभ' के माध्यम से उसने पाप के उस लज्जास्पद स्वरूप पर दृष्टिपात किया है जो भयङ्कर सत्य है। इस कविता में वह अपने पापों का विशद वर्णन प्रस्तुत करती है। उसके लिए मानव की जन्मदात्री 'ईभ' सांसरिक पापों की कर्त्री के रूप में उपस्थित होती है। इसीलिए वह उसकी तरह कह पड़ती है कि 'हे भगवान्! मेरे पापों को दूर करो क्यों कि ये असंख्य और अवहनीय हैं अगर मैं उन सब को अभिव्यक्त करना आरम्भ करूँ तो दिन इतना छोटा पड़ जायगा कि वे कहे नहीं जा सकते। अगर मैं इनको कहना चाहूँ तो सम्पूर्ण जीवन इतना छोटा सिद्ध होगा कि वे कहे नहीं जा सकते।'

महादेवी ने मीरा की भाँति माधुर्य-भाव की उपासना स्वीकार किया है। 'भगवान' के साधक माता-पिता, स्वामी, सखा, प्रियतम आदि के रूप में भगवान की पूजा करते हैं पर महादेवी प्रियतम एवं प्रियतमा रूप को ही अपने लिये अधिक उपयुक्त समझीं। नारी होने के कारण इस माधुर्य-भाव की उपासना में उनका व्यक्तित्व निखर उठा है, वे अपने प्रियतम को प्रिय, करुणामय, सुन्दर, चिरसुन्दर, निठुर, निर्मम, निर्मोही आदि उपनामों से अभिहित करती हैं। उनकी इस उपासना में साधक की तल्लीनता है। शून्य मंदिर में स्वंय अपने ही गीले आँसुओं का उपहार लेकर वे सतत् उस प्रियतम के अभिषेक के लिये तत्पर रहती हैं। ब्रह्म के निराकार रूप की उपासिका होने के कारण, उन्हें इस पूजा-अर्चना में बाहय उपादानों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं दीख पड़ती। यथा—

> 'क्या पूजा क्या अर्चन रे।
> उस असीम का सुन्दर मंदिर, मेरा लघुतम जीवन रे।
> मेरी श्वासें करती रहतीं, नित प्रिय का अभिनन्दन रे।
> पद-रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे।
> अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे।
> स्नेह भरा जलता है, झिलमिल, मेरा यह दीपक मन रे।
> मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे।
> धूप बने उड़ते रहते हैं, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे।
> प्रिय-प्रिय जपते अधर तरल. देता पलकों का नर्तन रे।

अगर 'जार्जिना क्रिस्टिना रोजेटी' पर सत्रहवीं शताब्दी के धार्मिक विचारकों, मुख्य रूप से मेटाफिजिकल कवियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, तो 'महादेवी' पर भी भक्त एवं निर्गुण सन्तों का प्रभाव परिलक्षित होता है। जिस प्रकार 'रोजेटी' अपने जीवन में ही परम प्रियतम का आभास पाकर आनन्दोल्लसित होती है उसी प्रकार 'महादेवी' भी उसकी लीला के चित्रों की चतुर चितेरी हैं। फिर भी इनके काव्य में विरह का प्राधान्य है। मिलन के चित्र यदा-कदा दृष्टिगोचर होते हैं। उन्हें जीवन में दूर के संगीतःसा प्रिय का आह्वान, तड़ित की कौंध की तरह आँखें मूंदने वाले नींद का उच्छ्वास और स्वरूप सुरभित थपकियाँ देने वाले का मिलन कम आकर्षित कर पाया है। 'दीपशिखा' में अवश्य ऐसे कुछ चित्र हैं, जब रात की पराजय-रेखा का परिष्कार करके उषा-किरण अक्षत एवं हास-रोली से उनका अभिनंदन करती है। पर प्रायः वे अपनी निराशा के सांध्य-गीतों में शशि के दर्पण में देखकर अपने तिमिर केश सुलझाने, पारिजात-सदृश तारों को उसकी किरणों के अवगुण्ठन में गूँथने के पश्चात् अभिसारिका बनने पर भी यही कह पड़ती हैं—'क्यों आज रिझा पाया उसको मेरा अभिनव शृंगार नहीं।' परन्तु उनके लिये संतोष का एक मार्ग भी है। वे वेदान्त दर्शन के आधार पर इस सत्य से परिचित हैं—

'तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या ?
रोम-रोम में नन्दन पुलकित,
साँस-साँस में जीवन-शत-शत,
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित।
मुझमें प्रिय-बनते मिटते
स्वप्न मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या ?'

उन्हें इस बात का आभास मिल चुका है कि—

'मैं तुममें से हूँ एक, एक है
जैसे रश्मि-प्रकाश।
मैं तुमसे हूँ भिन्न-भिन्न ज्यों
घन से तड़ित विलास।'

दोनों की कविता उस प्रियतम की जिज्ञासा से आपूर्ण और ससीम से असीम में एकाकार होने के लिए बेचैन है। वे बार-बार यह प्रयत्न करती हैं कि इस क्षितिज-रूपी पट से झाँक कर उसमें छिपे रहस्य को देख सकतीं। पर वे कहाँ देख पाती हैं उसको। अतएव विह्वल होकर कह पड़तीं है कि हे प्रिय ! कम से कम एक बार तो इस पथ से आओ। अचानक उन्हें आभास मिल जाता है कि—

'प्रिय गया है लौट रात,
किसके पद-चिह्न विमल,
तारकों में अमिट विरल,
गिन रहे हैं नीर-जात
प्रिय गया है लौट रात।'

'रोज़ेटी' के लिए तो यह प्रतीक्षा और भी असह्य है, इसलिए वह यह कह पड़ती है—

'हे मेरे प्रिय, हे मेरे देव ! मैं इस निराश अवस्था में कब तक तुम्हारा इन्तजार करूँ ! क्या मैं रोऊँ और तुम्हारा इन्तजार करूँ, रोऊँ और तुम्हारी अभिलाषा को सँजोये रहूँ ! क्या तुम्हारी सम्पूर्ण करुणा समाप्त हो चुकी है और तुम्हारा प्रेम मेरे लिए नहीं है ! कब तक निराश्रित अवस्था में इस प्रकार व्यर्थ इन्तजार करती रहूँ।'[1]

लेकिन उसकी इस प्रतीक्षा का अन्त होता है। उसका प्रियतम आता है और उसके आगमन का वह अनुभव भी करती है। यथा—

'सम्पूर्ण रात्रि वह स्वर दरवाज़ा खुलवाने के लिए कहता रहा। उसके स्वर बार-बार मेरे कानों में टकराते रहे, उठो और कपाट खोलो, मुझे अन्दर आने दो। अश्रुसिक्त वाणी से अभ्यर्थना के स्वर में वह कहता रहा कि द्वार खोल दो जिससे मैं तेरे पास आ सकूँ। ....मेरे पैरों से रक्त बह रहा है। मेरे मुख की ओर देखो। मेरे इन हाथों को देखो जो तुम्हें सुख पहुँचाने के लिए उद्यत हैं। मेरे हृदय से तुम्हारे लिए खून निकल रहा है। अतएव द्वार खोल दो।

... ...

प्रातःकाल होने पर मैंने देखा कि प्रत्येक घास पर रक्त के चिह्न अंकित हैं और मेरे द्वार भी वे अमिट रूप से चिह्नित हैं।'[2]

---

[1] How long O lord how long,
In my desperate pain,
Shall I weep and watch, shall I weep and long for thee ?
Is the grace ended, thy love cut from me,
How long shall I long in vain.

[2] All night long the voice spake urgently, open to me,
still harping in mine ears, Rise let me in

इस प्रकार ये कवयित्रियाँ अपनी तन्मय प्रेम-चिन्तन-साधना में प्रिय के आगमन का आभास पाती रही हैं और उसकी आँखमिचौनी की प्रत्यक्ष दर्शिका रही हैं। परन्तु जहाँ 'क्रिस्टिना' में अपने प्रियतम से पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने की भावना का दर्शन होता है, वहीं 'महादेवी' में अपने व्यक्तित्व को निरन्तर बनाये रखने की भावना है। यह सामान्य आलोचक को स्तब्ध करने वाली बात है। वे कहती हैं—

> 'मिलन मंदिर में उठा दूँ, जो सुमुख से सजल गुंठन।
> मैं मिटूँ, प्रिय में मिटा ज्यों, तप्त सिकता में सलिल-कण।'

परन्तु—

> 'सजनि मधुर निजत्व दे
> 'कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।'

परन्तु द्रष्टव्य यह है कि महादेवी जी को यह आभास मिल चुका है कि 'सुख की सुनहली परिधि से दुःख को घेरे, जीवन का कठोर सत्य चारों ओर से उसे भेंट रहा है।' अर्थात् जीवन के परम सत्य का आभास दुःख में है, सुख में नहीं। परन्तु सुख का त्याग करके दुःख को अपनाना तो सरल नहीं। इसी प्रश्न के उत्तर में वे कहती हैं—

> **'बाँध लेंगे क्या तुझे, यह मोम के बन्धन सजीले ?**
> **पन्थ की बाधा बनेंगे, तितलियों के पर रँगीले।**
> **विश्व का क्रन्दन भुला देगी, मधुप की मधुर गुन-गुन।**
> **क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस गीले ?**
> **तू न अपनी छाह को अपने लिये कारा बनाना।**
> **जाग तुझको दूर जाना।'**

मनुष्य के लिये और जो भी स्पृहणीय हो, पर सुख को वह विशेष रूप से स्मरणीय समझता है। जिनको जीवन में अति पीड़ामयी मंजिल समाप्त करके दूर जाना है, क्या यह सुख की छाया उनके लिये बन्धन बन सकती है ? कभी नहीं। ऐसी स्थिति में जब भी वह जीवन पर दृष्टिपात करेगा तो कह पड़ेगा कि मैं 'सुख-दुःख भेंटूँ भुज भर

---

pleading with tears, 'open to me that I may come to thee.'

... ...

On the morrow, I saw upon the grass
Each foot print marked in blood and on my door,
The mark of blood far more.

कर।' परन्तु उस अवस्था में जब दुःख ही सुख बन जाय तो दुःख-सुख का क्या अन्तर ? जीवन को कठोर सत्यों के बीच रख कर दुःख ही तो व्यक्तित्व को तपाता है और फिर उसे परमानन्द की उपलब्धि कराता है। इस उत्कृष्ट अनुभव की अवस्था में भी व्यक्तित्व का संपूर्ण बोध नहीं माना जा सकता है क्योंकि जब व्यक्तित्व ही न रहेगा तो अनुभव कैसे रहेगा, पीड़ा कहाँ रहेगी ? अतएव इस दृष्टि से व्यक्तित्व का बना रहना परमाश्वयक है। 'तत्वमसि' के पश्चात् 'अहं ब्रह्मास्मि' का ज्ञान ही तो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की अनुभूति कराता है। रहस्यवादी दृष्टिकोण से यह 'सर्वं खल्विदं' की भावना 'अहं ब्रह्मास्मि' का व्यापक प्रसार है। 'अहं ब्रह्मास्मि' की स्थिति में भी अगर व्यक्ति का 'अहं' बना रहता है तो इस रहस्यानुभूति में व्यक्तित्व को बनाये रखने की बात सर्वथा उपयुक्त है।

भक्त लोग तो बार-बार यही कामना करते है कि 'जन्म-जन्म सिय-राम पद यह वरदान न आन।' इस भक्ति-भावना के स्पष्ट सूत्र महादेवी में भले न परिलक्षित हों फिर भी हम उन्हें कहते हुए सुनते हैं कि—

'सखे यह माया का देश,
क्षणिक है मेरा तेरा संग,
न रहता भौरों का आह्वान,
नहीं रहता फूलों का राज,
कोकिला होती अन्तर्धान।
चला जाता प्यारा ऋतुराज,
असम्भव है चिर सम्मेलन,
न भूलो क्षणभंगुर जीवन।'

इस चिरसंमेलन की संभावना का अभाव ही उन्हें व्यक्तित्व को निरन्तर बनाये रखने की प्रेरणा देता है। वे तो यह निरन्तर अनुभव करती हैं——

'नयन पथ में स्वप्न से मिल,
प्यास में घुल साध में खिल,
प्रिय मुझी में खो गया, अब दूत को
किस देश भेजूँ।
अब कहाँ सन्देश भेजूँ।
मैं किसे सन्देश भेजूँ।'

जब प्रिय ही व्यक्तित्व का अंश होकर उसी में विलीन हो गया तो यह प्रिय स्वरूप होने के कारण महादेवी को और भी प्रिय हो गया है। फिर ऐसी स्थिति में व्यक्तित्व का नाश कैसे संभव हो सकता है। इस दृष्टिकोण से कवयित्री का

अपना व्यक्तित्व बनाये रखना उपयुक्त ही ठहरता है। 'कबीर' आदि ने भी जहाँ 'मेरी चुनरी में परि गयो दाग पिया', 'ये अखियाँ अलसानी हो पिय सेज चलो' जैसे गीतों में दाम्पत्य-भाव को लिया है, वहाँ उनमें द्वैत सिद्धान्त उपस्थित है। इस दृष्टि से भी महादेवी को अपने 'दाम्पत्य-भाव' के अभिव्यक्तीकरण के लिये व्यक्तित्व आवश्यक है।

अब तक साहित्य में वादों का झमेला खड़ा करने वाले विचारकों की दृष्टि 'आत्मपीड़न' की ओर पता नहीं क्यों नहीं गयी। इसमें तो उनके कोरे बुद्धिवाद को बड़ा मसाला मिलता। अपने को मानसिक या शारीरिक कष्ट देकर ही तृप्ति पाना आत्मपीड़न है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार यह तीन प्रकार का है—

(१) कामवृत्ति-विषयक आत्मपीड़न।
(२) स्त्रैण आत्मपीड़न।
(३) नैतिक आत्मपीड़न।

स्नायविक विकृति वाले व्यक्ति अपने प्रति कठोर व्यवहार तथा अपने अपमान द्वारा यौन-तृप्ति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार का आत्मपीड़न केवल यौन-व्यापार में ही नहीं प्राप्त होता, अपितु जीवन की अन्य क्रियाओं में भी इसका हाथ रहता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार परपीड़न की प्रवृत्ति ही आत्मपीड़न में परिणत हो जाती है। यह विकृति अचेतन-दमन, वर्जना और स्वाभाविक प्रकृतियों में वियोजन आदि से बन जाती है।

स्त्रैण आत्मपीड़न स्त्री-स्वभाव की विशेषता है। स्त्री की स्वाभाविक वृत्ति पर नैतिक बन्धन होने के कारण उसकी परपीड़न की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं पीड़ा पाकर आत्म-संतोष का अनुभव करती है। कभी-कभी तो वास्तविक पीड़ा के अभाव और मानसिक पीड़ा की काल्पनिकता में वे सन्तुष्ट रहती हैं।

नैतिक आत्मपीड़न अकारण आत्मग्लानि के कारण अपने को बार-बार कोसते रहने का परिणाम है। इस प्रकार भी उनकी कामवासना तृप्त होती रहती है।

आज के युग में जब 'कामायनी' में मनु, श्रद्धा एवं इड़ा को भी 'ईगो', 'इड' और 'सुपरइगो' की तुला पर तोला जाता है तो इस प्रकार के विचारों के आधार पर इन कवयित्रियों का मूल्यांकन करना असम्भव नहीं कहा जा सकता। काम-क्रिया की सफलता पर दृष्टिपात किया जा चुका है, साथ ही अभावजनित अनुभूति किस प्रकार परिष्कृत होकर उच्चतम स्तर को प्राप्त करती है यह भी

दिखाया जा चुका है। फिर सतत जागरूक आत्म-परिष्कार की भावना में इसको ढूँढ़ना धृष्टता होगी। मात्र बुद्धि को आलोचना का विषय बनाने वाले लोग यहाँ तक पहुँच सकते हैं और इसके पक्ष में अपने विचार दे सकते हैं, इस बात को ध्यान में रख कर इस पर दो शब्द लिख दिए गये हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि ये दोनों ही कवयित्रियाँ धार्मिक भावना का प्रश्रय लेकर चली हैं। एक पर ऐंग्लिकन चर्च का प्रभाव है तो दूसरी पर वेदान्त दर्शन, वैष्णव धर्म, निर्गुणी सन्तों की साधना, तथा बौद्ध दर्शन का। दोनों में रहस्य-भावना के दर्शन होते हैं। 'रोज़ेटी' के समक्ष सगुण भक्तों जैसा आलम्बन न था अतएव वह अपनी इस भावना में सीमित है, पर महादेवी का रहस्य उनके प्रियतम की ही तरह अनन्त हैं। दोनों में ही दु:ख एवं पीड़ा का अनन्त सागर लहराता है। दोनों अपने आप में, अहर्निश सतत जागरूक रहकर, अपने प्रियतम को प्राप्त करना चाहती हैं। रोज़ेटी तो उसके साथ पूर्ण तादाम्य स्थापित करना चाहती है, पर महादेवी अपने व्यक्तित्व को अलग बनाये रखती हैं। दोनों ही अपनी इस भावना में निराशा से आशावाद की ओर उन्मुख हुई हैं। रोज़ेटी अपने दु:खों का अन्त चाहती है, पर महादेवी को दु:ख ही अधिक प्रिय है क्योंकि वह उन्हें प्रिय-सामीप्य प्रदान करता है। इस प्रकार दोनों ही अपने-अपने ढङ्ग से धर्म को विशेष महत्व प्रदान करती हैं। यथार्थ में दोनों के लिए यह कहा जा सकता हैं कि—

'तिमिर में वे पदचिह्न मिले।
एक-एक आँसू में शत-शत,
शतदल स्वप्न खिले,
सजनि प्रिय के पदचिह्न मिले।'

विशेष

अश्रु से अपनी काव्य-वाटिका का सिंचन करने वाली इन कवयित्रियों में पलायन, निराशा, मृत्यु की आकांक्षा, एवं जीवन की असमर्थता के चित्र भी कुछ मात्रा में देखने को मिलते हैं। इससे हृदय करुणासिक्त हो जाता है। परन्तु इनकी कला इतनी मोहक, सौन्दर्य की पकड़ इतनी सूक्ष्म है कि इसका पाठक पर सदा अनुकूल प्रभाव पड़ता है। ये रीतिकालीन विरहिणियों की तरह सिसकने, घिघियाने और घुल-घुल कर मरने में अपने में अपना समय नहीं बरबाद करतीं, फिर भी यथास्थान अत्युक्ति एवं अतिशयोक्ति का सहारा लेती दीख पड़ती हैं। इनके वर्णन में कहीं-कहीं परंपरागत चित्रण भी दृष्टिगोचर होते हैं।

इनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता गेयता है। ऐंग्लिकन चर्च का मेम्बर होने के कारण सी० जी० रोज़ेटी, चर्च-प्रार्थनाओं को गाया करती थी। इसकी गेय कविताओं में भी कथानक का एक क्षीण आधार प्रस्तुत है। 'महादेवी' ने भी रोज़ेटी की तरह मुक्तक को ही अपनी कविता का माध्यम बनाया। इनके हृदय से निःसृत भावों में कल्पना और भावना का मिश्रण होने के कारण इनके गीतों में गाम्भीर्य का समावेश हुआ है और अभिव्यक्ति-कौशल को चार चाँद लग गया है। इनके गीतों में आत्मनिवेदन ही प्रमुख है। ये गीत इनके मन की घायल स्थिति का चित्र प्रस्तुत करते हैं।

इन दोनों ही कवयित्रियों में सूक्ष्मतम भावों को वाणी देने के कारण चित्रोपमता, शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग, अमूर्त्त का मूर्तीकरण तथा प्राकृतिक चित्रों के मानवीकरण को प्रश्रय मिला है। शैली की दृष्टि से 'प्री रेफेलाइट' कविता की सभी विशेषतायें रोज़ेटी में और छायावादी शैली की सभी विशेषतायें महादेवी में प्रस्तुत हैं।

इन कवयित्रियों में अलङ्कारों का भी उचित प्रयोग दृष्टिगोचर होता है—रूपक, उपमा, अपह्नुति इनके प्रमुख अलङ्कार हैं। सांगरूपक के प्रयोग में महादेवी जी विशेष पटु हैं। इनकी भाषा मधुर तथा कोमल है। इनके भाव तथा अलंकार दोनों ही उत्कृष्ट हैं। भाषा सशक्त है और भावों को वहन कर सकने में सर्वथा सक्षम है।

इनकी कविताओं में सूक्ष्म मनोवृत्तियों का चित्रण होने के कारण पाठक की ग्राह्य कल्पना के समक्ष कुछ कठिनाई उपस्थित होती है और यथास्थान रस-परिपाक में व्यवधान पड़ता है। कल्पना की अस्पष्टता, दुरूहता की परि-पोषक बनती है। प्रतीकों का प्रयोग, इन्होंने नवीन रूप में किया है। आत्मनिवेदन में जहाँ दोष-स्वीकृति द्वारा आत्म-परिष्कार की भावना परिलक्षित होती है, वहाँ ये कुछ परदा डाल देना आवश्यक समझती हैं। इस प्रकार विभिन्न आलोचकों को अपने बुद्धि-विलास का विभिन्न माध्यम मिल जाता है। फिर भी ये महान् कलाकार हैं और इन्होंने अपने युग को विशिष्ट देन दी है।

निष्कर्ष

विश्व में पूर्ण तो वही एक अनन्त विभु है जिसकी खोज में इनके प्राण विकल होकर कल्पना एवं साधना के पंखों पर मड़राया करते थे। अतएव इस अपूर्णता में जितनी भी पूर्णता प्राप्त करना सम्भव है, वह इनकी कविताओं में दृष्टिगोचर होती है। जहाँ सामान्य अन्तर भी है सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि के कारण है, क्योंकि इनका प्रभाव किसी न किसी रूप में कवि पर पड़ता ही है।

———

४

जयशंकर एवम् डी० जी० रोज़ेटी

हिन्दी साहित्य के छायावाद युग के चार स्तम्भ हैं—'प्रसाद', निराला', 'महादेवी वर्मा' और 'पन्त'। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के भी चार स्तम्भ हैं—वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स और बाइरन। 'कॉलरिज' एवं 'राबर्ट ब्लेक' का भी स्थान कुछ दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। हिन्दी में जयशंकर प्रसाद विचित्र प्रतिभा के कवि हैं। कीट्स एवं शेली की तुलना निराला और पन्त से कर लेने के पश्चात् स्वच्छन्दतावादियों में कोई अन्य ऐसा कवि नहीं दृष्टिगोचर होता जिसके साथ जयशंकर की तुलना की जा सके। वर्ड्सवर्थ मुख्य रूप से प्रकृति एवं मानव-प्रेम के कवि हैं। उनकी सारी कविता का सार इन्हीं दो शब्दों में निहित है। पर 'प्रसाद' में प्रकृति-प्रेम एवं मानव-प्रेम के दर्शन के साथ ही कुछ अन्य तत्व भी हैं जिसका वर्ड्सवर्थ के साथ साम्य नहीं। शचीरानी जी ने प्रसाद एवं गेटे की तुलना का प्रयत्न किया है। काव्य, कला एवं विचार दर्शन पर कुछ अधिक सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने पर छायावादी 'प्रसाद' एवं स्वच्छन्दतावादी 'रोजेटी' की तुलना अधिक समीचीन है।

जीवन परिचय

डी० जी० रोजेटी १२ मई १८२८ को पोर्टलैंड प्लेस, लन्दन में पैदा हुआ था। उसके पिता एक सुसंस्कृत एवं संवेदनशील व्यक्ति थे। वे महान् देशभक्त थे। उसकी माँ धर्म एवं साहित्य में रुचि रखती थीं। स्पष्ट एवं उदार होने के साथ ही वह झक्की भी था, अतएव उसमें सामाजिक अन्यमनस्कता की प्रवृत्ति पाई जाती थी। रोजेटी अध्यनशील व्यक्ति था। वह विज्ञान, इतिहास एवं दर्शन का उतना प्रेमी नहीं था जितना कि 'लीजेण्डरी रोमांस' का। वह मध्यकालीन साहित्य में विशेष रुचि रखता था।

१८४८ में 'जान मेलायस' तथा 'विलियम होलमैन हण्ट' के साथ 'प्रीरेफैलाइट ब्रदरहुड' की स्थापना हुई। डी० जी० रोजेटी इस आन्दोलन का प्रमुख नायक था। उसके दल के विचारकों को 'रस्किन' ने अत्यधिक प्रोत्साहित किया।

अतएव 'रोजेटी' एवं 'रस्किन' में घनिष्ट मित्रता स्थापित हुई, किन्तु वैयक्तिक वैपरीत्य के कारण यह मित्रता अधिक दिन तक चल न सकी। इसी समय वह एलिजाबेथ सिडवेल के संपर्क में आया। शान्त, नियंत्रित व्यवहार, आकर्षक शरीर-यष्टि और मृदुल स्वभाव वाली इस लड़की ने रोज़ेटी को बहुत प्रभावित किया। १८५८ में उनकी यह घनिष्ठता सगाई में परिणत हो गई। जीवन की इस घटना ने उसकी कला एवं कविता को अत्यधिक प्रभावित किया। १८६० में ये दोनों परिणय-सूत्र में आबद्ध हुए, क़िन्तु उसका स्वास्थ्य तीव्र गति से गिर रहा था, अतएव वह अन्ततः काल के कराल हाथों द्वारा उठा ली गई। प्रेम के इस अभ्युदय एवं असामयिक अन्त के कारण उसका मानस अवसादग्रसित हो गया और उसकी स्वाभाविक आनन्दप्रियता को एक ठेंस पहुँची। १८६०-७० तक का काल कवि के जीवन का उत्कर्ष-काल रहा। १८७० के पश्चात् उसके जीवन में निराशा का समावेश हुआ। उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, परिणामस्वरूप १८८८ में वह इस नश्वर दुनिया को त्यागकर सदा के लिए चल बसा।

श्री जयशंकर प्रसाद माघ शुक्ल दशमी संवत् १९४६ में काशी के गोवर्द्धन सराय मुहल्ले में पैदा हुए थे। इनका जीवन एक समृद्ध परिवार में व्यतीत हुआ। दूकान पर एक ओर ग्राहकों की भीड़ लगी रहती थी, तो दूसरी ओर पंडित, गवैये, वैद्य, तान्त्रिक, ज्योतिषी आदि का जमघट। इनके कई भाई बचपन में ही काल-कवलित हो गये। ये नव वर्ष की अवस्था से ही समस्या-पूर्ति करने लगे थे। बारह वर्ष की अवस्था में पिता का और पंद्रह वर्ष की अवस्था में माता का स्वर्गवास हो गया। पिता का स्वर्गवास होते ही परिवार की स्थिति दयनीय हो गई। बड़े भाई शम्भुरत्न एक मात्र अभिभावक थे, पर पिता की मृत्यु के कुछ ही समय पश्चात् वे भी दिवंगत हो गए और सारा भार प्रसाद जी के सिर पर आ पड़ा। भाई की मृत्यु के पश्चात् तीस वर्ष तक दुकान, घर एवं साहित्य-सर्जन की त्रिवेणी उनका मुख्य आकर्षण-केन्द्र बनी। सन् १९३६ में वे सामान्य रूप से राजयक्ष्मा से पीड़ित हुए। सन् ३७ तक इस रोग ने भयंकर रूप ले लिया। चर्म रोग के कारण और भी दुसह यातना होने लगी। परिणामस्वरूप इसी साल कार्तिक शुक्ल एकादशी को यह हिन्दी का प्रकाश-स्तम्भ इस नश्वर लोक को छोड़कर अनश्वर लोक को गमन कर गया।

स्कूली शिक्षा के नाम पर वे केवल सात पास थे, पर घर पर इनका अध्ययन चलता रहा। उपनिषद् तथा वेदान्त दर्शन से इन्हें विशेष प्रेम था। घर पर कवि-गोष्ठी भी होती रहती थी। उर्दू की शायरी से भी इनका संपर्क था, परन्तु इन सबके साथ ही भारत के अतीत इतिहास का इन्होंने गहन अध्ययन किया था।

इन दोनों कवियों को जीवन के आरम्भ से दु:ख-सुख एवं वियोग का अनुभव हो चुका था। इनके पारिवारिक जीवन का इनके व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ा। ये जीवन के आरम्भ से ही मननशील एवं चिन्तनशील प्रकृति के मनीषी थे। इनमें स्वभाव के संकोच एवं अन्तवृ'त्ति का सुन्दर समन्वय था। 'प्रसाद' पर भारत के अतीत दर्शन का प्रभाव था तो 'रोजेटी' पर इटली का। दोनों ही कवियों को जीवन के अन्त में विषम रुग्णावस्था से गुजरना पड़ा। 'रोजेटी' प्रसाद की तरह लक्ष्मी का वरद पुत्र न था। उसे इस दृष्टि से जीवन-यापन के लिए कुछ काल तक संघर्ष करना पड़ा। फिर कुछ समय पश्चात् उसकी आर्थिक अवस्था में सामान्य सुधार हुआ और वह भी 'प्रसाद' की तरह सामान्य आवश्यकताओं से मुक्त हो गया।

काव्य-सिद्धान्त

रोजेटी एवं प्रसाद दोनों ने अपते काव्य-सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है। रोजेटी 'प्री रेफेलाइट ब्रदरहुड' का मुख्य कवि था और प्रसाद जी छायावादी आन्दोलन के प्रमुख कलाकार। इन दोनों कवियों ने अपने साहित्यिक आन्दोलनों को एक निश्चित गतिविधि प्रदान की है। अतएव इस दृष्टि से काव्य-सिद्धान्तों का अध्ययन समीचीन होगा। रोज़ेटी ने कविता पर विचार करते हुए कहा था कि—

> 'सभी प्रकार की कविता, स्थायित्व प्राप्त करने के लिये अन्य प्रकार के साहित्यों की तरह अवश्य मनोरंजनपूर्ण होगी। मेरा विश्वास है कि कविता को सजीव रखने के लिए, मनोरंजन ऐसी घटनाओं से नहीं प्राप्त किया जा सकता जो परिणामात्मक हों।'[1]

उपर्युक्त उद्धरण में दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। एक तो मनोरंजन एवं दूसरी सजीवता। उसके अनुसार कविता में तुच्छ एवं अमहत्वपूर्ण घटनाओं के स्थान पर ऐसी घटनाओं का चुनाव होना चाहिए जो आकर्षक एवं भावोद्दीपक हों। इसके साथ ही उसकी यह धारणा भी थी कि इस प्रकार के विषयों का गम्भीर विवेचन होना चाहिए। रोज़ेटी के पूर्व के विचारकों द्वारा प्रायः यह कहा गया था कि कोई भी विषय कविता का विषय बन सकता है, पर उसे यह मान्य न था। वह कविता में मनोरंजन के गुण के साथ ही सजीवता का दर्शन भी करना चाहता था।

---

[1] D. G. Roosetti—His family letters with a memior by *W. M. Rossetti*.

वह इस सजीवता की भावना के कारण ही इसको उत्पन्न कर सकने वाली घटनाओं का मुखापेक्षी था। उसे चतुर्दशपदी की प्रकृति एवं क्रिया का पर्याप्त ज्ञान था। उसने लिखा है कि—

> 'चतुर्दशपदी एक विचारप्रवण क्षण का पुण्य प्रतीक है। वह हृदय की व्यापक शाश्वतता तथा विगत जीवन के महत्वपूर्ण क्षण की अनुभूतिमय स्मृति है।'[1]

उसके अनुसार चतुर्दशपदी अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण क्षणों की प्रादुर्भूति है। वह या तो परमानन्द की अभिव्यक्ति है या पूर्ण निराशा की। यह आत्मा का उन शक्तियों से सामंजस्य स्थापित करती है जो इसको नियंत्रित करती हैं।[2] इसीलिये वह कहता है कि 'चतुर्दशपदी सिक्का है। इसका मुख भाग आत्मा को प्रकट करता है और दूसरा भाग उस शक्ति का परिचायक है जिसका वह ऋणी है।'[3]

रोज़ेटी के अनुसार चतुर्दशपदी को मानव-हृदय के भावों की मुक्ति के अतिरिक्त अन्य कार्य भी संपादित करना पड़ता है। इसका संबंध उन क्षणों से होता है, जब किसी गहन अनुभव के माध्यम से कवि अपना संबंध उदात्त भावनाओं से स्थापित करता है और उसे यह ज्ञान हो जाता है कि प्रेम, जीवन एवम् मृत्यु के रहस्यों के समक्ष वह अपने को इस प्रकार की कविता में अधिक सफलता से अभिव्यक्त कर सकता है। यह कवि की एक विशिष्ट पद्धति है जो किसी चुने हुए विचार या मनोवेग पर अपने को केन्द्रित करके इस शक्ति को एक सीमा में बाँध देती है।[4]

रोजटी के अनुसार कविता चित्रोपम होनी चाहिये। इसी को अभिव्यक्त करते हुए उसने लिखा है—

> 'कविता एवम् चित्र में वही संबंध होना चाहिये जो पुरुष एवम् स्त्री के

---

[1] A sonnet is a moment's monument,
A memorial from soul's eternity
to one dead deathless hour.

[2] Romantic Imagination : *C. M. Bowara*, 203.

[3] A sonnet is a coin, it reveals the soul.
Its converse to what power it is due.

[4] Romantic Imagination, (D. G. Rossetti, House of Life), *Bowara.*

सौन्दर्य में है। वह संमिलन-केन्द्र-विन्दु, जहाँ दोनों में तादात्म्य हो जाता है, सर्वोत्कृष्ट पूर्णता का प्रतीक है।'[1]

वह कहता है—

'किसी कवि में अगर कुछ भी कवित्व-शक्ति हो तो वह इसे चित्रित कर दे, क्योंकि प्रायः वे सब कुछ कह और लिख जाते हैं, पर इसमें चित्रोपमता नहीं आती।'[2]

'अगर चित्रकला के लिये यह आवश्यक है कि हम ऐसे विषय को चुनें जिसमें साहित्यिक या कवित्वमय प्रभाव हो तो कविता के लिये भी यह आवश्यक है कि उसका प्रभाव चक्षु, कर्ण एवम् प्रज्ञा सभी पर पड़े। रोजेटी के लिये कविता के अनुभव तभी पूर्ण हैं जब उसे ऐसी प्रतिभाओं द्वारा अभिव्यक्त किया गया हो जो चित्रोपमता के सहारे ऐसी अनुभूति को प्रकट करें जो जड़ शब्दों की प्रकृति के परे हो।'[3]

अतः इस दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि चित्रकार होने के कारण वह कविता में भी उसी भावना का समावेश करना चाहता था जिसका समावेश चित्रकला में सम्भव हो।

मि० हालकेन के शब्दों में 'रोजेटी का यह विचार था कि गद्य की प्रथम आवश्यकता स्पष्टता है पर कविता के लिये पद्य की शैली में लिखा जाने से बड़ा अन्य कोई अभिशाप नहीं हो सकता।'[4]

'प्रसाद' जी ने लिखा है कि 'कवित्व वर्णमय चित्र है जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है। अन्धकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड़ का चेतन से और बाह्य जगत का अंतर्जगत से संबंध कौन कराती है? कविता ही न?[5] 'वे पुनः कहते हैं कि 'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण,

---

[1] Picture and poem must bear the same relation to each other as beauty in man and woman, the point of meeting where two are most identical is the supreme perfection.—Collected works of D. G. Rossetti—*W. M. Rossetti. p.* 15.

[2] Rossetti—by *A. C. Benson*, 80,

[3] Romantic Imagination, *Bowara*,

[4] **रोजेटी : ए० सी० बेंसन, पृ० ८१।**

[5] **स्कन्दगुप्त, प्रथम अंक, पृ० २१।**

विकल्प एवम् विज्ञान से नहीं है। वह श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है। आत्मा के मनन-शक्ति की वह साधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।[1] प्रसाद जी काव्य को लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति का प्रमुख माध्यम मानते हैं। इसी को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है कि--

> 'प्लेटो का शिष्य अरस्तू कला को अनुकरण मानता है, लोकोत्तर आनन्द की सत्ता का विचार ही नहीं किया है। उसे तो शुद्ध दर्शन के लिए सुरक्षित रखा गया है।'

यथार्थ में 'प्रसाद' जी आनन्दवादी थे। वे भारतीय साहित्य की परम्परागत मान्यता में काव्य को आनन्द का माध्यम बनाना चाहते थे। इसके मूल में उनकी रस के अलौकिक आनन्द की निर्भ्रान्ति स्वीकृति तथा रस-सिद्धान्त एवम् रहस्यवादी पद्धति से उपलब्ध होने वाले ब्रह्मानन्द-सहोदर-आनन्द की साकार कल्पना निहित है। आनन्द के अतिरिक्त मनोरंजन एवम् लोकशिक्षा को भी उन्होंने अपने काव्य-सिद्धान्त में स्थान दिया है। उनके अनुसार—

> 'संसार को काव्य दो तरह से आनन्द-लाभ कराते हैं—मनोरंजन से एवम् शिक्षा से।'[2]

रोज़ेटी की तरह वे कविता के वर्ण्य विषय के चुनाव के प्रति भी सतर्क हैं। उनके अनुसार कवि को अपनी रुचि एवम् क्षमता के अनुकूल, वर्ण्य विषय का चुनाव करना चाहिए।[3] 'वे भी कविता में चित्रोपमता के समर्थक थे। आवश्यकतानुसार नवीन शैली को भी महत्व प्रदान करते थे। इसी का प्रतिपादन 'काव्य-कला एवम् अन्य निबंध' में किया गया है।'[4]

इस प्रकार ये दोनों ही कवि दो भिन्न आन्दोलनों को समर्थन प्रदान करते रहे। एक के विचारों में छायावाद प्रश्रय पा रहा था और दूसरे की भावनाओं में 'प्रीरेफेलाइट' आन्दोलन। अतएव इन दोनों ने ही आवश्यकतानुसार काव्यशास्त्र की विवेचना की है। इनके विवेचन में भी सामान्य साम्य दृष्टिगोचर होता है। ये दोनों ही कविता को मनोरंजन का माध्यम मानते थे। परम्परावादिता का साहित्य में दोनों ने विरोध किया। दोनों ही कविता को आनन्दपूर्ण क्षणों की

---

[1] काव्य-कला एवम् अन्य निबन्ध, पृ० ३८।

[2] इन्दु, कला १, किरण ११, ज्येष्ठ संवत् १७६७, पृ० १८१-८२।

[3] काव्य-कला एवम् अन्य निबन्ध, पृ० १२३।

[4] वही, पृ० १२४।

अभिव्यक्ति मानते थे। इनके आनन्द में जीवन के यथार्थ अवसाद का पुट था। नवीन शिल्प-विधान के दोनों समर्थक थे। चित्रोपमता को काव्य की दृष्टि से दोनों महत्वपूर्ण मानते थे। काव्य के लिए शैली की विशिष्टता एवम् उपयुक्त विषय-चुनाव दोनों को प्रिय था।

सौन्दर्य

ये दोनों ही कवि प्रेम एवम् सौन्दर्य के उन्मुक्त गायक थे। फ्रांस के लेखक वादेलेयर की तरह रोज़ेटी ने इंग्लैंड में तथा प्रसाद ने भारतवर्ष में अपने सौन्दर्य एवम् प्रेम का एक सिद्धान्त ही प्रतिपादित कर डाला। इस सौन्दर्य एवं प्रेम की भावना के लिये ये अपने पूर्ववर्ती कवियों के ऋणी अवश्य थे, पर इसमें इनकी नवीन उद्भावनाओं का भी यथेष्ठ सहयोग था। रोजेटी की सौन्दर्य-भावना पर इटली का विशेष प्रभाव था, पर प्रसाद जी मूल रूप में अपनी प्रेरणा में भारतीय थे। ये दोनों ही कवि अपने आदर्श लोक की कल्पना का प्रेम एवम् सौन्दर्य के माध्यम से अवगाहन करना चाहते थे। सौन्दर्य की दृष्टि से ये दोनों कवि दो स्तरों से होकर गुजरे थे। प्रथम वह स्तर था जब इनके यौवन वसन्त में सौन्दर्य का प्रवेश हुआ। उस समय इनकी अनुभूति का शब्द-शब्द 'नव गति नव लय ताल मदिर नव' के आह्वान से नर्तित हो उठा। अतएव उनकी कला इसी के पवित्र आनन्द से आपूर्ण होकर कल्पना-कानन-विहारिणी बन गई। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, इनकी इस अनुभूति के साथ अवसाद जुड़ता गया। इस प्रकार उनकी सौन्दर्य एवम् प्रेम की कल्पना इन्हीं दो उपकूलों के बीच होकर बही।

कीट्स की तरह रोज़ेटी भी सौन्दर्य-प्रेमी कवि था। इस दृष्टि से वह महान् स्वच्छन्दतावादी कवियों से साम्य रखता था। वह उन्हीं की तरह परोक्ष विश्व की गहराइयों में इसीलिये डूबता था कि वे उसे इस विश्व से परे रहस्य का दर्शन करा सकें। उसका विश्वास था कि सामान्य दृश्य वस्तुओं और घटनाओं में इस संसृति की आत्मा के रहस्य की कुंजी निहित है। इसीलिए कभी-कभी गोचर दृश्य का सौन्दर्य उसे पूर्ण रूप से अभिभूति कर लेता था और वह इस प्रकार अपने सामान्य विचार से ऊपर उठकर कल्पना की उड़ान एवम् परोक्षदर्शी स्वप्नों में लिप्त हो जाता था। उसकी कविता के उद्देश्य में तुरन्त अनुभूति प्रदान करने की क्षमता के साथ ही साथ इसमें निहित रहस्य की ओर भी संकेत था। इस प्रकार की अनुभूति के समय उसका व्यक्तित्व पूर्ण रूप से परिवर्तित हो उठता था। 'सोलस ब्यूटी' में वह इस बात को अभिव्यक्त करते हुए कहता है—

'इस जीवन के मंडलाकार घेरे के अन्दर जहाँ प्रेम, मृत्यु, भय और रहस्य उसकी मूर्त्ति का निरीक्षण किया करते हैं, मैंने सौन्दर्य को समासीन पाया। उसकी दृष्टि विस्मय उत्पन्न करती थी। मैं उसे उतनी सरलता से समझ सका जितनी सरलता से व्यक्ति श्वास लेता है।'[1]

उसका विश्वास था कि वह प्रकृति के द्वारा, उसके सौन्दर्यमय स्वरूपों के चयन के लिये ही पैदा हुआ था फिर भी वह इस सत्य से अवगत था कि सौन्दर्य विचित्र और वर्णनातीत होता है। यह एक ऐसा नियम है जो जलधि, नभ-मंडल और स्त्री को आबद्ध किए हुए है। परन्तु यह अपनी उपस्थिति एवम् अनुपस्थिति के प्रति अनुत्तरदायी है। यह मानव को मोहित कर वशीभूत कर लेता है और उससे जन्म भर सेवा कराता है। यथा—

'यही सौन्दर्य है जिसकी प्रशंसा में तुम्हारे हाथ और वाणी भी क्रियाशील हैं। यह अपने बिखरे हुए बाल एवम् सम्भ्रमपूर्ण हिचकिचाहट के कारण तुम्हारे लिये पूर्ण परिचित है। तुम्हारे हृदय एवम् पग के स्पन्दन इसका नित्य अनुकरण करते हैं।'[2]

रोज़ेटी एक सौन्दर्यमय दृश्य से दूसरे सौन्दर्यमय दृश्य तक मुग्ध होकर परिभ्रमण किया करता है। उसका विश्वास है कि उसके पीछे वह अनन्त सौन्दर्य छिपा हुआ है जो उसे सतत आकर्षित करके उसके व्यक्तित्व को एक निश्चित दिशा एवम् स्वरूप प्रदान करता रहता है।

प्रसाद जी ने भी सौन्दर्य का आकर्षक चित्र खींचा है। उनके लिए तो 'उसकी स्मृति पाथेय बनी है, थके पथिक की पंथ-सी।' इसका मूल कारण है—

---

[1] Under the arch of life love and death,
Terror and mystery, guard her shrine, I saw
Beauty enthroned and through her gaze struck awe,
I drew it in as simply as breath.

[2] This is the lady beauty, in whose praise
Thy voice and hand shake still long known (to thee)
By flying hair and fluttering him—the beat
Following her daily of thy heart and feet.

'बस गई सुछवि आँखों में
थी एक लकीर हृदय में,
जो अलग रही लाखों में।'

प्रसाद जी को इस सुछवि का दर्शन हो चुका था क्योंकि उनके हीरे-सदृश हृदय को इस शिरीष-कोमल ने कुचल डाला था। उनका अनुभव था कि 'मार्गदीप लिए इस कर में पथ दिखलाने आई थी।' फिर भी कवि को उस मार्ग-प्रदर्शन का सुख न मिल सका था क्योंकि 'आलिंगन में आते-आते मुसका कर भाग गयी' की अनुभूति के बीच भी उन्हें गुजरना पड़ा। सौन्दर्य-चित्रण की दृष्टि से इन दोनों कवियों में भाव-जगत का सौन्दर्य-चित्र अधिक मुखर होकर उपस्थित हुआ। यथा—

'चंचला स्नान कर आये
चन्द्रिका पर्व में जैसी।
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी।'

'आँसू' में कवि ने उस छलना के अद्वितीय सौन्दर्य को और भी उभाड़ कर रखा है। कवि की कल्पना ने नयी उपमा एवं नये उपमानों का विशिष्ट एवं सफल प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप मुख के वर्णन को ले सकते हैं—

'बाँधा था विधु को किसने,
इन काली जंजीरों से।'

आँखों का वर्णन—

'काली आँखों में कितनी,
यौवन के मद की लाली।
मानिक मदिरा से भर दी
किसने जीवन की प्याली।'

'कामायनी' का सौन्दर्य-चित्रण कई दृष्टियों से सुरुचिपूर्ण बन सका है। यहाँ सौन्दर्य को वे चेतना के उज्ज्वल वरदान तथा अनन्त अभिलाषाओं के स्वप्न को जागृत करने वाले माध्यम के रूप में प्रस्तुत किए हैं—

'उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषाओं के
सपने सब जगते रहते हैं।'

यहाँ उन्होंने सौन्दर्य को विश्वव्यापी चेतना से सम्बद्ध करके देखने का प्रयत्न किया है। इसी कारण ये 'विश्व को उस चेतना का अभिराम उन्मीलन' अथवा 'चिति का विराट वपु मंगल' आदि कहकर चिरसुन्दर बतलाते हैं। 'प्रसाद' के सौन्दर्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे इसे अत्यन्त व्यापक मानते हैं और उसे वे चेतनामय ही नही अपितु चेतना का वरदान भी कहते हैं। इसी कारण उन्हें मृत्यु की विभीषिका में भी एक नित्यव्यापी सुन्दरता के दर्शन होते हैं और संसार की भीषणता में भी कमनीयता दृष्टिगोचर होती है।[1]

'प्रसाद' जी विराट शक्ति को भी अनन्त रमणीय के नाम से अभिहित करते हैं। उनका अभिमत है कि इस जीवन-घन की छवि देखने के लिए सब लालायित हैं, परन्तु वे सब तो आवरण बनते जाते हैं। यह दर्शन तो तभी सम्भव है, जब—

'चाँदनी सदृश खुल जाय कहीं
अवगुंठन आज सँवरता सा।
जिसमें अनन्त कल्लोल भरा
लहरों में भाव विचरता सा।'

'कामायनी' में कवि ने श्रद्धा के पार्थिव एवं अपार्थिव सौन्दर्य के साथ मनु के सौन्दर्य का विशिष्ट चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें रूप-सौन्दर्य के साथ ही साथ कर्म-सौन्दर्य एवं भाव-सौन्दर्य की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है।

इस प्रकार इन दोनों ही महान् कवियों ने अपनी कविताओं को सौन्दर्य से आभूषित किया है। दोनों ही में यौवन के क्षणों का सौन्दर्य उन्मादक भावों से परिपूर्ण है। बाद में इनके सौन्दर्य-विधान में एक पूर्णता आई है। ये दोनों कवि सौन्दर्य को प्रकृति के कण-कण में विकीर्ण पाते हैं। इसीलिए विश्व के अन्तराल में प्रविष्ट करके वे उस अज्ञात सौन्दर्य की खोज के पथ के पथिक बन सके हैं। इसी कारण जिज्ञासाकुल अवस्था में, इनका सौन्दर्य-बोध एवं उसकी खोज कुछ रहस्यमय हो गई है।

प्रेम

इन दोनों कवियों के लिए प्रेम ही वह माध्यम था जिसके द्वारा ये सौन्दर्य के आदर्श रूप तक पहुँच सके थे। इनका यह सौन्दर्य इन्हें स्त्री-सौन्दर्य का आग्रह ही नहीं अपितु उसकी अनुभूति करा सकने में भी सक्षम था। रोज़ेटी ने 'हाउस आफ लाइफ' में इसका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। 'लव एनथ्रोण्ड' कविता

[1] कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० १९४।

में कवि ने आशा, ख्याति, यौवन एवम् जीवन के प्रभावों से भी प्रेम के प्रभाव को महान् चित्रित करते हुए कहा है—

> 'प्रेम का आसन इनके साथ न था बल्कि स्वागत एवं विदाई के मनोवेगपूर्ण प्रभाव से भी उच्च धरातल पर वह एक पूर्ण शान्त निकुंज में समासीन था। वे इसकी कल्पना भी न कर सकते थे। गोकि सत्य प्रेम के हृदय को जान सकता था और आशा उसकी भविष्यवाणी कर सकती थी, ख्याति भी प्रेम के लिए ही स्पृहणीय समझी जाती थी और यौवन और जीवन प्रेम के लिए प्रिय माने जाते थे।'[1]

'दान्ते' की तरह 'रोज़ेटी' भी प्रेम को जीवन एवं अच्छाई के सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करता था। परन्तु दान्ते के प्रेम में वह ईश्वरीय शक्ति थी जो मानव को ईश्वर के समीप ले जाने में समर्थ थी, पर रोज़ेटी केवल सौन्दर्य के ही संनिकट पहुँचने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझता था। इस पर प्लेटो का प्रभाव भी था। वह प्लेटो की तरह इस बात को मानता था कि प्रेम आत्मा में अनन्त साहस एवं आकर्षणपूर्ण वस्तुओं के लिये एक जिज्ञासा का भाव उत्पन्न करता है, परन्तु वह उसकी तरह सामान्य नैतिक विचारों से ऊपर न उठ सका।

यों तो उसका प्रेम प्रायः सभी कविताओं में व्यक्त हुआ है, पर उसके सभी विचारों का समाहित रूप 'हाउस आफ लाइफ' में देखा जा सकता है। इस पुस्तक में सौ से अधिक चतुर्दशपदियाँ हैं। लेखक ने उसे दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग में प्रेम हमें सत्य, आशा, ख्याति, यौवन आदि के बीच समासीन दृष्टिगोचर होता है। रोज़ेटी क्रिस्तानी प्रतीकों तथा गम्भीर ऐन्द्रिय वर्णनों द्वारा उसकी प्रकृति को चित्रित करते हुए 'मैन' एवम् 'स्पिरिट' का गठबन्धन दिखा सका है। आरम्भिक चतुर्दशपदी से ऐसा ज्ञात होता है कि उस के प्रेम की भावना केवल एक स्त्री से प्रेम के कारण मूर्त रूप ले सकी है। परन्तु

---

[1] Love's throne was not with these, but for above,
All passionate wind of welcome and farewell.
He sat in a breathless bowers, dream not of
Though truth for knows loves heart, and foretell
And fame be for love's sake desirable
And youth be dear and life be dear to love.

चौंतीसवीं चतुर्दशपदी इस सत्य को अभिव्यक्त करती है कि प्रेयसी वह माध्यम है जिससे प्रेम का रहस्यवादी स्वरूप झलकता है। यथा—

> 'हे सब कुछ के देवता ! मैं किसको प्यार करूँ। बालू से केवल एक संगीतमय ध्वनि प्राप्त की जा सकती है। एक क्षुद्र हृदय की ज्वाला उसके हाथों में निवास करती है। फिर भी तुम्हारी आँखों द्वारा वह मेरा स्पष्ट आह्वान करती है और मुझे आदि शक्ति के उन संस्पर्शों से अवगत कराती है जिसे समय की सीमा में बँधा हुआ यह जीवन समझ सकता है।'[1]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि बाद में अपूर्णता के चित्र उसके मस्तिष्क में छा जाते हैं। अपनी अपूर्णता का ज्ञान होने पर उसका हृदय कराह उठता है।

> 'जब कुछ समय पश्चात् कार्य एवम् इच्छा सचेत होकर अपने व्यतीत जीवन-क्रम एवम् उसके स्पन्दनों को ग्रहण करने के लिये तत्पर होते हैं तो ऐसी ही बात होती है। आह ! अब इसके पश्चात् जीवन के इस विषण्ण एवं कुटिल पथ पर उसके अकथनीय स्वरूप को ढूढ़ने का कौन प्रयत्न करेगा ? अच्छा है, चुपचाप, मृत्यु के अदृश्य हाथों का अनुगमन करें।'[2]

इस निराशा की अवस्था में भी सौन्दर्य में उसका एक मात्र विश्वास बना रहा। वह विश्वास करने लगा कि प्रेम में कितना ही लम्बा वियोग क्यों न हो एक ऐसा समय अवश्य आवेगा जब वह संबंध-सूत्र में पुनः आबद्ध हो जायगा। 'हाउस

---

[1] Lo : what am I to love, the lord of all,
One murmuring shall be gathered from the sand,
One little heart flame sheltered in his hand,
Yet through thine eyes, he calls me clearest call,
And veriest touch of powers, primordial,
That any hour–girt life may understand.

[2] So it happeneth
When work and will awake too late, to gaze
After their life sailed by and hold their breath.
Ah ! who shall dare to search through what and maze
Thenceforth their incommunicable ways,
Follow the desultory way of death.

आफ लाइफ' में 'विलोवुड' शीर्षक कविता इसका प्रमाण है। वहाँ नायक मृतक प्रेयसी का स्वप्न देख रहा है। वह प्रेम के देवता के साथ एक सोते के किनारे समासीन है। प्रेम का देवता छोटे बच्चे के सदृश है, उसके पंख हैं और उसका ठीक वही स्वरूप है जो प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है। न तो प्रेमी प्रेम के देवता को देखता है और न प्रेम का देवता प्रेमी को। बहुत पहले वे दोनों मित्र थे परन्तु अब प्रेयसी के मर जाने के पश्चात् उससे कोई मतलब नहीं रह गया है। पानी में देवता की पड़ती हुई छाया से उसे इतना ज्ञान अवश्य है कि वह उसे न देखकर नीचे देख रहा है और उससे बात भी नहीं करना चाहता। परन्तु प्रेम उसे अकेले कैसे छोड़ सकता है, अतएव वह उस मृतक व्यक्ति की ध्वनि सुनता है जिससे वह प्यार करता था। इस ध्वनि को सुनते ही उसकी आँखों से अश्रु निकल कर पानी में ढुलक जाता है। अचानक जल में प्रेम के देवता की आँखों के स्थान पर उसे अपनी प्रेयसी की आखें दीख पड़ने लगती हैं। जब वह आश्चर्यचकित होकर देखता है तो प्रेम का देवता पानी को अपने पैरों से हिला देता है और उसकी लहरें उसके केशों के सदृश दीख पड़ने लगती हैं। ज्योंही प्रेमी झुकता है वैसे ही उसकी लहरों से प्रेयसी के ओष्ठ निकल पड़ते हैं, जो प्रेम का चुम्बन चाहते हैं। यथार्थ में यहाँ एक प्रश्न उठता है कि कवि इससे क्या अभिव्यक्त करना चाहता है। उत्तर भी सरल है। हम सीधे कह सकते हैं कि यह स्वप्न है। स्वप्न का जो अर्थ होता है, वही इस कविता का है। प्रेयसी की मृत्यु के पश्चात् कवि प्रेम के देवता को तिरस्कृत करना चाहता है। देवता भी उसकी इस अन्यमनस्कता के कारण पहले उसकी चिन्ता नहीं करता, परन्तु पुनः इस बात का आभास दे देता है कि वह उसे नहीं त्याग सकता।

'सिस्टर हेलेन' का विषय इस स्वप्न से भिन्न है। वहाँ पर प्रेयसी अपने अविश्वासी प्रेम का पुतला जलाती हुई दिखाई गई है। प्रेमी की नव-विवाहिता पत्नी भी आती है। सब उसे इस कार्य को करने से रोकना चाहते हैं, परन्तु वह अन्त तक ऐसा करती है। कविता हेलेन एवं उसके छोटे भाई के वार्त्तालाप द्वारा आगे बढ़ती है। परन्तु उसके हृदय में उत्पन्न भयंकर घृणा एवं अविश्वास के कारण उत्पन्न पागलपन की स्थिति, उसकी निराशा में पड़े हुए उद्दाम मनोवेग के साथ ही बच्चे की निष्कपट बातें इस कविता को एक अविस्मरणीय कलात्मकता से आपूर्ण कर देती हैं। सादृश्य-विधान द्वारा भी कविता में अद्वितीय प्रभाव उत्पन्न किया गया है। 'सिस्टर हेलेन' निराशा की अधिकता के कारण चुपचाप फर्श पर पड़ी रहती है, पर बालक छज्जे पर जाकर खड़ा हो जाता है जहाँ चन्द्रमा बिखरे हुए बादल के टुकड़ों को पार करता हुआ आगे

बढ़ता दृष्टिगोचर होता है। अन्त में प्रेमी भी आता है, पर सब निराश होकर चले जाते हैं। इधर मोम के पुतले की अन्तिम बूँद भी जल उठती है, आग की लपटें उठती हैं और आत्मा स्वतन्त्र होकर दूर निकल जाती है। प्रश्न होता है—

'हे सिस्टर हेलेन ! जिस सफेद वस्तु ने दरवाज़े से पलायन किया है
वह क्या है जो इस तुषार के बीच भी करुण क्रन्दन कर रहा है।'[1]

उत्तर मिलता है कि—

'हे छोटे भाई ! यह मेरी आत्मा के सदृश खोई हुई एक आत्मा थी।
हे माँ 'मेरी' ! इस स्वर्ग एवं पृथ्वी के बीच सब कुछ खो गया है।'[1]

प्रश्न उठता होता है कि आखिर इस कविता का उद्देश्य क्या है ? वेन्सन, हर्न, बी० आइ० फार इवान्स आदि ने इसी दृष्टि से इस पर विचार नहीं किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रेम के दुष्परिणाम एवं प्रतिक्रियापूर्ण विश्वासघात को ही चित्रित करना लेखक का मुख्य उद्देश्य है। 'हाउस आफ लाइफ' में जो यथार्थ में 'हाउस आफ लव' है, कवि ने इस दृष्टि से विचार किया है। वहाँ मृत्यु के पश्चात् भी प्रेमी प्रेमिका के लिये परम दुःखी है, इसीलिये उसे विशुद्ध प्रेम का उपहार मिलता है। परन्तु यहाँ विश्वासघात है, अतएव पुतले को न जलाकर कवि विश्वासघात की उस प्रतिमूर्ति को ही जला डालता है जो विशुद्ध आत्मा को ग्रस्त किए हुए है। परन्तु आत्मा भी मुक्त होने पर उसाँस भरने लगती है। उसका मिलन नहीं हो पाता है क्योंकि प्रेम में अनोन्याश्रयता एवं एकोन्मुखता का अभाव रहा है। इस प्रकार इन दो कविताओं द्वारा उसकी प्रेम की कल्पना पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता हैं।

प्रेम की इस आँखमिचौनी में रोज़ेटी को अन्य स्वच्छन्दतावादी कलाकारों की तरह अवसाद का अनुभव भी हुआ। यह अवसाद, प्रेम के क्षेत्र में बनी रहने वाली अनिश्चिता का परिणाम था। उसे यह विश्वास न था कि उसकी प्रेयसी सदा-सर्वदा उसी की रहेगी। वहाँ वियोग का भय निरन्तर बना रहता था। वह वियोग को केवल वैयक्तिक सुख-दुःख से संबद्ध न मानता था। उसके लिये यह

---

[1] Ah ! what a which thing at the door has crossed sister Helen ?
Ah ! what is this that sighs in the frost ?

[2] A Soul that is lost, as mine is lost, little brother,
O mother ! Mary mother.
Lost, lost, all lost between heaven and earth.

वियोग संसृति के मुख्य उद्देश्य तथा इसके प्रेरणाप्रद स्रोतों से विछोह का द्योतक था। उसके एकाकीपन का एक चित्र लीजिए।

> **'हृदय का उसके बिना क्या मूल्य ? हे निर्जन हृदय ! वाणी के शान्त होने के पहले तुमसे संबंधित कुछ रह जायगा ?'[1]**

जब उसमें इस प्रकार की भावना का उदय होता था तो वह इस निराशा में मृत्यु को भी स्पृहणीय समझता था। यथा—

> 'हे मेरे प्रेम, अगर मैं तुम्हें न देखूँगा, या इस पृथ्वी पर तुम्हारी छाया न पाऊँगा, या किसी स्रोतस्विनी में तुम्हारी आँखों की प्रतिमा न पा सकूँगा तो मैं, इस झंझावात में नष्ट होती हुई आशा-सदृश पत्तियों तथा मृत्यु के अनश्वर पंखों पर चढ़ कर इस अन्धकार-पूर्ण विश्व में कैसे रह सकूँगा।'[2]

इसी प्रकार की अनुभूति में रोज़ेटी की जीवन-संबंधी बातें निहित थीं। यथार्थ में वह एक प्रेमी जीव था। उसे इस प्रेम में स्तब्ध कर देने वाली विचित्रता का दर्शन हुआ था। जिन भी युवतियों को वह प्यार करता था, वे उसके लिये केवल स्त्री न थीं, अपितु मसृणता एवं सौन्दर्य की ऐसी प्रतिमायें थीं, जो शाश्वत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ ही साथ आध्यात्मिक पूर्णता की भी प्रतीक थीं। उसे ऐसा अनुभव होता था कि इस संसृति का अप्रतिम सौन्दर्य उन्हीं के द्वारा प्रकट हो रहा है और वह उस अपार्थिव सौन्दर्य की प्रतिमाओं के साथ उसका सह-गामी बना भ्रमण कर रहा है। इस रहस्यमय स्वरूप के कारण वह उन्हें पूर्ण रूप से समझ सकने में असमर्थ था। रोज़ेटी अपनी प्रियतमा में केवल शारीरिक सौन्दर्य के साथ ही वह निर्वैयक्तिक शक्ति खोजता था जो विश्व को प्रभावित कर सकती थी। उसके अनुसार उसका यह विशेष प्रेम उदात्त एवम् विश्वजनीन भावना का प्रकटी-करण था। वह कवि की तरह इसमें निहित अनन्त आकर्षण का दर्शन करा सकने में सक्षम था। यथा—

---

[1] What of heart without her ? Nay poor heart
Of thee what word remains are speech be still.

[2] O my love my love, if I no more shall see thyself
Nor on earth the shadow of thee.
Nor image of thine eyes in any spring.
How then should sound upon life's darkening slope.
The ground whirl of perished leaves of hope,
The wind of death's imperishable wing.

'कभी-कभी तुम केवल अपने सदृश नहीं दिखायी देते, अपितु सांसारिक वस्तुओं के समाहित अर्थ के रूप में दृष्टिगोचर होते हो।'[1]

प्रेम ने रोज़ेटी को प्रेरणा ही नहीं अपितु एक जीवन-दर्शन भी प्रदान किया। यही उसके सौन्दर्य-ज्ञान का मुख्य साधन रहा। जीवन के प्रारम्भ में ही ज्ञात तीन समस्याओं को 'च्वायस' नामक चतुर्दशपदी में वह प्रकट कर चुका था। वहाँ निष्पक्ष दृष्टि से यह एक वासनाप्रवण व्यक्ति, धार्मिक सन्त तथा जिज्ञासु विचारक को लेता है। प्रथम में प्रेम तथा मादकता की गन्ध है, दूसरे में त्याग की मनोवृत्ति है और तीसरे में कभी संतुष्ट न होकर निरन्तर नवीन खोज में रत रहने की जिज्ञासा का दर्शन होता है। यथार्थ में यह चतुर्दशपदी रोज़ेटी के जीवन की प्रतीक है। उसमें स्त्रीजनित आकर्षण, संसार के लज्जास्पद क्षणों का अनुभव तथा अनन्त जिज्ञासाकुल हृदय विद्यमान था। वह प्रेम एवं सौन्दर्य की सीमा में इन तीनों को देख चुका था। 'रोज़ेटी' के लिए यह जान सकना कठिन हो गया कि वह किस मार्ग का अनुसरण करे। अन्ततोगत्वा वह तृतीय मार्ग का अनुगामी बना। जीवन के अपवादपूर्ण क्षणों में रोज़ेटी के लिये यह आशाप्रद रहा।

'प्रसाद' जी भी प्रेम के अनन्य पथिक थे। उनके अनुसार स्वास्थ्य सरलता तथा सौन्दर्य को प्राप्त कर लेने पर प्रेम-प्याले का एक घूँट पीना-पिलाना ही आनन्द है। इसीलिए एक जगह उन्होंने लिखा भी है कि 'मल्लिका! मैंने तुम्हें अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्द्धरात्रि में आलोकपूर्ण नक्षत्र से कमल-कुसुम के रूप में आते देखा। विश्व के कोमल कष्ट की असंख्य रसीली तानें पुकार कर तुम्हारा अभिनन्दन करने और तुम्हें सम्हाल कर उतारने के लिये नक्षत्र-लोक तक गई थीं। शिशिर-कक्षों से रिक्त पवन, तुम्हारे उतरने की सीढ़ी बना था। चाटुकार मलयानिल परिमल की इच्छा से परिचायक बन गया और बरजोरी मल्लिका को एक कोमल वृन्त का आसन देकर तुम्हारी सेवा करने लगा। उसने खेलते-खेलते तुम्हें उस आसन से उठाया और गिराया। तुम्हारे धरणी पर आते ही जटिल जगत् की कुटिल गृहस्थी के आलबाल में आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्यमयी रमणी के रूप में तुम्हें देखा।'[2] यहाँ कवि मल्लिका को नक्षत्र-लोक से आई सौन्दर्य-प्रतिमा मानता है। इसीलिए, 'अब छुटता नहीं छुड़ाये रंग गया हृदय है ऐसा' कह कर

---

[1] Sometimes, thou seemest, not as thyself alone
But as the meaning of all that things are

[2] **अजातशत्रु : जयशंकर प्रसाद।**

ही केवल उसका आभास दे सका है। रोजेटी की तरह वे भी उसके मिलने के प्रति पूर्ण आश्वस्त न थे। वे तो उसे ऐसी क्रिया मानते थे जिसका बल उत्सर्ग है—

'पागल रे वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब।'

फिर भी यह देना उतना सरल नहीं। इस उत्सर्ग को भी प्रतिदान की भावना से मुक्त होना आवश्यक है।

'आँसू के कण-कण से गिन कर
यह विश्व लिये है ऋण उधार,
तू फिर क्यों उठता है पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार।'

उनका विश्वास है कि—

'इस शिथिल आह से खिंच कर
आओगे तुम आओगे,
इस बढ़ी व्यथा को मेरी
रो रोकर अपनाओगे।'

परिणाम यह होता है कि संयोग की स्थिति का भी दर्शन होता है—

'सिहर भरे निज शिथिल मृदुल
अंचल को अधरों से पकड़ो
बेला बीत चली है चंचल
बाहु-लता से आ जकड़ो।'

ऐसा क्यों न हो, उनकी तो कल्पना है 'मेरी आँखों की पुतली में तू बनकर प्राण समा जा रे।' परन्तु वे इस तादात्म्य की स्थिति को कहाँ प्राप्त कर सके हैं? वह तो 'मादकता सा आता है और संज्ञा सा चला जाता है' और कवि 'व्याकुल खड़ा बिलखता रहता है।' अन्ततोगत्वा वह निराश होकर उसकी व्याप्ति द्वारा उपलब्ध सौन्दर्य-स्पर्श-सुख को प्राप्त कर लेने की अभिलाषा करता है—

'शशि की सुन्दर वल-रूप-विभा
चाहे न मुझे दिखलाना,
उसकी निर्मल शीतल छाया
हिम-कण को बिखरा जाना।'

इस प्रेम में प्रायः प्रियतम एवं प्रियतमा की आँखमिचौनी का भी दर्शन हो जाता है। कवि कहता है—

'निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप पाओगे।
इतना सजग कुतूहल ठहरो यह न कभी बन पाओगे।'

... ...

'फिर कह दोगे पहचानों तो मैं हूँ कौन बताओ तो,
किन्तु उन्हीं अधरों से पहले उनकी हँसी दबाओ तो।'

'प्रियतम' के सामीप्य के अभाव में कवि का जीवन दुःखमय हो गया है। किन्तु जब वह सामीप्य-लाभ प्राप्त हुआ तो दशा ही बदल गयी। यथा—

'हैं पड़ी हुई मुँह ढक कर
मन की जितनी पीड़ायें,
वे हँसने लगीं सुमन-सी
करती कोमल क्रीड़ायें।'

प्रसाद जी अपने कवि जीवन के यौवन-काल में इसी प्रकार से दुःख-सुख के पालने में झूलते रहे। उनकी तो धारणा थी—

'सुख दुःख में उठता गिरता
संसार तिरोहित होता।
मुड़ कर न कभी देखेगा
किसका हित अनहित होगा।'

परन्तु इस अन्तर्द्वन्द्व में भी कवि की यही अभिलाषा है कि—

'मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह मिलन का,
दुःख-सुख दोनों नाचेंगे
है खेल आँख का मन का।'

परन्तु यह तो प्रेम का एक पक्ष रहा। यथार्थ में उनके दार्शनिक प्रेम का सूक्ष्म विवेचन 'कामायनी' में हुआ है। इसकी तीन कोटियाँ स्वीकार की गई हैं—(१) आध्यात्मिक काम, (२) सृजनात्मक काम, (३) वासनात्मक काम।

इन तीनों में समष्टिगत प्रेम के सभी पहलू निहित हैं। कामायनी जीवन का एक महाकाव्य है। भारतीय मनीषी प्राचीन काल से ही काम के विविध रूपों को स्वीकार करते चले आ रहे हैं। उन्होंने स्थूल प्रेम से वासनात्मक 'काम' तथा आध्यात्मिक प्रेम में अवासनात्मक काम की स्थिति को स्वीकृति दी है। आज

का मनोविज्ञान भी इस बात को मानता है कि मानव-मन की केवल एक ही वृत्ति परिष्कार एवं अपरिष्कार के भेद के कारण इन दोनों स्थितियों में क्रियाशील रहती है। कामायनी में इस सत्य को स्वीकार किया गया है। प्रसाद जी का यह अभिमत है कि इस आध्यात्मिक काम की स्वीकृति के पश्चात् मानव-जीवन में संघर्ष की समाप्ति एवं समरसता की प्राप्ति होती है। प्रायः देखा भी जाता है कि भौतिक वासना की क्रोड़ में आध्यात्मिक काम का सुखद संदेश निहित रहता है। काश ! मनुष्य अन्तर्मन के इस स्पन्दन को सुन सकता।

कामायनी में भौतिक वासना के गर्त में पड़े हुए मनु का उद्धारक एवं पथ-प्रदर्शक 'काम' है। यहाँ वह अपने सभी रूपों की व्याख्या करता है। मनु को फटकारते हुए वह कहता है—

'मनु ! उसने तो कर दिया दान।
वह हृदय प्रणय से पूर्ण सरल जिसमें जीवन का भरा गान।
जिसमें चेतनता ही केवल निज शान्त प्रभा से ज्योतिर्मान।
पर तुमने तो पाया सदैव उसकी केवल जड़ देह मात्र।
तुम अति अबोध अपनी अपूर्णता को तुम स्वयं न समझ सके।
परिणय जिसको पूरा करता इससे तुम अपने आप रुके।
कुछ मेरा हो, यह राग भाव संकुचित पूर्णता है अजान।
मानस जलनिधि के क्षुद्र यान।'

काम इस प्रकार मनु के धर्म-विरुद्ध आचरण के लिये उनका मार्ग-दर्शन करता है और साथ ही शाप भी देता है। काम ही मनु के हृदय में आस्तिकता, सात्विकता एवं उदारता का सर्जक है। उसी के द्वारा उन्हें अखण्ड आनन्द-प्राप्ति का संदेश मिलता है।

दूसरा रूप काम के सर्जनात्मक रूप की चर्चा का विषय है। इसके द्वारा केवल सर्जन के लिये युवावस्था में काम का सेवन किया जाता है। प्रसाद जी ने लिखा है—

'काम-मंगल से मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भवधाम।'

सर्जनात्मक 'काम' को अपने आरम्भिक रूप में प्रसाद जी ने आकर्षण माना है—

'जो आकर्षण बन हँसती थी
रति थी अनादि वासना वही।

अव्यक्त प्रकृति उन्मीलन के
अन्तर में उसकी चाह रही।
हम दोनों का अस्तित्व रहा
उस आरम्भिक आवर्तन सा,
जिससे संसृति का बनता है
आकार रूप के नर्तन सा।'

सृष्टि के मूल में भी वे इसी आकर्षण को स्वीकार करते थे—

'वह आकर्षण वह मिलन हुआ
प्रारम्भ माधुरी छाया में
जिसको कहते सब सृष्टि बनी
मतवाली अपनी माया में।'

आध्यात्मिक काम तो सतोगुण प्रधान होता है, पर सर्जनात्मक काम में सतोगुण एवम् रजोगुण दोनों विद्यमान रहते हैं।

तीसरी श्रेणी में प्रेम के वासनात्मक स्वरूप का चित्रण है। इसी के अन्दर आसक्ति, विषयोपभोग की वासना, तृष्णा, अहंकार, दम्भ, दर्प, क्रोध, परनिन्दा आदि आते हैं जो आसुरी वृत्तियों के परिचायक हैं। यही क्रोध, मद, मात्सर्य आदि षट्रिपुओं के जन्मदाता हैं। इन्हीं को गीता में स्मृति-विभ्रम, बुद्धि-नाश एवं सर्वनाश करने वाला कहा गया है।[1]

द्रष्टव्य यह है कि वासनात्मक काम को प्रसाद जी ने कामायनी में हेय दृष्टि से देखा है। विलासिता की अति के पश्चात् विध्वंस एवं सर्वनाश का चित्रण किया गया है। इड़ा सर्ग में मनु की अनियन्त्रित काम-वासना दण्डित भी की गई है। प्रसाद जी ने सर्जनात्मक काम को ही स्वीकृति प्रदान की है। इसमें प्रायः उपर्युक्त तीनों प्रवृत्तियों का समाहार भी हो जाता है। कामायनी में 'सृजनात्मक काम' का प्रतीक पूर्णकाम श्रद्धा है। इसी से मानव-सृष्टि का विकास होता है, वही मनु की वासना पूरी करती है और अन्त में उन्हें आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुख भी करती है। इस प्रकार शैवागम के आधार पर प्रसाद जी काम को गर्हित न बताकर वासना को गर्हित बताते हैं। प्रसाद जी काम को 'मंगलमय, श्रेयस्कर, अमर, व्यापक, विशुद्ध एवम् विश्व का मूल मानते हैं।'

---

[1] कामायनी में काव्य, संस्कृति एवम् दर्शन, पृ० ३८९-९०।

जिस प्रेम को रोज़ेटी ने अपनी कविता का विषय बनाया है, वह केवल युवक एवम् युवती का प्रेम नहीं, अपितु इसमें विवाहित प्रेम अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। लोग इसको एक विचित्र विषय कह सकते हैं और मेरी दृष्टि से भी यह ऐसा ही है। बहुत थोड़े से व्यक्ति इस प्रकार के विषय को अपना उपजीव्य बनाकर प्रशस्ति के विषय बन सकते हैं। 'कवेन्ट्री पैटमोर' इस दृष्टि से अपवाद है। उसने इसी को कविता का विषय बनाया है, परन्तु यह इतनी उत्कृष्टता के साथ व्यक्त किया गया है कि उसमें वह पूर्ण सफल रहा है। परन्तु रोज़ेटी ने भिन्न मार्ग का अनुगमन किया।[1]

पैटमोर की तरह रोज़ेटी अपने को तटस्थ नहीं रख सका है। उसके व्यक्तिगत अनुभव की सफलतायें और असफलतायें उसके काव्य की प्रेरणा-स्रोत रही हैं। यथार्थ में वह व्यक्ति जो प्रेम की प्रशस्ति करता है वह अपने वैयक्तिक अनुभवों पर अवश्य आधारित रहता है। हर प्रेमी के समक्ष प्रेम का एक आदर्श होता है। प्रेम-काव्य का मूल विश्वजनीन अनुभव अथवा विशद अनुभव के अभिव्यक्तीकरण में नहीं निहित है अपितु इसमें एक सामान्य जीवन-दर्शन का होना परमावश्यक है। इसीलिये प्रेम के वैयक्तिक स्वरूप पर दृष्टिपात करते हुए डॉ० प्रेमशंकर ने लिखा है कि 'प्रसाद के जीवन में कोई ऐसी प्रेम-घटना अवश्य हुई थी। आँसू के वियोग-वर्णन के मूल में लौकिक आलम्बन है।'

किन्तु कवि केवल प्रेम के अपने अनुभव को ही कविता का विषय नहीं बनाता। इतनी बात अवश्य मान्य है कि उसके प्रेम-वर्णन में व्यक्तिगत जीवन के अनुभव का भी हाथ रहता है।'ईशर वुड' ने 'प्री-रेफेलाइट के मूवमेंट' नामक पुस्तक में रोज़ेटी की वैयक्तिक एवम् निर्वैयक्तिक कविताओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'हाउस आफ लाइफ', 'डाण्टे एट वैरोना', 'दी स्ट्रीम सीक्रेट', 'दी पोर्ट्रेट' के अतिरिक्त अन्य छोटे गीतों को भी कवि के प्रेम, दुःख आशा एवं निराशा का अभिव्यक्तीकरण होने के कारण वैयक्तिक कविताओं का स्थान दिया है। 'ब्लेज़ेड डेमोज़ेल' 'व्हाइटशिप', 'दी किंग्स ट्रैज़ेडी', 'दी ब्राइड्स प्लेज़र', 'सिस्टर हेलेन' आदि कविताओं में कवि के विचारों का महान् मानवीय अवसान होने तथा समष्टि सत्य को व्यष्टिगत अनुभूतियों द्वारा अभिव्यक्त करने के कारण निर्वैयक्तिक माना है। यहाँ उनके शब्दों में व्यष्टि-हृदय में समष्टि-हृदय के स्पन्दन निहित हैं। ये शाश्वत संघर्ष की सहयोगिनी और साथ ही

[1] प्री-रैफैलाइट एण्ड अदर पोयट्स।

इस शाश्वत विकास में सहायिका भी हैं। यहाँ आत्मा की अनन्त पूर्णता का आभास मिलता है। इस दृष्टि से प्रसाद की कविताओं का भी हम वैयक्तिक एवम् निर्वैयक्तिक स्वरूप देख सकते हैं। कुछ लोगों के अनुसार 'चित्राधार' से आँसू तक की कवितायें वैयक्तिक और कामायनी निर्वैयक्तिक है।

इन दोनों ही कवियों की कविताओं में लोगों को ऐन्द्रिय भोग की गन्ध मिली है। 'रावर्ट बुचनान' का रोज़ेटी पर किया गया प्रहार इस दृष्टि से द्रष्टव्य है। हिन्दी में भी प्रसाद को मधुचर्या का कवि मानकर उनकी निम्नांकित पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

'परिरम्भ कुम्भ की मदिरा,
निःश्वास मलय के झोंके।
मुख चन्द्र चाँदनी जल से
जब उठता था मुँह धोके।
थक जाती थी सुख रजनी
मुख चन्द्र श्रंक में होता
श्रम सीकर सदृश नखत से
अम्बर पट भींगा होता।'

परन्तु एक दो कविताओं के आधार पर ही कवि को पूर्ण रूप से ऐन्द्रिय नहीं सिद्ध किया जा सकता। श्री कृष्णाशंकर शुक्ल के 'प्रसाद' के प्रति कहे गये शब्द इन दोनों के लिए उपयुक्त हैं। 'इनका प्रेम स्पृहणीय मार्ग से आगे बढ़ता है। इसके एक ओर स्वर्ग की सीमा है और दूसरी ओर संस्कृत, सभ्य मनुष्यता की। यदि कोई एक ओर भटक जाये तो स्वर्गीय हो जाये। दूसरी ओर भटकने से कोई मनुष्यता से नीचे नहीं गिर सकता। फिर भी स्वर्ग की दिव्य क्षितिज इनके आँखों से ओझल नहीं हो सकती। इनका प्रेम, दृश्य लौकिक सौन्दर्य पर टिक कर अलौकिक लावण्य की ओर उन्मुख हो जाता है।'

इस प्रकार दोनों ही प्रेम एवम् सौन्दर्य के कवि हैं। इनके अन्दर प्रेम की तीव्र अनुभूतियाँ हैं; फिर भी वे उन पर अंकुश रखकर उन्हें सामंजस्यशील बनाये रखते हैं। ये अपने प्रेम के दृष्टिकोण में उतने ही गम्भीर हैं जितना कोई भी प्रेमी कवि हो सकता है। इनके प्रेम-काव्य में बौद्धिकता के भी दर्शन होते हैं। इन दोनों की ही कविता में इनके व्यक्तित्व का आन्तरिक संघर्ष स्फुट है। इनकी कविता में कभी-कभी प्रेम के व्यष्टिगत स्वरूप का चित्रण और दर्शन होता है फिर भी ये इसके परे एक समष्टिगत जीवन-दर्शन भी दे सके हैं। ये सभी प्रेमगत मनोवेगों

को ही कविता का विषय नहीं बनाते । ये उन्हीं मनोवेगों को अपना सके हैं जो एक व्यापक सत्य का आभास दे सकने में समर्थ हैं ।

रहस्य

ये यथार्थ में दार्शनिक कवि हैं । रोज़ेटी ने अपने इस उद्देश्य की सफलता के लिये 'सुपरनेचुरल' एवं 'मेडिवल' वातावरण का उपयोग किया है। धार्मिक परिवार में जन्म लेने के बावजूद वह एक स्वतन्त्र विचारक था । अतएव कुछ दिनों तक उसे नास्तिक समझा गया । उसकी कविताओं में मानव एवं ईश्वर के संबंधों पर कुछ हद तक विचार हुआ है । वह केवल काव्य-मुखापेक्षी न था अपितु पापमोचन के लिए भी तत्पर था । जीवन के अन्तिम दिनों में उसकी बौद्धिक प्रतिभा ने इसका परित्याग न किया । ए० सी० बेन्सन का मत है कि 'इस दृश्य विश्व के पीछे छिपी हुई अदृश्य सत्ता के विषय में उसके कोई निश्चित विचार न थे और न उसमें इसको परिभाषित करने की उत्सुकता ही दृष्टिगोचर होती थी । फिर भी मेरा विश्वास है कि रोज़ेटी का भगवान में विश्वास था ।'

'कोलरिज' को छोड़कर रहस्यवादी विचारकों में उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता । कोलरिज ने जिस काम को शताब्दी के प्रथम चरण में पूरा किया, रोज़ेटी ने उसी काम को उस शताब्दी के अन्त में पूरा किया । सामायिक कविता को अधिक गंभीर एवं व्यावहारिक समस्या-समाधान में लिप्त होने के बावजूद वह उसे रहस्य की ओर उन्मुख कर सका । उसमें हमें सी० जी० रोज़ेटी, टेनीसन तथा ब्राउनिंग की धार्मिक भावना का पूरा अभाव मिलता है, फिर भी कलाकार के उस रहस्य का जो विचार के अज्ञात स्थलों की खोज के साथ-साथ अर्द्धस्पष्ट वस्तुओं में भी लिप्त रहता है, दर्शन अवश्य होता है । वह कल्पना के माध्यम से अर्द्धव्यक्त सत्य और अस्पष्ट भावना को भी दक्षता से अभिव्यक्त कर सकता था—

> 'Girt in dark growths, yet glimmering with one star
> Ground whirl of perished leaves of hope
> Words whose silence-wasted kills
> The spacious vigils of the stars.'

'ब्लेजेड डेमोज़ेल' कवि की रहस्मयी प्रतिभा का अद्भुत प्रमाण है । यह कविता कवि 'पो' के 'रेभेन' से प्रभावित है। रोज़ेटी ने स्वयं लिखा है कि 'पो' ने पृथ्वी पर प्रेमी के दुःख को संभव अभिव्यक्ति प्रदान की है । मेरे मन में इस परिस्थिति को उलट देने की बात आई । अतएव मैंने स्वर्ग में अपने प्रियतम के लिये प्रेमिका की अदम्य चाह को कविता का विषय बनाया ।' परन्तु विचारणीय यह है कि क्या वह परि-

स्थिति को बदल सका ? उसने अपनी 'डेमोज़ेल' को उतना ही सांसारिक बनाया जितना 'पो' ने 'रेभेन' के नायक को। स्वर्ग की पृष्ठभूमि में उसने अनन्त वैभव-शाली महल और ईश्वर एवं क्राइस्ट के स्थान पर दो दयालु एवं नैसर्गिक शक्ति-संपन्न प्रतिमाओं को रख दिया। फिर भी यह कविता आकर्षणपूर्ण सूक्ष्म संस्पर्शों से पूर्ण है। उसमें कल्पना की नवीनता एवं विराटता दर्शनीय है। जिस अनन्त में पृथ्वी बौने की तरह अपना ताना-बाना चित्रित करती दिखाई गई है, उसी पृष्ठभूमि में स्वर्गीय प्रेयसी का अपने सांसारिक पति के लिये अभिलषित होना तथा उसकी प्राप्ति के लिए आर्त्त होकर प्रार्थना करना दर्शनीय एवं प्रभा-वोत्पादक है।

'लब्ज नाक्ट्रम' में कवि ने स्वप्न की विशेषताओं को बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ा है। इस प्रकार रोज़ेटी में धार्मिक रहस्यवाद का अभाव होते हुए भी शैलीगत रहस्य पूर्ण रूप से से विद्यमान है।

जयशंकर प्रसाद ने अपने रहस्यवादी विचार को 'रोज़ेटी' की अपेक्षा उत्कृष्ट पृष्ठभूमि प्रदान की है। उनकी इस भावना में भारतीय दर्शन, मुख्य रूप से शैव प्रत्य-भिज्ञा दर्शन मुखरित हो उठा है। 'आँसू' मुख्य रूप से प्रेम-विरह-प्रधान काव्य है। उसमें भी सौन्दर्य के चित्रण में रहस्यवाद के उसी प्रकार को मान्यता देने का प्रयास है जिस प्रकार का रहस्यवाद हमको उपर्युक्त विवेचन में दृष्टिगोचर होता है। शैली-वैचित्र्य एवं भाव-वैचित्र्य कथानक को रहस्यमय स्थितियों में भले रख दें; पर वे उस रहस्यवाद की भूमिका नहीं अदा कर सकते जिसमें वह जीवात्मा के उस अन्तर्निहित प्रकाशन का रूप ले सके जिसे वह अलौकिक शक्ति से अपना शान्त एवं निश्चल संबंध जोड़ने के लिये अनुप्राणित रखता है। 'आँसू' और 'हाउस आफ लाइफ' के सौन्दर्य-चित्रण भी रहस्यवादी माने जा सकते हैं। पर यह शैलीगत रहस्य का ही रूप है।

कामायनी में रहस्यवाद का उत्कृष्ट स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। आशा सर्ग में ही कवि ने अनन्त के प्रति जिज्ञासा को अभिव्यक्त किया है। यथा —

> **'सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ।**
> **सदा मौन हो प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ ॥'**

कवि केवल जिज्ञासा प्रदर्शित करके ही शान्त नहीं रह जाता वह तो उसके महत्व को भी प्रतिपादित कर देता है। कवि के अनुसार उसके अनन्त सौन्दर्य से अणु-अणु एवं कण-कण अनुप्राणित हैं। उसी के अपरिमित तेज से यह जगत प्रकाशित है। वही इस सृष्टि का नियति-चक्र चलाता है।

'कर रही लीलामय आनन्द, महाचिति सजग हुई सी व्यक्त ।'
'जिसका भ्रूभंग प्रलय सा जिसमें ये सब विकल रहे ।'

आदि पंक्तियाँ इसी भाव को व्यक्त करती हैं ।

रहस्यवादी की यह भी विशेषता है कि वह केवल उसके दर्शन या महत्व-प्रदर्शन से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता, बल्कि वह उसके सम्मिलन की उत्कृष्ट अभिलाषा से अनुप्राणित होकर आगे चलता है । कामायनीकार इस उत्कृष्ट अभिलाषा के अभिव्यक्तीकरण में भी सफल हैं । सर्वप्रथम तो चंचल कृतियाँ ही रहस्य बन कर नर्तन करती दृष्टिगोचर होती हैं । पर कवि को यहाँ एक अनुभव होता है—

'सब कहते हैं खोलो खोलो ।
छवि देखूँगा जीवन-धन की,
आवरण सभी बनते जाते
है भीड़ लग रही दर्शन की ।'

फिर भी कवि इसकी बिना परवाह किये आगे बढ़ता जाता है क्योंकि मनु की तरह वह सोचता है 'फिर शान्ति मिलेगी मुझको जहाँ खोजता जाऊँगा ।' साधक के मार्ग में इस साधना में भी कठिनाइयाँ हैं । मनु के संघर्षमय जीवन द्वारा कवि ने उसे अभिव्यक्त किया है । कठिनाइयों को पार करने पर उसे उस परम सत्ता का आभास प्राप्त होता है । दर्शन सर्ग में मनु को नटराज के दर्शन होते हैं । दर्शन सुलभ होने पर भी व्यक्ति को सुगमता से उस परम सत्ता का दर्शन ही नहीं होता अपितु वह इन जागतिक प्रपञ्चों के ऊपर उठ जाता है । इस प्रकार जीवन में ज्ञान होते ही वह उन अभावों से अवगत है जो उसे पूर्णता नहीं प्राप्त करने देते । उसे ज्ञात होता है कि 'इच्छा-शक्ति', 'क्रिया-शक्ति' और 'ज्ञान-शक्ति' का समन्वय होना परमावश्यक है । इस प्रकार के ज्ञान के साथ ही साधक को सर्वत्र अनहद नाद सुनाई पड़ने लगता है । वह अत्यन्त श्रद्धा के साथ उस नाद में होकर तन्मयता को प्राप्त हो जाता है ।

प्रसाद जी अपनी रहस्यानुभूति प्रारा जिस ब्रह्म का उल्लेख करते हैं, वह वेदान्त का अद्वैतवाद नहीं, अपितु शैवागमों का ईश्वराद्वय वाद से सम्बन्धित है, जिसमें ब्रह्म इस सृष्टि में अपनी शक्ति के साथ अवतरित होकर सदैव आनन्द-वृष्टि करता है । इस प्रकार 'प्रसाद' जी ने अपनी रहस्यवादी कल्पना द्वारा संसार को सत्य, नित्य तथा अनन्त रमणीय सिद्ध किया है । इस जगत को ही ब्रह्ममय बताकर वे कर्मरत रहने का सन्देश देते हैं पर रोज़ेटी में यह भावना दृष्टिगोचर नहीं होती । वह तो रहस्य के नाम पर केवल शैलीगत विचित्रता उत्पन्न करने वाली बातों तक ही सीमित है ।

साहित्यिक कलाकार

रोज़ेटी एवम् प्रसाद दोनों ही महान् साहित्यिक कलाकार थे । इनसे अधिक श्रमपूर्वक कलाकृति को पूर्णता देने वाले कम लोग थे । कैम्प्टन रिकेट ने अपने इतिहास में लिखा है कि 'मिल्टन की यह मान्यता थी कि कविता साधारण ऐन्द्रिय एवम् मनोवेगपूर्ण होनी चाहिए ।' सभी महान् कवितायें साधारण हैं क्योंकि जीवन की तात्विक वस्तुयें साधारण हैं । ये ऐन्द्रिय हैं क्योंकि इनका प्रभाव मुख्य रूप से इन्द्रियों के माध्यम से ही मनुष्य तक पहुँचता है, ये मनोवेग-प्रधान हैं क्योंकि इनका मुख्य विषय मानव की सहजात वृत्ति है ।' दो दृष्टियों से इन दोनों कवियों की कवितायें उपर्युक्त मान्यता के बिलकुल अनुकूल हैं । इनमें ऐन्द्रियता एवम् मनोवेगों का सुन्दर समन्वय हुआ है । यथार्थ में ये शक्ति-सम्पन्न कलाकार हैं । 'राबर्टडन' की तरह ये अपने विचारों को स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करते हैं फिर भी शब्द-चयन एवम् सौन्दर्य की दृष्टि से ये उससे अधिक सर्तक हैं । इनका शब्द-चयन यथार्थ आकर्षण का विषय है । ये आवश्यकतानुसार दुहरे शब्दों का प्रयोग भी करते हैं । इनका ध्यान मुख्य रूप से गेयता उत्पन्न करने वाले शब्दों की ओर अधिक रहा है । शब्दों का नवीन अर्थ में भी प्रयोग हुआ है । शब्दों एवम् मुहावरों के प्रयोग से विचित्र प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता इन दोनों ही कलाकारों में दृष्टिगोचर होती है । इस दृष्टि से इनकी कविता में शब्दाडम्बर भी है, फिर भी ये शब्दों का ऐसा विचित्र प्रयोग कर सकने में सक्षम हैं जिससे कविता सहज स्वरूप भी बनाये रख सकी है ।

इन दोनों ही कलाकारों ने हास्य एवम् सामाजिक, राजनीतिक दृष्टिकोण पर भी विचार किया है । 'जेनी' जैसी कविताओं के स्वरूप-निर्माण में रोज़ेटी ने सामयिक समस्याओं पर दृष्टिपात किया है, फिर भी उसकी प्रवृति मुख्य रूप से इसमें नहीं रम पाई है । प्रसाद के नाटकों में हमें अतीत के अध्ययन द्वारा भविष्य का सन्देश मिलता है । कामायनी में आधुनिक समस्याओं के निराकरण का प्रयास है । फिर भी यह रूपक कथा के साथ इस प्रकार संलग्न है कि उसका अलग अस्तित्व देख सकना असम्भव है ।

प्रायः इनमें विधायक कल्पना का ही उपयोग हुआ है । ललित कल्पना का भी जहाँ प्रयोग हुआ है वहाँ वे अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर सके हैं । 'मैच विदमून' में रोज़ेटी ने इसका उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है । यह कल्पना की सतरंगी मीनाकारी दर्शनीय है । प्रसाद के आँसू में कतिपय पद ललित कल्पना के फल हैं । परन्तु इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण निम्नलिखित पद्य है—

'ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक धीरे-धीरे ।
जिस निर्जन में सागर लहरी
अम्बर के कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे ।'

अथवा आँसू की यह कविता—

'चंचला स्नान कर आये
चन्द्रिका पर्व में जैसी,
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी ।'

परन्तु इस प्रकार की कल्पना की उड़ान को इन दोनों ही कवियों ने बाद में पूर्ण रूप से त्याग दिया । 'हाउस आफ लाइफ' और 'सिस्टर हेलेन' तथा 'ब्लेज़ेड डेमोज़ेल' में रोज़ेटी ने कल्पना का प्रयोग किया है, पर वह विधायक कल्पना है । कामायनी तो प्रसाद की विधायक कल्पना का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । यहाँ भी 'चिन्ता सर्ग' में श्रद्धा के परित्याग तथा सारस्वत प्रदेश में मनु के घायल होने की चर्चा के बाद उनके पलायन वाला ही प्रसंग उपस्थित है, पर वहाँ कवि की कल्पना उसका सार्थक प्रयोग करती है ।

इनमें प्राय: आधिदैविक तत्वों की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । परन्तु यहाँ इनकी कला का इन पर पूर्ण नियन्त्रण है । उनके इस प्रयोग में उसके अतिरंजित स्वरूप का अभाव है । हृदय के अन्तर के रसों से सिक्त होकर निकली हुई वाणी एवं विचार विशेष का उन पर नियन्त्रण है । जहाँ कहीं भी इस प्रकार के विचार का प्रयोग हुआ है, वहाँ एक रहस्य का परदा पाठकों के समक्ष उपस्थित हो जाता है । यथा—

'उसका चित्रण करने में मैंने उसके मुख को उन रहस्यमय वृक्षों के बीच एक पवित्र स्थान के रूप में चित्रित किया है जिसमें प्रकाश भी नहीं पहुँच पाता था । वह एक ऐसा बीहड़ स्थान था जहाँ तुम अनिश्चित बातों का कोलाहल सुन सकते हो । वहाँ अग्नि-शिखा भ्रमण किया करती है, बहुत-सी ऐसी चीजें दिखाई

पड़ती हैं जिनका नाम जाना नहीं जा सकता। केवल तुम्हारे पद-चिह्न तुमको मिल सकते है।'[1]

'लभ्ज नाक्ट्म' और 'रोज़ मेरी' कविता आधिदैविक प्रतीकों से भरी पड़ी है। प्रसाद की कामायनी का भी इस दृष्टि से महत्व है। यों आँसू में भी विराट-वैचित्र्य के समावेश की दृष्टि से ऐसी योजना की गई है। कामायनी में मनु, श्रद्धा, इड़ा, काम, किलात, आकुलि सभी के चित्रण में यह विशेषता परिलक्षित होती है। उदाहरणस्वरूप इड़ा सर्ग का निम्नांकित पद्य लिया जा सकता है--

'बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल।
वह विश्व-मुकुट सा उज्ज्वल शशि-खण्ड-सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म पलाश चषक से दृग, देते अनुराग विराग ढाल।
गुंजरित मधुप से मुकुल-सदृश यह आनन जिसमें भरा गान।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म-कलश वसुधा-जीवन रस-धार लिये।।
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिये।
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी आलोक वसन लिपटा अराल।
चरणों में थी गति भरी ताल।।

ये कवि थोड़े से शब्दों में इस प्रकार की दुःखद स्मृति का एक चित्र उपस्थित कर देते हैं जो अपनी कलात्मकता में पूर्ण होने के साथ ही मानव-अनुभूति का भी एक अंश होने के कारण बड़े प्रभावशाली ढंग से अपने पाठक को प्रभावित करती है; यथा—

'वह तुमसे प्रार्थना करता है अब भी मान जाओ, नहीं उसका हृदय विदीर्ण हो सकता है। वह अपने पुत्र की आत्मा को जीवित रखने के लिए प्रार्थी है।'

---

[1] "In painting her I shrined her face
Mid mystic trees, where light falls in,
Hardly at all, a covert place where you might think,
A doubtful talk, and live flame find
Wandering and many a shape
Whose name not itself knoweth
And your own foot steps meeting you
And all things going as they came"

'सिस्टर हेलेन अपने छोटे भाई से कहती है कि आग उसको जला नहीं सकती वह तो और भी संपन्न होगा।'[1]

'स्टाफ एण्ड स्क्रिप्ट' नामक कविता भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। योद्धा युद्ध पर जाता है। उसको अपने शत्रु को जीत कर लौटने की संभावना है। परन्तु वह युद्ध में मारा जाता है और उसका मृतक शरीर लाया जाता है। उसे देखते ही रानी कह पड़ती है—

'इन डालियों के नीचे छिपाकर युद्ध-क्षेत्र से तुम क्या ला रहे हो।'
उत्तर मिलता है 'तुम्हारा विजय प्राप्त करने वाला अभ्यागत
आज लौट पड़ा है। अब तुम्हारे गृह में रानी को शराब
न पिला सकेगा।'

वह चिल्ला पड़ी 'उसके मुख से परदा हटाओ,' वह पुनः
चिल्ला पड़ी अरे इतने ही समय में परिवर्तित हो गया। वह
पुनः कह पड़ी 'उसका रक्ताभ चेहरा पीला पड़ गया है। हे
दयालु भगवान्, उसके चेहरे को ढँको।'[2]

प्रसाद की कामायनी के 'चिन्ता सर्ग' की यह प्रतिध्वनि भी व्यक्ति के हृदय की प्रतिध्वनि बन जाती है—

'मणि-दीपों का अन्धकारमय
अरे निराशापूर्ण भविष्य
देव-दम्भ के महामेघ में
सब कुछ ही बन गया हविष्य।

---

[1] Oh he prays you, as his heart would rive sister Helen,
To save his dear son's soul alive.
Fire cannot slay it, it shall thrive little brother.

[2] Oh : what do you bring, out of the fight
This hid beneath these boughs,
Thy conquering guest returns to night
And shall not carause
Queen in thy house.
Uncover ye his face she cried
Oh pale that was so red.

अरे अमरता के चमकीले पुतले तेरे ये जयनाद,
काँप रहे हैं आज प्रतिध्वनि बनकर मानो दीन विषाद ।[1]

अथवा स्वप्न सर्ग की ये पंक्तियाँ भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं—

'कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी न वह मकरन्द रहा
वह चित्र बस रेखाओं का अब उसमें है रंग कहाँ;
वह प्रभात की हीन कला शशि, किरण कहाँ चाँदनी रही
वह सन्ध्या थी रवि शशि तारा, ये सब कोई नहीं जहाँ ।[2]

... ...

एक मौन वेदना विजन की झिल्ली की झनकार नहीं
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक साकार रही
हरित कुञ्ज की छाया भर थी वसुधा आलिंगन करती
वह छोटी सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नहीं ।

... ...

बन बालाओं के निकुञ्ज सब भरे वेणु के मधु स्वर से
लौट चुके थे आने वाले सुन पुकार अपने घर से
किन्तु न आया वह परदेशी युग छिप गया प्रतीक्षा में
रजनी की भीगी पलकों से तुहिन बिन्दु कण-कण बरसे ।'

यथार्थ में अन्तिम पंक्तियों में स्वयम् दुःख मूर्तिमान् होकर चिल्ला उठा है। उस मन्दाकिनी से 'जीवन में दुःख अधिक या कि सुख' का प्रश्न करने वाली श्रद्धा जिस स्थिति में है वह एक आत्मीय पतिव्रता विरहिणी की स्थिति है। कवि की लेखनी यहाँ करुणासिक्त होकर ऐसे भाव अभिव्यक्त करने में समर्थ है कि हम अपना हृदम थाम कर रह जाते हैं। 'निर्वेद सर्ग' में श्रद्धा एवम् इड़ा की वार्ता में वे कह पड़ते हैं कि—

जीवन की लम्बी यात्रा में
खोये भी हैं मिल जाते,
जीवन है तो सभी मिलन है
कट जातीं दुःख की रातें ।'

इन कवियों की दूसरी विशेषता इनकी गेयता है। यथार्थ में स्वच्छंदतावाद एवम् छायावाद की सबसे बड़ी देन गेय कविता है। इनकी गेयता में वह उत्कृष्टता है जिसमें बँधकर उनके पाठकों का मन कुछ काल के लिए अपने दुःख-सुख को भूल जाता है। 'प्रसाद' के आँसू, लहर, एवम् कामायनी इस दृष्टि से उत्कृष्ट कला

के प्रमाण हैं। कामायनी के निर्वेद सर्ग का यह पद्य जो पाठक के हृदय को स्पन्दित करके उनकी वाणी में मुखरित होता है, लिया के जा सकता है—

'तुमुल कोलाहल कलह में
मै हृदय की बात रे मन।
विकल होकर नित्य चंचल
खोजती जब नींद के पल,
चेतना थक सी रही,
मैं मलय की बात रे मन।
चिर विषाद विलीन मन की
इस व्यथा के तिमिर वन की,
मैं उषा की ज्योति-रेखा
कुसुम विकसित प्रात रे मन
... ...
मधुर मुखर मरन्द मुकुलित
मैं सजल जल जात रे मन।'

इनकी कविता में चित्रोपमता का गुण भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। रोज़ेटी चित्रकार होते हुए भी अपनी चित्रकला के लिये कीट्स का ऋणी था। 'प्री रेफेलाइट' स्कूल की चित्रकला में 'सूक्ष्म वर्णन का विस्तार तथा प्रकृति के संगीतमय रंगों का प्रदर्शन नहीं है, अपितु इसमें इससे शान्त जीवन का अध्ययन है। यह कहना उनके लिए प्राय: पूर्ण उपयुक्त है कि 'रेफेलाइट' प्रतिमाओं एवम् प्रभावों को उस रूप में सजाते हैं जिस प्रकार जापानी लोग फूलों को। इस प्रकार की सजावट की यह विशिष्टता है कि हर उपादान पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक अपने रंगों का वैशिष्ट्य बनाये रखता है।'

कीट्स की तुलना में रोज़ेटी में चित्रात्मकता का विशेष आग्रह है। इसका मूल कारण यह है कि चित्रकार होने के कारण रोज़ेटी में विश्व की वस्तुओं पर उसी दृष्टिकोण से दृष्टिपात करने की आदत है। उदाहरणस्वरूप हम निम्नांकित पंक्तियाँ ले सकते हैं --

''ब्लेज़्ड डेमोज़ेल' स्वर्ग के सुनहले छड़ों से झुक कर नीचे देखी।
उसके हाथ में तीन लिली के पुष्प थे। उनके बालों में सात तारे थे।'

यह चित्रोपमता को ही महत्व प्रदान करने वाले कवि की कविता नहीं है अपितु इसमें 'प्री रेफेलाइट' स्कूल की विशेषता भी निहित है। रेखांकित पदों में प्रतीक-

पद्धति का भी प्रयोग किया गया गया है। 'सिस्टर हेलन' एवम् 'ए लास्ट कन्फेसन' में भी प्रतीक का प्रयोग किया गया है। इस चित्रमयता के द्वारा कवि ने ऐन्द्रियता का चित्र भी प्रस्तुत किया है। ब्राउनिंग भी इसके समर्थक थे।

जयशंकर में भी चित्रात्मकता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत है। यथा—

'घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास
नील धन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।'
....
'सिन्धु सेज पर धरा वधू
अब तनिक संकुचित बैठी सी
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये सी ऐंठी सी।'

इस प्रकार इन दोनों ही कवियों में चित्रोपमता का गुण पाया जाता था। दोनों ही इसके यथार्थ चित्रण के लिये प्रतीक का सहारा लेकर क्रियाशील हुए थे। प्रसाद चित्रकार न थे फिर भी शब्दों के चित्रमय स्वरूप को व्यंजित करने में वे किन्हीं अंशों में रोजेटी से आगे थे।

निष्कर्ष

प्रसाद जी प्रकृति के पुजारी थे पर डाण्टे गेब्रियल रोजेटी में प्रकृति-प्रेम का उतना आग्रह न था। प्रसाद जी की दार्शनिक विचारधारा उसकी दार्शनिक विचारधारा से अधिक प्रशस्त थी। रहस्यवादी दृष्टिकोण से भी प्रसाद का रहस्यवाद उससे व्यापक था। प्रेम, सौन्दर्य, काव्यकला के सिद्धान्त आदि दृष्टियों से इन कवियों में सामान्य साम्य था परन्तु इसका आधार चिन्तनपरक था। संस्कृति, समाज एवम् देशकाल का अन्तर होते हुए भी मानव-मन कभी-कभी एक प्रकार से सोचता है और एक-सा निष्कर्ष निकालता है। यह साम्य इसी का परिणाम था।

---

[1] The blessed Damozel leaned out
From the Golden bar of heaven.
... ...
She had three lilies in her hand
And stars in her hair were seven.

खण्ड ग

काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

१
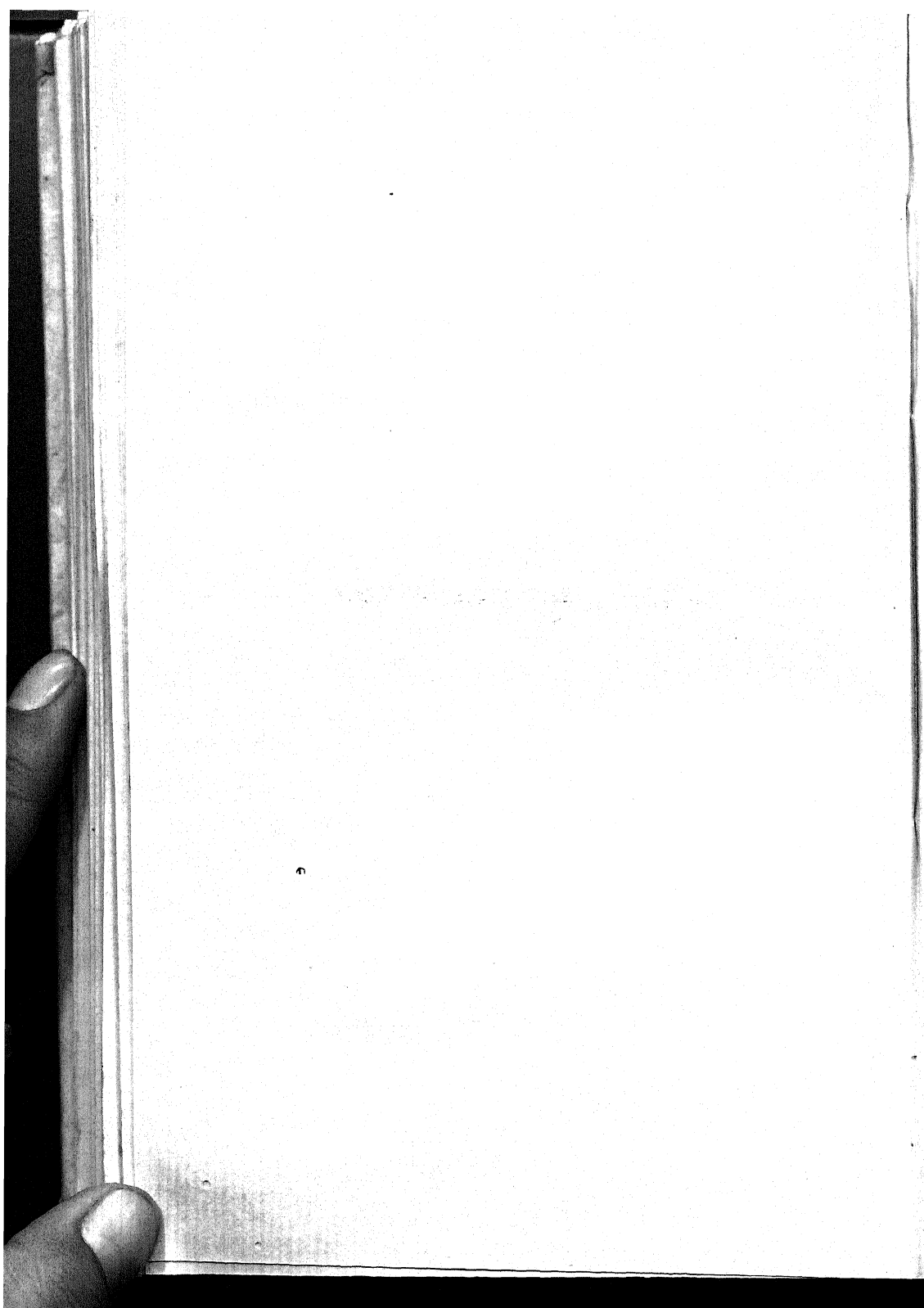
कामायनी एवम् प्रोमीथियस अनबाउण्ड

'साहित्य-दर्शन' में 'पल्लव' एवम् 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' की तुलना का प्रयास परिलक्षित होता है, पर कारण विशेष से शचीरानी गुर्टू के इस विवेचन से मैं असहमत हूँ। शचीरानी जी ने लिखा है कि 'पल्लव' एवम् 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' में कथा-साम्य न होकर अंतर्प्रवृत्तियों का साम्य है। कुछ अन्य आलोचक भी कामायनी पर विचार करते समय इसको 'पैराडाइज़ लास्ट' तथा 'डिवाइन कामेडी' के समकक्ष मानते हैं। पूर्णरूपेण कथा-साम्य तो इन दोनों में भी नहीं हैं। 'डिवाइन कामेडी' (दांते) का कई दृष्टियों से कामायनी से साम्य है। गम्भीरता-पूर्वक विचार करने से 'कामायनी' एवम् 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' में अपेक्षाकृत अधिक साम्य दिखाई पड़ता है।

दोनों ही कलाकार अपनी कृतियों को विश्व-साहित्य की महान् कविताओं के रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे। परिणामस्वरूप 'कामायनी' छायावादी साहित्य की सर्वोत्तम उपलब्धि बन सकी और 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' स्वाच्छन्दतावादी साहित्य की। इन महाकवियों के सृजन-काल में महाकाव्य लिखना कठिन था। महाकाव्य की दृष्टि से हिन्दी में तो 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' के दर्शन हो जाते हैं परन्तु अंग्रेजी में 'पैराडाइज़ लास्ट' के पश्चात् महाकाव्य नाम की कोई कृति नहीं दीख पड़ती है। 'प्रसाद' ने महाकाव्य का स्वरूप अपनाया और शेली ने गेय नाटक 'लिरिक ड्रामा' का। इसके अतिरिक्त इन काव्य-ग्रन्थों के अध्ययन में इन लेखकों की विराट एवम् सार्वभौम कल्पना में भी साम्य दीख पड़ता है। 'रिवोल्ट ऑफ इस्लाम' में शेली सुकृति एवम् दुष्कृति में शाश्वत युद्ध चित्रित कर चुका था फिर भी इस विवेचन से उसे आत्म-संतोष नहीं प्राप्त हुआ। 'क्लटन ब्राक' के शब्दों में 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' में उसका उद्देश्य विश्व में वर्तमान दुष्कृति, उसमें अप्रत्याशित परिवर्तन तथा परिवर्तित सुकृतिपूर्ण दृष्टिकोण का यशोगान करना था। जयशंकर 'प्रसाद' का उद्देश्य भी मनु और श्रद्धा के सहयोग से कामायनी में मानव-सृष्टि के विकास की कथा प्रस्तुत करना था। अप्रस्तुत रूप में यह कथा मन के विभिन्न

उलझनों के चित्रण और उसके सुलझाव के पश्चात् आनन्द की प्राप्ति का संदेश भी देती हैं। एतदर्थ इन दोनों कवियों के दृष्टिकोण में मानवतावादी दृष्टिकोण के साथ-साथ इनकी दार्शनिक मान्यता को भी प्रधानता मिली है। अन्तर इतना ही है कि एक का प्रेरणा-स्त्रोत 'एचिलीज' रहा है और दूसरे का भारतीय प्रत्यभिज्ञा दर्शन।

प्रेरणा एवम् पृष्ठभूमि

दोनों ही महान् कृतियाँ अपने स्रष्टा के दार्शनिकता, अन्तर्मथन, सूक्ष्म सामाजिक निरीक्षण, युगधर्म की व्यापकता एवम् विराटता से उद्‌भूत हुई हैं। इन दोनों ही कवियों ने बाह्य अन्तर्द्वन्द्व के स्थान पर आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व को महत्व दिया है। अतएव इनकी इन कृतियों में मन के संकल्प-विकल्प पूर्ण अंतर्द्वन्द्वों का ही विशद चित्रण है। अजातशत्रु के बिम्बसार का निम्नलिखित कथन दोनों ही लेखकों के लिए पर्याप्त उपयुक्त है—

'आह ! जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। मनुष्य व्यर्थ महत्व की आकांक्षा में पड़ता है। अपनी नीची पर सुदृढ़ परिस्थितियों में उसे संतोष नहीं होता है। नीचे से ऊपर चढ़ना चाहता है, चाहे फिर गिरे तो क्या।'[1]

इसी ऊँचे चढ़ने की प्रवृत्ति का दर्शन हमें इन कृतियों में उपलब्ध होता है। प्रसाद जी की 'कामायनी' में 'करुणालय' की प्रवृत्ति का पूर्ण विकास हुआ है और शेली के 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' में 'रीवोल्ट आफ इस्लाम' की। वैदिक कालीन शुनःशेष के आख्यान में जिस पर 'करुणालय' आधारित है, हमें हिंसा, विरोध, विश्व-बन्धुत्व का संदेश, नियतिवाद में विश्वास, सुव्रता का विश्वामित्र से संमिलन करा कर पतिपरायणता के आदर्श की स्थापना, 'यक्ष' के भौतिक उपकरण के स्थान पर अन्तःसाधना पर जोर, राजा हरिश्चन्द्र के राज्य-त्याग द्वारा त्याग के आदर्श और कर्मशीलता के लिए उद्‌बोधन का दर्शन होता है। 'कामना' में मनोविकारों का प्रयोग एवम् 'आँसू' की नियतिवादी विचारधारा के भी दर्शन होते हैं। इन सभी के समाहित रूप का पूर्ण विकास हमें कामायनी में दृष्टिगोचर होता है। शेली भी 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' लिखने से पहले 'रीवोल्ट आफ इस्लाम', 'मास्क आफ एनार्की, 'जुलियन एवम् मैडेलो, 'अलास्टर' आदि कविताएँ लिख चुका था। इन सभी में उसका क्रान्तिकारी स्वरूप और मानव-प्रेम ही किसी न किसी रूप में चित्रित हुआ है। इन सभी विचारधाराओं का पूर्ण स्वरूप हमें 'प्रामीथियस अनबाउण्ड' में मिलता है।

---

[1] जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु।

दोनों कवियों की विराट कल्पना में भी प्राय: साम्य है। 'कामायनी' में हिमालय, शंकर का ताण्डव, त्रिपुर, जलप्लावन आदि जिस उदात्त कल्पना की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित हैं, वह दर्शनीय है। इस महाकाव्य के पात्र या तो मनो-विश्लेषण पर आधारित हैं या उन्हें वैदिक आख्यानों से लिया गया है। 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' में भी शेली इस प्रकार की परिस्थिति-योजना के लिये पूर्णरूपेण सतर्क है। इसकी भी घटना अपरिचित एवम् कल्पनापूर्ण वातावरण में अस्तित्व ग्रहण करती है। चित्रित वातावरण इतना विचित्र है कि परिचित विश्व से उसका सम्बन्ध स्थापित करना कठिन है। 'सोफोक्लीज' ने 'ओडिपस' के मस्तिष्क को विश्व की संज्ञा दी थी, पर शेली अपने विचारों को विश्व की संज्ञा से अभिहित करता है। उसके ये विचार भी प्राय: ग्रीक देवकथाओं से संबद्ध हैं। जिस प्रकार 'प्रसाद' ने वैदिक आख्यानों के परिवर्तन में स्वतन्त्र मनोवृत्ति का अनुगमन किया है, उसी प्रकार शेली भी पूर्ण स्वच्छन्द मनोवृत्ति से उन्हें अपने अनुकूल बदल सका है।

ऐतिहासिकता

यह नामकरण प्राय: कुछ समीचीन न जान पड़े क्योंकि इन दोनों ही कृतियों की कथा ऐतिहासिक न होकर प्रागैतिहासिक है। कामायनीकार ने इसे ऐति-हासिक माना है। मेरी दृष्टि में इन पुराण एवम् ग्रीक साहित्य की देवकथाओं को ऐतिहासिक की ही संज्ञा मिलनी चाहिये।

'मनु' कामायनी के प्रधान पात्र हैं। पुराणों में भी इन्हीं का नाम सर्वाधिक आया है। इनके पुत्र 'गार्याति मानव' का भी वर्णन है। वशिष्ठ के शाप से इला के रमणी होने पर बुद्ध से उसके संभोग द्वारा पुरूरवा की उत्पत्ति का भी वर्णन मिलता है। कामायनीकार ने मनु को प्रथम ऐतिहासिक पुरुष मानकर कामायनी के आमुख में लिखा है कि 'जलप्लावन भारतीय इतिहास की एक ऐसी ही घटना है जिसने मनु को देवों से विलक्षण मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया।'[1] कामायनी के अन्य पात्र श्रद्धा, इड़ा एवम् मानव की कथा ऋग्वेद, पुराण शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों में बिखरी पड़ी है। जलप्लावन भी ऐतिहासिक है। कामायनी के अन्तिम तीन सर्ग शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर आधारित हैं।

'प्रसाद' की ही भाँति 'शेली' भी अपने पात्रों एवम् कथानक के लिये 'एचिलीज' का मुखापेक्षी है। 'एचिलीज' के अतिरिक्त भी ग्रीक-साहित्य में

---

[1] कामायनी, आमुख-प्रसाद।

इन पात्रों का विशद् वर्णन मिलता है। फिर भी प्रसाद की ही तरह शेली भी उपलब्ध ऐतिहासिक घटनाओं में परिवर्तन के लिए स्वतन्त्र था। 'एचिलीज़' से ली गई सामग्री का प्रयोग वह उससे भिन्न रूप में करता है। 'एचिलीज़' ने अपनी कृति में 'प्रोमीथियस' एवम् 'ज़ियस' में समझौता कर दिया था, परन्तु शेली में इस प्रकार के समझौते का कोई चिह्न नहीं दृष्टिगोचर होता है। उसने डेमागार्गन के चरित्र-चित्रण को भी ग्रीक-देवकथाओं से भिन्न रूप में चित्रित किया है। प्रसाद ने भी कामायनी में प्राप्त ऐतिहासिक क्रम में परिवर्तन किया है और इच्छानुसार कथानक को आकर्षक बनाने के लिए नूतन कल्पित घटनाओं का समावेश भी हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में मनु की नाव मत्स्य के एक पंख में बँध कर हिमालय तक पहुँची थी, पर कामायनीकार ने उसे मत्स्य के एक चपेटे से वहाँ पहुँचा दिया है। मनु के अन्न से आकर्षित होकर इड़ा के स्थान पर प्रसाद जी ने श्रद्धा का आगमन कराया है।

इड़ा के सारस्वत प्रदेश में मनु की निर्देशिका होने तथा उसके साथ स्वच्छन्द प्रेम स्थापित करने के प्रयत्न में मनु को दण्डित किये जाने का उल्लेख 'शतपथ ब्राह्मण' में है पर श्रद्धा द्वारा मातृ-गृह निर्माण, उसकी दिनचर्या तथा बलि का विरोध आदि कवि कल्पित है।

इस प्रकार इन दोनों कवियों ने ऐतिहासिक सामग्री और उसके क्रम में कतिपय परिवर्तन करके कुछ नवीन अंशों को उससे संबद्ध किया है। वास्तव में कवि इतिहासकार नहीं है। कवि मनोविश्लेषण के आधार पर, बाह्य घटनाओं के माध्यम से आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्वों को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देता है। ऐतिहासिकता से अप्रभावित रहते हुए भी वह अपने मंतव्य को अभिव्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र है। इतिहास के लिए व्यक्ति की अभिव्यक्ति आवश्यक है पर वह काव्य में व्यक्ति के माध्यम से जाति की अभिव्यक्ति करता है। 'बेसिल वर्सफोल्ड' ने ठीक लिखा है कि साहित्य[1] बाह्य यथार्थ द्वारा महान् व्यक्तियों के मस्तिष्क पर पैदा किये हुए प्रभाव तथा इन प्रभावों के विषय में उन व्यक्तियों के विचारों का प्रतिमान है। यह जाति एवं व्यक्ति की अनुभूतियों के रूप में उन सभी संकलित ज्ञानराशियों को एक महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है जो हर एक को विश्वजनीन विषयीगत दृष्टिकोण प्रदान करने में सक्षम है। इस दृष्टि से इन दोनों ही कृतियों में अभिव्यक्त परिवर्तित ऐतिहासिक सत्य मानव के जिस भी दृष्टिकोण को समक्ष रख सकने में समर्थ है, वह ऐतिहासिक होकर भी सर्वयुगीन एवं सर्वकालीन है।

---

[1] Basil worstold, *Judgement in Literature.*

पात्र एवम् उनसे सम्बद्ध विचार

महाकाव्य 'कामायनी' एवं गेय नाटक 'प्रोमीथियस' दोनों में ही पात्रों का प्रयोग हुआ है। इनका उद्देश्य भी व्यष्टिगत न होकर समष्टिगत है। अतएव पात्र यथार्थ विश्व अथवा यथार्थ कल्पना की उपज नहीं हैं। वे क्या हैं यह महत्व-पूर्ण न होकर वे क्या अभिव्यक्त करते हैं, महत्वपूर्ण है। वे विचारों के मूर्त रूप होने के साथ ही साथ उनसे सम्बद्ध बौद्धिकता के पवित्र प्रतीक हैं। वे ब्लेक द्वारा अनुभव को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त प्रतीकों से भिन्न रूप में विचारों की व्यंजना तथा कवियों के वैचारिक स्पर्श द्वारा अधिक सम्मोहक रूप प्रदान किये गये सिद्धान्त हैं। वे मानव-मन को विविध एवम् विश्वसनीय रूप प्रदान करने वाली शक्तियों के अनूदित रूप हैं।[1] फिर भी इस विशेषता के बावजूद पात्रों के नामकरण ऐसे हुए हैं कि वे किसी न किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का भान भी करा सकने में समर्थ हैं पर इनके अन्तराल में व्यक्तित्व-बोध की अपेक्षा सिद्धान्त-बोध ही अधिक निहित है। प्रोमीथियस के लिए 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' के प्रीफेस में कहा गया है कि वह पवित्र एवं सत्य विचारों द्वारा अत्युच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नैतिक एवम् बौद्धिक प्रकृति की सर्वोच्च पूर्णता का प्रतीक है।[2] 'बावरा' के शब्दों में वह बुद्धि एवं प्रेम के आधार पर सामंजस्य उत्पन्न करने वाली मानवीय आत्मा की एक ऐसी शक्ति हैं जो अपने सदुद्देश्य की पूर्ति के लिए अप्रतिम साहस एवं सहिष्णुता प्रदर्शित करती हैं।[3] शेली के विचार में वह मानव-आत्मा की सर्वोच्च भावना है और दुष्कृति के विरुद्ध सुकृति के लिए कोई भी त्याग कर सकने में समर्थ है। प्रोमीथियस का आशावादी स्वभाव बौद्धिक एवं नैतिक तत्वों का अभिन्न मिश्रण है। अतएव यह सद्भावना एवम् सदुद्देश्य के लिए सतत् प्रयत्नशील है। 'सिम्मान्स' के शब्दों में 'वह मानव-मस्तिष्क का आदर्शी-कृत रूप है।[4]

प्रमुख नायक 'प्रोमीथियस' की सहयोगिनी समुद्र कन्याएँ हैं जिनका नाम पैथिन्या, आओन और एशिया है। ये क्रमशः विश्वास, आशा और प्रेम की

[1] *Romantic Imagination*, Bowara, *Prometheus Unbound p. 107.*

[2] *Prometheus Unbound*—Preface, Shelly.

[3] *Romantic Imagination,* Bowara.

[4] J. A. Symmons, *Shelley.*

प्रतीक हैं। इनको कवि ने उन शक्तियों का समाहित रूप माना है जो बुद्धि को उद्‌बुद्ध करके, उसे सर्वोत्कृष्ट रूप में क्रियाशील बनाती हैं। इनके विरुद्ध जुपिटर मानव-स्वभाव में दृष्टिगोचर होने वाली पाशविक प्रवृत्तियों का प्रतीक है। वह निरंकुश है। उसमें दूसरों को शासित करने की ऐहिक इच्छायें हैं। इनका समर्थन वह अन्धविश्वास एवं भय के आधार पर करना चाहता है। परिणामस्वरूप उसके शासन में उत्पीड़न एवम् अज्ञानता का प्रसार है; अच्छाई के स्थान पर अन्याय-पूर्ण विध्वंसक एवं असहिष्णु भावनाओं के सभी रूपों का दर्शन होता है। इस प्रकार प्रोमीथियस एवं जुपिटर के बीच का संघर्ष बुद्धिमय प्रेम के सिद्धान्त एवं निरंकुश विध्वंसकता के सिद्धान्त का प्रतीक है।

जुपिटर का पुत्र डेमागार्गन है। स्पेंसर और मिल्टन की भी रचनाओं में इस पात्र के दर्शन होते हैं, परन्तु वे कवि इसे शैतान मानने के कारण इनका प्रयोग 'शेली' से भिन्न रूप में करते हैं। 'शेली' ने भी डेमागार्गन को इसीलिए चुना है कि वह 'मिल्टन' के शैतान की तरह भगवान् की निरंकुश शक्तियों के विरुद्ध होते हुए भी उसके दुर्गुणों से मुक्त है। डेमागार्गन को शेली ने जुपिटर की शक्तियों के सर्वनाश का प्रतीक माना है। एतदर्थ इस चरित्र की स्थापना में उसने इसे ग्रीक-देवकथाओं से भिन्न रूप में रखकर अपने स्वतन्त्र चित्रण का अच्छा उदाहरण उपस्थित किया है।

डेमागार्गन के चरित्र को लेकर प्रायः आलोचकों में पर्याप्त मतभेद रहा है। इस बात पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए कि वह क्या है? जुपिटर को अपना नाम बतलाते हुए उसने कहा था कि 'शाश्वतता को इससे भयंकर नाम की आवश्यकता नहीं।'[1] अगर हम शाश्वत (इटरनिटी) को काल (टाइम्स) का प्रतीक मान लें तो यह कह सकते हैं कि समय की प्रगति के साथ बुराई का भी सर्वनाश होगा। चूंकि शेली मानव-जीवन के स्वतःसुधार में विश्वास करता था अतएव वह इस प्रकार के विचार का समर्थक अवश्य रहा होगा। परन्तु शाश्वत को संसृति-योजना में निरन्तर प्रस्तुत रहने वाली अनश्वर वस्तुओं की संज्ञा से अभि-हित करना ही अधिक समीचीन होगा। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि शेली का विश्वास था कि सृष्टि में उपस्थित अनश्वर तत्त्व कभी न कभी बुराई का सर्व-नाश अवश्य करेंगे। इस प्रकार डेमागार्गन जीवन की आध्यात्मिक शक्ति में अन्त-र्निहित ओजस्विता है जो सत्य, प्रेम, बुद्धि एवं आनन्द की मुखापेक्षी है। इसी प्रकार कामायनी पर दृष्टिपात करने से हमें ज्ञात होता है कि इसके मुख्य

[1] रोमांटिक इमैजिनेशन; बावरा, प्रोमीथियस अनबाउण्ड, पृ० १११।

पात्र मनु, श्रद्धा, इड़ा, मानव, काम, किलात एवं आकुलि हैं। इनका भी मन, मनन, ज्ञान, बुद्धि, हृदय की रागात्मिका वृत्ति श्रद्धा आदि से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। भारतीय ग्रंथों में मनु देवता, मंत्र द्रष्टा, ऋषि, यज्ञकर्त्ता, मानवों के पिता प्रजापति, पृथ्वीपति, मन्वन्तर के प्रवर्त्तक आदि बतलाए गये हैं। मन से इनका सम्बन्ध होने के कारण ये चंचल स्वभाव वाले मननशील, अस्थिर, संकल्प-विकल्प-युक्त एवं बुद्धिवादी हैं। प्रसाद ने भारतीय ग्रंथों के आधार पर 'मनु' पात्र की कल्पना की है और उक्त सभी बातों को स्वीकार करते हुये एक नये रूप की अवतारणा की है। दूसरी तरफ उक्त रूपों के अतिरिक्त मनु को आनन्द-पथ का पथिक भी माना है।[1]

कामायनी में मनु का विकास देव मनु, ऋषि मनु, वासनाभिभूत मनु, जीवन संगिनी के इच्छुक गृहस्थ-जीवन में संलग्न मनु, प्रजापति मनु तथा आनन्द के अधिकारी मनु आदि रूपों में हुआ है। इन स्तरों के मध्य नायक को रख कर 'प्रसाद' ने साधारण मानव को जीवन-यापन की प्रक्रिया का एक संदेश दिया है। 'मनु' के जीवन के विविध उत्थान-पतन को एक स्थान पर रख एक सच्चे मानव की भाँति उन्हें इसका विषय बनाकर कामायनीकार ने विश्व-मानव के लिए एक आशाप्रद संदेश दिया है। उन्होंने प्रवृत्ति का जीवन में समरस सम्बन्ध स्थापित करके आनन्द, परमानन्द एवं ब्रह्मानन्द की जो व्याख्या प्रस्तुत की है वह आशाप्रद होने साथ ही साथ अद्वितीय है।

'कामायनी' की नायिका श्रद्धा है क्योंकि साहित्य में इसकी भावमूलक व्याख्या मिलती है। ऋग्वेद में हमें इसके देवी एवं ऋषि दोनों ही रूप मिलते हैं। सायणाचार्य ने श्रद्धा शब्द की व्युत्पत्ति 'श्रत्' शब्द के साथ धातु के प्रयोग से 'अङ्:' प्रत्यय लगाकर सिद्ध किया है और इसका अर्थ 'आस्तिक्य बुद्धि' या विश्वास बतलाया है। निरुक्तकार ने 'श्रद्धा' शब्द की व्याख्या करते हुए उसे ऐसी 'सत्य बुद्धि' बतलाया है जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करने वाली तथा सत्य को धारण करने वाली होती है। 'ऋग्वेद' में श्रद्धा को अग्नि प्रज्वलित करने वाली, हवि प्रदान करने वाली, सौभाग्य देने वाली, यजमान को धन, प्रिय पदार्थ, अभीष्ट वस्तु आदि देने वाली कहा गया है। यजुर्वेद में सत्, के अन्तर्गत श्रद्धा तथा असत् के अन्तर्गत अश्रद्धा का निवास बताया गया है।' बृहद्देवता में श्रद्धा की गणना उषा आदि देवियों के साथ

---

[1] कामायनी में काव्य संस्कृति एवं दर्शन —डॉ० द्वारिकाप्रसाद।

की गई है और उसे श्री, मेघा, सूर्य सावित्री आदि बतलाया गया है।[1] सौभाग्यवर्ती लक्ष्मी उपनिषद् में श्रद्धा शक्ति रूप स्वीकार की गई है। 'वृहदोपनिषद' इसे महा-त्रिपुर-सुन्दरी, सरस्वती, सावित्री, कामकला आदि नामों से अभिहित करता है। भगवद्गीता में श्रद्धा के सात्विक, राजस एवं तामस तीन रूप स्वीकार किए गए हैं। इसके अलावा ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय एवम् मुण्डकोपनिषद् में इसके विविध रूप पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इस प्रकार कामायनी में हम सौन्दर्य, त्याग, बलि-दान, तपस्या, सत्य आदि गुणों के साथ ही उसे जगद्धात्री, जगज्जननी, देवी, मंत्र-द्रष्टा, ऋषिका आदि रूपों में देखते हैं। इस महाग्रन्थ में उसका विकास अनुपम सौन्दर्यमयी नारी, आदर्श पत्नी, आदर्श गृहिणी, मातृत्व की विमल विभूति, मनु की विपत्ति सहचरी, लोक-कल्याणी, आनन्द की पथ-प्रदर्शिका आदि विविध सरणियों के बीच हुआ है। इड़ा कामायनी का तीसरा प्रमुख पात्र है। ऋग्वेद में इसे देवी, मानवों पर शासन करने वाली, राष्ट्रस्वामिनी, मानवों को बुद्धि या चेतना प्रदान करने वाली, धृतहस्ता, प्रकर्षकारिणी और शोभनशील योद्धाओं वाली कहा गया है। यजुर्वेद में इड़ा को हविष्मती देवी, वसुमती गृहपालिनी, सुवर्णमयी अपार प्रभावशालिनी, अनुपम तेजोमयी, समस्त साधनों से संपन्न और अभीष्ट फलादि देने वाली कहा गया है। अथर्ववेद में इड़ा को प्रजासुखदायक एवं राष्ट्र-संरक्षिका माना गया है।[2] इसके अलावा अन्य भारतीय ग्रन्थों में भी इस पात्र के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। कामायनी में इस पात्र की कल्पना का विकास इसके प्रारम्भिक व्यक्तित्व, बुद्धिवाद के अतिरेक के प्रतीक, विलासिता की प्रेरक शक्ति, वैज्ञानिक युग की जन-प्रिय रानी, मनु की निष्पक्ष सलाहकार, कोमल एवं सहृदय नारी के बीच हुआ है। श्रद्धा के सहयोग से इसमें हृदयवाद एवं आनन्द की अनुभूति के भाव जागृत हुए हैं। मनु एवं श्रद्धा के रूप में, भारतीय संस्कृति के आदि पुरुष एवं आद्या नारी के रूप में, इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इड़ा में बुद्ध्यातिरेक दिखाकर प्रसाद जी ने कामायनी में आधुनिकता का समावेश करके उसे सर्वांगपूर्ण बनाया है।

'मनु' मानवता के आदि पिता हैं और मानव उनके आदि पुत्र। कामायनी के ये गौण पात्र हैं। मानव के साथ इड़ा को सम्बद्ध करके प्रसाद जी ने मानवता के विकास-मार्ग का संकेत किया हैं। मानव में मनू-पुत्र होने के कारण मनन-

---

[1] कामायनी में संस्कृति, काव्य एवं दर्शन : डॉ० द्वारिका प्रसाद।

[2] वही पृ० १०९-११०।

शीलता, श्रद्धा-पुत्र होने के कारण उदार वृत्तियों और इड़ा के साथ रहने के कारण बौद्धिक गुणों के समावेश द्वारा प्रसाद जी ने समरसता का सिद्धान्त उपस्थित किया है। मनु से कर्म, इड़ा से ज्ञान एवम् श्रद्धा से प्रेम प्राप्त करने वाला यह मानव समरसता की प्रतिमूर्ति है।

'आकुलि' एवम् 'किलात' में पाखण्ड, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, पापाचार, मिथ्याचार, असत्य भाषण, क्रूर कर्म, हिंसा, ईश्वर के प्रति अविश्वास, मिथ्या सिद्धान्त के प्रति आग्रह, विषयासक्ति आदि की प्रधानता दिखाई गई है।

इस प्रकार इन कृतियों में जो भी पात्र लिए गए हैं वे किसी न किसी देवकथा पर आधारित हैं। इनके व्यक्तित्व दुहरे हैं। यथार्थ जीवन में मानव-क्रियाकलाप के प्रदर्शक होने के अलावा भी उनका एक विचारप्रधान स्तर है। ये दोनों ही काव्य-रूपक की कोटि में आते हैं। अतएव पात्र भी अपने बाह्य रूप के अतिरिक्त विचार विशेष के प्रतीक हैं। 'कामायनी' एवम् 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' दोनों में ही पात्रों के शरीरी एवम् अशरीरी रूप के दर्शन होते हैं। इनका उद्देश्य दार्शनिक विवेचन है। अतएव ये अपनी बाह्य अभिव्यक्ति के अतिरिक्त आंतरिक अभिव्यक्ति में अधिक मुखर हो सके हैं। भारतीय मनु का जो स्वरूप कामायनी में लिया गया है उसमें प्रोमीथियस, जुपिटर एवम् डेमोगार्गन इन तीनों की प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। चिन्ता सर्ग के मनु मानवता के उद्धार के लिए चिन्तित 'प्रोमीथियस' हैं तो श्रद्धा-समन्वित मनु एसिया-समन्वित प्रोमीथियस। सारस्वत प्रदेश के मनु में हमें जुपिटर की सामान्य निरंकुशता के दर्शन होते हैं। श्रद्धा में शेली के प्रेम की प्रतीक एसिया एवम् आशा की प्रतीक पैंथिया का समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है। प्रोमीथियस अनबाउण्ड में एसिया बुद्धि का नियंत्रण करती है और कामायनी में आस्तिक्य बुद्धि श्रद्धा, विशुद्धबुद्धि इड़ा का नियंत्रण करती है। मनु-पुत्र मानव-सृष्टि की समरसता एवम् आशामय भविष्य का केन्द्र-विन्दु है तो जुपिटर का पुत्र डेमोगार्गन भी जुपिटर की निरंकुशता से मानव का उद्धार करके उसके सुखद भविष्य का संदेशवाहक है। इस प्रकार चरित्र-चित्रण की आधारशिला भिन्न होते हुए भी इन लेखकों के दृष्टिकोण में कुछ साम्य अवश्य है। यह साम्य केवल शैली-साम्य नहीं अपितु मानवता की शाश्वत समस्याओं के शाश्वत सुलझाव की खोज में एक ही निष्कर्ष पर पहुँचा हुआ विचार-साम्य है। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रसाद जी इसके लिए वेद, उपनिषद्, एवम् ब्राह्मण-ग्रंथों के मुखापेक्षी हैं और शेली ग्रीक देवकथा, प्लेटो एवम् गाडविन के।

विचार-विकास एवम् दर्शन

'प्लेटो' का शेली पर प्रभाव था। 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' में प्रभावित विचार मिलते हैं। प्रथम दृश्य में 'शेली' इस प्रकार के विचारों का प्रयोग करता है जिसका उसके लिए बहुत मूल्य था। उसका विश्वास था कि अन्त में सुकृति दुष्कृति पर विजयी होगी। प्रोमीथियस निर्दयतापूर्वक बंदी बनाकर बाँध दिया गया है। अन्याय एवम् निर्दयता की छाया उसे प्रताड़ित कर रही है। वह 'स्पिरिट्स' को गाते हुए सुनता है और उसे विश्वास हो जाता है कि कितनी ही प्रबल अन्यायी शक्ति क्यों न हो, वह मानव की अदम्य नैतिक अभिलाषा को दबा नहीं सकती। मनुष्य सदा-सर्वदा अपने उत्साहपूर्ण प्रयत्नों में लगा रहता है। यथा—

> **'अनन्त काल से हम लोग**
> **भगवान की इच्छा से प्रताड़ित मानव**
> **के नम्र पथ-प्रदर्शक एवम् संरक्षक हैं।'[2]**

इसके पश्चात् ये आत्माएँ बारी-बारी से युद्धभूमि पर जाने वाले सैनिक, दूसरे की प्राणरक्षा में मृत्यु का संवरण करने वाले नाविक, रात्रि में चिंतनशील संत तथा सजीव व्यक्तियों से भी यथार्थ सृजन कर सकने वाले कवि का यशोगान करती हैं। शेली इनको सजीव शक्तियों का प्रतीक मानता है और उसका विश्वास है कि ये शक्तियाँ कभी किसी अन्यायी शक्ति के सम्मुख नतमस्तक नहीं हो सकतीं। दुष्कृत्य अगर इनकी प्रगति में बाधक सिद्ध होता है तो ये जम कर उसका विरोध करती हैं। डेमोगार्गन की गुफा में मिली हुई गम्भीर मादकता की ये व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। डेमोगार्गन जीवन-सिद्धान्त का प्रतीक है। अतएव उसमें इसकी सर्वोच्च क्रियाशीलता का दर्शन होता है। अन्ततोगत्वा हम जीवन के सिद्धान्त को विध्वंस के सिद्धान्त पर विजयी पाते हैं। इस प्रकार इस विजय के अन्दर हमें न्याय एवम् अन्याय, सुकृति एवम् दुष्कृति के चिरन्तन युद्ध तथा न्याय द्वारा अन्याय, और सुकृति द्वारा दुष्कृति की पराजय का सन्देश मिलता है। यहाँ हम शेली को 'प्लेटो' की अच्छाई एवम् बुराई के शाश्वत संघर्ष का चित्रण करते हुए देखते हैं।

प्लेटो की विश्व-आत्मा की कल्पना भी शेली के लिए आदर्श स्वीकृति थी। इस विचार के अनुसार वह स्पिरिट को ही अन्तिम सत्य मानता था। प्रकृति भी मानव की तरह सजीव मानी जाती थी। वह भी मानव की तरह एक सजीव

---

[1] From unremembered ages, we gentle guides and guardian be of heaven oppressd mortalily.

आत्मा-सम्पन्न थी । इसीलिए 'प्रोमीथियस' में मानव-चरित्रों के अतिरिक्त पृथ्वी एवम् जलधि भी अपने को मानवी रूप में ही उपस्थिति करते हैं। ग्रीक लोगों को प्रकृति में विहार करने वाले देवताओं का भी आभास मिलता है। 'प्लेटो' की दृष्टि से इस जगत का नियामक पूर्ण शक्तिमान् नहीं था। उसकी यह धारणा थी कि 'मैटर' ही कलुषित होकर इस नियामक की निर्माणक शक्ति में व्यवधान उत्पन्न करता है। 'मैटर' के कलुषित होने पर यह दुष्कृति की भावना भगवान् की नियंता शक्ति को अन्यायपूर्ण समझ कर उसके सर्वनाश के लिए प्रयत्नशील रहती है। फिर भी जागतिक दृष्टि से प्लेटो जगत को उस परम शक्ति का स्वतः विकास मानता है। भारतीय दर्शन 'एकोहं बहुस्याम' की भावना द्वारा इसे उस परम शक्ति-संयुत नियंता की इच्छा के प्रसार का प्रतीक मानता है। 'कामायनी' में यह सत्य चित्रित किया गया है। शेली का भी यह विश्वास था कि सृष्टि का प्रत्येक उपादान येन-केन-प्रकारेण उनकी अनन्त शक्ति के प्रभाव का प्रतीक है। शेली का 'डेमोगार्गन' केवल इस दृष्टि से अपवाद ठहरता है। वह जीवन-सिद्धान्त का प्रतीक होने के कारण मानव के परे इस अभौतिक सृष्टि में भी परिव्याप्त है। वह उस महान् शक्ति का प्रतीक है जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते, जो अकल्पित है, नेति-नेति है। वह कितना रहस्यमय और अविजेय है, इसको हम सरलतापूर्वक नहीं समझ सकते। यहाँ तो 'निगम नेति जेहि ध्यान न पावा' वाली बात चरितार्थ होती है। इसीलिए जब 'पैंथिया' एवम् 'एसिया' उसकी खोज में रत होती हैं तो उन्हें सर्वनियन्ता की प्रशस्ति में गाये गए गीत प्रतिध्वनित होते सुनाई पड़ते हैं। वे उस अनन्त पुकार की ओर चल भी पड़ती हैं। शेली ने इसको उपस्थित करते हुए लिखा है—

> 'प्रतिध्वनि की सम्मोहक संगीतमयी लहरें वहाँ नर्तन कर रही थीं। ये डेमोगार्गन के शक्ति-सम्पन्न नियम के आधार पर अतीव आनन्द या आश्चर्य के साथ सभी आत्माओं को उस रहस्यमय मार्ग पर उस प्रकार आकर्षित करती थीं जिस प्रकार पर्वतीय हिम के पिघलने से छोटी नदियाँ वेगवती होकर अपनी धारा के साथ चलने वाली नाव को समुद्र की ओर आकर्षित करती हैं।'[1]

[1] There, those enchanted eddies play,
Of echoes music tongued, which drawn
by Demogargon's mighty law,
With melting rapture of sweet awe,
All sqirits on sacred way,
As in land boats are driven to ocean
Down streamsade strong with mountain thaw.

चूँकि इस शक्ति-संम्पन्न नियम का नियामक डेमोगार्गन है जो इस सृष्टि की सजीव आत्मा है, अतएव उसके द्वारा दिए गए संकेतों पर इनका चलना भी स्वाभाविक है।

शेली न्याय एवम् अन्याय का इतना बृहत् प्रश्न खड़ा करके केवल अन्य लोगों को उसके ऊपर सोचने के लिए बाध्य करके स्वयम् तटस्थ नहीं रह गया है। वह द्रष्टा की तरह इसको देखता है और धर्मगुरु (प्राफेट) की तरह इसका सुलझाव उपस्थित करता है। उसका विश्वास है कि इस अनन्त दुष्कृत्य एवम् बुराई से प्रताड़ित विश्व के लिए अनन्त प्रेम एक मात्र शरण-केन्द्र है। ऐक्ट १ में शेली सर्वप्रथम 'क्राइस्ट' का दर्शन करता है। वे उसे उन महात्माओं के सदृश दृष्टिगोचर होते हैं जो पराए सुख के लिए अपना सब कुछ उत्सर्ग करके मानव-कल्याण के लिए 'क्रास' की असहनीय वेदना को स्वीकार करते हैं। फिर भी शेली बुदबुदा उठता है कि 'तुम्हारा नाम मैं नहीं ले सकता क्योंकि यह एक अभिशाप बन गया है।'[1] क्राइस्ट को वह 'रिभोल्ट आफ इस्लाम' में हेय दृष्टि से देख चुका है। प्रोमीथियस अनबाउण्ड में भी वह प्रथम इस सत्य को समझने में असमर्थ है कि क्राइस्ट की अनन्त यातनाएँ मानवता को क्या सन्देश दे सकती हैं। परन्तु कुछ मनन एवम् विवेचन के पश्चात् उसे इस सत्य का आभास होता है कि क्राइस्ट उन महान् आत्माओं के प्रतीक हैं जिन्हें उनके अनन्त प्यार के परिणामस्वरूप कष्ट झेलना पड़ा है। यहाँ शेली इस सत्य को अभिव्यक्त करता है कि 'प्रोमीथियस' जो मानव-बुद्धि के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप का प्रतीक है, आरम्भ में इस बात को समझने में असमर्थ है कि प्रेम यथार्थ में है क्या? शेली इस गेय नाटक में प्रेम की विराटता के विकास के प्रति पर्याप्त सतर्क रहा है। युद्ध में 'स्पिरिट्स' द्वारा मृत्यु के प्रति गाये गए गान की निम्नांकित पंक्तियाँ इस सत्य को अभिव्यक्त करती हैं—

> 'ऊपर भी चतुर्दिक् एक ही ध्वनि नीचे भी चतुर्दिक् यही ध्वनि चारों ओर फैल रही थी। यह ध्वनि प्रेम की आत्मा थी। यह भविष्य की ऐसी आत्मा थी जो तुमसे ही उद्भूत होकर तुम्हीं में लयमान हो जाती थी।'[2]

---

[1] Thy name I will not speak, it has become a curse.

[2] One sound above around, one sound beneath around Above was moving, it was soul of love. It was the hope of a prophecy, which begins and ends in thee.

कोरस का निर्णय भी इसी दृष्टि से दर्शनीय है—

> 'ऐसी बौद्धिकता, न्याय, प्रेम एवं शान्ति जिसको प्रबुद्ध करने के लिए ये संघर्षशील हैं हमारे लिए उस प्रकार प्रिय हैं जिस प्रकार शीतल वायु गड़ेरिए के लड़के के लिए प्रिय होती है। यह ऐसी भविष्य-दृष्टि है जो तुम्हीं से प्रारंभ होकर तुम्हीं में मिल जाती है।'[1]

ये शब्द 'प्रोमीथियस' को संबोधित करके कहे गए हैं। वही ऐसा व्यक्ति है जिसमें भविष्यवाणी का प्रारम्भ और अन्त होने वाला है। अगर एक बार भी मानव हृदय की महानता को प्रेम-वैशिष्ट्य का ज्ञान हो जाय और इसके विचित्र संस्पर्श आह्लादित हो उठें तो विश्व में अघटित घटित हो सकता है। 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' के अंक १ में यही संदेश है। इसी के पश्चात् स्वप्न के आधार पर 'एसिया' एवं 'प्रोमीथियस' का प्रेम होता है। इस प्रेम का पर्यवसान उस दृश्य में होता है जिसमें वह उस शक्ति की प्रशस्ति में गाती हुई दिखाई गई है, जो उसे अदृश्य आत्माओं के संगीत तक उठा ले जाने में सक्षम है। यह सुअवसर इस बात का सूचक है कि ऐसी शक्तियाँ मुक्त होने वाली हैं जो कलुष एवं दुष्कृत्य का सर्वनाश करेंगी। जिस समय 'एसिया' का प्रेम प्रोमीथियस की ओर उन्मुख हुआ है उस समय ये शक्तियाँ पंखयुक्त घोड़ों के रथ पर बैठकर नभमण्डल की विजय के लिए जाती हुई दिखाई गई हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्रेम एवं बुद्धि के संमिलन के द्वारा ही बुराई समाप्त की जा सकती है।

'शेली' ने प्रेम को इतना विराट चित्रित किया है कि यही बुद्धि को भी क्रियाशील बनाता है। 'एसिया' एवं 'पैन्थिया' के विश्व-नियमन के विषय में पूछने पर 'डेमोगार्गन यह बतलाता है कि सभी कुछ विश्व के नियतिवादी सिद्धांतों से शासित है। केवल प्रेम इससे मुक्त है। यह स्वत: अपने में एक सिद्धान्त है। यह किसी की अधीनता नहीं स्वीकार करता और सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है। यहाँ प्रेम की इस व्यंजना में 'शेली' 'प्लेटो' से भी आगे है। प्रेम इसके लिए ऐसी प्रेरणादायिनी मुख्य सर्जन-शक्ति है जो सभी प्रकार के जीवों का पोषण करती हुई अपने पथ पर अग्रसर होती है। इस स्थिति का वह शब्दों में वर्णन कर सकने में असमर्थ है। अतएव वह कह उठता है—

> 'सूर्य के प्रचण्ड ताप के प्रभाव की तरह यह प्रेम संपूर्ण विश्व में व्याप्त है। यह तुम्हीं से उत्पन्न होकर पृथ्वी एवं स्वर्ग को प्रभावित करता है। यह अनवगहनीय

---

[1] Wisdom, justice, love and peace,
Which they struggle to increase,
Are to us as soft winds be to shepherd boys the prophecy,
Which begins and ends in Thee.

समुद्र एवम् प्रकाशरहित गुफाओं को आलोकित कर उन्हें भी आलोक प्रदान करता है जो उनके साथ इनमें निवास करते हैं।'[1]

वह उस प्रेम की प्रेरक शक्ति की उपस्थिति के निमित्त केवल इतना कह पाता है—

'हे जीवन के जीवन ! तुम्हारे ओष्ठ अपने प्रेममय संस्पर्श के द्वारा उनमें स्वाँस का स्पन्दन उत्पन्न करते हैं। हे पृथ्वी के दीपक ! तुम जहाँ कहीं भी जाते हो, इसके अन्धकारपूर्ण स्थान काशित हो उठते हैं।'[2]

इसलिए जब कभी वह इसका वर्णन करना चाहता है तो उसकी दशा भारतीय संतों जैसी हो जाती है जो कह उठते हैं—

'पारब्रम्ह के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ शोभा नहीं, देखा ही परमान।'[3]

'शेली' उसके वर्णन में केवल इतना कह पाता है—

'हे जीवन के शिशु ! इस विराट विश्व के द्वारा तुम्हारी ओष्ठ-दीप्ति को आच्छादित कर लिए जाने पर भी, वह उसी प्रकार दमक उठती से जैसे विच्छिन्न जलदावली में छिपा हुआ उषा का प्रकाश। यह दीप्तिमय दैवी वातावरण जहाँ कहीं भी तुम चमकना चाहते हो, वहाँ तुम्हें आच्छादित कर लेता है।'[4]

---

[1] Love like the atmosphere of sun's fire;
Filling the living world,
Bursts from Thee and illumined the earth and heaven,
And the deep ocean and sunless cave,
And that dwells within them.

[2] Life of life ! thy lips enkindle
With their love, the breath between them.
Lamp ot earth where thou movest,
Its dim shapes are clad with brightness.

[3] कबीर, साखी सार।

[4] Child of life thy lips are burning,
Through the vast, which seems to hide them,
As the radiant line of morning.
Through the clouds, are, they divide them.
And this atmosphere divinest
Shrouds thee, where ever thou shinest.

'शेली' 'प्लेटो' की तरह अपने विचारों को भी एक विश्व की संज्ञा से अभिहित करता था। वह अपने इसी मानसिक विश्व के प्रकटीकरण को अपने काव्य द्वारा वाणी प्रदान करता था। इस गेय नाटक में उसने अपने इन विचारों में पर्याप्त वैचित्र्य का समावेश करके उन्हें उपस्थित किया है। उसकी हर विचार-सरणि में हमें प्लेटो के विचारों की प्रतिध्वनि मिलती है। जहाँ कहीं वह अपनी मनन-शक्ति द्वारा प्लेटो से आगे भी गया है, वहाँ भी ग्रीक विचार किसी न किसी रूप में क्रियाशील परिलक्षित होते हैं।

'कामायनी' में भी प्रसाद जी ने विभिन्न चिन्तन-प्रणालियों को एक स्थान पर संगुंफित करने का प्रयास किया है। इसमें शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रभाव प्रमुख रूप से दर्शनीय है। शैव प्रत्यभिज्ञा के आधार पर ही प्रसाद जी ने आत्मा को महाचिति कह कर लीलामय आनन्द करने वाली और अपनी इच्छा से जगत का निर्माण करने वाली शक्ति माना है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन की जीव-कल्पना के ही आधार पर प्रसाद जी ने मनु को तीन मलों एवं छः कंचुकों से आवृत्त दिखलाया है। निर्वेद सर्ग के पहले प्रसाद जी 'आणव' स्थिति में रहते हैं। निर्वेद से रहस्य तक शक्ति-स्थिति में और श्रद्धा द्वारा ज्ञान इच्छा और क्रिया की एकता के दर्शन के पश्चात् उनमें शांभव स्थिति का उन्मेष होता है। उनके सृष्टि-सम्बन्धी विचारों पर भी प्रत्यभिज्ञा दर्शन का पर्याप्त प्रभाव है। सृष्टि को उसी चिति की इच्छा का परिणाम कहकर वे इसकी मूल शक्ति को मान्यता प्रदान किए हैं जो शिव के सिसृक्ष होने पर प्रादुर्भूत होती है। रहस्य सर्ग में वे कहते हैं—

'घूम रही है यहाँ चतुर्दिक् चलचित्रों की संसृति छाया,
जिस आलोक विन्दु को घेरे वह बैठी मुस्क्याती माया।
भावचक्र वह चला रही है, इच्छा की रथनाभि घूमती,
नवरस भरी अरायें अविरल चक्र-काल को चकित चूमतीं।
यहाँ मनोरम विश्व कर रहा, रागारुण चेतन उपासना,
माया-राज्य यही परिपाटी पास बिछा कर जीव फाँसना।'

इस पथ में शिव की इच्छा-शक्ति को त्रिकोण के बीच बैठकर मुसकराने वाली माया कहा गया है। यही माया सारे विश्व का निर्माण एवम् संचालन करती है। इस शक्ति से उत्पन्न सृष्टि को भी माया-राज्य कह कर स्पष्ट रूप से शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन को ही मान्यता दे दी गयी है।

प्रसाद ने शैवागमों के आधार पर 'कामायनी' में नियतिवाद का भी प्रतिपादन किया है। शैवागमों के अनुसार नियति व्यापक एवम् विराट सत्ता है जो सबका नियंत्रण करती है। प्रसाद जी ने भी उसे—

'उस एकान्त नियति शासन में, चले विश्व धीरे-धीरे ।'

(आशा सर्ग ३८)

'इस नियति विकर्षणमयी त्रास से सब व्याकुल थे ।'

(संघर्ष सर्ग)

'इस नियति नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही ।'

(इड़ा सर्ग)

उपर्युक्त प्रकार से संबंधित करके इसके विविध रूप को मान्यता दी है। इसे समस्त विश्व की नियामिका शक्ति के साथ ही साथ आत्मा को सीमित करके उसको विविध रूप से नचाने वाली भी कहा गया है। यथा—

'निराधार है किन्तु ठहरना, हम दोनों को आज यहीं ।
नियति खेल देखूँ न सुनो अब इसका अन्य उपाय नहीं ।'

(रहस्य सर्ग)

'प्रसाद' जी को इस नियति के मूल में मानव की उद्‌बोधन-शक्ति का ही आभास मिला है। यह जीवात्मा को विविध सांसारिक प्रलोभनों का आभास एवम् उनके कष्टों का ज्ञान कराकर शिवत्व की ओर उन्मुख करने वाली महान् शक्ति है। ज्यों-ज्यों मानव अपनी इस क्रिया में बोध के आधार पर ज्ञान की ओर बढ़ता जाता है त्यों-त्यों नियति के बंधन ढीले होते जाते हैं।

स्वतंत्रता की भावना को इन्होंने 'चिति' की अपनी कल्पना के आध्यम से व्यक्त किया है। उनका कथन है—

'कर रही लीलामय आनन्द महाचिति सजग हुई सी व्यक्त ।
विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब होते अनुरक्त ।'

(श्रद्धा सर्ग)

परन्तु उसकी विशेषता है कि—

'देश, कल्पना, काल, परिधि में होती लय है
काल खोजता महाचेतना में निज क्षय है ।।'

(संघर्ष सर्ग)

'प्रसाद' जी ने 'कामायनी' में अभेदवाद एवम् आभासवाद के द्वारा भी प्रत्यभिज्ञा दर्शन को मान्यता प्रदान की है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि यहाँ संपूर्ण जड़-चेतन पदार्थों को उसी एक 'चिति' का स्वरूप माना गया है। यह जगत भी उसी का रूप है। अतः 'चिति' की भाँति यह जगत भी सत्य है। 'प्रसाद' जी ने इसी भावना को 'कामायनी' में मुखरित किया है जहाँ 'एक तत्व की ही प्रधानता कहें इसे जड़ या चेतन' अथवा—

"काम मंगल से मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम
तिरस्कृत कर तुम उसको भूल बनाते हो असफल भवधाम।'

का घोष करते हैं वहाँ वे यही दिखाना चाहते है कि सम्पूर्ण सृष्टि उसी 'चिति' का लीला-वपु है। अतएव इसका तिरस्कार 'चिति' का तिरस्कार है। 'प्रसाद' जी मानते थे कि जब अद्वैत की भावना रहेगी तब तक "अभिलषित वस्तु तो दूर रहे हाँ मिले अनिच्छित दुःखद खेद' वाली बात ही चरितार्थ होगी। अतएव अद्वैत द्वारा भेदभाव एवम् आभासवाद ही उसको दूर करने में सक्षम है।

समरसता के सिद्धान्त द्वारा भी 'प्रसाद' जी ने प्रत्यभिज्ञा दर्शत को ही मान्यता दी है। यों समरसता के सिद्धान्त पर प्रायः बहुत लोगों ने बहुत कुछ लिखा है पर प्रसाद जी के इस सिद्धान्त का आधार शैव-प्रत्यभिज्ञा दर्शन है। स्पन्दकारिका में लिखा है कि—

'न दुःखं न सुखं यत्र, न ग्राह्यं ग्राहको न च।
न आस्ति मूढ़ भावोपि, तदस्ति परमार्थतः ॥'

अर्थात् यहाँ पहुँचने पर न दुःख रहता है न सुख, न ग्राह्य रहता है और न ग्राहक और न मूढ़ भाव ही रहता है। यहाँ परमार्थ तत्व मात्र शेष रहता है। प्रसाद जी ने तीन मलों एवम् षट् कंचुकों से आवृत्त मानव की संघर्षशील स्थिति का अनुभव किया था। उन्होंने देखा कि—

'विषमता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पंदित विश्व महान।
यही दुःख-सुख विकास का सत्य यही भूमाका मधुमय दान।।'

श्रद्धा सर्ग

इसी विषमता की पीड़ा से व्यस्त होने वाले विश्व को प्रसाद जी ने समरसता का संदेश दिया। उनके इस सिद्धान्त की विशेषता थी कि सामाजिक एवम् सांसारिक जीवन में समरसता के बावजूद उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में इसके अनुशीलन पर जोर दिया है। ज्ञान, इच्छा एवम् क्रिया के समन्वय से 'कामायनी' के अंत में आनन्द सर्ग में ऐसी समरसता का आभास दिया गया है जो सृष्टि के अणु-अणु को आनन्द-सुधा का रस पान कराने में सक्षम है।

प्रसाद जी के आनन्दवाद की पृष्ठभूमि भी शैवागम है। उपनिषदों में इसका वृहद् वर्णन है। तैत्तिरीय उपनिषद् कहता है—

'आनन्दो ब्रह्मेति । आनन्दाद्धये खल्विमानि
भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति ।
आनन्द प्रयन्त्यभिसंवि शंतीति ।।'

अर्थात् आनन्द ही ब्रह्म है। आनन्द से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होकर आनन्द से ही जीते हैं; तथा इस लौकिक जीवन से प्रस्थान करते समय भी अन्ततोगत्वा 'आनन्द' में ही लीन हो जाते हैं। प्रत्यभिज्ञान में भी शिव को सच्चिदानन्द कहा गया है और चिदानन्द-घन-रूप शिवत्व की प्राप्ति को मोक्ष की प्राप्ति कहा गया है। नरहरि स्वामी ने शिव की आनन्द से तुलना करते हुए लिखा है कि 'शिव आनन्द सागर है। उनकी शक्ति उस सागर का आनन्द वारि है और उनके भूतगण उस आनन्द-सागर के जल की बूंदें हैं।'[1]

प्रसाद जी ने अपने आनन्दवादी विचारों एवम् संस्कारों को कामायनी में विशद स्थान दिया है। इसमें उन्होंने आनन्द-पथ के पथिक के मार्ग में आने वाले मधुर आकर्षण, आसुरी प्रवृत्तियों एवम् तर्कमयी बुद्धि के व्यवधान की ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट किया है। इसके बावजूद वे यह संदेश दे सके हैं कि अगर साधक कर्मरत हृदय से शुद्ध प्रेम की सलाह पर चलता है, इच्छा, ज्ञान एवम् क्रिया के समन्वय को समझता है, हृदय एवम् बुद्धि में सामंजस्य स्थापित करता है तो वह एक दिन इस दिव्य आदर्श लोक में अवश्य पदार्पण करेगा। उन्होंने अपने इस महान् ग्रंथ में आनन्द की उस शाम्भवावस्था का भी वर्णन किया है जिसमें—

'समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था ।।'

जैसी स्थिति वर्तमान रहती है; परन्तु इस चित्रण में उनकी यह विशेषता है कि वे केवल दार्शनिक नहीं अपितु व्यावहारिक रूप में इन सिद्धान्तों को प्रस्तुत कर सके हैं।

'प्रसाद' जी ने कामायनी में गौण दार्शनिक विचारों को भी प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने बौद्धों के प्रभाव के अन्दर दुखवाद की ओर भी संकेत किया है, परन्तु बौद्धों से उनका मत प्रायः भिन्न है। वे जगत को उनकी तरह केवल दुःखमय नहीं अपितु सुख-दुःख से समन्वित मानते है। 'जीवन में दुःख अधिक या कि सुख मंदाकिनि कुछ बोलोगी' जैसे विचार उनके मानस-पटल पर अवश्य कौंध जाते हैं। अतएव वे कभी 'दुःख-जलधि के नाद अपार' में निमग्न होकर गोता लगाते हैं तो कभी 'व्यथा की नीली लहरों बीच बिखरते मणिगण द्युतिमान' का

---

[1] कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ४४१ ।

आभास पाकर आत्म-संतोष की साँस लेते हैं। कभी 'नभ की नील लता की डालों में इस दु:खमय जीवन का प्रकाश' पाकर आहें भरते हैं तो कभी 'कलियाँ जिनको मैं समझ रहा वे काँटे बिखरे आसपास' पर करुण क्रन्दन करते हैं। अतएव ऐसी स्थिति आ जाती है कि उनके करुणा-कलित हृदय में विकल रागिनी ध्वनित हो उठती है और हाहाकार स्वरों में उनकी असीम वेदना गरज उठती है। परन्तु यह वेदना का नग्न नर्तन निरंतर नहीं बना रहता। जिस प्रकार कामायनी में उनकी प्रकृति पराजय न स्वीकार करके उद्‌बुद्ध हो उठती है उसी प्रकार वे भी इस वेदना-पाश से मुक्त होते दृष्टिगोचर होते हैं, और सामान्य सांसारिकता का त्याग करके आनन्द की उत्ताल तरंगों पर आलोड़ित होते हुए अनुभव करते हैं—

'चिर मिलन प्रकृति से पुलकित वह चेतन पुरुष पुरातन।
निज शक्ति तरंगायित था आनन्द अम्बुनिधि शोभन ॥'

आनन्द सर्ग

प्रसाद जी बौद्धों के साथ ही साथ वैष्णव विचारकों से भी प्रभावित हैं। अतएव उनके जीवन में करुणा का भी दर्शन होता है। यथार्थ में करुणा हृदय की एक ऐसी संवेदनशील प्रवृत्ति है जो मानव प्रकृति को परिष्कृत करके उसे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की ओर उन्मुख करती है। कामायनीकार ने करुणा को इसी व्यापक पृष्ठभूमि में ग्रहण किया है। 'अजातशत्रु' में उन्होंने कहा है कि 'मानव-सृष्टि का विकास करुणा के लिए ही हुआ है क्योंकि क्रूरता आदि कार्य मानव के लिए नहीं अपितु हिंस्र पशुओं के लिए बने हैं। यह करुणा प्राणि मात्र में समदृष्टि का प्रसार करती है। इसी के कारण उषा एवं संध्या राग-रंजित प्रतीत होती हैं। यही शिशु के मुख पर चन्द्र-कान्ति की वर्षा करती है। यही तारों के मुख से ओस की बूँदे गिराया करती है। यही निष्ठुर जीवों को पराजित करती है और इसी करुणा के कारण मानव का महत्व संसार में फैला हुआ है।'[1] कामायनी में करुणा का यही प्रशस्त आधार है। इसका प्रथम दर्शन तो मनु के विगत जीवन की त्रुटियों के अवलोकन में दृष्टिगोचर होता है। तीसरा स्थल कामायनी में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रद्धा, इड़ा के पास जाती है तो प्रथम उसे क्रोध होता है परन्तु कुछ समय बाद इड़ा को भी अपनी ही स्थिति में पाकर उसका करुणामय स्नेह तरंगायित हो उठता है तथा अपने पुत्र कुमार को भी उसी को सौंप देती है।

'प्रसाद' जी ने भौतिकता का भी चित्रण कामायनी में किया है। इसका

---

[1] जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु, पृ० १६१।

प्रथम स्वरूप तो 'मनु' की चिन्ता में व्यक्त जीवन की प्रथम झाँकी में मिलता है और दूसरा स्वरूप सारस्वत प्रदेश के क्रिया-कलाप में दृष्टिगोचर होता है। परन्तु इन दोनों के माध्यम से 'प्रसाद' जी ने आज की मानवता को एक संदेश दिया है। दोनों ही स्थितियों में मानव भौतिकता का अतिक्रमण करके पतनोन्मुख हुआ है। उनका यह विचार था कि भौतिकता के साथ अध्यात्मवाद का समन्वय होने पर मानव का उत्कर्ष संभव है। यह समन्वय कामायनी में उस स्थान पर पूरा भी हो जाता है जब सारस्वत प्रदेश के लोगों को कैलाश-शिखर पर पहुँचा कर अखण्ड अनुभव में लीन दिखाया गया है।

इस प्रकार इन दोनों ही लेखकों के मूल में हम दार्शनिक प्रवृत्ति को मुखरित पाते हैं। 'प्रसाद' की तरह शेली भी सृष्टि के अन्तराल में छिपे सामंजस्य से पूर्ण परिचित है। 'प्रसाद' के प्रत्यभिज्ञा दर्शन का ज्ञान तथा 'शेली' पर 'प्लेटो' का प्रभाव उन्हें विशेष रूप से इस ओर उन्मुख करते हैं। 'शेली' केवल प्रेम द्वारा इस सामंजस्य को प्राप्त करने की बात करता हैं। 'प्रसाद' जी ने कामायनी में प्रेम की महत्ता को स्वीकृति प्रदान की है पर वह प्रेम श्रद्धा-समन्वित प्रेम है। अन्याय को दोनों ही शाश्वत नहीं मानते। 'प्रसाद' के तत्वमसि के संदेश में इसका निराकरण निहित है। आनन्द को दोनों ही महत्व प्रदान करते हैं तथा उससे आध्यात्मिकता का तादात्म्य स्थापित करते हैं। आदर्श सौन्दर्य का नैतिक एवं बौद्धिक प्रकृति के साथ संबंध होने पर 'शेली' जिस स्थिति की कल्पना करता है उसमें 'प्रसाद' जी के आनन्दवादी दष्टिकोण की प्रतिध्वनि मिलती है। चतुर्थ अंक में मुक्ति के पश्चात् सभी कुछ परिवर्तित होकर एक नवीन दृष्टिकोण का परिचायक बन जाता है। इसके मूल में प्रेम के आधार पर परिवर्तन द्वारा प्राप्त समरसता की भावना दीप्त हो उठती है। 'प्रसाद' एवं 'शेली' दोनों ही इस बात को मानते हैं कि मानव के रहस्य का दर्शन करके प्रकृति के कण-कण से तादात्म्य स्थापित करने के लिए नैतिक उत्थान एवं प्रेममय वैचारिक क्रान्ति आवश्यक है। 'प्रोमीथियस' एवं 'मनु' दोनों ही इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। मनु को भी श्रद्धा के समन्वय द्वारा बुद्धि के सीमित क्षेत्र के परित्याग के पश्चात् ही रहस्य के दर्शन होते हैं। 'प्रोमीथियस' भी जीवन में असीम मानव-यातनाओं को सहन करने के बाद जीवन-सिद्धान्त 'डेमोगार्गन' तथा आदर्श सौन्दर्य 'एसिया' की सहायता से अपने स्वप्नों के रहस्यमय स्वरूप को प्राप्त करता है। 'प्लेटो' की तरह शेली एवं प्रसाद दोनों में ही विश्वात्मा की कल्पना परिलक्षित होती है; वे दोनों ही मैटर से स्पिरिट को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। फिर भी यहाँ इनमें स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है। 'प्रसाद' प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर प्रकृति के कण-कण को

उसी विश्व-नियन्ता की सर्जन-शक्ति का अंश मानते हैं। अतएव वे 'शेली, की तरह मैटर का पूर्ण परित्याग करने में असमर्थ हैं। वेदान्त दर्शन की तरह ग्रीक लोगों ने भी प्रकृति को सजीव माना है। अतएव 'शेली' एवम् 'प्रसाद' दोनों ही इसके एक-से समर्थन दीख पड़ते हैं। 'तुलीदास' के हिमालय की तरह प्रसाद का हिमालय बिल्कुल मानवोचित व्यवहार नहीं करता फिर भी वह जो रहस्यमय भाग अदा करता है वह अद्वितीय है। शेली ने भी 'जोव' के द्वारा भेजी गई विपत्तियों तथा पृथ्वी एवम् आकाश का मानवीकरण करके प्रायः वेदान्त दर्शन को ही मान्यता दी है, जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति 'प्रसाद' में हुई है। दोनों कवि करुणा के कवि हैं और जीवन-साधना में कष्ट को आत्म-परिष्कार का माध्यम मानते हैं। दोनों ही मानवता के ज्वलंत प्रश्नों को अपने दर्शन का विषय मनाते हैं। शेली केवल बुराई के सिद्धान्त को लेकर उसी तक अपने को सीमित न करके विविध रूपों द्वारा नवीन युग का संदेश देते हैं तो 'प्रसाद' अपने दर्शन के विभिन्न उपयोग द्वारा आध्यात्मिकता का अनुगमन करके विशिष्ट आनन्द की उपलब्धि को ही अपना आधार मानते हैं। मानवता की मुक्ति के शाश्वत पथ के अनुनधान में इन दोनों ही कवियों ने या तो भौतिकता को हेय ठहराया है या विशिष्ट आध्यात्मिक गुणों के प्रति आग्रह प्रदर्शित करके आध्यत्मिक भौतिकता का संदेश दिया है।

इस दार्शनिक विवेचन द्वारा 'प्रोंमौमिथस अनबाउण्ड' एवम् कामायनी-दर्शन की भिन्नता भी स्पष्ट है। जीव एवम् ब्रह्म को भारतीय कल्पना, माया का स्वरूप, साधक के मार्ग की कठिनाई,त्रिगुण एवम् षट्चक्र, त्रिपुर-कल्पना, काम का रहस्य, भ्रम-विवेचन आदि 'प्रसाद' दर्शन की ऐसी बातें हैं जिनका 'शेली' में दर्शन नहीं होत। शेली में भी प्लेटो आधार पर केवल विचार को ही विश्व मान लेना, सभी प्रकार की मनाव-विरोधी परंपराओं को मानव विरोधी-मानना, मैत्र क्रान्ति को ही अत्यधिक महत्व देना, अथवा न्याय-अन्याय की इतनी बृहत् विवेचना करना आदि ऐसे विचारों का दर्शन होता है जो 'प्रसाद' की कामायनी में नहीं दृष्टिगोचर होता है। दोनों के ही दर्शन में मानवीयता मुखरित हो उठी है परन्तु इसकी पृष्ठभूमि एक दूसरे से भिन्न है।

इस प्रकार दार्शनिक पृष्ठभूमि के भिन्न होते हुए भी इस ग्रंथों में कुछ साम्य है। यह साम्य शाश्वत समस्याओं द्वारा मानव-मस्तिष्क पर उत्पन्न किए हुए एक प्रभाव का साम्य है। नौतिकता, उत्पीड़न, शोषण, नैतिकता आदि ऐसी

समस्यायें हैं जिनका हल चिरंतन काल से ढूंढ़ा जा रहा है। प्रत्येक देश एवम् प्रत्येक युग के मानव ने इस पर दृष्टिपात किया है और मानव-हित और कल्याण से प्रभावित होने के कारण प्रायः निष्कर्ष भी एक-सा निकला है। यह साम्य इसी निष्कर्ष का परिणाम है। प्रस्तुत लेखक की स्वतः धारणा है कि इंगलैंड की अपेक्षा भारत अधिक दर्शन-प्रधान है। यहाँ दर्शन का बडा ही सूक्ष्म विवेचन हुआ है। अतएव 'कामायनी' में जो भारतीय दर्शन पर आधारित है, प्रोमीथियस से अधिक दार्शनिक विशेषता का मिलना स्वाभाविक है।

कथा-रूप

'प्रोमीथियस अनबाउन्ड' मानवता के उद्धारक 'प्रोमीथियस' के स्वगत कथन से आरम्भ होता है। प्रोमीथियस, जुपिटर द्वारा बंदी बनाकर काकेशस की चोटियों से बाँध दिया गया है। यह स्वगत कथन जुपिटर के अधःपतन एवम् उत्पीड़न को चित्रित करता है। ईश्वरत्व को छोड़कर उसके अधिकार में सब कुछ है। वह सर्व-शक्तिमान नहीं है फिर भी उसमें इतनी शक्ति है कि वह 'प्रोमीथियस' को गुलाम बना लेता है। प्रोमीथियस की यह धारणा है कि 'जुपिटर' किसी न किसी रूप में उसी की सृष्टि है। उसी ने उसे शक्ति अधिकृत करने की आज्ञा दी है। यह लम्बा संबोधन इस भावना से साथ समाप्त होता है कि तत्व जुपिटर को उस अभिशाप का विषय बनायेंगे जिसका पूर्व आश्रय वह ले चुका है, परन्तु जो उसे याद नहीं है। ये तत्व भी जुपिटर के भय के कारण कोई भी इस प्रकार का कार्य सम्पादित कर सकने में असमर्थ हैं। पृथ्वी 'प्रोमीथियस' की जननी और जुपिटर की प्रताड़ना का विषय है। फिर भी वह किसी प्रकार के विध्वंस, प्लेग, भुखमरी अथवा विषय अथवा विषययुक्त वातावरण द्वारा अपने बच्चों को दुःखी नहीं करना चाहती। 'जुपिटर' की संरक्षिका प्रतिच्छाया 'प्रोमीथियस' को उसका अभिशाप सुनाती है। वह उसे सुनते ही कह उठता है—

> 'इसका मुझे दुःख है। शब्द जल्दी ही व्यर्थ निस्सरित हो जाते हैं। दुःख अंधा होता है और मेरा कष्ट भी विचारहीन स्थिति को प्राप्त हो गया है। किसी भी जीवित व्यक्ति को मैं कष्ट से पीड़ित देखना नहीं चाहता।'[1]

---

[1] It doth repent me, words are quick and vain.
Grief for a while is blind, and was mine,
I wish no living thing to suffer pain.

पृथ्वी इस बात को सुनते ही शंकाकुल हो उठती है कि कहीं 'प्रोमीथियस' 'जुपिटर' की अनैतिक एवम् उद्दण्ड भावनाओं के प्रति आत्मासमर्पण न करे, नहीं तो उसका और मानवता का सर्वनाश हो जायगा। 'जुपिटर' अभी अजान से ग्रसित है। वह मानसिक एवम् भौतिक दोनों प्रकार के तत्वों को अपने बंदी 'प्रोमीथियस' को प्रताड़ित करने के लिए भेजता है। मरकरी जुपिटर को बंदी करके आत्म-समर्पण के लिये बाध्य करता है। इससे पश्चात् ये विपत्तियाँ प्रोमीथियस के समक्ष उस दुष्कृत्य एवम् निष्ठुरता का चित्र प्रस्तुत करती जो मानवता को प्रताड़ित करती रहती हैं। ये केवल भुखमरी, युद्ध एवम् प्लेग जैसे भौतिक अभिशाप नहीं हैं अपितु उनसे भी बुरे रूप में मानवता को परवश बनाने वाले निरंकुश दम्भ, पाखण्ड, नियम, परम्परा एवम् धर्म भी हैं। सबसे कारुणिक स्वप्न यह है जिसमें जीवन को समर्पित करके प्रेम एवम् दया के आधार पर विश्व का भरण-पोषण करने वाले क्राइस्ट भी आज सर्वत्र बुराई को मान्यता देने वाले अन्धविश्वासी अनु-याइयों के हाथ में पड़ गये हैं। परन्तु इस स्वप्न के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी स्वप्न हैं जिनमें भविष्य के प्रति आशा का भाव निहित है तथा जिनसे प्रेम, त्याग एवम् कलात्मक सर्जन का भाव प्रबल होता है।

दूसरे अंक के आरम्भ में ही 'एसिया' का दर्शन होता हैं जो सौन्दर्य-प्राण होने के साथ ही साथ प्रेम की मूर्ति है। वह प्रोमीथियस से बहुत दिनों से विलग है। पैंथिया उसे यह बताती है कि वह (एसिया) रहस्यमय ध्वनियों एवम् प्रति-ध्वनियों का अनुगमन करती हुई वहाँ तक जाय जहाँ तक वे उसे ले जाती हैं। 'एसिया' को भी इस बात का ध्यान होता है कि प्रोमीथियस की मुक्ति का समय पास आ गया है। अतएव वह पैंथिया' के शब्दों को मान लेती है। उसकी यात्रा उसे प्रतीक रूप से ऐन्द्रिय मृगमरीचिका एवम् भौतिक जीवन के यथार्थ के परे पूर्वजन्म की स्थिति का ज्ञान करा देती है। वहाँ वह 'डेमोगार्गन' की गुफा में जाती है। 'डेमोगार्गन' जीवन-सिद्धान्त का प्रतीक है। उसे कुछ लोग अन्तिम सत्य का स्वरूप भी मानते हैं। वह डेमोगार्गन से विविध प्रश्न करती है। उसका प्रश्न है कि ईश्वर कौन है और क्या है? क्या वह सर्वशक्तिमान् है? अगर वह अनन्त शक्ति-संयुत है तो विश्व में कलुष, दुष्कृत्य एवम् बुराई क्यों है? 'डेमोगार्गन' कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पाता है फिर भी इस विवाद से उसे एक सत्य का ज्ञान हो जाता है कि अन्याय का नियंत्रक 'जुपिटर' अनन्त शक्तिमान् परमेश्वर नहीं है। वह तो केवल मानव-सर्जन का परिणाम है। लोग उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। अतएव वह अनन्त निरंकुश शक्तियों का स्वामी बन गया है। मानव अपनी

कल्पनानुसार ईश्वर का सर्जन करता रहता है। अगर एक बार भी वह इस कल्पना में सफल हो गया तो यह भ्रान्त धारणा, परंपरा एवम् अन्धविश्वास के आधार पर उसे अपनी निरंकुशता से अवश्य अभिभूत कर देती है। केवल प्रेम इस निरंकुशता से मानव-उद्धार कर सकता है। प्रथम अंक में अभिशाप के के प्रत्यादेश पर पश्चाताप द्वारा जिस मानव-प्रेम का बीज-वपन किया गया है उसमें हमें जुपिटर की भविष्यवाणी के दर्शन होते हैं। प्रेम की यह कल्पना उस भावना को और भी प्रबल बना देती है। जुपिटर को क्षमा करके, घृणा पर प्रेम का आधिपत्य स्थापित करके प्रोमीथियस ने अब एक प्रकार के अपने शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली है। इस विजय की नाटकीय अभिव्यक्ति बाद में होती है।

इसके बाद जुपिटर मानव को शाश्वत दासता के बंधन से लांध देना चाहता है उस भावना के अन्दर उसके राज्य की सुरक्षा की प्रवृत्ति क्रियाशील है। अतएव अंतिम सत्य जीवन-सिद्धान्त तथा मानवी भाग्य के प्रतीक 'डेमोगार्गन' का नाश करने के लिये वह एक शैतान का सर्जन करता है। जुपिटर द्वारा सर्जित वह शैतान उस आवश्यकता का प्रतीक है जो मानवता को दासता की जंजीरों से आबद्ध करता है और उसके अन्दर वह विश्वास उत्पन्न करता है कि वह तो परिस्थिति का दास है, स्वामी नहीं। 'शेली' की यह मान्यता इच्छा-शक्ति के मनोवैज्ञानिक स्वरूप पर अच्छा प्रकाश डालती है। हमारी स्वतंत्रता एवम् पर-तंत्रता हमारी मानसिक एवम् भौतिक मान्यता की अनुगामिनी है अगर हम यह मान लेते हैं कि हम परतंत्र हैं तो परतंत्र रहेंगे। अगर हम यह मान लें कि हम स्वतंत्र हैं तो कुछ सीमा तक विश्व को भी वैसा ही बनाने का प्रयास कर सकते हैं। सुकृति, दुष्कृति, स्वतन्त्रता, परतन्त्रता सदैव मानव-मस्तिष्क में उपस्थित रहते हैं और अपनी च्इछानुसार भौतिक विश्व का नियन्त्रण भी करते रहते हैं। विश्व को दास बनाने वाली इसी निम्न भौतिक आवश्यकता पर 'डेमोगार्गन' विजय प्राप्त करता है। घृणा के परित्याग द्वारा प्रोमीथियस अपने को विश्व-नियन्त्रक प्रेम से आभूषित करता है। इसी प्रेम को 'शेली' भाग्य-निर्णायक की भी संज्ञा देता है। यहाँ 'शेली' की इस एकता में हमें सर्वांगपूर्ण रहस्मय जीवन एवम् शक्ति के स्रोत तथा सर्जनात्मक मस्तिष्क एवम् क्रियाशील इच्छा-शक्ति के अभाव की त्रयात्मकता का दर्शन प्राप्त होता है। इस विचार में 'प्रोमीथियस'—मानवता अपने में प्रेम के स्वरूप को विकसित करके ईश्वरत्व को प्राप्त करता है और पुनः ईश्वर की निर्णायिका शक्ति की स्थिति में अपने को रखकर 'डेमोगार्गन' से भी अपने विचारों का प्रतिपादन कराता है।

चतुर्थ अंक हमारे समक्ष मुक्त मानवता के विविध स्वरूप को चित्रित करता है। इस अवस्था में प्रेम ही परिस्थितियों का विधायक और उनका निर्णायक है। 'जुपिटर' की आज्ञा से दुष्कृत्य में लीन बुरी शक्तियाँ प्रेम की ही अनुगामिनी बन गई हैं। अब प्रकृति मानवता के लिये विनाशक नहीं है क्योंकि भूकम्प और ज्वालामुखी विस्फोट अब नहीं होते। घृणा के वातावरण से मुक्त होकर प्रेमपूर्ण वातावरण में विहार करने के कारण प्रकृति के कण-कण आनन्दगीत गाते हैं। स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि 'शेली' की यह धारणा है कि अगर मनुष्य अपने को नियंत्रित करना सीख ले तो इससे उसे ऐसी शक्ति भी उपलब्ध हो सकती है कि वह विश्व-नियमन भी कर सकता है।

'कामायनी' में प्रसाद जी ने कथा को संक्षिप्त रूप में लिया है। भयंकर जल-प्लावन के पश्चात् सब कुछ नष्ट हो जाता है। केवल मनु की नौका एक महामत्स्य की चपेट खाकर मनु के साथ हिमालय से टकराती है। मनु वहीं उतर पड़ते हैं और जल-प्लावन हटने के पश्चात् शालियाँ बीन कर यज्ञ आरम्भ करते हैं। अचानक भटकती हुई 'श्रद्धा' वहाँ आ पहुँचती है। 'श्रद्धा' मनु को अपने को समर्पित करके मानव-सभ्यता के आरम्भिक उपकरणों को जुटाती है। इसी समय 'आकुलि' एवम् 'किलात' नामक दो असुर पुरोहितों का आगमन होता है। ये मनु को पशुबलि द्वारा मित्रावरुण यज्ञ करने की सलाह देते हैं। मनु पशुबलि की ओर उन्मुख होते हैं। आखेट आदि उनकी दिनचर्या के प्रमुख अंग बन जाते है। 'श्रद्धा' उन्हें इस कार्य से विरत करना चाहती है। पर 'मनु' उससे विमुख नहीं होते। श्रद्धा इसी बीच गर्भवती हो जाती है और भावी शिशु के लिये आवश्यक सामग्री संचय करने लगती है। मनु के अन्दर ईर्ष्या का भाव पैदा होता है। वे 'श्रद्धा' को छोड़कर चले जाते हैं और उनकी भेंट 'इड़ा' से होती है। 'इड़ा' मनु से प्रभावित होकर अपने राज्य का कार्यभार उन्हें सौंपती है, किन्तु मनु मात्र इतने से ही संतुष्ट नहीं होते। वे 'इड़ा' को भी अपनी वासना का शिकार बनाना चाहते हैं, पर इस निरंकुश आचरण के कारण देवता रुष्ट हो जाते हैं, जनक्रान्ति होती है और 'किलात' एवम् 'आकुलि' के नेतृत्व में जनता 'मनु' पर आक्रमण कर देती है। 'मनु' किलात एवम् आकुलि को मार गिराते हैं परन्तु प्रजा से पराजित होकर वे मुमूर्ष दशा में पृथ्वी पर गिर जाते हैं।

'श्रद्धा' इधर 'मनु' से वियुक्त होकर अपना जीवन बिताती है। एक रात स्वप्न में मनु को दुर्घटनाग्रस्त देखकर वह उन्हें खोजने निकल पड़ती है। वह उस स्थान पर पहुँच जाती है जहाँ 'मनु' घायल अवस्था में पड़े हुये हैं। वे 'श्रद्धा'

की सेवा-शुश्रुषा एवम् उपचार से शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं। उन्हें आत्मग्लानि होती है और वे श्रद्धा को छोड़कर पुनः चल पड़ते हैं। श्रद्धा 'मानव' को 'इड़ा' को समर्पित करके मनु को ढूंढ़ने निकल पड़ती है। 'मनु' सरस्वती-तट पर तपस्या करते दृष्टिगोचर होते हैं। 'श्रद्धा' के वहाँ पहुँचते ही 'मनु' को नटराज शिव का दर्शन होता है। 'मनु' श्रद्धा से अपने को वहाँ तक ले जाने का आग्रह करते हैं। श्रद्धा भी मार्ग में उन्हें त्रिपुर-रहस्य समझाती हुई उनका पथ-प्रदर्शन करती है। वह त्रिपुर इच्छा, ज्ञान एवम् क्रिया से सम्बद्ध भावलोक, ज्ञानलोक एवं क्रियालोक हैं, परन्तु ये अपनी पृथक्ता के कारण अपूर्ण हैं। श्रद्धा इन तीनों को अपनी स्थिति से समन्वित कर देती है। अब मनु को समस्त विश्व में अनहद नाद सुनाई पड़ने लगता है, उनकी सांसारिकता नष्ट हो जाती है और वे तन्मय होकर अखण्ड आनन्द का उपभोग करते हैं। 'मनु' के इस आनन्द के केन्द्र-स्थल का नाम कैलाश है। कुछ समय पश्चात् 'मानव' एवम् 'इड़ा' भी अपनी समस्त प्रजा के साथ उस स्थल पर पहुँच कर श्रद्धा एवम् मनु से भेंट करते हैं। उनके हृदय का कलुष मिट जाता है। वे समरसता को प्राप्त कर आनन्द-मग्न हो जाते हैं।

कथारूप की दृष्टि से विचार करने पर बाह्य दृष्टि से दोनों में वैषम्य ही दृष्टिगोचर होता है, फिर भी थोड़ा मनन करने पर यह वैषम्य की महानता धूमिल होती दीख पड़ती है। 'मनु' प्रलय के पश्चात् हिमालय पर पहुँचते हैं और दूसरी तरफ 'प्रोमीथियस' काकेशस से बँधा है। दोनों के हृदय में तरह-तरह के विचार उठते हैं और दोनों चिन्ता-मग्न हैं। दोनों में चिन्तन की पृष्ठभूमि मानवीय है। 'प्रसाद' के 'मनु' से श्रद्धा का प्रथम दर्शन होता है तथा प्रथम अंक की समाप्ति के बाद 'प्रोमीथियस' से 'एसिया' के मिलन की योजना की गई है। तीसरे अंक में 'जुपिटर' विविध प्रकार से लोगों को प्रताड़ित करके बन्धनयुक्त बनाने के लिए उत्सुक है। इधर 'कामायनी' में भी श्रद्धा से पलायित मनु सारस्वत प्रदेश में निरंकुश हो जाता है। 'प्रोमीथियस' एवं 'एसिया' का वियोग अगर 'प्रोमीथियस' के लिए यातनाओं का काल रहा है तो मनु भी जब कभी श्रद्धा से वियुक्त हुए हैं तभी जीवन के संघर्ष में पड़े हैं। 'प्रोमीथियस' से 'एसिया' का संयोग अगर सुखद एवम् आशाप्रद भविष्य का द्योतक है तो 'मनु' से 'श्रद्धा' का संयोग भी 'मनु' को पूर्णता प्रदान करता है। कथानक के आरम्भ की चिन्ताग्रस्त अवस्था अन्त में आनन्द एवम् सुखद परिस्थिति में बदल जाती है। फिर भी साम्य की अपेक्षा वैषम्य कहीं अधिक है। इसकी विवेचना प्रायः पीछे के अंशों में की जा चुकी है।

रूपक तत्व एवम् उसकी विवेचना

इसी तुलनात्मक विवेचना में 'पात्र एवं उनसे संबद्ध विचार' शीर्षकान्तर्गत पात्र क्या हैं और उनसे कवि क्या अभिव्यक्त करना चाहते हैं आदि बातों की चर्चा की जा चुकी है। यहाँ केवल रूपक की विवेचना ही अभीष्ट है।

'रूपक काव्य से तात्पर्य ऐसे काव्य से है जिसमें प्रस्तुत पात्रों एवम् प्रस्तुत कथा पर किन्हीं अप्रस्तुत बातों का निषेधरहित आरोप किया गया हो और एक अभिनेता की भाँति वे पात्र कथा के अन्त तक उसका पूरा निर्वाह करते हों।'[1] पाश्चात्य विचारक एबरक्राम्बी ने भी रूपक काव्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि रूपक में महाकाव्य न होते हुए भी महाकाव्य का विशिष्ट गुण हो सकता है........वे हमें ऐसे क्षेत्र में ले जाते हैं जहाँ कोई भी ऐसी बात घटित नहीं होती है जो महत्वपूर्ण न हो। प्रत्येक कविता में स्वष्ट रूप से प्रबल प्रतीक उद्देश्य होता है जो इसे महान् मोड़ प्रदान करके इसको निर्देशित करता है। रूपक के लिए दक्षतापूर्वक सुलझाई काल्पनिक सामग्री की आवश्यकता होती है। अत्यधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके कथानक को कवि-प्रतिभा की उपज होना चाहिए। वह महाकाव्य के सदृश ठोस यथार्थ से सर्वदा दूर होता है। रूपक काव्य में जीवन की कुछ महत्वपूर्ण बातों पर विशेष जोर देकर उन्हीं को समझाने का प्रयत्न किया किया जाता है।[2]

इन दोनों उद्धरणों के आधार पर जब हम प्रोमीथियस अनबाउन्ड एवं कामायनी पर रूपक की दृष्टि से विचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इनमें रूपक काव्य की विशेषताएँ विद्यमान हैं। इन दोनों ही कृतियों की कथा द्वयर्थक है। इनमें एक ओर तो ऐतिहासिक उपाख्यान के दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर

---

[1] **पं० रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली की भूमिका।**

[2] Allegory may have an epical duality, without being an epic. They take us into regions in which nothing happens that is not significant, dominant, noticeably symbolic purpose presides over each poem, moulds it greatly and informs it throughout. Allegory requires materials ingeniously manipulated and fantastic. What is more important it requires materials invented by poet himself. That is long way from the solid reality of the materials which epic requires. Allegory is beautiful way of enculcating and asserting some special significance of life.—*The Eqic*, by L. Abercrombie, pp. 52-54.

इनका संकेतात्मक अर्थ भी दृष्टिगोचर होता है। कथा अगर पूर्ण कल्पित नहीं तो अधिकांश रूप में कल्पित है। एतदर्थ इन पर रूपक दृष्टि से विचार करना उपयुक्त है।

सामाजिक एवम् राजनीतिक रूपक

दोनों ही कवियों का भौतिकवादी चिन्तन इन काव्यों में अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ है। 'शेली' का 'प्रोमीथियस' ऐसी मानवता का प्रतीक है जो ईश्वरीय प्रेम एवम् सौन्दर्य में निमग्न होकर, सौन्दर्य में पूर्णरूपेण डूबकर, कष्ट के माध्यम से बौद्धिकता की प्राप्ति एवम् अन्याय के निराकरण का प्रयत्न करता है। 'जुपिटर' राजनीतिक एवम् सामाजिक निरंकुशता का प्रतीक है। 'डेमोगार्गन' प्रच्छन्न रूप से राजनीतिक अन्तर्दृष्टि रखने के कारण इंगलैंड में चलने वाली १८ वीं शती की उस बौद्धिकता का प्रतीक है जो बाद में 'रूसो' एवम् अन्य विचारकों के हाथ में भयंकर क्रान्ति का अग्रदूत बन सकी है। 'थेटिस' एवं जुपिटर का पुत्र होने के कारण डेमोगार्गन राजनीतिक शासकों एवम् धार्मिक गुरुओं के संमिलित प्रयास के विरुद्ध क्रान्तिकारी प्रतिक्रिया का प्रतीक है। अपने प्रारम्भिक स्वरूप में वह फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के आरम्भ के सदृश निराशापूर्ण, भयंकर एवम् आश्चर्यजनक है परन्तु बुराई के सर्वनाश के पश्चात् उसका स्वरूप बदल जाता है और वह पुनरुत्थान की प्रतिक्रिया का सहायक बन जाता है। 'शेली' की इस धारणा के पीछे यह भावना निहित थी कि 'फ्रान्स' की राज्यक्रान्ति द्वारा प्रबुद्ध ज्वाला राजनीतिक क्षेत्र में असफलता द्वारा कभी भी बुझाई नहीं जा सकी।

'कामायनी' में प्रसाद जी ने भी विशुद्ध राजनीतिक एवम् सामाजिक स्तर पर विचार किया है। आज का मानव श्रद्धाविहीन होकर बुद्धि व्यवसाय के जाल में आबद्ध है। फलस्वरूप हिंसा, विद्रोह, विप्लव उस पर तरह-तरह से अपना आधिकार जमाए हैं। काम की यह उक्ति इसका ज्वलन्त प्रमाण है—

> यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि।
> द्वयता में लगी निरन्तर ही, वर्णों की करती रहे सृष्टि।
> अनजान समस्यायें गढ़तीं रचतीं हो अपनी ही विनष्टि।
> कोलाहल कलह अनन्त चले, एकता नष्ट हो बढ़े भेद।
> अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुःखद खेद।

आज के युग का इससे अधिक उपयुक्त वर्णन नहीं हो सकता। इससे ऊब कर 'मनु' सारस्वत प्रदेश में श्रद्धा से कहते हैं—

'ले चल इस छाया से बाहर,
मुझको दे न यहाँ रहने।
मुक्त नील नभ के नीचे,
कहीं गुहा में रह लेंगे।'

यथार्थ में यह विश्व भौतिकता से आबद्ध है परन्तु चैतन्य मनु जैसे लोगों को सारस्वत प्रदेश के बुद्धि, वैभव, ऐश्वर्य एवं विलास के बावजूद यह आकृष्ट नहीं कर पाता। वे तो चिरंतन सत्य की खोज में सतत रत रहते हैं। 'प्रसाद' जी की भी यही धारणा है कि जब तक यह बुद्धि-वैभव हृदय की रागात्मिका वृत्ति से हीन है तब तक उसके निस्तार की बात असम्भव है। यही कारण है कि सारस्वत प्रदेश में मनु जो भी नियम बनाते हैं वह जगत के लिए तो है पर स्वयम् नियामक 'मनु' की निरंकुशता उसमें नहीं बँध पाती। स्वयम् 'जुपिटर' जो 'प्रोमीथियस' को परतंत्र बनाने तथा मानवता को उत्पीड़न-पाश से आबद्ध करने के लिए तत्पर है, प्रतिशोध की भावना के आधार पर प्रताड़ना द्वारा अपने स्वत्व की ही रक्षा में संलग्न परिलक्षित होता है। 'जुपिटर' प्रेमहीन है और 'मनु' भी श्रद्धाविहीन हैं। अतः इन दोनों कवियों ने आज के शासक वर्ग को यह सन्देश दिया है कि जब तक वे अपनी निरंकुश स्वार्थ-वृत्ति की रक्षा के लिए समाज का शोषण एवं नियंत्रण करते रहेंगे तब तक जनभावना संतुष्ट नहीं हो सकती। निरन्तर संघर्ष एवं विरोध चलते रहेंगे।

धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता का रूपक

इनके धार्मिक एवं आध्यात्मिक विचार इन कृतियों में मुखरित हुए हैं। इनकी अभिव्यक्ति रूपकों के माध्यम से हुई है। 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' में 'प्रोमीथियस' का शिला से बाँधा जाना मानवता के संरक्षक 'क्राइस्ट' के क्रास से बाँधे जाने का प्रतीक है। 'जुपिटर' अन्धविश्वास एवं परंपरागत रूढ़ियों से आबद्ध है। 'एसिया' अपनी दो बहनों 'पैंथिया' एवं 'आओन' के साथ प्रेम, विश्वास, एवं उदारता की प्रतीक है। 'डेमोगार्गन' उस 'निमेसिस' का प्रतीक है जो प्रताड़नापूर्ण एवम् भ्रामक धर्म के स्थान पर नवीन चेतना उत्पन्न करना चाहता है। न्याय एवं अन्याय के संघर्ष में प्रेम-संबलित न्याय विजयी होता है और अन्याय का सर्वनाश होता है।

भारतीय धर्म चिन्तन-प्रधान एवं आध्यात्मिक रहा है। 'कामायनी' की कथा 'मनु' एवं श्रद्धा के संयोग से मानव-सृष्टि के विकास के साथ ही साथ मन की उलझन को सुलझाती हुई यह व्यक्त करती है कि आनन्द की प्राप्ति कैसे संभव हो सकती है। कैवल्य को केवल बुद्धि द्वारा प्राप्त करना असम्भव है। उसके लिए श्रद्धा-समन्वित हृदय की आवश्यकता है। 'श्रद्धा' एवम् 'इड़ा' मन की दो वृत्तियाँ हैं। एक अपनी आत्मोन्मुखी विशेषता के कारण अन्त में आनन्द का अनुभव कराती है और दूसरी अपनी आत्मोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति को विप्लव एवम् संघर्ष में डाल देती है। श्रद्धा से वियुक्त होकर मन और बुद्धि का व्यभिचार में पड़ा रहना ही अशान्ति का मूल कारण है। त्रिपुर-रहस्य भी जीवन के लिए एकांगिता का विरोधी है। अतएव मनु (मन), श्रद्धा (श्रद्धा) एवं इड़ा (बुद्धि) में समन्वय ही मनुष्य की अशान्ति को समाप्त कर सकता है। यही इन कवियों का महान् जीवन-संदेश है।

कुछ लोगों ने 'कामायनी' में रूपक तत्व का विरोध किया है। 'कामायनी' रूपक काव्य माना जाय या महाकाव्य माना जाय इस पर बड़ी गरम बहस है। 'कामायनी' को रूपक काव्य न मानने के लिए निम्नांकित तर्क दिए जाते हैं—

(१) तैत्तिरीय उपनिषद् में पंचकोषों में से कामायनी में तीन ही हैं।

(२) कथा पूर्णरूपेण कल्पित नहीं है।

(३) यथास्थान यथार्थ का दर्शन होता रहता है।

(४) जो प्रतीकात्मकता मिलती है, वह आधुनिक काव्य का गुण है।

(५) कुमार एवं मनु में कोई अन्तर नहीं है, यह पुनरावृत्ति मात्र है।

(६) रूपक में समष्टि के लिए ही व्यष्टि का अन्वेषण होता है, कामायनी में यह बात नहीं है।

ये तर्क केवल बुद्धि-विलास मात्र हैं। आज इतिहास इस बात को सिद्ध कर चुका है कि जो सत्य प्रायः कभी काल्पनिक समझे जाते थे वे आज की परिस्थिति में यथार्थ हैं। सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा कल्पना के यथार्थ एवं यथार्थ के कल्पना में परिणत होने की बात भी देखी जा सकती है। न तो यथार्थ कल्पनाविहीन हो सकता है और न कल्पना यथार्थविहीन। अन्तर केवल इनकी मात्रा से संबंधित है। अतएव ये तर्क निराधार हैं। साथ ही ऐतिहासिक पात्रों को काल्पनिक पृष्ठ-भूमि में रख कर काल्पनिक घटनाओं के आधार पर उन्हें क्रियाशील बनाने की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है। अतएव इस प्रकार के विवेचन का कोई अर्थ नहीं होता। हम यह भी नहीं कह सकते कि कवि ऐतिहासिकता को प्रश्रय देकर

शब्दों द्वारा केवल यथातथ्य चित्रण ही प्रस्तुत करें। सत्य यह है कि वे अपनी आवश्यकता के अनुसार पात्रों को लेकर अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं। फिर यह कहना कि पंचकोषों में से केवल तीन की ही चर्चा गई है तर्कपूर्ण एवम् बुद्धिसंगत नहीं है। कवि को उसके सर्जन में जो भी उपयुक्त दिखाई पड़ता है उसे वह अपनी कृति के माध्यम से प्रस्तुत करता है। प्रतीकात्मकता अगर प्रबन्ध काव्य का गुण है तो किस प्रकार की प्रतीकात्मकता को हम रूपक काव्य का गुण मानें, यह एक विचारणीय प्रश्न है। क्या प्रबन्ध काव्य और रूपक काव्य के प्रतीकों में कोई गुणात्मक एवम् मात्रात्मक भिन्नता होती है? अगर होती है तो वह किस प्रकार की? प्रतीक, प्रतीक हैं, वे किसी भी सत्य की अभिव्यंजना के माध्यम हैं। इनका प्रयोग रूपक काव्य एवम् प्रबन्ध काव्य दोनों में ही सम्भव है। मानव एवम् 'मनु' में अन्तर न देखना 'कामायनी' को समझने का प्रयत्न न करना है। मानव मनु-पुत्र है, अतएव वह मननशील है। श्रद्धा-पुत्र होने के कारण उसमें रागात्मिका वृत्ति है। 'इड़ा' के साथ रहने के कारण उसमें बुद्धि का समावेश होता है। वह मानवता का प्रतीक है। अतएव उसे इन तीनों गुणों से युक्त होना है। अब रहा अंतिम प्रश्न कि रूपक काव्य में समष्टि के लिए ही व्यष्टि का अन्वेषण होता है तो कामायनी में यह हुआ है। फिर रूपक काव्य एवम् प्रबन्ध काव्य में पूर्ण भिन्नता नहीं होती और न किसी गुण के मिल जाने से दूसरे का तिरस्कार ही किया जा सकता है। इस दृष्टि से 'कामायनी' में रूपक काव्य के गुण विद्यमान हैं। इन दोनों कृतियों में इसका सफल निर्वाह हुआ है।

निष्कर्ष

विभिन्न देशों में उत्पन्न होकर तथा विभिन्न संस्कृतियों में पल कर इन कवियों ने अपनी इन कृतियों में जो भी जीवन-संदेश दिया वह महत्वपूर्ण है। इनमें साम्य एवम् वैषम्य दोनों ही दृष्टिगोचर होते हैं। जब सामान्य सांसारिकता एवम् संकीर्णता से ऊपर उठकर कवि महाकवि एवम् विश्वकवि की स्थिति में अपने को आसीन करता है तो उस गंभीर चिन्तन में मानवता के स्थूल वैषम्य तिरोहित हो जाते हैं और वे प्रायः कभी-कभी एक से ही सत्य के आभास पाते हैं। 'कामायनी' एवम् 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' के लेखकों के विचारों में पर्याप्त भिन्नता के बावजूद यह जो साम्य है वह मानवता के शाश्वत सत्यों का देशकाल की सीमा से न बँध कर अपने को चतुर्दिक् एक ही रूप में बिखेरने एवम् तत्व-चिंतकों का विषय बन सकने का ही परिणाम है। केवल प्रभाव-साम्य ही

इस बात के लिये उत्तरदायी नहीं कहे जा सकते। फिर द्रष्टव्य यह भी है कि ये कवि एक दूसरे से प्रभावित भी नहीं कहे जा सकते। साम्य, शाश्वत सिद्धान्तों एवम् मान्यताओं में होता है और वैषम्य रूढ़ियों एवं परंपराओं को परिस्थिति के अनुकूल ग्रहण करने में। इस वैषम्य के अन्तराल में भी शाश्वत सत्यों का एक झिलमिल सूत्र है। वह सदा कवियों, चिन्तकों एवम् अन्वेषकों को एक ही प्रकार का निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य करता रहेगा। इस प्रकार इन दोनों ही कृतियों में साम्य एवम् वैषम्य का जो यह स्वरूप है वह यथार्थ में विचारणीय है।

२

'तुलसीदास' एवम् 'हाइपीरियन'

'तुलसीदास' एवम् 'राम की शक्तिपूजा' में निराला जी ने अपने अपराजेय व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान की है और 'हाइपीरियन' में कीट्स ने। दोनों ही कवितायें इन कवियों की मान्यता एवम् विचार के महान् वैभवशाली एवम् महत्वपूर्ण प्रतिमान को उपस्थित करती हैं। कीट्स ने 'हाइपीरियन प्रथम' के तृतीय अध्याय को समाप्त करने के पश्चात् 'हाइपीरियन ए व्हिज़न' का सर्जन आरम्भ किया। यह क्यों और कैसे हुआ, इन दोनों भागों में कोई सम्बन्ध है या नहीं, अगर ये संबद्ध हैं तो कीट्स को 'हाइपीरियन द्वितीय' लिखने की क्या आवश्यकता पड़ी—ये सब ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। संभवतः 'तुलसीदास' के सम्बन्ध में भी ये ही प्रश्न उठाये जा सकते हैं। अपने समय के महान् व्यक्तियों के रहते हुए निरालाजी ने 'तुलसीदास' को ही अपनी विशिष्ट भावना का नायक क्यों बनाया? इन प्रश्नों के उत्तर में प्रायः एक ही सत्य निहित है। कवि अपने अन्तःस्वप्नों की अभिव्यक्ति का माध्यम ढूँढ़ता है। जिस भी माध्यम से ये अन्तर्दृष्टि-प्रधान स्वप्न अभिव्यक्त किए जा सकते हैं वह उन्हीं को अपनाता है। 'तुलसीदास' एवम् 'अपोलो' के अन्दर इन कवियों के अपने स्वप्नों के पुंजीभूत स्वरूप का दर्शन हुआ है। यथार्थ में ये पात्र इन कवियों के निजी व्यक्तित्व के प्रतीक बन गये हैं। 'हाइपीरियन ए फ्रैगमेण्ट' में कवि जिन बातों को कहना चाहता है वे अन्य प्रकार से नहीं कही जा सकती थीं। अतएव बाध्य होकर उसने 'हाइपीरियन ए व्हिज़न' की रचना की।

कथानक

कीट्स की रचनाओं में 'हाइपीरियन' का प्रमुख स्थान है। यह 'ओलम्पियन्स' के द्वारा 'टाइटन्स' की पराजय पर आधारित खण्ड काव्य है। 'टाइटन्स' में कीट्स के अनुसार प्राचीन देवकुल के कुछ व्यक्ति संमिलित थे। इनका प्रकृति पर पूर्ण अधिकार था और इनके शासनकर्त्ता का नाम 'सैटर्न' था। 'सैटर्न' को इस बात का ज्ञान हो चुका था कि उसका राज्य एक दिन उसके पुत्रों के अधिकार में चला जायगा। अतएव वह अपने सभी पुत्रों को मरवा डालने के फेर में पड़ा। उसमें सबसे छोटा जुपिटर किसी तरह बच गया। कुछ समय पश्चात् इन दोनों

में घोर युद्ध हुआ और 'जुपिटर' ने 'सैटर्न को पराजित करके उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इस खण्ड काव्य के आरम्भ से ही 'जुपिटर' अपनी पराजय के पश्चात् एकान्त घाटी में अपने भाग्य पर अरण्य रुदन करता दिखलाया गया है। 'सैटर्न और 'थीआ' (सैटर्न की स्त्री) के वार्त्तालाप के पश्चात कहानी का केन्द्र-विन्दु 'हाइपीरियन' हो जाता है। 'सैटर्न' के पक्ष में यही एक ऐसा देवता है जो पराजित नहीं हो सका है, फिर भी भविष्य की विपत्तियों के पूर्वबोध से वह अत्यधिक भयभीत है। कविता का प्रथम भाग उस स्थल की यात्रा के साथ समाप्त हो जाता है जहाँ उसके पराजित मित्र पड़े हुए हैं।

कविता का द्वितीय भाग उन विजित वीरों के वर्णन के साथ आरम्भ होता है जो अपने निराश एवम् निष्क्रिय वातावरण में भी 'सैटर्न' के अचानक उपस्थित होने से प्रबुद्ध हो उठते हैं। 'पैराडाइज लास्ट' में मिल्टन के अनुयाइयों के सदृश ये देवता भी अपनी स्थिति का छिद्रान्वेषण करने लगते हैं। इनमें सर्वोत्तम सलाह 'ओसिआनस' द्वारा दी गयी है। उसकी बातें दार्शनिक परित्याग से सम्बद्ध हैं। उसके अनुसार पुरातन देवताओं को अपने ऐसे निष्कासनकर्त्ताओं को भी मान्यता देनी चाहिए जो सौन्दर्य की दृष्टि से उनसे महान् हैं। 'हाइपीरियन' के अचानक उपस्थित हो जाने से वाद-विवाद के क्रम में बाधा उपस्थित हो जाती है।

तृतीय भाग का आरम्भ डेलेस टापू से होता है। इसका अपोलो से संबंध है। कविता में संगीत आदि की प्रेरक 'नेमोसाइन' तथा 'कला' के आश्रयदाता 'अपोलो' के बीच छोटी और आकर्षक वार्त्ता द्वारा उस कष्टप्रद संघर्ष का आभास मिलता है जो अपोलो को ईश्वरत्व प्रदान करता है। इस स्थल पर प्रथम खंड समाप्त हो जाता है।

'हाइपीरियन द्वितीय' में कवि ने अपने स्वप्न का ही प्रमुख रूप से वर्णन किया है। 'नेमोसाइन' यहाँ 'मोनेटा' के रूप में उपस्थित है। कवि अपने स्वप्न में विविध रूप में विचरता हुआ मोनेटा के द्वारा आरक्षित मंदिर तक पहुँचता है। कवि प्रथम तो मूर्च्छित हो जाता है। परन्तु पुनः सजीवता प्राप्त करने पर वह 'मोनेटा' से विविध प्रश्न करता है। इस जिज्ञासापूर्ण प्रश्न एवम् उसके उत्तर में कविता के महान् सत्य निहित हैं।

तुलसीदास के कथानक के विषय में रायकृष्ण दास ने लिखा है—

> **'यह 'निराला' की सफल रचना हैं। इसमें कवि निराला तुलसीदास के जीवन से सम्बद्ध पत्नी-**

आसक्ति की सामान्य घटना को लेकर चले हैं। परन्तु इस चित्रण में 'निराला' ने उन स्वप्नों की ही ओर अपने ध्यान को आकृष्ट किया है जो सर्वसाधारण की पहुँच के परे हैं। तुलसीदास का प्रथम अध्ययन, इसके पश्चात् पूर्वसंस्कारों का उदय, प्रकृति-दर्शन, एवम् जिज्ञासा, नारी-मोह, मानसिक संघर्ष एवम् अन्त में नारी द्वारा विजय आदि वे मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हैं जिन्हें लेकर कवि ने कथा का विस्तार किया है।'[1]

आरम्भ में ही कवि ने हिन्दू-सभ्यता के अध:पतन के मूल में मुगल शासन को मानकर विविध सांस्कृतिक परिवर्तनों की ओर यथार्थवादी दृष्टि से संकेत किया है। हिन्दू-संस्कृति के देदीप्यमान् सूर्य के अस्त होने के पश्चात् मुगल साम्राज्यवाद की शीतल चन्द्र-छाया में 'तुलसीदास' का जन्म दिखाकर कवि ने अन्धकार के विनाश के द्वारा ज्ञान-सूर्य के जन्म की ओर संकेत किया है। चित्रकूट में भ्रमण करते हुए 'तुलसीदास' को यह आभास मिला कि चेतन के शीतल संस्पर्श को न प्राप्त कर सकने के कारण सब कुछ जड़ हो गया है। प्रकृति उन्हें जड़ से चेतन की ओर बढ़कर मायावृत्त सत्य की खोज का संदेश देती है। कवि का मन सन्देश को पाते ही ऊर्ध्व-गामी होकर आकाश के स्तर को पार कर जाता है। इस उच्च उड़ान में कवि को मुस्लिम सभ्यता से ग्रस्त भारतीयता का दर्शन होता है। उसको इस बात का ज्ञान हो जाता है कि आलोकमय आर्य-सत्य को मुस्लिम-सभ्यता आवृत्त किए हुए है। इस सत्य का हिन्दू लोगों को ज्ञान न होने के कारण वे प्राय: पंगु एवम् दीनहीन पशु की स्थिति में हैं। अतएव इस भ्रम-पटल के निवारण के बिना किसी भी प्रकार प्रकाश-रूपी ज्ञान को प्राप्त कर सकना असम्भव है। अभी कवि इसी प्रकार की उच्चाकांक्षा में रत है, इसी बीच आकाश में उसे अपनी पत्नी का दर्शन होता है। उसके आकर्षण पाश से आबद्ध होकर कवि का मन धीरे-धीरे साधारण स्तर पर आ जाता है। परन्तु यहाँ भी सम्पूर्ण प्रकृति उसे आकर्षक सौन्दर्य से रँगी हुई दीख पड़ती है।

---

[1] तुलसीदास-परिचय : राय कृष्णदास।

कवि एक दिन बाजार गया। इसी बीच उनकी स्त्री का भाई आया और उसे लिवाकर चलता बना। घर आने पर स्त्री को न पाकर वे ससुराल चल पड़े। मार्ग में प्रकृति का कण-कण उन्हें शृङ्गारमयी भावनाओं का संकेत देता दीख पड़ा। ससुराल में रात्रि को प्रिया से भेंट हुई। स्त्री उनकी इस आसक्ति पर उन्हें फटकार बैठी। तुलसीदास कुछ समय तक अपलक नेत्रों से उसका सौन्दर्य देखते रहे। अचानक उन्हें आभास हो गया कि ज्ञान का संदेश मिल गया है। 'स्व' की सीमित परिधि में पड़े रहना उनका कर्त्तव्य नहीं है। स्त्री के वचन समग्र भारतीय सभ्यता में प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिये उन्हें आन्दोलित कर दिये। वे चल पड़े, रत्नावली को भी परिस्थिति का बोध हुआ। उसकी आँखें अश्रुपूरित हो उठीं। परन्तु ज्ञानोपलब्धि के पश्चात् कवि दलदल में फँसने वाला न था। उसकी इस विजय में भारतीय संस्कृति की विजय निहित थी।

दोनों कथानकों के प्रेरणा-स्रोत भिन्न संस्कृतियों की उपज हैं। कविता के आदर्श भी प्रायः भिन्न हैं। परन्तु इन दोनों में एक ही सन्देश निहित है। 'नेमोसाइन' के दर्शन से 'अपोलो' को पूर्णता मिलती है तो 'रत्नावली' के दर्शन से 'तुलसीदास' पूर्णता की खोज में रत होते हैं। हारे हुए सैटर्न में अगर विषाद का प्रबल वेग है तो इधर पराजित भारतीयता के दर्शन पर भी कवि को क्षोभ है। 'हाइपीरियन ए फ्रैगमेण्ट' में अगर दो संस्कृतियों का अन्तर्द्वन्द्व तथा विरोधी संस्कृति पर जन-हितकारणी संस्कृति की विजय के सन्देश हैं तो 'तुलसीदास' में भी कवि दो संस्कृतियों के अन्तर्द्वन्द्व एवम् विभीषिका के चित्रण के पश्चात् स्वयं नायक द्वारा नवीन संस्कृति की स्थापना का व्रत दिखलाकर उसी ओर संकेत करता है जिस ओर कवि कीट्स। 'हाइपीरियन ए व्हिज़न' में कवि के कर्तृत्व-सम्बन्धी विविध पहलुओं पर विचार किया गया है तो 'तुलसीदास' में भी यह बात स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। कवि 'कीट्स' अगर स्वप्न द्वारा यथार्थ का ज्ञान करता है तो कवि 'निराला' भी चित्रकूट में नायक को उच्च पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित करके उसी जन-कल्याण की भावना का दर्शन करते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से इनमें पर्याप्त साम्य दीख पड़ता है।

प्रेरणा-स्रोत एवम् आदर्श

इन दोनों ही खण्ड काव्यों के सर्जन की प्रेरणा के मूल में हमें माइथालोजी और इतिहास का दर्शन होता है। दोनों में ही इनके आदर्श मूल्यांकन की दृष्टि लक्षित होती है। स्वतंत्र चिन्तन दोनों के कर्तृत्व के मेरुदण्ड हैं। 'हाइपीरियन

ए फ्रैगमेन्ट' में कवि ने कई स्रोतों एवं पूर्वादर्शों का प्रयोग किया है। 'मि० सिडनी कोलविन' का विचार है कि 'प्राचीन लेखकों एवं मुख्य रूप से 'हीसिअड' ने ही उसका पथ-निर्देशन किया।'[1] कुछ लोग 'लोम्प्रियर' एवं 'टुक' का प्रभाव भी मानते हैं। 'चैपमैन' ने 'इलियड' तथा 'वर्क्स एण्ड डेज़ आफ हीसियड' का अनुवाद किया था। 'कीट्स' पर इसका भी प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त 'स्पेंसर' की 'फेयरी क्वीन', 'मिल्टन' की 'पैराडाइज लास्ट', 'सैन्डी' और 'ओविड' की 'मेटामाफोसिस' आदि के अनुवाद का भी उस पर प्रभाव था। 'टाइटन्स' तथा 'ओलम्पियन्स' का युद्ध एलिजावेथ कालीन-साहित्य में विविध रूप से वर्णित है। इस प्रकार कविता के आदर्श की दृष्टि के साथ ही विषय की दृष्टि से भी 'कीट्स' अपने पूर्ववर्ती साहित्य में उपलब्ध विविध स्रोतों से पूर्णरूपेण अवगत था और उसकी इस पुस्तक में उनकी विविध झलक देखी जा सकती है।

'निराला' के नायक 'तुलसीदास' उसके आदर्श कवि थे। 'तुलसीदास' के जीवन से सम्बद्ध सामग्री भी प्राय: कम है। विद्वानों में उनके जीवन-सम्बन्धी अन्त:साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य पर पर्याप्त मतभेद है। निराला ने अपनी दृष्टि से तुलसीदास के जीवन पर दृष्टिपात करके उन्हें नव्य सांस्कृतिक चेतना का अग्रदूत बनाया है, परन्तु इसके साथ ही 'तुलसीदास' में कवि ने उनके जीवन एवं कवित्व संबंधी आदर्शों का भी समावेश किया है।

इस प्रकार 'तुलसीदास' के प्रेरणा-स्रोत केवल तुलसीदास तथा उनका आदर्श व्यक्तित्व रहा है पर 'हाइपीरियन' की कथा देवकथाओं पर आधारित है। इसी कारण कहीं-कहीं 'जायण्ट्स' तथा 'टाइटन्स' में पूर्ण भिन्नता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। 'शैली' की दृष्टि से इन पर प्राय: पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

कविता-संबंधी धारायें एवं उनका अभिव्यक्तीकरण

पहले ही इस बात का संकेत किया जा चुका है कि इन दोनों ही खंड-काव्यों में इन कवियों ने अपनी कविता-संबंधी धाराओं को अभिव्यक्ति प्रदान की

---

[1] He had nothing to guide him, except the raphs of ancient writers, principally Hesiod.—*Keats,* English Men Letters Series, p. 155.

है। 'कीट्स' एवं 'निराला' के तुलनात्मक अध्ययन में एक सीमित क्षेत्र में इन पर विचार भी किया गया है। यहाँ पर उनको विशेष रूप से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा। कीट्स के 'हाइपीरियन ए फ्रैगमेंट' के तृतीय सर्ग तथा 'हाइ-पीरियन ए व्हिजन' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। 'हाइपीरियन ए व्हिजन' को पूर्ण रूप से समझने के लिये रूपक पर दृष्टिपात कर लेना समीचीन होगा। आरम्भ में ही कवि वाटिका, मंदिर अथा देवायतन का चित्रण करता है। इन्हीं के माध्यम से उसने अपनी कविता के मुख्य स्तरों का दिग्दर्शन कराया है। वाटिका केवल वाटिका नहीं अपितु कीट्स के लिये प्रकृति की कलापूर्ण रंगस्थली है। प्रकृति कला को विविध रूप से रंजित करती है। इसके प्रेरणा-स्रोत भी अनन्त हैं परन्तु इनकी यह विशेषता है कि ये बिना किसी प्रकार के प्रतिबन्ध के प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध रहते हैं। 'कीट्स' के संवेदनशील मस्तिष्क पर आरम्भ से ही इनका प्रभाव है। कवि प्रकृति-नटी की इस रंगस्थली में विहार करके उसका उचित आस्वादन करता है। परन्तु उस वाटिका में रखे हुए शीतल पेय का पान करते ही उसके अन्दर गहन अनुभूतियों की जिज्ञासा का प्रादुर्भाव होता है। अब कवि की ऐन्द्रिय संस्पर्शों मात्र से संतुष्ट होने की भावना में परिवर्तन होता है। वह इस विश्व के अनन्त वैविध्य एवं रहस्य का चिन्तनशील अन्वेषक बन जाता है। इस अन्वेषण में उसे ज्ञान के मन्दिर का साक्षात्कार होता है। परन्तु यह ज्ञान सामान्य ज्ञान से भिन्न है। इसके अन्दर सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक अनुभवपूर्ण सौन्दर्य सन्निहित है। यह ज्ञान केवल भूत का प्रकाशक ही नहीं अपितु भविष्य का पथ-प्रदर्शक भी है। कवि को इस मन्दिर पर दृष्टि-निक्षेप करते ही देवमूर्ति का दर्शन होता है। वह इसकी ओर अग्रसर होता है। वहाँ पहुँचते ही वह मन्दिर की उस संरक्षिका को देखता है जो सुगन्धित वस्तुओं के द्वारा देवता की अर्चना कर रही थी। कवि कुछ देर रुकता है। अचानक उसे ये शब्द सुन पड़ते हैं—

> 'अगर तुम इन सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकते तो उसी संगमरमर पर मर जाओ जहाँ तुम हो। तुम्हारा शरीर जो सामान्य कलुषित धूल के सदृश है, पोषण के अभाव में वहीं सूख जायगा। तुम्हारे अस्थि-कंकाल कुछ समय में विशीर्ण होकर लुप्त हो जायँगे। तीक्ष्ण से तीक्ष्ण चक्षु भी इस बात को नहीं जान सकेगी कि तुम इस ठंढे चबूतरे पर आज किस रूप में उपस्थित

> रहे हो । इस समय तुम्हारे क्षणिक जीवन के नश्वर काल समाप्त हो चुके हैं । जब तक ये चिपकाई हुई पत्रिका अर्थात् पूर्व कारनामे नहीं जला दिए जाते तब तक इस विश्व में कोई भी व्यक्ति तुम्हारे प्रारब्ध को नहीं बदल सकता । इनके अभाव में तुम इन अनश्वर सीढ़ियों पर भी नहीं चढ़ सकते ।'[1]

कवि देवी की बातों को सुनता है और उसका आह्वान करने के लिये उद्यत होता है । अचानक ठण्डी हवा का प्रभाव पड़ता है और वह मरणासन्न हो जाता है । 'हाइपीरियन ए फ्रैगमेण्ट' में 'अपोलो' ने भी मरकर पुन: नवीन जीवन प्राप्त किया है । होश में आने पर कवि 'नक़ाबपोश देवी' से पूछता है कि वह मृत्यु से कैसे बच गया ? इसका उत्तर देती हुई वह कहती है—

> 'तुमने इसका अनुभव किया है कि निश्चित समय से पहले मर कर जीवित हो जाने का क्या अर्थ है ?

---

[1] If thou canst not ascend these steps.
Die on the marble, where thou art,
Thy flesh near cousin to common dust
Will parch for lack of nutriment—thy bones
Will wither in a few years, and vanish so,
That not the quickest eye could find a grain,
Of what thou art on the pavement cold.
The sands of thy short life are spent this hour,
And no hand in the universe can turn,
Thy hour-glass, if these gummed leaves be burnt
Erst thou canst mount these immortal steps.

तुममें ऐसी शक्ति है जो तुम्हारे संरक्षण का कारण बनी ।'[1]

जीवन में मर कर पुनः नये सिरे से जीना कवि की प्रगति के लिये आवश्यक है। 'कीट्स' को इसका अनुभव हो चुका है। कवि के पहले प्रश्न के उत्तर में 'मोनेटा' कहती है—

'वही व्यक्ति जिसके लिये इस दुनिया की विपत्तियाँ यथार्थ विपत्ति हैं और उसे शान्तिपूर्वक नहीं रहने देती हैं, इस ऊँचाई तक पहुँच कर उस छाया तक जा सकता है ।'[2]

उपर्युक्त प्रकार की मृत्यु के लिये कवि को विश्व की महान् विपत्तियों से गुज-रना पड़ेगा । इसकी बौद्धिक स्वीकृति कवि के लिये अपर्याप्त है, क्योंकि इसकी उपलब्धि मात्र से वह जीवन की चेतनता के मंदिर में गल जायगा । उसे तो अपनी इस बात की अनुभूति करनी है कि जीवन में ही अपनी निश्चित आयु के पहले मर कर पुनः नवीन स्पन्दनों के साथ जीवन व्यतीत करने का क्या तात्पर्य है ? 'हाइपीरियन ए फ्रैगमेण्ट' में 'नेमोसाइन' की आखों में अनन्त ज्ञान के दर्शन के पश्चात् इस प्रकार की मृत्यु एवम् तत्पश्चात् देवत्व की प्राप्ति सम्भव हुई है। कवि कीट्स भी कुछ समय पश्चात् अपनी सहज वृत्तियों पर अधिकार कर सका है । उसने इस बात की घोषणा की कि है निश्चित समय के पहले जीवन में मरने एवम् पुनर्जीवित होने की शक्ति की अनुभूति ही उसके अनन्त ज्ञानोपलब्धि की आवश्यक शर्त थी ।[3] कवि इस प्रकार के अनुभव से गुजर चुका है, इसीलिये उसे यह रहस्य ज्ञात हो सका है कि वही इस अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच सकता है जिसके लिये विश्व के दुःख यथार्थ में दुःख हैं और उसे चैन नहीं लेने देते ।

---

[1] Thou hast felt,

What it is to die and live again, before
Thy fated hour, that thou hast power to do so,
Is thy own safety.

[2] None can usurp this height, returned that shade,
But those to whom the miseries of the world
Are miseries, and will not let them rest.

[3] Keats and Shakespeare : *Middleten Murray.*

इस प्रकार की परिस्थिति के बीच हम कवि का अनुगमन करते हुए मोनेटा के मन्दिर तक पहुँचते हैं। वहाँ वह पुनः कहती दीख पड़ती है—

'ऐसे लोग, जो जीवन में ही आनन्द का स्वर्ग पाते हैं और अविचारपूर्वक अपने जीवन को व्यतीत करते हैं, अगर किसी तरह इस मन्दिर में आ जायँ तो उसी सतह पर गल जायँ जहाँ तुम अर्द्धमूर्छित हुए थे।'[1]

मन से कवि तरह-तरह के प्रश्नों को करता हुआ मूल प्रश्न पर पहुँचता है और पूछता है—

'हे छाया! मुझे निश्चित रूप से बताओ, क्या विश्व के कानों में गाये गीत बेकार नहीं हैं? निश्चित रूप से कवि तत्वदर्शी, मानवता की भलाई करने वाला और उसके सभी रोगों को अच्छा करने वाला भेषज है, पर मुझमें कोई गुण नहीं है।……तब मैं क्या कहूँ? तुम मेरी बिरादरी की चर्चा करती हो। उससे तुम्हारा क्या संकेत है?'[2]

इस पर मोनेटा उत्तर देती है—

'क्या तुम एक स्वप्न देखने वाली जाति के नहीं हो? कवि एवम् स्वप्न देखने वाले भिन्न, पृथक्, विरोधी, तथा पृथ्वी के दो ध्रुवों जैसे विलग हैं। एक

---

[1] All else who find a heaven in the world,
Where they may thoughtless sleep away their days.
If by chance into this fame they come,
Rot on the pavement where thou rottest half

[2] Majestic shadow tell me, sure not
All those melodies sung into the world's ear
Are useless, sure a poet is a sage
A humanist, physician to all men
That I am none ... ...
What am I then, thou speakest of my tribe
What tribe ?

विश्व के लिये आशाप्रद संदेश देता है और दूसरा इस पर कुठाराघातकरता है ।'[1]

'मिडल्टन मुरे' तथा 'सेलिन कोर्ट' ने इस पद को लेकर पर्याप्त विवेचन किया हैं ।[2] इन महान् लेखकों ने यह प्रश्न उठाया है कि इससे मूल कविता के द्वारा उठाए गए प्रश्नों का क्या सुलझाव उपस्थित हो सकता है ? प्रमाण में 'उड हाउस' की हस्तलिखित प्रति का उद्धरण भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें पेंसिल से इन पंक्तियों को विलग करके यह लिखा हुआ है कि 'कीट्स' इनको अपनी कविता में नहीं लेना चाहता था । मेरे विवेचन का यह विषय न होते हुए भी मैं यह कह सकता हूँ कि इसके द्वारा मूल कविता के विवेचन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । अतएव 'सेलिन कोर्ट' का यह कहना ठीक है कि 'कविता की दृष्टि से भले ही इनका महत्व न हो, फिर भी कविता के विवेचन की दृष्टि से इनकी महत्ता पर शक नहीं किया जा सकता । अपनी सम्पूर्ण असफलता के बावजूद भी पंक्तियाँ महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनमें एक अव्यक्त सलाह निहित है । न तो इनका कविता से विरोध है और न कीट्स की कला से । उसके शब्दों में कवि का उद्देश्य अपने सम्मोहन पूर्णललित कल्पना के सर्जन के परे, वस्तुओं को यथार्थ रूप में देखकर, अपनी कल्पना-शक्ति को यथार्थ पर आधारित करके एक शांतिप्रद संगीत प्रदान करता है जिससे मानव अपने कष्टों को भूल सके ।'[3]

'मोनेटा' जिस स्वप्न का स्पष्टीकरण करती है अथवा 'ओसीआनस' जिस सत्य को अपने मित्रों से अभिव्यक्त करता है उसमें कवि कीट्स को अपनी कवित्व-शक्ति के विकास का बीज मिलता है । वह उदास भावना के आधार पर सौन्दर्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होता है और तत्परता के साथ सभी निरावृत्त सत्यों का वाहक तथा सभी शान्त परिस्थितियों का निर्माता बनने का प्रण करता है ।

---

[1] Art thou not a dreamer tribe.
The poets and dreamers are distinct.
Diverse, sheet opposite antipodes,
The one pours out a balm upon the world
The other vexes it.

[2] (a) Keats and Shakespeare : *Middleton Murray*, pp. 177-80.
(b) Gohn Keats—*E. De Selin Court*, pp. 517-90.

[3] Poems of Gohn Keats—*E. De Selin Court*, p. 519.

उसकी इस कविता में अमानवीय आकृतियों का विशेष महत्व है। नये देवताओं द्वारा पुराने देवताओं के पतन में मानवीय सृष्टि के सर्जन एवम् नाश से संबद्ध विराट प्रक्रिया सन्निहित है। देवालय के दरवाजे पर पड़े हुए 'सैटर्न' की स्थिति द्वारा हमें विगत जीवन का भविष्य के लिये योगदान प्राप्त होता है। 'अपोलो' नवीन व्यवस्था का प्रतीक है। पराजित 'टाइटन्स' का 'अपोलो' की सेवा में रत होना, प्राचीन का नवीन के लिये स्थान रिक्त करने की प्रक्रिया का द्योतक है। सैटर्न के भाग्य को हम विश्व के भाग्य का प्रतीक मान सकते हैं। 'मोनेटा' विश्व की उस स्थिति की प्रतीक है जो अपने अन्तराल में छिपे हुए परिवर्तनों के प्रति सतर्क है। विश्व के चैतन्य मस्तिष्क के रूप में वह कवि से कहती है—

> 'त्यागपूर्ण बलि हो चुकी है, फिर भी मैं तुम्हारी सद्भावनाओं के प्रति सहृदय रहूँगी। मेरी वह शक्ति जो आज भी मेरे लिये अभिशाप है, तुम्हारे लिये विचित्र वरदान बनेगी। तुम इन्हीं पार्थिव चक्षुओं द्वारा मेरे मस्तिष्क के अन्तराल में पड़े हुए निष्क्रिय स्वप्नों का दर्शन कर सकोगे। ऐसी अवस्था में तुम्हारी आँखें सभी प्रकार की प्रताड़नाओं से मुक्त रहेंगी। तुम्हें वैचित्र्य की विविध प्रताड़ना से मुक्त अवश्य रहना पड़ेगा।'[1]

इस प्रकार इस स्वप्नवेत्ता को, जिसने अपना जीवन इसलिये दुःखमय बना लिया है कि सांसारिक विपत्तियाँ उसे चैन से न रहने देंगी, यह अवसर प्राप्त होता है कि वह सर्जन एवम् सर्वनाश का दर्शन कर सके और

---

[1]The sacrifice is done, but not the less
Will I be kind to thee, for thy good will,
My powers which to me is still a curse,
Shall be to thee a wonder, for the scenes,
Still swooning vivid through my globed brain,
With an electral changing misery.
Thou shalt with these dull mortal eyes behold
Free from all pain, if wonder pain thee not.

ऐसा दृष्टिकोण प्राप्त कर सके जो सभी प्रकार की यातनाओं एवम् प्रताड़नाओं से मुक्त है। कवि अभी तक 'मोनेटा' के मुखमंडल को नहीं देख सका था। अब वह उसे देखता है और कह पड़ता है—

> 'तब मैंने उसके उस मुखमंडल को देखा जो मानवीय विपत्तियों से प्रभावित था। अनश्वर रोगों से झुलस जाने के कारण वह दीप्तिमय हो उठा था।......यह ऐसा निश्चित परिवर्तन उत्पन्न करता था जो मृत्यु के द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता।......वे आँखें मुझे नहीं देख रही थीं। वे अपने सामान्य ऐश्वर्य में चन्द्रमा की तरह चमक रही थीं।'[1]

'मिडल्टन मुरे' ने लिखा है कि 'इस कविता में विश्वात्मा का स्वप्न तथा अंतिम यथार्थ की भावना निहित है। शब्दातीत सत्य का इससे अधिक पूर्ण प्रतीक अभी तक कल्पना का विषय न बन सका था।...इसमें कष्टों के साथ कष्टों की शाश्वतता, परिवर्तन के साथ परिवर्तन की शाश्वतता, और मृत्यु के साथ मृत्यु की शाश्वतता के दर्शन होते हैं। इसमें भयंकरता भी है, फिर भी उसे इस नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता। यह शाश्वत एवम् निर्वैयक्तिक है।...नश्वर कवि को उस स्वप्न से भी पूर्ण स्वप्न का दर्शन होता है जो 'अपोलो' को प्राप्त हुआ था।'

'हाइपीरियन ए व्हिज़न' की सृष्टि में कवि को सांसारिकता से ऊबने एवम् बार-बार मृत्यु का आह्वान करने का संकेत मिलता है। संभवतः इसी जीवन से पलायन की स्थिति में कवि ने अपने चिन्तन द्वारा इस महान् सत्य का दर्शन किया है।

महाकवि निराला की रचनाओं में भी विचारों की एक ऐसी अन्तः-सलिला प्रवाहित होती है जिसका "हाइपीरियन" के विचारों से साम्य है। 'कीट्स' की कविता में पराजित सैटर्न अगर अपने भाग्य पर अरण्य रुदन

---

[1] Then I saw wane face,
Not pined by human sorrow, but bright blanched
By an immortal sickness.
They saw me not,
But in blank splendour beamed like a mild moon.

करता है तो 'तुलसीदास' का व्यक्तित्व आरम्भ में ही निराला को सांस्कृतिक अधः पतन की एक परम सुन्दर एवम् यथार्थ झाँकी प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करता है। कवि निराला का अपराजेय व्यक्तित्व पुकार उठता है—

'भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य
अस्तंभित रे आज—तमस्यतूर्य दिङ्मण्डल
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है उर्मिल जल निश्चलत्प्राण पर शतदल।'

'कीट्स' की 'हाइपीरियन' में हमें अर्वाचीन एवम् प्राचीन संस्कृतियों का द्वन्द्व एवम् प्राचीन पर अर्वाचीन की विजय दिखलाई गई है तो 'निराला' भी इस भारतीय एवम् यवन सभ्यता के अन्तर्द्वन्द्व में यवन सभ्यता का भारतीय सभ्यता पर प्रभाव दिखलाते हैं। कवि अपनी आत्मा की अवसादपूर्ण पुकार निम्नांकित शब्दों में व्यक्त करता है—

'रिपु के समक्ष जो था प्रचण्ड,
आतप ज्यों तम पर करोद्दण्ड,
निश्चल अब वही बुन्देलखंड, आभागत।'

तथा—

'भारत के उर के राजपूत
उड़ गये आज वे देवदूत
जो रहे शेष नृपवेश सूत बन्दीगण।'

देश के सारे शौर्य, वीरता एवम् वैभव के सर्वनाश के पश्चात् सभी कुछ 'इस्लाम सागराभिमुख अपार' बन गया है। 'कामिनी कुमुद कर ललित ताल पर' सब कुछ नाच रहा है। सागर एवम् सरिताओं का जल बार-बार 'छल-छल' कह कर देश का उद्‌बोधन करना चाहता है फिर भी मन्त्र-मुग्ध लोगों को "कल-कल" की ही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। जिस प्रकार जीवन के व्यक्तिगत अन्तर्द्वन्द्वों से आहत कवि 'कीट्स' 'हाइपीरियन' की शरण लेता है, उसी प्रकार इस सांसारिक अधः-पतन से प्रताड़ित कवि 'निराला' को "तुलसीदास" की शरण में जाना पड़ता है।

चित्रकूट में सांस्कृतिक अधःपतन के विविध प्रभावों का दर्शन करने वाले

तुलसीदास उसी पृष्ठभूमि में हैं, जिस पृष्ठभूमि में देवालय के द्वार पर 'कीट्स'। 'मोनेटा' के द्वारा अगर 'कीट्स' को मानव-कष्टों में पड़कर जीवन-सत्य की उपलब्धि का संदेश दिया गया है तो यहाँ भी कवि निराला ने तुलसीदास को उसी पृष्ठभूमि में रखा है। कीट्स जिस प्रकार मंदिर की सीढ़ियों पर सीढ़ियाँ पार करता हुआ मुख्य मूर्ति तक पहुँच कर ठिठक गया था उसी प्रकार कवि तुलसीदास का मन भी नभ के भिन्न स्तरों को पार करता हुआ अन्तिम उद्धारक स्थिति में पहुँचता है जहाँ पर उन्हें पीड़ितों की करुण पुकार सुनाई पड़ती है। वे स्पष्ट रूप से देखते हैं—

> **'वे शेष-श्वास, पशु मूक-भाष,**
> **पाते प्रहार अब हतश्वाश,**
> **सोचते कभी आजन्म ग्रास द्विज गण के,**
> **होना हीं उनका धर्म परम,**
> **वे वर्णाश्रम रे द्विज उत्तम,**
> **रे चरण-चरण बस वर्णाश्रम रक्षण के।'**

तुलसीदास को स्थिति का भान हो जाता है। पीड़ितों की करुण पुकार उनके कर्ण-गह्वरों को आन्दोलित करने लगती है। निस्सहाय चलते-फिरते पुतलों का दीन-क्षीण, कंकाल-काव्य रूप में केवल जीवन की आशा को सँजोकर जीवन के दल-दल पर चलना कवि को सह्य नहीं है। वे ऐसे शेषश्वास एवम मूकभाष पशुओं के समान हो गये हैं जो प्रहार पर प्रहार पाते रहने के कारण हतश्वास हैं। अतएव ऐसी स्थिति में कवि का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए वह उसे ज्ञात है। वह ललकार उठता है—

> **'करना होगा यह तिमिर पार,**
> **देखना सत्य का मिहिर द्वार,**
> **बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय,**
> **लड़ना विरोध से द्वन्द्व समर**
> **रह सत्य मार्ग पर स्थिर निर्भर।'**

यहाँ कवि आरम्भ में ही मानव-जीवन के कष्टों को अपना चिरसहचर बना लेता है। इसी अभाव में कल्पनाप्रवण कवि को मोनेटा ने अपने दरवाजे पर शीतग्रस्त होकर ठिठुर जाने का संकेत किया था। कवि कीट्स में व्यष्टि का ही दर्शन अधिक हुआ है; यह समष्टि-कष्ट की करुण कहानी एवम् उसके

उद्धार के उदात्त स्वर वहाँ कम मिलते हैं। 'कीट्स' एवम 'निराला' मानव-दुःख तथा सर्जन एवम विनाश की क्रिया का ज्ञान होने पर कष्ट के निरसन के प्रयत्न में ही नहीं लगते अपितु सांस्कृतिक अन्तर्द्वन्द्वों को स्पष्ट करके इस निराशापूर्ण स्थिति के उद्धारक भी बनते हैं। इन दोनों ही कवियों के नायक 'अपोलो' एवम 'तुलसीदास' प्रायः एक सी ही स्थिति में हैं। फिर भी निराला में मुक्ति के स्वर 'कीट्स' की तुलना में अधिक मुखर हैं।

'तुलसीदास' अभी अपने मन के संकल्प एवम विकल्पों में रत थे। इसी बीच छाया के ऊपर तारिका-सी चमकती रत्नावली का दर्शन हुआ। कवि तुलसीदास मुग्ध होकर उसका सौन्दर्यावलोकन करने लगे, पर वह अचानक अदृश्य हो गई। तुलसीदास के मन में इससे अशान्ति का संचार हुआ और उन्हें सारा विश्व अबलामय दिखाई देने लगा।

प्रेयसी के अलक नील व्योम
दृग पल कलंक, मुख मंजु सोम
निःसृत प्रकाश जो तरुण क्षोभ प्रिय तन पर—
पुलकित प्रतिपल मानस चकोर
देखता मूल दिक् उसी ओर
कुल इच्छाओं का वही छोर जीवन भर।'

परन्तु प्रेयसी के साथ अपने को आबद्ध रखकर तुलसीदास को अपनी इच्छाओं की व्याप्ति सम्पूर्ण विश्व में बिखरी मिली। उन्हें अभी इस बात का आभास नहीं हुआ था कि युवती के रूप में कामदेव पुरुष को जीतकर वहाँ अपनी पताका उड़ा रहा था। जैसे सूर्य की किरणों से बादल रंग-बिरंगे हो जाते हैं उसी तरह रत्नावली के संसर्ग से युवक तुलसीदास के मनोभाव भी रंगीन हो उठे। ससुराल जाते समय उनकी इस मनोवृत्ति के साथ प्रकृति का परम उद्दीपक स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ। यथा—

'मग में पिक कुहरित डाल-डाल
हैं हरित विटप सब सुमन भाल
हिलती लतिकायें ताल-ताल पर सस्मित—
पड़ता उन पर ज्योतिः प्रपात
हैं चमक रहे सब कनक गात
बहती मधु धार समीर ज्ञात आलिंगित।'

प्रिया-मिलन के समय की स्थिति इस दृष्टि से और भी दर्शनीय है। उन्हें केवल रत्नावली का ही दर्शन नहीं होता, अपितु उस रूप में ध्यानस्थ ऐसी योगिनी का दर्शन होता है जो कमलासीन लक्ष्मी-सदृश है। 'धिक धाये तुम अनाहूत, धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म धूत' तथा 'राम के नहीं काम के कहलाये' जैसे शब्दों द्वारा तुलसीदास के मानस का कल्पष धुल जाता है। स्त्री अब उन्हें वासना-तृप्ति की पुत्तलिका नहीं दीखती। अब तो 'जागा जागा संस्कार प्रबल, रे गया काम तत्क्षण वह जल' की स्थिति आ गई। संसार में चतुर्दिक् उन्हें ज्ञान दिखाई पड़ने लगा। इसकी जड़ता का ज्ञान समाप्त हो गया। इस आत्म-परिष्कार में उन्हें जो कुछ भी दिखाई पड़ा, वह देखना 'निराला' जैसे कवि की प्रतिभा का फल था। उन्होंने—

'देखा शारदा नील वसना।
है सम्मुख खड़ी सृष्टि रसना।
जीवन समीर शुचि निःश्वसना वरदात्री।
वीणा वह स्वयम् सुवादित स्वर
फूटी तर अमृताक्षर निर्झर
वह विश्व हंस है चरण सुघर जिस पर श्री॥'

ऐसी ही अन्तिम स्थिति का आभास होने पर समाधि की वह स्थिति आती है जिसको भारतीय कवि मान्यता देते चले आ रहे हैं। यहाँ आकर जीवन का सत्य अपने को स्वतः कवि-दृष्टि के समक्ष बिखेर देता है। यहीं आकर 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू' वाला वाक्य चरितार्थ होता है। यही कवि-अनुभव की वह उदात्तावस्था है जहाँ वह समष्टि एवम् व्यष्टि का भान भूल जाता है। कवि इस समय 'जागो-जागो आया प्रभात, बीती वह बीती अन्धरात' जैसे ज्ञान से ही उद्‌बुद्ध है। उसकी सुषुप्त चेतना जाग्रत हो उठती है। उसे ज्ञात हो जाता है कि एक बार जड़ एवम् चेतन तथा अन्धकार एवम् प्रकाश का युद्ध होगा। एक ओर कवि की वरदात्री सरस्वती होंगी और दूसरी ओर होगा निरंकुश जनपीड़क समुदाय। इसके परिणामस्वरूप विविध मत-मतान्तरों में बँटे 'जन-मानस' को कवि अपनी अप्रतिम कला से एक बार पुनः संबद्ध करेगा। पुनः संसृत्ति की पुरातन वीणा पर नवोन्मेषशाली गीत का गान होगा और इसी के उद्‌बोधन द्वारा कवि मानव-माया में चेतना का संचार करके उसका उद्धार करेगा। निराला

भी एक ऐसा जीवन-संस्पर्श प्रदान करेंगे जो कीट्स की ही तरह यथार्थ सत्य को धारण करके परिस्थितियों को शान्त बनायेगा।

'हाइपीरियन' एवम् 'तुलसीदास' की इस प्रकार की उदात्त कल्पना के बीच, पाठक मंत्रमुग्ध होकर इनके कौशल, इनके मन्द्र स्वर, एवम् इनकी भविष्य कल्पना के मोहक पाश से बँधा हुआ इनमें आद्योपान्त भ्रमण करता है। कीट्स को जिन स्वप्नों का दर्शन जीवन में नवीन जीवन-स्पन्दनों को धारण करने पर प्राप्त होता है, वही यथार्थ स्पन्दन 'निराला' को उस गम्भीर समाधि की अवस्था में प्राप्त हो जाता है जो उनके समक्ष चित्रकूट तथा पत्नी की फटकार के बाद ससुराल में उपस्थित हुआ था। 'कीट्स' की ही तरह निराला भी जीवन के अखण्ड परिवर्तनों के बीच गुजर कर जीवन के नवीन स्पन्दन से अवगत होते हैं। जीवन में ही मर कर जीने का अर्थ सांसारिकता के मोहक एवम् वासनामय पाश से मुक्त होकर, तटस्थतापूर्ण जीवन के सुख-दुःख की व्याख्या प्रस्तुत करने से है। कवि 'कीट्स' के 'अपोलो' में ही इस सत्य का दर्शन नहीं होता अपितु निराला के 'तुलसीदास' भी इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

कीट्स के कविता-सिद्धान्त की प्रगति की ही तरह निराला के 'तुलसीदास' के मनोभावों के परिवर्तन में भी उनके काव्य-सिद्धान्तों की प्रगति का इतिहास निहित है। प्रारम्भ से ही कवि में चिन्तन का संस्कार है। देश के सांस्कृतिक अधः-पतन से वह परम दुःखी है। कीट्स की ही तरह प्रकृति उसके लिये भी सन्देह-वाहिका है। आरम्भिक अवस्था में प्रकृति एवम् नारी के अन्तर्द्वन्द्व में सारी चेतना के रहते हुए भी कवि नारी के केश-जाल में आसक्त है। परन्तु यहाँ सत्य पर से भ्रम का परदा उठते ही नारी उसके लिये उसी प्रकार गुरु बन जाती है जिस प्रकार कीट्स के लिये मोनेटा। कीट्स की ही तरह निराला को भी 'वासना की मुक्ति-मुक्ता त्याग में' त्यागने का अमर सन्देश मिलता है। वह अब नारी के स्थान पर 'शारदा' एवम् 'सृष्टि-रसना' का दर्शन करता है। इस प्रकार इन दोनों ही कविताओं द्वारा इन कवियों को उनके कवि-जीवन का उद्देश्य प्राप्त होता है। इस ज्ञान के पश्चात् ही वे दोनों ही कवि अपने "उद्धत प्रहार" द्वारा अन्धकार का नाश करने के लिये तत्पर होते हैं।

दोनों ही कवियों ने 'मिथ' का प्रयोग किया है। परम्परित देवकथा के स्वरूपों में इन दोनों ने अपनी इच्छानुसार परिवर्तन प्रस्तुत किया है। ये दोनों ही कवि 'अपोलो' एवम् 'तुलसीदास' को अपने विचारों का वाहक बनाते हैं। दोनों में कथा का ऐसा सूत्र है जो आदि से अन्त तक क्षीण रूप में उपस्थित है। दोनों ही कवि व्यष्टि-सीमा से उठकर समष्टि तक पहुँच सके हैं। इस प्रकार

सामान्य कवि से महाकवि की स्थिति तक यह परिवर्तन दोनों में दर्शनीय है। कीट्स के स्वप्नों की सृष्टि, तथा निराला के तुलसीदास में मन के निरंतर ऊपर उठने की कल्पना इनकी विधायक शक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। ये दोनों कवि अपने दु:खों-सुखों के आलोड़न-प्रलोड़न द्वारा ऐन्द्रिय आनन्द के ऊपर उठ सके हैं। यहाँ वे मानवता के अमर सन्देशवाहक का उत्तरदायित्व निभाते हैं। इस दृष्टि से ये दोनों कृतियाँ विश्व-साहित्य को अनुपम देन हैं।

यह एकता इनके विचारों की एकता है। वास्तव में समष्टिगत सत्य देश-काल की सीमाओं से आबद्ध नहीं किया जा सकता। वह कालातीत एवम् सीमातीत है। इसमें हम निराला पर कीट्स का प्रभाव पाने के स्थान पर सत्य की उस विराटता को पाते हैं जो सर्वत्र एक ही रूप में उपस्थित है। अन्तर अगर है तो परम्पराओं एवम् मान्यताओं का, संस्कृतियों के मूल आधारों का। परन्तु यह अन्तर स्थूल अन्तर है। मानव-सुख-दु:ख पर कवि के सोचने की क्रिया प्राय: एक ही है, भिन्नता केवल सांस्कृतिक स्थूल उपादानों में है जिसको विविध लोग इनका वाहन बनाते हैं। यह सांस्कृतिक अन्तर इन दोनों ही कवियों में अपने मूल रूप में उपस्थित है। कीट्स का आधार ग्रीक कला एवम् उसके सांस्कृतिक तत्त्व हैं और निराला का 'आधार-स्तम्भ' भारतीय संस्कृति है। 'कीट्स' की तरह 'निराला' भी अपने 'तुलसीदास' में व्याख्यात्मक उपदेशों में संलग्न नहीं हैं। कुछ लोगों के अनुसार कीट्स के 'हाइपीरियन ए फ्रैगमेण्ट' पर मिल्टन की 'पैराडइज लास्ट' का प्रभाव है। परन्तु 'हाईपीरियन ए व्हिज़न' तक आते-आते कवि उस शिल्पगत प्रभाव के मुक्त हो गया है और शेक्सपीयर की ओर उन्मुख है। पर ई० डी० सेलिन कोर्ट की यह मान्यता अधिक उपयुक्त ठहरती है कि अगर उसने कुछ स्थलों पर उनका परित्याग किया है तो कुछ स्थलों पर उनको आग्रहपूर्वक अपनाया भी है। 'हरफोर्ड' ने ठीक ही कहा है कि 'कीट्स' में मिल्टन जैसी स्वच्छन्द प्रकृति एवम् वर्णन-शक्ति का अभाव है, परन्तु इस अभाव की पूर्ति उसके रचना-विधान की कलात्मकता एवम् चिन्तन से हो जाती है। कवि निराला शिल्प की दृष्टि से अपने तुलसीदास की रचना में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हैं। कविता के आरम्भ से ही विचारों का एक प्रचण्ड वेग दृष्टिगोचर होता है। कवि अपनी इन छ: सौ पंक्तियों की कविता में उसे बनाये रखने में पूर्ण समर्थ है। यथास्थान सामान्य दुरूहता भी आ गई है पर यह दुरूहता इस कविता का दोष न होकर इसका अलंकार है। कवि अपने अभिव्यक्तीकरण में संस्कृतप्रधान शब्दों के माध्यम से समास-पद्धति का अनुगमन करके चला है और इसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है।

अन्ततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'तुलसीदास' एवम् 'हाइपीरियन' छायावादी एवम् स्वच्छन्दतावादी साहित्य की प्रमुख उपलब्धियाँ हैं। भिन्न सांस्कृतिक स्रोतों को अपनाने के कारण कथारूप में स्पष्ट अन्तर है, परन्तु गन्तव्य दोनों ही कवियों का एक-सा है। इसके मूल में हमें परिस्थिति-साम्य एवम् चिन्तन द्वारा चिरन्तन सत्यों की एकता का दर्शन होता है। इस प्रकार भिन्न देशकाल की प्रायः एक सी स्थिति में, भिन्न संस्कृतियों का आधार लेकर रचित ये कवितायें केवल उन्हीं के स्वप्न के रूप में हमारे समक्ष नहीं उपस्थित हैं बल्कि ये मानवता का स्वप्न बन सकी हैं और मानव-परिष्कार, अन्तर्द्वन्द्वों के विनाश तथा कविता के अन्तिम उद्देश्य के कुछ ऐसे रहस्यमय स्वरूपों को उद्घाटित कर सकी हैं जो मानव के लिये प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करेगा और आने वाली पीढ़ियाँ भी इनसे लाभान्वित होंगी।

३

एडोने एवम् सरोज-स्मृति

ये दोनों ही शोकगीत हैं। एक कवि कीट्स के मरने के पश्चात् 'शेली' द्वारा रची गयी है और दूसरी अपनी पुत्री की मृत्यु के पश्चात् निराला द्वारा। दोनों ही सिद्धहस्त कलाकार हैं। दोनों ने अपने को इन गीतों में अधिक से अधिक स्पष्ट करके सामने रखा है। 'कीट्स' एवम् 'शेली' में अधिक घनिष्टता न थी। अतएव मिल्टन से सम्बन्धित लिसिडस की तरह, एडोने में भी मृतक व्यक्ति से सम्बन्धित शोक उतना हृदयद्रावक रूप नहीं ले सका है जितना कि लेखक के विचार। जिस प्रकार 'एडवर्ड जार्ज' की मृत्यु के पश्चात् 'शेली' को यह सुवर्ण अवसर प्राप्त हो सका कि वह 'पोएटिक फेम' पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे, उसी प्रकार वह 'कीट्स' की मृत्यु को कविता, प्रकृति एवम् मानवता के उन सभी उपादानों के लिए विपत्ति समझता है, जिनको कविता एक शाश्वत अभिव्यक्ति प्रदान करती है। कवि निराला में सरोज की मृत्यु के पश्चात् अपनी परवशता, निस्सहायता तथा निराशा के चित्र अधिक स्पष्टता से दृष्टिगोचर होते हैं। अतीत की स्मृतियाँ झंकृत होकर मस्तिष्क को आच्छादित कर लेती हैं। फिर भी कवि उनके सामने घुटने नहीं टेकता। वह उन्हें सहर्ष शिरोधार्य करता है। इन दोनों ही कविताओं में वैयक्तिकता के स्वर मुखरित हैं। फिर भी महान कलाकारों की तरह ये कवि निर्लिप्त एवम् तटस्थ रहकर कहीं-कहीं विचार की अत्यधिक ऊँचाई तक पहुँच सके हैं।

वैयक्तिक स्वर

'एडोने' एवम् 'सरोज-स्मृति' में कवियों के वैयक्तिक स्वरों को अभिव्यक्ति मिली है। शेली भी, कीट्स की तरह अपने जीवन में विरोधी आलोचना का शिकार हो चुका था। उसकी धारणा थी कि कीट्स की मृत्यु 'एण्डिमिअन' पर आलोचकों द्वारा किये गये विरोधी विचारों के कारण हुई है। अतएव अपनी ही दुःखद स्थिति में अपने समकालीन कवि को मृत्यु का शिकार होते देखकर 'शेली' की करुणा शतशत स्वरों में फूट पड़ी परन्तु ऐसा करते समय उसके मस्तिष्क में

'कीट्स' कम और शेली' अधिक उपस्थिति था। अतएव वह उस समय की पत्रकारिता के पीछे ऐसे नामों की खोज में रत हुआ जो स्वयम् उसको और 'कीट्स' को अपनी नासमझी से आहत कर रहे थे। उसने लिखा है कि 'ये बदमाश लोग यह नहीं जानते थे कि वे क्या कर रहे हैं। वे अपने शरारतपूर्ण तथा अपमानयुक्त आक्षेपों से सब पर प्रहार करते हैं परन्तु ऐसा करते समय वे इस बात का ख्याल नहीं करते कि उनके तीर का किसी क्रूर हृदय पर असर हो रहा है या किसी कोमल हृदय पर।'[1]

शेली ने इस कविता में अपना परिचय देते हुए कहा है कि—

> 'कम महत्वपूर्ण लोगों के साथ एक क्षीणकाय व्यक्ति आया। वह उन व्यक्तियों में एक छाया-सदृश था। उसके मित्र न थे। वह उस झंझा-वात के सदृश था जो अन्तिम गर्जन के साथ समाप्त हो जाता है। मेरा विश्वास है कि उसने एक्टीयन की तरह प्रकृति-सौन्दर्य का अवलोकन एवम् आस्वादन किया था। अब वह शक्तिहीन पैरों से इस विश्व-अरण्य में उद्देश्यहीन होकर भ्रमण कर रहा था। उसके निजी विचार, शिकारी कुत्तों की तरह उसके जीवनक्रम तथा निर्माता (शेली) का पीछा कर रहे थे।'[2]

वह उपर्युक्त आत्म-परिचय से ही संतुष्ट नहीं हो जाता, अपितु अपनी परिस्थिति का चित्रण करते हुए पुनः कह पड़ता है—

> 'वह उत्साह में चीते के सदृश आकर्षक एवम् उद्दाम था। वह निस्सहायता से आवृत्त प्रेम तथा शक्तिहीनता से आवृत्त शक्ति-सदृश था। ये उपादान,

---

[1] Adohais-Preface, *Shelley*.

[2] Midst others of less note came one frail form
A phantom among men, a conpanionless,
As the last note of expiring storm
whose thunder is its knell. He as I guess,
has gazed on nature's loveliness,
Acteon like, and now he fled astray
with feeble steps, over the world's wilderness,
And his thoughts, along the rugged way
pursued like raging hounds, then father and their prey.

उसे उस पर पड़े हुए समय के अनन्त भार से मुक्त करने में असमर्थ थे। वह एक बुझते हुए दीपक, झड़ती हुई जल-बूँद तथा विच्छिन्न लहर के सदृश था। फिर भी उसके विषय में हम कह सकते हैं कि वह पूर्ण रूप से निराश नहीं था। वह उस मुरझाते फूल के सदृश था जिस पर सूर्य की किरणें अपनी पूर्ण शक्ति के साथ चमकती हैं। उसका हृदय टूट गया था, फिर भी उसके कपोलों पर जीवन के स्पन्दन की एक लाली थी।'[1]

इस विविध आत्म-परिचयात्मक अंश के सौन्दर्य एवम् सूक्ष्मता के साथ ही इस शोक-गीति का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप वहाँ पर दृष्टिगोचर होता है जहाँ कवि दार्शनिक का बाना पहन कर कीट्स को इस सृष्टि के कण-कण में परिव्याप्त दिखलाता है। उसकी यह दार्शनिक भावना आलोचकों के लिए एक चैलेंज होने के साथ ही साथ कवि के आत्मसंतोष का विषय है। कवि इसके द्वारा यह सिद्ध करना चाहता है कि 'मानव-मस्तिष्क के कलुष ने कवि की हत्या कर दी, पर वह फिर भी मरा नहीं। वह प्रकृति के सौन्दर्य के साथ मिलकर एक हो गया है उसकी ध्वनि इसके (प्रकृति-के) संगीत में प्रतिध्वनित हो रही है।'

निराला की 'सरोज-स्मृति' ऐसी शोकगीति है जो यथार्थ पृष्ठभूमि पर कवि के जीवन के विविध संघर्षों को विविधता के साथ चित्रित करती है। कवि यहाँ 'शेली' की तरह दार्शनिकता के पंख पर बैठकर नश्वरता एवम् अनश्वरता की गुत्थी नहीं सुलझाता। वह तो यथार्थ में अपने ही खून से सरोज के असामयिक निधन पर एक दृष्टि डालकर अपना मूल्यांकन करना चाहता है। यह स्मृति उसके लिए जीवन-संघर्ष की यथार्थ स्मृति की परिचायिका बन जाती है। यथा—

---

[1] A pard-lika spririt beautiful and swift.
A love in desolation masked—a power
girt round with weakness, it can scarce uplift
The weight of superincumbent hour,
It is dying lamp, a falling shower,
A breaking billow, even while we speak
It is not broken ? on the withering flower
The killing sun shines brightly on a cheek,
The life can burn in blood, even while the heart my break.
—Adonais, *Shelley*.

'एक साथ शत घातपूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण
देखता रहा मैं खड़ा अपलक
वह रणक्षेत्र वह रण-कौशल'

वह अपने जीवन-संघर्ष के विविध घात-प्रतिघातों का निराकरण ढूंढ़ने में असमर्थ था ही, अचानक सरोज की मृत्यु ने उसको हिला दिया। उसके हृदय में एक टीस उठी और उसका दग्ध हृदय कराह कर कह पड़ा—

'धन्ये मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित कर न सका
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय।'

इस आत्म-प्रताड़ना एवम् आत्म-सीमांकन के बावजूद वह 'शेली' की तरह दृढ़ रहा। उसकी साधना के स्वर किसी भी प्रकार मन्द न पड़े और वह कराह कर कह पड़ा—

'यह हिन्दी का स्नेहोपहार
यह हार नहीं मेरी, भास्वर वह रत्नहार लोकोत्तरवर।'

निराला अपनी इस निराली साधना में रत रहते हैं। जीवन-संघर्षों की चिन्ता न करके वे इससे लगातार लड़ते हैं। फिर भी व्यावसायिक मनोवृत्ति के सम्पादक उनकी रचनाओं को लौटा देते हैं। एक तरफ साधना की एकोन्मुखता एवम् दूसरी तरफ उसका सम्पादकों द्वारा निर्मम तिरस्कार कवि को अखर उठता है और वह कह पड़ता है—

'पर सम्पादक गण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
रो एक पंक्ति में दो उत्तर।'

परन्तु कवि इसके समक्ष हार मानने वाला नहीं। कवि के अन्तर्द्वन्द्वों एवम् संघर्षों के चित्र इस शोकगीति में अधिक से अधिक स्पष्टता के साथ सामने आये हैं। सरोज का बढ़ना, श्वास का शादी के लिए कहना, पाणिग्रहण में भी निराला का स्वतन्त्र व्यक्तित्व से काम लेना, आदि इस कविता के विविध चित्र हैं। अपनी दूसरी शादी के लिए आये हुए लोगों का वर्णन, शादी को लेकर अन्तर्द्वन्द्व, कवि के हाँ-नहीं के बीच झूलने का स्वप्न तथा अन्ततोगत्वा अपने दूसरे पाणिग्रहण की संदेशवाहिका कुण्डली को छोटी सरोज को समर्पित करना तथा उसका उसे फाड़कर उस पर समा-

सीन हो जाना आदि ऐसे स्वरूप कविता में उभड़ सके हैं जो यथार्थ में हृदय में एक विचित्र स्पन्दन उत्पन्न कर देते हैं। कवि के जीवन की एक मात्र आशा-केन्द्र सरोज, जिसके लिए उसने माता एवम् पिता दोनों का कर्त्तव्य निभाया और जो कवि के लिए पुत्री होने के साथ ही दिवंगत प्रिया की स्मृति भी थी विवाहोपरान्त, अपनी पुष्प-सेज रचने वाले पिता को छोड़कर चली गयी। कवि का हृदय इस वियोग को सहन कर सकने में असमर्थ होने के कारण आत्म-छिद्रान्वेषण में रत हुआ। अचानक उसकी वेदना के झंकृत तारों से एक ध्वनि निकली—

> **'दुःख ही जीवन की कथा रही**
> **क्या कहूँ आज जो कहा नहीं।'**

परन्तु इस विवशता में भी कवि अपने कर्त्तव्यों के प्रति सतर्क रहा जो—

> **'कन्येगत कर्मों का अर्पण।**
> **कर करता हूँ तेरा तर्पण॥'**

द्वारा स्पष्ट प्रतिध्वनित होता है।

उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टिपात करने पर हमें ज्ञात होता है कि कीट्स की कहानी स्वयं शेली के विचार एवं दर्शन की कहानी का रूप लेकर रह जाती है, पर सरोज की कहानी 'निराला' के जीवन की गाथा का रूप ले लेती है। व्यक्तिगत जीवन-सम्बन्धी सामान्य चित्र प्रायः दोनों कवियों में उभड़ सके हैं, पर यथार्थ जीवन से सम्बन्धित कवि के त्याग, आशा एवं निराशा के जो स्वरूप या चित्र हमें सरोज-स्मृति में मिलते हैं, वे शेली की 'एडोने' में नहीं मिलते। इसलिए व्यक्तिगत जीवन के चित्रों को अंकित करने की दृष्टि से 'सरोज-स्मृति' अधिक सफल रचना है। परन्तु इसका कारण स्पष्ट है। कई दृष्टियों से शेली एवं निराला के व्यक्तित्व में महान् अन्तर परिलक्षित होता है। शेली जीवन्त समस्याओं पर विचार तो करता था पर बहुत ही जल्द वह दार्शनिक पहेलियों को सुलझाने की ओर उन्मुख हो जाता था। पर निराला जीवन-संघर्ष के कवि हैं। इनका अपराजित तथा संघर्षशील व्यक्तित्व सर्वत्र अपनी एक विशिष्टता के साथ प्रस्तुत रहता है। उनके विषय में उनकी लिखी हुई निम्नांकित पंक्तियाँ—

> **'खण्डित करने को भाग्य अंक**
> **देखा भविष्य के प्रति सशंक।'**

सर्वांशतः ठीक हैं। अतः व्यक्तित्व एवं चिन्तन का यह अन्तर उनकी इन कविताओं के अन्तर के मूल में निहित है। शेली को अगर आलोचकों से चिढ़ थी तो निराला

को प्रकाशकों से। इस प्रकार इन्होंने सामान्य काव्य-सम्बन्धी उपेक्षाओं की ओर भी दृष्टिपात किया है।

कलात्मकता

अभी इस दृष्टि से इन कविताओं पर कुछ भी नहीं कहा गया है। अतएव उस पर विचार कर लेना भी समीचीन होगा। 'शेली' की यह कविता 'पेस्टोरल एलेजी' है। 'बिअन' (Bion) के 'लैमेण्ट' के आधार पर कवि ने अपनी इस कविता को लिखा है। (Bion) में देवी एक गुणसम्पन्न व्यक्ति के निधन पर पश्चात्ताप करती दिखाई गई है, साथ ही यह भी दिखाने का प्रयत्न हुआ है कि यह सम्पन्न व्यक्ति उस देवी की अभिलाषाओं का केन्द्र था। कवि शेली को यह कथानक अत्यन्त आकर्षक दीख पड़ा। इसी को उसने अपने शोक-गीति का आधार बनाया। यह लिखा जा चुका है कि 'शेली' की धारणायें 'कीट्स' के व्यक्तिगत परिचय पर आधारित न थीं। वह उसकी कृतियों के अध्ययन के आधार पर उसके काल्पनिक चित्र अपने मस्तिष्क में बना सका था। 'एडोने' को शेली ने कीट्स का आदर्श स्वरूप माना। एतदर्थ 'बिअन' के 'लैमेण्ट' में प्रयुक्त कुछ सामान्य विशेषताओं का शेली के 'एडोने' में भी दर्शन होता है। फिर भी जहाँ कहीं भी आवश्यकता पड़ी है वह ग्रीक कथा में स्वतंत्रतापूर्वक परिवर्तन कर सका है।

जिस प्रकार 'बियन' ने अपने शोक-गीति को 'एडोने' के प्रति लिखा है उसी प्रकार शेली ने भी एडोने के पुत्र को सम्बोधित करते हुए लिखा है। एडोने की तरह वह भी एक गड़ेरिया था जो—

'तीव्र गति से अदृश्य होने वाले स्वप्नों तथा विचारों के संवेदनशील पंखयुक्त समूहों को अपने यौवनपूर्ण उत्साहरूपी नदी के तट पर पालता था और संगीतमय प्रेम की शिक्षा प्रदान करता था।'[1]

जिस प्रकार 'Moschus' के 'लैमेण्ट फार बिअन' में मृतक गड़ेरिये को विष देने की बात कही गई है, उसी प्रकार शेली भी अपने 'एडोने' के प्रति कहता है—

---

[1] The quick dreams,
The passion winged ministers of thought
Who were in flocks, whom near the living streams,
Of this young spirit he fed, and whom he taught
The love which was in music.

'एडोने ने विषपान किया है।
अरे किस बहरे और प्रतिशोधपूर्ण हत्यारे ने जीवन के
आरम्भिक प्याले को विपत्ति की इस कड़वी घूंट से
अपूर्ण कर दिया है।'[1]

यूरेनिया के अतिरिक्त, बाइरन, मूर, हण्ट, शेली आदि सभी शोक मनाने के लिए आते दिखाए गए हैं। ये सभी पर्वतीय गड़ेरिये के वेश में हैं। जिस प्रकार गड़ेरिया भेड़ों की रखवाली करता है, उसी प्रकार ये कवि विचारों की रक्षा करने वाले हैं। ये सभी हेलिकन पहाड़ के निवासी हैं। पूर्वकथा में यह पर्वत-शिखर देवताओं का आवास है और यहीं से यूरेनिया एडोने को पुनर्जीवित करने के लिए उतरता दिखाया गया है। मृतक कवि के सम्मान में ये लोग ऐसा वेश धारण किये हुए हैं जो शोक का द्योतक है।

चौदहवें स्टेंजा में 'पैस्टोरल' परंपरा को त्याग कर 'शेली' कला की महानता एवं मृत्यु के विषय में विचार करता हुआ कहता है—

'वह सांसारिक रात्रि, घृणा, द्वेष, कष्ट एवं अशान्ति की सीमा का अतिक्रमण कर गयी है। मिथ्या, तथाकथित भ्रमपूर्ण एवं सांसारिक आनन्द अब न तो उसका स्पर्श कर सकता है और न उसे प्रताड़ित।'[2]

इस विचार के आते ही कवि उद्बुद्ध होकर कह पड़ता है कि शोक मनाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह इस सांसारिकता की वीभत्स एवं प्रताड़क भावनाओं से मुक्त हो चुका है। अतएव इस शोकपूर्ण समय में भी वह कह पड़ता है—

'हे नव प्रभात! तुम अपनी ओस की बूंदों एवं ऐश्वर्य को विखेर दो क्योंकि वह आत्मा जिसके लिए नर विलाप कर रहे हैं तुमसे दूर नहीं गयी है।'[3]

---

[1] Our Adonais has drunk poison—Oh
What deaf and viperous murderer, could crown,
Life's early cup with such a draught of woe.

[2] He has out soared the shadow of our night
Envy and calumny and hate and pain and the unrest
Which men miscall delight
Can touch him not and torture him again.

[3] Thou young dawn turn all the dew and splendour, for from thee,
The spirit thou lamentest is not gone.

इस प्रकार इस शोकगीति का अध्ययन करने पर सैंतीसवें पद्य तक हम शोक को शोकगीति की पूर्व परम्परा का अनुगमन करने वाले कवि के रूप में पाते हैं। परन्तु इसके बाद उसके विचार में परिवर्तन हो जाता है। इस पद्य तक 'शेली' को हम कीट्स की मृत्यु की परम्परा, तत्सम्बन्धी विचार, कविता के लिये देवकथाओं एवं प्रतीकों का प्रयोग करते हुए देखते हैं; अतएव इस दृष्टि से यह शोक-गीति पूर्व शोक-गीति की परम्पराओं का कुछ हद तक अनुकरण करता दिखाई पड़ता है।

परन्तु जब हम 'सरोज-स्मृति' पर दृष्टिपात करते हैं तो परम्परा, देवकथा या प्रतीक का उसमें दर्शन नहीं होता। कवि के हृदय में महान् वेदना का अपार सागर तरंगायित हो रहा है। कवि होने के कारण 'निराला' द्रष्टा, विचारक एवं यथार्थ के अन्वेषक हैं। इस वियोग के महान् कष्ट में उनमें परम्परा का विचार दृष्टिगोचर न होना स्वाभाविक है। उनकी कविता-सरिता हृदय के भग्नावशेषों पर विचारों की अतिवृष्टि के कारण स्वतः उन्मुक्त होकर प्रवाहित हो उठी है। उसमें गति है, हृदयद्रावक संवेदना है, ताण्डव है और लास्य भी है। स्मृतियाँ एक-एक करके कवि के मानस के समक्ष आती-जाती हैं और प्रतिभा उन्हें चुन-चुन कर एक सूत्र में पिरोती जाती है। इस प्रकार सरोज-सम्बन्धी विविध स्मृतियों की पृष्ठभूमि में कवि की विवशता का एक संगुम्फन मानव-हृदय को प्राप्त होता है। शेली भी इस प्रकार के विचारों में रत है, फिर भी परम्परा-निर्वाह, शोकगीति को एक ढाँचे में ढालने का प्रयत्न तथा कीट्स से अपना निजी संबन्ध न होने के कारण वह आक्रोश, पीड़ा तथा संवेदना की सहज हृदयद्रावक अभिव्यक्ति उसमें नहीं है जो निराला की सरोज-स्मृति में है। उसके चित्रों पर दार्शनिकता का एक दुरूह आवरण पड़ गया है। अतएव वे सामान्य पाठक की समझ में आने वाले नहीं हैं।

दार्शनिक पक्ष

दोनों ही कवितायें चिन्तनपरक हैं। अड़तीसवें छन्द से 'एडोने' में शेली का चिन्तन दार्शनिक हो गया है पर निराला 'सरोज-स्मृति' में जीवन-संघर्षों तक सीमित रहे हैं। शेली अपनी इस कविता में विचार की परमोच्च पृष्ठभूमि पर पहुँच कर नश्वरता एवं अनश्वरता की पहेली बुझाने लगता है। कहीं तो वह सामान्य विचारक के रूप में सोचता है कि—

> 'इस विश्व में केवल एक अनश्वर सत्ता है। अन्य सभी कुछ परिवर्तन-शील है। स्वर्गीय प्रकाश सदा दीप्तिमान् रहता है और पार्थिव सत्ता

विनाशोन्मुख होती है। यह जीवन विविध प्रकार के शीशों से बने हुए महल की तरह शाश्वत प्रकाश को उस समय तक मलीन करता रहता है जब तक मृत्यु इसको कुचल कर टुकड़े-टुकड़े नहीं कर देती।'[1]

परन्तु दूसरे ती क्षण वह सर्वात्मवादी विचारक की तरह कह पड़ता है कि—

'मृत्यु के पश्चात् वह प्रकृति से मिल कर उसका एक अंश हो गया है। उसकी प्रत्येक संगीत में इसकी प्रतिध्वनि सुन पड़ती है। यह ध्वनि करुण पुकार से लेकर से लेकर रात्रि की नीरवता तथा मधुर गान करने वाली चिड़ियों तक में उपस्थित है। वह एक ऐसी उपस्थिति है जिसका हम प्रकाश एवं अन्धकार में, झोपड़ों से लेकर जड़ पाषाण तक में अनुभव करते हैं। यह उस अनन्त शक्ति के साथ मिल कर चतुर्दिक् फैल गयी है। यह भी कहा जा सकता कि इस विश्व के कभी भी समाप्त न होने वाले प्रेम के आधार पर नियमों का संरक्षण वाली शक्ति ने उसे अपना एक अंश बना लिया है। यह इस विश्व न में इसका संरक्षण करती है और विश्व में इसको प्रज्वलित बनाये रखती है।'[2]

निराला ने भी 'सरोज-स्मृति' में एक स्थल पर परम तत्व से मिलन की बात को स्वीकार किया है—

---

[1] One remains many change and pass;
Heaven's light for ever shines, earth's shadows fly—
Life line the dome of many coloured glass.
Stains the white radiance ef eternity,
Untir death tramples it to fragments.

[2] He is made one with nature, there is heard
His voice in other music from the moan
To the song of night's sweet bird.
He is a presence to be felt and known.
In darkness and in light from hut to stone,
Spreading itself, wherever that power may wove,
Which has withdrawn his being to its own
Which wields the world, with never meary love,
Sustains it form beneath and kindles it from above.

'पूरे कर शुचितर सपर्याय
जीवन के अष्टादशाध्याय
चढ़ मृत्यु तरणि पर तूर्य चरण
कह पिता पूर्ण आलोक वरण
कहती हूँ मैं यह नहीं मरण
सरोज का ज्योति शरण तरण ।'

'शेली' भी के उपर्युक्त विचारों में हमें 'प्लेटो' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। फिर भी व्यष्टि (आत्मा) का समष्टि (आत्मा) के साथ संमिलन द्वारा अद्वैत की स्थापना शेली की अपनी निजी विशेषता है। यहाँ शेली अपने चिन्तन में भारतीय विचारकों के अधिक निकट है।

चौवालिसवें छन्द में हमें इस बात का संकेत मिलता है कि व्यष्टि की आत्मा केवल समष्टि आत्मा में मिल ही नहीं जाती अपितु इस तादात्म्य में उसके निश्चित जीवन की पूर्ति भी होती है। यहाँ अद्वैतवादी विचारकों की भाँति वे इस बात को मान्यता प्रदान करते दृष्टिगोचर होते हैं कि पूर्ण तत्व से तादात्म्य स्थापित होने के पश्चात् वह उसी का अंश हो जाता है।

उनतालिसवें पद में, जिसका उल्लेख उपर हो चुका है, 'शेली' इस बात को मानता दृष्टिगोचर होता है कि कवि न तो मरा है और न सो रहा है। वह केवल जीवन-स्वप्नों से मुक्त हो गया है। इकतालीसवें एवं बयालीसवें छन्द में हम पाते हैं कि अनुभव का विश्व एक छाया है। उसमें कष्ट एवं शान्ति है। वह यथार्थ में जीवन का नकारात्मक स्वरूप है। कवि 'कीट्स' इस स्वरूप से मुक्त हो चुका है। वह नहीं मरा है, मृत्यु मरी है।

कवि यह मानता है कि आध्यत्मिक बिम्ब ही यथार्थ है। इसके अतिरिक्त अन्य सब कुछ नश्वर है। उसके इस विचार की प्रतिध्वनि, बाइबिल, गीता, उपनिषद् आदि में पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति पा सकी है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि—

'न त्वेवाहं जातुनासं, न त्वनेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥'

एमर्सन ने भी अपनी 'ब्रह्म या एक' नामक कविता में लिखा है कि—

'अगर यथार्थ हत्यारा इस बात को सोचता है कि वह हत्या करता है,

अथवा मृतक व्यक्ति इस बात को सोचता है कि उसकी हत्या कर दी गयी है तो वे उस सूक्ष्म तथ्य से अवगत नहीं हैं।'[1]

'शेली' ने भी प्रायः इसी से मिलते-जुलते विचारों को 'एडोने' के कतिपय छन्दों में अभिव्यक्त किया है। 'उसका उद्देश्य व्याख्या करना नहीं अपितु विश्वास उत्पन्न करना है। जब हम उसके 'ओरिएण्टल अद्वैतवाद' को अनओरिएण्टल अद्वैतवादी पद्धति से अभिव्यक्त होते देखते हैं तो हमें इसमें स्वछन्दतावादी आन्दोलन के स्वरूप का दर्शन होता है। यह विचार स्वच्छन्दतावादी चिन्तन का वह अंश है जिसके द्वारा हम किसी परात्पर सत्ता को सांसारिक सत्ता से सम्बद्ध करते हैं। स्वच्छन्द धारा के आदर्शवादी कवि अट्ठारहवीं शताब्दी के द्वैतवादी विचार के आधार पर अद्वैत की पृष्ठभूमि में प्रवेश करते थे और इसी के माध्यम से प्रयत्नशील होकर वे दृश्य जगत् में अद्वैतवादी आध्यात्मिकता के स्थूल स्वरूप को चित्रित करते थे।'[2]

'सिडनी चैटर्टन पैसेज' के द्वारा शेली पुनः इस बात को व्यक्त करना चाहता है कि विविधता के मूल में एकता है। पूर्णता के साथ सामंजस्य ही जीवन का उद्देश्य है। जो वस्तु जीवन में अपूर्ण रह जाती है, वह कमी उस परम तत्व से सम्मिलन के पश्चात् पूर्णता को प्राप्त करती है। पूरी कविता का सार 'केवल एक तत्व स्थिर है और अन्य परिवर्तनशील हैं', में निहित है। इस दार्शनिकता के कारण कविता दुरूह होते हुए भी आकर्षक एवम् महत्वपूर्ण बन गयी है। इसका उद्देश्य इस बात का संकेत करना है कि मृत्यु द्वारा व्यक्ति अपूर्ण को पूर्ण एवम् अप्राप्य को प्राप्य बनाता है।

उपर्युक्त, विवेचन से एक बात स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाती है कि 'शेली' भी 'प्लेटो' की तरह आदर्शवादी था परन्तु अपने भावनाप्रवण दृष्टिकोण के कारण वह इसे अपने पूर्व विचारकों से कुछ भिन्न रूप में मानता था। प्लेटो के अनुसार भावना-प्रवणता संयोजन की ओर उन्मुख होती है। संमिलन प्रायः विचारों का न होकर आत्मा का होता है। कवि इस आध्यात्मिक विश्व को विषयगत दृष्टिकोण

---

1. If the real slayer thinks he slays,
Or if the slain thinks he is slain
They know not well the subtle ways.
—*Emerson*, Brahma or One

2. Shelley and thought of his time– *Joseph Barral.*

से न देखकर विषयीगत दृष्टिकोण से देखता है। वह विश्व के निर्माण में उस नियम का नहीं अपितु उस प्रकृति का आभास पाता है जिससे उसका व्यक्तित्व निर्मित है। वह उस स्वतंत्रता का मुखापेक्षी है जो किसी विषय विशेष को अन्य विषयों से संबद्ध कर देती है। 'प्लेटो' व्यक्ति के विचार-स्वातन्त्र्य का पक्षपाती है। परन्तु शेली उसे अपनी सीमा तोड़कर अग्रसर होने तथा संमिलन प्राप्त करने में स्वतन्त्र मानता है।[1]

शेली यथास्थान प्लेटो का भी अतिक्रमण करके अपनी भावना-प्रवणता के कारण अत्यधिक सूक्ष्मता से विचार कर सका है। हम देखते हैं कि 'एडोने' अपने निष्कर्ष रूप में वही विचारधारा प्रतिपादित करता है जो प्राचीन भारतीयों से मिलती-जुलती है।

इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकोण से 'शेली' अपनी कविता को सूक्ष्म भावनाओं एवम् स्पष्ट कल्पनाओं से आपूर्ण कर सका है पर 'निराला' जी 'सरोज-स्मृति' में दार्शनिकता के पचड़े में नहीं पड़े हैं। अपने प्रतिपाद्य को वे स्पष्ट रूप में अभिव्यक्ति दे सके हैं, पर शेली के 'एडोने' को समझने के लिये पाठक को परंपरागत शोक-गीति एवम उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। निराला परंपरित विचार एवम् शेली के स्थान पर अपने विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति तथा अपनी परवशता के चित्र उभाड़ कर पाठक के सामने रख सके हैं। कवि के लिए 'सरोज-स्मृति' मात्र 'सरोज-स्मृति' न रहकर उस वैयक्तिक जीवन की स्मृति का रूप ले सकी है। शेली के शोक-गीति में शोक की अजस्र धारा की उपस्थिति के बावजूद भी वह संवेदनशीलता नहीं है जो निराला की 'सरोज-स्मृति' में है। दोनों ही कवि अपने अन्तर्मानस में निहित भावों का सफल एवम सूक्ष्म चित्रण कर सके हैं। इसीलिए इनका यह शोक-गीति मानव-जीवन की विविध अभिलाषाओं एवम् आकांक्षाओं का एक सफल चित्र बन गया है।

---

[1] वही।

उपसंहार

छायावाद एवम् स्वच्छन्दतावाद

एक मूल्यांकन

विश्व-साहित्य की इन दो विधाओं का विवेचन अनेक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। इनके साम्य एवम वैषम्य को तुलना द्वारा हृदयंगम करने और निष्कर्ष निकालने का ही प्रयत्न प्रायः विद्वानों के लिए विशेष रुचिकर रहा है। अतएव इसी स्थल पर यह देख लेना भी आवश्यक है कि इनकी क्या सफलता तथा असफलता रही है तथा साहित्यिक धारा के रूप में इन्होंने साहित्य-जगत् को कौन-सी देन दी है।

अंग्रेजी के 'ब्लेक,' 'कोलरिज,' 'शेली,' 'कीट्स' तथा 'वर्ड्सवर्थ' और हिन्दी के 'जयशंकर प्रसाद,' निराला,' 'महादेवी' और 'पन्त' प्रायः इस दृष्टिकोण से सहमत थे कि सर्जनात्मक प्रतिभा इन दृश्य वस्तुओं से परे अदृश्य व्यवस्था से सम्बन्धित है। जिस प्रकार बड़वा समुद्र के अन्तराल में पहुँच कर मोती निकाल लाता है, उसी प्रकार कल्पना भी विश्व की अतल गहराइयों तक जाकर विचार के मोती ढूँढ़ लाती है। अंग्रेजी स्वच्छन्द धारा के कवियों में 'बाइरन' ही ऐसा कवि था, (जिसमें सर्जनात्मक कल्पना के विविध रूप उपस्थित होते हुए भी) जिसने इसे मान्यता नहीं दी। 'एडगर एलेन पो' इसे बिलकुल यथार्थ के परे की वस्तु मानता रहा। हिन्दी में भी आलोचकों एवम् कवियों का एक वर्ग था जो पो के विचार को ही मान्यता प्रदान करता था। अंग्रेजी के 'प्रीरेफेला-इट्स' एवम हिन्दी के प्रयोगवादी इन्हीं विचारों के बीच अपनी मान्यता प्रतिस्थापित करते हैं। 'प्रीरेफेलाइट' विचारधारा को डी० जी० रोज़ेटी अभौतिक विश्व से संबद्ध करता था पर उसका हल वह कल्पना के माध्यम से न ढूंढ़कर सौन्दर्य एवम् प्रेम के माध्यम से ढूंढ़ना चाहता था। सी० जी० रोज़ेटी 'कोलरिज' एवम् 'कीट्स' के कुछ गुणों की उपस्थिति के बावजूद अपने क्रिस्चियन विश्वास द्वारा इस अतीन्द्रिय

लोक का ज्ञान अन्य लोगों को करा सकी। हिंदी में छायावाद का भाव-सौन्दर्य ही प्रयोग-वाद में कर्म-सौन्दर्य का स्वरूप ग्रहण कर सका। छायावाद की व्यक्तिगत वेदना की विकृति ही प्रयोगवाद की शृङ्गार-भावना, यौनवाद तथा मानवीय कल्पना और मान-वतावाद का रूप ले सकी। 'मूड' की कविता प्रयोगवाद में क्षण की गति पकड़ने का मापदण्ड बनी। इस प्रकार मेरी दृष्टि में प्रयोगवाद छायावाद की प्रतिक्रिया नहीं अपितु उसके विकास की एक अनम्य कड़ी है क्योंकि छायावाद के अभाव में प्रयोगवाद वह रूप न ले सका होता जिस रूप में वह बाद में उपस्थित हुआ। छायावाद की तरह ही प्रयोगवादी भी अन्तर्जगत के कवि कहे जा सकते हैं। यह भी अपने क्षुब्ध, तरल एवम् आकांक्षी अन्तर्जगत को अब चेतन स्तर पर पकड़ने के प्रयत्न में अनजाने ही स्वच्छन्दतावाद की कल्पना को मान्यता देकर उसी प्रकार व्यक्तिगत प्रतीक, उपमान एवम देवकथाओं के पचड़े में जा फँसा जिसके दर्शन छायावाद एवम् स्वच्छन्दतावाद में होते हैं। प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि प्रयोगवाद बुद्धिवाद का प्रश्रय लेकर चलता है। तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि छायावाद भी पूर्णरूपेण बुद्धिवाद का बहिष्कार नहीं करता। फिर यथार्थ रूप से दृष्टिपात करने पर हमें यह पूर्णरूपेण ज्ञात हो जाता है कि केवल बौद्धिकता ही उनकी कविता के अन्दर क्रियाशील नहीं है। उसमें भी भावुकता एवम् कल्पना का समावेश है। इस प्रकार वह छायावादी परम्परा का विकास ही है, उससे विच्छिन्न कोई वस्तु नहीं।

इग्लैंड एवम् भारत दोनों देशों में ये आन्दोलन दो भागों में बँटकर चलते दृष्टिगोचर होते हैं। एक में सशक्त एवम् मौलिक दृष्टिकोण विकसित होकर पाथेय बनता है तो दूसरे में इसी की आलोचना, प्रत्यालोचना, अतिरंजना, परिसीमन, और सर्वथा परित्याग की भावना दृष्टिगोचर होती है। ये दोनों दो पूर्णरूपेण विच्छिन्न धाराओं के रूप नहीं अपितु एक ही अविच्छिन्न विधा के दो अंश हैं। इन दोनों में ही सामान्य विश्व से अधिक पूर्ण विश्व की भावना के दर्शन होते हैं। एक समय था जब पूरा यूरोप इस प्रकार की वैचारिक प्रतिक्रिया का विषय बन चुका था। फ्रांस, जर्मनी, रूस, स्पेन एवम् इग्लैंड में ये पूर्णरूपेण क्रिया-शील थीं फिर भी जिस प्रकार के साहित्य का सर्जन इंग्लैंड में हुआ वह अपनी अन्तर्दृष्टि के लिये अनुपम था। यहाँ भी इस महान् धारा के उन्नायक प्रायः अपने सिद्धान्त की एकता में पूर्णरूपेण सहमत थे। हिन्दी छायावादी आन्दोलन परिस्थिति-साम्य के कारण कुछ इसी प्रकार का आन्दोलन है। भारत की अन्य भाषाओं में इस स्वच्छन्दतावादी तत्व का प्रसार एवम् विचार कुछ पहलेसे ही प्रारम्भ हो गया था। हिन्दी में भी इसको जो रूप मिला वह अद्वितीय था।

इसके भी प्रमुख लेखक स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के उन्नायकों की तरह सिद्धान्त सहमत थे।

इस प्रकार के सिद्धान्त के साथ जैसा होता है वही हुआ। धीरे-धीरे इसमें भी कल्पनातिशयता के कारण पलायन-वृत्ति एवम् ललित कल्पना के आधार पर सम्मोहक चित्र उपस्थित किए जाने लगे। हिन्दी छायावादी एवं अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के उन्नायकों को इस बात का संकेत मिल चुका था कि उन्हें अपने असंतोष को समाप्त करने का उपाय प्रकृति में मिल सकता है। अतएव वे प्रकृति की ओर उन्मुख हुए। पर इनके अनुयाइयों में कुछ ऐसे कवि थे जो अपने को स्वप्नवेत्ता कहते थे। उन्हें इस बात की तनिक भी चिन्ता न थी कि वे इसकी यथार्थता एवं अयथार्थता पर दृष्टिपात करते। उनका विश्वास था कि किसी दिन ये स्वप्न स्वतः यथार्थ का रूप ले सकेंगे। परिणाम यह हुआ कि उनकी इन उड़ानों से हमारे युवक मस्तिष्क की अपूर्ण इच्छाओं को भले ही संतुष्टि प्राप्त हो जाय, फिर भी परिपक्वता के अभाव के कारण वे मानव-गले का हार नहीं बन सकीं। इस प्रकार की उड़ान में हमें जीवन के निषेधात्मक रूप की व्याख्या मात्र मिल सकती है। अंग्रेजी में 'पो' उसका अनुयायी था। हिन्दी में कुछ थोड़े लोगों को छोड़कर प्रायः पिछले खेवे के कवि इस नवीनता, मोहकता, निरर्थकता एवं कल्पना की मृग-मरीचिका के संमोहन को ही अपना जीवन-सर्वस्व समझने लगे। परिणाम यह हुआ कि वे स्वतः अपने को धोखा देते रहे और अपनी असामान्य एवम् भ्रष्ट आकांक्षा को समाज का मानदण्ड बनाने का प्रयत्न भी करते रहे। वे कल्पना तथा अहं को महत्वपूर्ण समझते थे। अतः अपने स्वप्नों के परे दूसरे विश्व में क्या घटित हो रहा है इसको समझने का उनके पास समय न था। वे स्वतः सिद्धान्त नियामक एवम् निर्माता बने रहे। उदाहरणस्वरूप, विक्टर ह्यूगो ने अपने सौन्दर्यशास्त्रीय विवेचन में कुछ ऐसी भी मान्यतायें प्रतिपादित कीं जिसको समाज अभिशाप समझता था; पर सत्य यह है। कि छायावादी एवम् स्वच्छन्दतावादी आंदोलन अपने निरंकुश रूप में क्रियाशील होने पर समाज के लिए भयंकर विष सिद्ध हो सकता है।

स्वच्छन्दतावादियों एवम् छायावादियों को इस खतरे के बीच से भी गुज़रना पड़ा। यह लिखा जा चुका है कि ये काव्य-सृष्टि के नियामक एवं स्रष्टा दोनों थे। ये अपने ही व्यक्तिगत स्वप्नों, प्रेरणाओं तथा मान्यताओं का विविध उपयोग करते रहे। इन्होंने अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त परम्परित सिद्धान्त का सर्वथा त्याग किया। परिणामस्वरूप वे उस आत्मबल से वंचित रह गये जो विशिष्ट त्रुटियों के बावजूद वर्जिल को 'एनीड' एवम् मिल्टन को 'पैराडाइज लास्ट' लिखने में सक्षम बना

सका। अगर परम्परा को इन लोगों ने मान्यता न दी होती तो शायद विश्व को इन दोनों महाकाव्यों से वंचित रह जाता पड़ता। इन दोनों धाराओं के कवियों ने परम्परा का पूर्ण बहिष्कार करके प्रेरणा को ही काव्य-क्षेत्र के मूल में स्वीकार किया। परन्तु वे यह न समझ पाये कि मात्र प्रेरणा निरंकुश होने पर काव्य-सर्जन के लिए अनुपयोगी है। इसी दृष्टिकोण से सतत् प्रयत्नशील रहने के कारण एक वह भी स्थिति आई जब इस धारा के अधिकांश कवि अपने को उस प्रेरणा-शक्ति से रहित पाये और अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी वे उसको प्राप्त न कर सके। 'कीट्स' और 'शेली' का तो सौभाग्य था कि वे जीवन के छब्बीस और तीस साल में विश्व-कवि होकर इस दुनिया से उठ गये। 'प्रसाद' भी अड़तालीस वर्ष की अल्पायु में ही काल-कवलित हो गए और विश्व-कवियों में गिने जाने लगे। पर 'वर्ड्सवर्थ', 'कोलरिज', 'पन्त', 'निराला' जीवन के अन्त तक इसको बनाये न रख सके। मात्र महादेवी ऐसी कवयित्री हैं जो आज भी निश्चित विचारधारा का ही अनुगमन करती चली जा रही हैं। 'प्रसाद' कृत 'कामायनी' तथा 'निराला' कृत 'तुलसीदास' जैसी रचनाओं के द्वारा छायावाद अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ। इन कवियों में भी आगे कल्पना की प्रेरणा के आधार पर उससे महान् वस्तु प्रदान करने की क्षमता न रही। परिणामस्वरूप यह प्रत्यावर्तन आवश्यक हो गया। सम्भवत: इन धाराओं के कवियों ने परम्परा का अनुमोदन किया होता तो इनकी प्रेरणा-शक्ति इतनी जल्दी क्षीण न हो जाती क्योंकि परंपरा अपने मुक्त रूप में इन शक्तियों को अपने अन्दर निहित कर इनका संवर्द्धन एवं परिवर्द्धन करती रहती है। इन दोनों ही धाराओं के कवि अपनी उन्हीं शक्तियों पर निर्भर रहे जो दूसरों से भिन्न थीं, परिणामस्वरूप ऐसी शक्तियाँ उनका साथ अधिक दिनों तक न दे सकीं और पलायन स्वाभाविक हो गया।

यह भी द्रष्टव्य है कि इन कवियों ने अपने को (ट्रांसडेन्टल) सर्वातिशायी भावना तथा सीमातीत (बियॉन्ड) की कल्पना का तानाबाना बुनने में ही अधिक व्यस्त रखा। इनका विश्व-कल्पना के माध्यम से प्राप्त स्वप्नों का विश्व था। परन्तु इसको उपजीव्य बनाते समय ये जिस प्रकार की अनिश्चितता एवम् विचित्रता से आपादग्रस्त हुए वह स्वाभाविक थी। इन वर्णनातीत उपादानों की अभिव्यक्ति में 'नेति-नेति' की भावना का रहना स्वाभाविक है पर इन कवियों ने जिस विश्वास के साथ उसकी स्पष्टता एवम् ग्राह्यता का उद्घोष किया वह यथार्थ में उसमें कम थी। परिणामस्वरूप इनकी कृतियाँ संदिग्धता से ग्रसित हुईं। प्रायः इस समस्या के सुझाव के लिए इन दोनों ही धाराओं के कवियों ने देवकथाओं का आश्रय लिया। 'तुलसीदास', 'कामायनी', 'कुबलाखाँ', 'हाइपीरियन'.

'एण्डिमिअन', 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड', 'राम की शक्तिपूजा' आदि की सफलता का आधार देवकथाओं के आधार पर उन्हें मूर्त्त रूप देने में निहित है। परन्तु जहाँ कहीं भी देवकथाओं का परित्याग करके इन लोगों ने वर्णन के आधार पर अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है वहाँ प्रायः कुछ अस्पष्टता आ गई है। अपने पूर्वप्रचलित साहित्यिक विधाओं की प्रतिक्रिया के कारण इन धाराओं के कवियों ने अमूर्त्त अभिव्यक्तीकरण को गले लगाया। कभी-कभी 'वर्ड्सवर्थ' एवम् 'शेली' जैसे महान् कवियों ने भी प्राय: वर्णनातीत वस्तुओं को बिना प्रतीक या देवकथाओं के सहारे वर्णन का विषय बनाने का प्रयत्न किया है, पर वे रहस्याभास होकर अप्रभावशील हो गई हैं। इन धाराओं के कवियों ने महत्वपूर्ण समस्या तो उठा दी है, पर यथार्थ के आधार पर उसका हल ढूँढ़ने के बजाय कल्पना के पंखों पर शून्य में उड़ाने भरने लगे हैं, परिणामस्वरूप वह अपूर्ण ही रह गई है। इस प्रकार उन्मुक्त आकाश में कवि-कल्पना के पंखों पर अनन्तता का अवगाहन करने के लिए स्वतन्त्र भाव से प्रयत्नशील कवियों द्वारा एक ऐसी दुरूहता को प्रश्रय दिया गया है जो हमें यथार्थ का दर्शन नहीं करने देती।

इन धाराओं के कतिपय कवियों ने दुर्बोधता को ही काव्य का गुण भी माना है। परिणामस्वरूप दृश्य एवम् ग्राह्य प्रभावों की तुलना में ध्वनि-साम्य, अनुभूति-वैचित्र्य को ही महत्ता दी गई है। जहाँ इनमें संगीत-मोह का समावेश हुआ है। ये कवि प्राय: कुछ भावों को त्याग देते हैं। इसका परिणाम कभी-कभी तो अनुकूल होता है, पर यह कविता की कमजोरी है।

इन कवियों का असंतोष इतना भीषण था कि ये अपनी पलायन-वृत्ति में उन वस्तुओं की अव्यवस्था को भी कम देख सके हैं जो इनकी समझ के परे थीं। इस प्रकार संसृति के नियमों की अवहेलना के साथ शब्दों का संमोहन भी अप्रभावशील हो गया। 'पो' ने अपनी विपत्तियों को संगीतमय बनाकर ध्वनित किया है। इस प्रकार उसके अवसाद में लय एवम् गति का दर्शन भले हो जाय जो स्वच्छन्दतावाद का गुण है, पर वह अपनी अनिश्चित मोहकता एवम् असामान्यता के कारण उलझन ही पैदा करता है। इसी प्रकार की उलझन के चित्र छायावाद में भी उपलब्ध होते हैं। उदाहरणस्वरूप—

> बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
> नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में।
> प्रथम जागृति थी जगत के प्रथन स्पन्दन में।
> प्रलय में मेरा पता, पद-चिह्न जीवन में।

शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में।
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ।

प्रथम भावना जिस अद्वैत कल्पना को लेकर चली है वह वहीं समाप्त हो जाती है। पुनः कवयित्री सृष्टि के उद्भव एवम् विनाश की पहेली समझाकर 'एकोहं बहुस्याम' की कल्पना के आधार पर जीव की चिरन्तनता प्रतिपादित करती हैं। वे पद्य के अन्त तक उसी अद्वैत पर लौट आती हैं। मैं कह नहीं सकता कि इसको मैं कितना सही समझ सका हूँ; फिर अगर समझ भी सका हूँ तो कितनी गुत्थियाँ सुलझानी पड़ी हैं इसको समझने में।

ये संभावित विषमतायें रही हैं जिनके बीच होकर ये कवि क्रियाशील थे। अब उन सीमाओं पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए जिनकी अनुपस्थिति में इन वादों का यह रूप न रहा होता। सी० एम० बावरा का विचार है कि

> "Every successful achievement in art comes from some limitation on the artist's work."

'सभी सफल उपलब्धियाँ कलाकृति पर अंकुश के पश्चात् प्राप्त होती हैं।' स्वच्छन्दतावादी एवम् छायावादी दोनों ही कवि अपनी कविता को अनुभव के विशिष्ट स्तरों तक सीमित करके तथा विभिन्न विषयों का परित्याग करके अपना निश्चित उद्देश्य प्राप्त कर सके। इसके पूर्वप्रचलित परंपरायें एवम् मान्यतायें इनको इस रूप में क्रियाशील होने के लिये बाधक थीं। अतएव, परिणाम यह हुआ कि इन दोनों ही धारा के कवियों ने इनका बहिष्कार करके अपनी नवीन मान्यताओं के आधार पर कार्य करना आरम्भ किया। इसमें पूर्ववर्ती (परंपरावादी) अनुकरण की गन्ध भी न थी। इससे इनकी कला में उदात्तता एवम् विविधता तो आई पर अपनी निश्चित मान्यताओं के कारण यह कुछ सीमाबद्ध हो गई।

अधिक व्यक्तिवादी एवम् प्रोटेस्टेण्ट 'स्पिरिट' का होने के कारण ये धार्मिक दृष्टि से परम्परानुमोदित धर्म के विरुद्ध थे। इनमें प्रत्येक कवि परात्परता (ट्रांसडेन्टलिज़्म) में विश्वास करता था, पर वह भावना उनकी अपनी उपज थी और उनमें भिन्नता भी थी। प्रत्येक कवि शाश्वतता की चर्चा भी करते हैं। पर न तो वे इसको स्पष्ट कर सके हैं और न अपनी मान्यताओं में ही एकमत हो सके हैं। जहाँ कहीं ये अपर विश्व की चर्चा भी किये हैं, वह परंपरावादी मान्यताओं से भिन्न है। 'क्रिस्टिना जार्जिना रोज़ेटी' ने इस बात को माना है कि उसकी प्रार्थना का स्वर्ग ठीक वैसा ही है जैसा बाइबिल में वर्णित है। इस प्रकार यह विचार जनता के लिये सत्य है क्योंकि यह परंपरानुमोदित है। 'सी० जी० रोज़ेटी' की ही तरह 'अबीलार्ड',

'डान्टे', 'होमर', 'तुलसी' आदि कवियों ने भी अपर विश्व का वर्णन किया है। अतीन्द्रिय विश्व के उद्बोधक एवम् संतोष प्रदान करने वाले स्वप्न केवल इसलिये सत्य हैं कि जनता इनमें विश्वास करती है। अज्ञात के अपने अवगाहन में इन दोनों धाराओं के कवि जो भी चित्र दे सके हैं जनता का उसमें वैसा विश्वास नहीं है जैसा कि यह धार्मिक कवियों के चित्रण में करती है। इसका मूल कारण यह है कि विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के कारण ये परंपरानुमोदित अतीन्द्रिय लोक की कल्पना को मानने में असफल रहे। अतएव इस प्रकार मान्यताओं में भिन्नता आ जाना स्वाभाविक था। 'वर्ड्सवर्थ' जैसे कुछ कवि अपने जीवन में ही क्रिस्चियनिटी के परंपरानुमोदित धर्म को मानने लगे थे। परिणामस्वरूप उन्हें अपनी स्वच्छन्दतावादी विचारधाराओं का परित्याग करना पड़ा था, और इसके बाद 'ओड आन इन्टिमेशन आन इम्मारटैलिटी' जैसी कवितायें ही मिल सकीं।

अपनी सर्वातिशायी मान्यताओं को अपरम्परित धर्म में रूपान्तरित करने में भी इनके समक्ष कुछ बाधायें थीं। ये कवि ऊपर विश्व की कल्पनाओं से प्रभावित थे। पर उसको परम्परानुमोदित रूप प्रदान कर सकना इनके लिये असम्भव था। अतएव अपने विश्वास के आधार पर ये नवीन कल्पनायें करते रहे। इस दृष्टि से 'वर्जिल' का उदाहरण लिया जा सकता है, जो मानव-जीवन को बन्दी बनाने वाले रहस्यों में स्वच्छन्दतावादियों की तरह ही विश्वास करता था। उसको यह अनुभव हुआ कि यह दृश्य विश्व ही सब कुछ नहीं है क्योंकि वह कई दृष्टियों से असत्य एवम् स्वप्नमय है। वह इसका समुचित उत्तर न पा सका और उसने यह स्वीकार भी किया कि वह रहस्य को समझाने में असमर्थ है, फिर भी मानव को वह आध्यात्मिक शक्तियों के हाथ का खिलौना मान कर एक आध्यात्मिक विश्वास उत्पन्न कर सका। स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी भी इसी दृष्टिकोण से क्रियारत रहे। इसी उद्देश्य से 'ऐंशिएण्ट, मैरिनर', 'एण्डिमिअन', 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड', 'कामायनी', 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा' आदि कविताओं में उन्होंने देवकथाओं का भी प्रयोग किया, एक अन्तर्दृष्टि-प्रधान प्रभावोत्पादक स्वप्न-लोक का सर्जन भी हुआ, फिर भी उनकी ये भावनाएँ धार्मिक कवियों के स्वप्नों की तरह जनता के विश्वासों का आधार न बन सकीं। वे अपनी भावनाओं की पवित्रता एवम् निस्पृहता के बावजूद वह भक्ति-भावना न ला सके जो धार्मिक उपदेशक ले आने में समर्थ हुए। इसका कारण यह है कि ये कवि रहस्य के उस पहलू से संबद्ध हैं जो यथार्थ न होकर कल्पना-प्रधान है। इस प्रकार जब कभी वे शाश्वत अथवा अपर लोक की चर्चा भी करते हैं तो उस पर उनके कल्पनापूर्ण प्रयत्न का एक झीना आवरण अवश्य पड़ा होता है। अपर विश्व एवम् अदृश्य शक्तियों-संबंधी उनका विचार इस मान्यता का अनु-

मोदन दृष्टिगोचर होता था कि अन्ततोगत्वा मस्तिष्क ही अन्तिम सत्य है और व्यष्टि मस्तिष्क में ही समष्टि मस्तिष्क की अभिव्यक्ति भी संभव है। धर्म मानवीय आत्मा एवम् ईश्वरीय आत्मा में स्पष्ट भेद की मान्यता का मुखापेक्षी है। अतएव ये कवि अपने विश्लेषण में किसी भी प्रकार की धार्मिक स्थिति उत्पन्न कर सकने में असमर्थ रहे।[1]

यथार्थ में दोनों ही धाराओं के कवि कविता के क्षेत्र को विस्तृत करना तो चाहते थे और कुछ हद तक इसको कर सकने में ये समर्थ भी रहे, फिर भी इनकी कतिपय मान्यताओं का इन पर ऐसा एकाधिकार था कि ये न तो उनसे अपने को मुक्त कर पाते थे और न उनके द्वारा क्षेत्र का पूर्ण विस्तार ही संभव हो सकता था। उदाहरणस्वरूप, हम सौन्दर्य एवम् प्रेम को ले सकते हैं जो 'शेली', 'कीट्स', 'बाइरन', 'रोज़ेटी', 'प्रसाद', 'पन्त', 'निराला', 'महादेवी' आदि सभी में वर्त्तमान हैं और इन सभी की कविताओं के मूल प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। यथार्थ में ये इनके व्यक्तित्व पर पूर्ण अधिकार करके इन्हें उदात्त बनाने के मुख्य अस्त्र रहे हैं। ये कवि सौन्दर्य को दृश्य वस्तुओं द्वारा अभिव्यक्त यथार्थ का अन्तिम गुण मानते हैं। वे अपने व्यक्तित्व के सभी समन्वित प्रयत्नों के आधार पर इसको प्राप्त करने के अभिलाषी हैं। उन्हें यह भी ज्ञात था कि इसका अवरोध उस संमोहन द्वारा ही सम्भव है जो यह दूसरों पर डालता है। उन्हें यह भी ज्ञान था कि यह प्रेम के निश्चित क्षेत्र तक ही सीमित है, फिर भी इस ज्ञान के आधार पर किसी भी प्रकार इसका सीमांकन उनके लिये असह्य था। वे कभी इसके उपलब्ध न होने पर अवसाद-ग्रसित भी हो जाते थे। इनके वैयक्तिक जीवन के अनुभवों में इसका मुख्य हाथ था। फिर भी इस विविधता के बावजूद हम यह कह सकते हैं कि उनकी दृष्टियों एवम् मान्यताओं से उनकी यह भावना पूर्णरूपेण घिरी होने के कारण सीमित थी।

इस विचार को स्वीकार करते हुए कि इन दोनों ही धाराओं के कवियों की कविता की अजस्त्र निर्झरिणी इनकी मान्यताओं के दो उपकूलों के बीच ही प्रवाहित होती रही, हमें अधिक सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने पर इनके द्वारा बहुत से अज्ञात स्थलों की खोज के भी दर्शन होते हैं। 'वर्ड्सवर्थ' को प्रभावित करने वाले ग्रामीण दृश्य, जागरण एवम् सुषुप्ति के बीच 'कोलरिज' की चाँदनी का रहस्य, 'शेली' के विचारों की परमानन्द-प्रदात्री कल्पना, 'कीट्स' के विशुद्ध सर्जन का रहस्य, 'रोज़ेटी' के प्रेम द्वारा सौन्दर्य की खोज, 'प्रसाद' के शैवागमों एवम् प्रत्यभिज्ञान के आधार पर दार्शनिक दृष्टिकोण, 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' में 'निराला' का

[1] आर० आई० बावरा, पृ० ८३।

अपराजेय व्यक्तित्व, कवयित्री 'महादेवी' की विरह-वेदना से झंकृत गीत तथा 'पन्त' की सुकुमारता में हमें काव्य के उन स्वरूपों के दर्शन उपलब्ध होते हैं जिनका प्रयोग कम कलाकारों में संभावित है। फिर भी इनके इस विशिष्ट आग्रह के कारण कुछ अन्य कवि अधिक विविध सामाजिक चित्रण प्रदान करने में समर्थ हुए। छायावाद के बाद हिन्दी कविता के क्षेत्र में कोई उतना प्रखरबुद्धि कवि न दृष्टिगोचर हुआ, पर स्वच्छन्दतावाद के ही काल में काम करने वाला 'बाइरन' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। स्वच्छन्दतावादी एवम् छायावादी अधिक उत्तेजना प्रदान करने वाले दृश्यों का ही प्रश्रय लेकर अग्रसर हुए। इन धाराओं के विरुद्ध आधुनिक प्रतिक्रिया का मूल आधार शान्ति एवम् वैचित्र्य की खोज में इनके यथार्थ का बहिष्कार माना जाता है। परन्तु साथ ही यह द्रष्टव्य है कि कविता के सर्जन के लिये वे अपने अंतःकरण के मुखापेक्षी थे और इस प्रकार अपने असामान्य अनुभवों को अपने अन्तराल में ही तटस्थतापूर्वक देखकर शब्दों को रूप देते थे। पर वे ऐसा करने के लिए विवश थे क्योंकि यह आत्मोन्मुखता की प्रवृत्ति पूर्वकाल की प्रतिक्रियास्वरूप उन्हें प्राप्त हुई थी और इसकी तीव्रता के आधार पर वे अपना उत्कृष्ट सर्जन प्रस्तुत करने में समर्थ रहे। इसका जो मूल्य उन्हें चुकाना पड़ा वह भी महँगा था।

महान स्वच्छन्दतावादियों एवम् छायावादियों पर दृष्टिपात करने में हम यह नहीं कह सकते कि रहस्य के प्रति विशिष्ट आसक्ति के कारण ये जीवन का समुचित मूल्यांकन कर सकने में असमर्थ रहे। यह सत्य है कि 'कालिदास', 'तुलसीदास', 'होमर' एवम् 'शेक्सपीयर' की पंक्ति में खड़े होने की क्षमता अपने में न ला सके। फिर भी द्विवेदीयुगीन कवियों, आधुनिक प्रयोगवादी कवियों अथवा अपने पूर्व आने वाले परंपरावादी कवियों की तुलना में ये जीवन से अधिक सामीप्य स्थापित कर सके। परम कल्पनावादी 'ब्लेक' ने भी अपनी असामान्य दृष्टि को दलित एवम् शोषित मानवता की पुकार का माध्यम बनाया। 'प्लेटो' की अतीन्द्रिय विचारधाराओं में शेली को मानवता के उद्धार की प्रतिध्वनि सुन पड़ी। वर्ड्सवर्थ की कविता में काई बटोरनेवाले, सड़क के किनारे शयन करने वाले, शिकारी एवम् छोटी बच्चियों के चित्र उपलब्ध हो जाते हैं। कीट्स की 'हाइपीरियन' में हमें मानवता के अपार दुःखों को झेलने के पश्चात् कवि को अन्तर्दृष्टि प्राप्त होने के उद्बोध का दर्शन होता है। 'कामायनी' में बुद्धि से आक्रान्त व्यक्ति को हृदय की रागात्मिका वृत्ति के प्रश्रय का सन्देश मिलता है। निराला का 'तुलसीदास' सांस्कृतिक पुनरुत्थान का जयगीत होकर भारतीयता का अलंकार बन जाता है। इस प्रकार प्रेमपूर्ण सामंजस्य की जो गुंजार इनकी कृतियों में दृष्टिगोचर हुई, वह अपने स्वरूप में पुरातन होते हुए भी प्रेरणा में सामयिक एवम् नवीन थी। मानवता की

गुत्थी सुलझाने के प्रयत्न में ये एक ऐसा विचार दे सके जो अपने अद्भुत संस्पर्श द्वारा इसकी सुषुप्ति को क्षीण कर सकने में समर्थ था।

इनके साहित्यिक विचार भी कुछ हद तक इनकी सीमा निर्धारित कर सकने के लिये उत्तरदायी रहे। प्राय: इन सभी कवियों ने इस दृष्टि से विचार किया है कि कविता का उद्देश्य क्या होना चाहिए ? स्वच्छन्दतावाद को आश्चर्य का पुनरुत्थान कहा गया है जो कुछ हद तक छायावाद के लिये भी उपयुक्त जान पड़ता है। ये सभी कवि विश्वास करते थे कि मानवीय शक्ति को पंगु कर देने-वाली भावनाओं को आदतों के बन्धन तथ मान्यताओं के निष्क्रिय स्वरूप से मुक्त करना परमावश्यक है। वे इसे तभी सम्भव मानते थे जब परिचित सामान्य काव्य-विषयों के प्रति भी एक असामान्य आनन्दपूर्ण आश्चर्य उत्पन्न किया जा सके। अपनी कविता 'इनटीमेशन इम्मारटैलिटी एन ओड' में वर्ड्सवर्थ जिन विचारों को मान्यता प्रदान कर सका वे ही विचार कोलरिज की इन पंक्तियों में भी ध्वनित होते हैं—

> 'कवि वह है जो बचपन की सरलता को यौवन की
> शक्तियों तक पहुँचा दे। वह आदतों से अप्रभावित
> एवम् परम्पराओं से मुक्त आत्मा के साथ सभी वस्तुओं
> पर बच्चे की आश्चर्य-दृष्टि एवम् ताज़गी से दृष्टि-
> पात कर सके।'

'शेली' ने अपनी 'डिफेन्स आफ पोयट्री' में इसी को मान्यता दिया है। वर्ड्सवर्थ का पात्र 'माइकेल' भी इसी की सूचना देता है। निराला ने भी 'अनामिका' में लिखा है कि—

> 'कितने के भाव रसस्राव पुराने नये,
> संसृति की सीमा के अपर पार जो गये,
> गढ़ा इन्हीं से यह तन,
> दिया इन्हीं से जीवन,
> देखे हैं स्फुरित नयन इन्हीं से,
> कवियों ने परम शान्ति,
> दी जग को चरम शान्ति,
> की अपनी दूर भ्रान्ति इन्हीं से।'

इस प्रकार की जिज्ञासापूर्ण आश्चर्य-भावना का प्रभाव इन दोनों ही धारा के कवियों पर है। विचार-क्षेत्र में इनकी आश्चर्य भावना एवम् वैचित्र्य का विचित्र मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। अतएव यही अद्भुत का आग्रह कुछ

सीमा तक इनके काव्य को परिवेश प्रदान कर सका है। संसृति का एक सजीव स्वप्न दे सकने की अभिलाषा में स्वच्छन्दतावादी कवि 'लाक' यान्त्रिक विचार-दर्शन का परित्याग कर बैठे और ये ऐसा नया आदर्श उपस्थित कने में रत हुए जिसमें मस्तिष्क ही यथार्थ का सर्जक माना गया। छायावादी पूर्व-मान्यताओं में परंपराओं का त्याग कर नवीन परंपराओं को अपनी आवश्यकतानुसार अपनाये। परन्तु इनका मुख्य संबंध अन्तिम सत्य की खोज से जुड़ा था। इनमें 'कोलरिज', 'शेली', 'जयशंकर', 'निराला', 'महादेवी', 'पन्त' आदि ने दर्शनशास्त्र का भी अध्ययन किया था। अतएव अपनी दृष्टि से इनका आध्यात्मिकता में विश्वास होना अस्वाभाविक न था। 'शेली' विचारों का कवि था फिर भी उसके इन विचारों में बुद्धि की अपेक्षा भावुकता का आग्रह परिलक्षित होता है। कोलरिज में भी दर्शन का आग्रह है पर उसकी उत्तम कवितायें इस दर्शन से मुक्त हैं। ब्लेक भी आशंका एवम् अनिश्चिततापूर्ण दार्शनिक विचारों की तुलना में विविध स्वप्नपूर्ण यथार्थ का भान करा सकने वाले विचारों का प्रतिपादक था। कीट्स ने भी बुद्धि के स्थान पर ऐन्द्रियता को ही मान्यता दी है। जयशंकर प्रसाद की आरम्भिक कविताओं में दर्शन का कोई आग्रह परिलक्षित नहीं होता। कामायनी दार्शनिक ग्रंथ है। फिर भी उसमें कविता पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं है। 'पन्त' और निराला' इसी प्रकार के कवि हैं। बाद में चलकर 'पन्त' में भी दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न दृष्टिगोचर हुआ है। इस दृष्टि से महादेवी ही ऐसी कवयित्री हैं जो शुरू से अन्त तक दार्शनिक विचारों को ही अपना कर चली हैं। इस प्रकार इन सभी कवियों में दर्शन के बुद्धिवादी चिन्तन का समावेश है फिर भी इन पर कल्पना का एक आवरण पड़ा हुआ है। इनमें दार्शनिक विशिष्टता है पर वह कल्पना की क्रोड़ में ही पुष्पित एवम् फलित हुई है।

दार्शनिकता पर कल्पना का यह आवरण जहाँ काव्य को सजीवता प्रदान कर सकने में सक्षम है, वहीं यह इसे मुख्य दार्शनिक धाराओं से कुछ विलग भी कर देता है। यथार्थ में हम यह मानते हैं कि इन दोनों ही धाराओं के कवि अन्तर्दृष्टि एवम् आनन्द-प्रदाता प्रेरणाओं के कल्पवृक्ष हैं, फिर भी इस शक्ति को कविता का विषय बनाने पर भी ये उसे सामाजिक परिवेश में ढालने में असमर्थ रहे। इस प्रकार वह भावना जन-भावना न होकर व्यक्ति-भावना अथवा कुछ शिक्षित पढ़े-लिखे लोगों को प्रभावित करने का साधन मात्र बनकर रह गई। परन्तु मेरीं स्वत: धारणा है कि अगर ये कवि तुलसी, सूर, मिल्टन, डाण्टे, वर्जिल और कबीर की श्रेणी में अपने को न ला सके तो उसके

लिये इनको उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि इन सीमाओं के अन्दर क्रियाशील होने के कारण, जो भी अच्छी से अच्छी विचारधारायें मानवता को प्रदान कर सकते थे, किये। कविता में केवल आश्चर्य, अद्भुत एवं स्वप्न का ही समावेश करके संतुष्ट न हुए, अपितु इसके अतिरिक्त, इन कवियों ने कुछ और भी दिया, जो मुख्य रूप से इनका था और इनकी कला का मेरुदण्ड था। ये दृश्य वस्तुओं के विविध स्वरूप में ही अदृश्य की झलक पाते थे। इस प्रकार ये दृश्य उपादानों को प्रकाशित करके उसे सूक्ष्म अदृश्य का ऐसा उपयुक्त माध्यम बना देते थे जिससे दृश्य एवं अदृश्य में कोई सीमारेखा खींच सकना असम्भव हो जाता था। इस प्रकार के प्रयत्न में दृश्य जगत भी आध्यात्मिक दीप्ति से अलंकृत हो उठता था। अति सामान्य वस्तुओं से भी प्रभावित हो कर ये व्यष्टि में समष्टि का आभास पाते थे। ग्रीक विचारक 'पिण्डार' की तरह भारतीय मनीषी भी इस बात को मानते थे कि जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं जब आध्यात्मिक सत्ता सांसारिक स्वरूपों को प्रकाशित करती है और तब मनुष्य भी देवत्व की सीमातीत एवं कालातीत असीम आनन्द-राशि का सुखोपभोग करने लगता है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी कवियों के परिचित दृश्यों के आधार पर अनन्त सत्ता के उपर्युक्त माध्यम से अपरिचित दृश्यों को भी आध्यात्मिक प्रकाश से प्रकाशित कर देनेवाली व्याख्या पर्याप्त सबल आधारों पर आधारित होने के कारण अनुकरणीय एवं महत्वपूर्ण है। इसी सबल सत्ता ने उन दोनों ही विचारधाराओं को वह शक्ति प्रदान की जो आज भी उन्हें अनुकरणीय एवं पठनीय समझती हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि ब्लेक ने कहा है—

> "He who binds to himself a joy
> Does the winged life destroy;
> But he who misses the joy as it flies
> Lives in eternity's sunrise."

'वह जो अपने को प्रेम से आबद्ध कर लेता है, वह कल्पनाशील जीवन को नष्ट कर देता है परन्तु वह जो अदृश्य होने वाले आनन्द को चुम्बित करता है, सदा-सर्वदा शाश्वतता के सूर्योदय में निवास करता है।'

इस प्रकार क्षणिक आनन्द की पकड़ में ही इन दोनों ही धाराओं के कवियों ने आनन्द के शाश्वत विश्व-कपाटों को खोल दिया है। यही भावना इन्हें परंपरावादी कवियों से भिन्न सिद्ध करती है। मैं पहले ही बिहारी एवं निराला की 'सघन

कुंज छाया सुखद शीतल मन्द समीर' तथा 'यमुना' नामक कविता लेकर इसे स्पष्ट कर चुका हूँ। उदाहरणस्वरूप, दो अन्य कवितायें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—

'याद आया उपवन विदेह का,
प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन,
नयनों का नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण
पलकों का नवपलकों पर प्रथमोत्थान-पतन।
काँपते हुए किसलय, झरते पराग-समुदाय,
गाते खग नव जीवन परिचय-तरु मलय-वलय,
ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी नयन कमनीय, प्रथम कम्पन तुरीय।'

यहाँ निराला के राम के हृदय में सीता की कुमारिका छवि विद्युत् की तरह कौंध जाती है। अब ज़रा तुलसी के राम का सीता को भेजा गया संदेश देखा जाय—

कहेउ राम वियोग तव सीता, मो कहूँ सकल भयउ विपरीता।
नूतन किसलय अनल समानू, काल निसा सम निशि शशि भानू।
कुवलय विपिन कुन्तबन सरिसा, वारिध तेल तप्त जनु वरिसा।
जेइ हित कर रहे सोइ पीरा, उरग श्वास सम त्रिविधि समीरा।

....

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत प्रिया एक मन मोरा।
मो मन रहत सदा तोहि पाहीं, जानि प्रीति रस एतनेहि माहीं।

दोनों ही प्रसंग सीता-वियोग के समय के हैं। एक में युद्धस्थल के पश्चात् राम के हृदय में अचानक सीता-प्रेम की स्मृति जाग्रत हो उठती है पर दूसरे में उनकी अनुपस्थिति में प्रकृति के विपरीत आचरण करने के कारण दुःख दिखाया गया है। एक युद्धस्थल की विभिषिका में भी प्रेम का सफल चित्र प्रस्तुत करता है, पर दूसरा प्रीति-रस की व्याख्या द्वारा मन को केवल किसी पूर्वनिश्चित संयोग से प्रिया के पास ही रहना कह कर चुप हो जाता है। एक के प्रकृति-चित्रण में प्रेम का सूक्ष्म वर्णन है, प्रकृति भी उसी रंग में रँगी दीख पड़ती है, पर दूसरा विप्रलम्भ की स्थिति का परम्परानुमोदित वर्णन करके ही संतुष्ट हो जाता है। इस प्रकार का जो अन्तर है वह दृष्टिकोण का अन्तर होते हुए भी स्वच्छन्दतावादी एवं परंपरावादी साहित्य की मान्यताओं का अन्तर भी बन जाता है।

'बावरा' ने भी इसी प्रकार की एक ही स्थिति को दो कवियों द्वारा चित्रित दिखाकर उनका अन्तर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। 'यूरिडाइस' के लिये आर्फीयस के विलाप को भी वर्जिल ने घटना-साम्य के आधार पर चित्रित किया है।

'आरफीयस' उसी प्रकार शोक-संतप्त है जैसे कि एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई बुलबुल अपने उस बच्चे के लिये विलाप कर रही है जो अभी पंखहीन था पर निर्दय हलवाहा उसको घोंसले से उठा ले गया। संपूर्ण रात्रि वह विलाप करती है। पुनः वह उस वृक्ष की डालियों पर बैठकर अपने रुदन को आरम्भ करती है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रदेश में उसकी शोक-सन्तप्त वाणी गुंजित हो उठती है।

परम्परावादी कवि के द्वारा 'बुलबुल की गान' का यह उत्कृष्ट उदाहरण है। यथार्थ में 'वर्जिल' ने इसको मानवीय संस्पर्श प्रदान कर के अधिक करुणामय बनाया है। फिर भी वह एक यथार्थ घटना के अतिरिक्त अन्य किसी भी बात से संबंध नहीं रखता। इसमें वह किसी रहस्य को देखकर परात्परता का आभास नहीं पाता। परन्तु कीट्स इससे भिन्न रूप में बुलबुल के गान को सुनता है। उसके लिये यह संगति मात्र नहीं अपितु वस्तुओं की कालातीत व्यवस्था को प्रकट करने का एक माध्यम है। यथा—

> ''Thou wast not born for death immortal bird.
> No hungry generations tread thee down
> The voice I hear this passing night was heard,
> In ancient days by emperor and clown''

> 'हे अमर चिड़िया ! तुम मरने के लिए नहीं उत्पन्न हुई थी। कोई भी बुभुक्षित पीढ़ी तुम्हें पददलित नहीं कर सकती। आज इस व्यतीत होती हुई रात्रि में मैंने जो शब्द सुना है वह प्राचीन काल में राजा एवम् रङ्क (मोचियों) द्वारा सुना गया था।'

इस कविता में कीट्स ने पहले तो सामान्य चिड़िया को ही सम्बोधित किया है। यही इस कविता की प्रेरणा-स्रोत भी रही है। परन्तु वह तुरन्त ही सामान्य से असामान्य दुनिया में पदार्पण कर जाता है। यहाँ वह बुलबुल का गीत कालातीत गान का प्रतीक बन जाता है।

यथार्थ में इन खतरों एवम् सीमाओं के बावजूद ये दोनों ही वाद समाज में परंपरित मूल्यों की जड़ एवम् शोषक मान्यताओं के विरुद्ध 'उन्मुक्ति का विद्रोही स्वर' लेकर अवतरित हुए। जिस प्रकार मनुष्य की वैयक्तिक चेतना का प्रबुद्ध स्वर इसमें निखर कर सामने आया वह विशेष दर्शनीय है। जब-जब स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन किसी-न-किसी रूप में उदित हुआ है, तब-तब नैतिक बोझ से मुक्त मानव तथा परंपरित मान्यताओं से मुक्त साहित्य को एक नवीन वातावरण, नवीन राग एवम् नवीन जीवन-स्पन्दन का दर्शन हुआ है, रूक्षता के स्थान पर जीते-जागते जीवन-चित्र मिले हैं और बालुका के भीतर भटकती हुई साहित्य-मन्दाकिनी ऊपर आकर अपने नवीन प्रेरणा-स्रोत, नवीन आदर्श एवम् मान्यताओं के आधार पर जनमानस को सिंचित करके उसे हरा-भरा बना सकी है। इसमें स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता है जो मानव को उसके बाह्य आकार को भेदकर इसके अन्तर की ओर उन्मुख होने का आह्वान करती है।

इस प्रकार समाज के जड़ ढाँचे का बहिष्कार कर इन्होंने उसकी नवीन अनुभूतियों के अन्वीक्षण एवम् परीक्षण का मार्ग प्रशस्त किया है। इनके प्रयत्नों से 'काव्य के अन्तरतम में छिपे हुए' कितने हो भावकोष स्वयम् उभर उठे हैं, मानव के रूप एवम् सौन्दर्य पिपासा के कितने ही चिरावृत पक्ष स्पष्ट हो उठे हैं, और कल्पना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तरों को उद्‌बुद्ध कर एक अनुभूत कुतूहल जैसे प्लावन द्वारा मुक्त हो उठा है। इन्हीं के प्रभाव से भाषा में नाना ऋजु एवम् कुटिल अनुभूतियों को अभिव्यक्ति का माध्यम मिल सका है और जीवन एवम् साहित्य इस प्रकार एक होकर एक दूसरे को अनुप्राणित करने लगे हैं। इन्होंने ही जीवन के यथार्थ को आदर्श की मनोहर क्रोड़ में डालकर इस अद्‌भुत समन्वय द्वारा अनुभूतियों का मार्ग प्रशस्त किया है। यथार्थ में इन वादों के अन्दर कितने सत्यों को जन्म मिला यह कहा नहीं जा सकता। 'आशा-निराशा, पीड़ा-दुःख, आनन्द-विषाद, आलस्य एवम् पराजय' आदि जीवन को गतिशील बनाने वाले तत्व इनकी क्रोड़ में क्रियाशील रहे। देवत्व एवम् असुरत्व से परे शक्ति एवम् दुर्बलता के सम्मिलित स्वरूप, यथार्थ मानव का इनके द्वारा सर्वप्रथम साहित्य-क्षेत्र में आविर्भाव हुआ। मनुष्य को मनुष्य रूप में ग्रहण करने के कारण ये सामाजिक गत्यवरोधों को पूर्णरूपेण झकझोरने में समर्थ हुए। केवल व्यक्ति और व्यक्ति में ही नहीं, अपितु आत्मा एवम् शरीर के बीच भी एक समरस सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन दोनों ही धाराओं के कवियों ने हमारे सामान्य अनुभव को एक उत्कृष्ट अतीन्द्रिय व्यवस्था से सम्बद्ध कर संसार के प्रति हमारी दृष्टि को प्रशस्त किया है। हममें इसके द्वारा वह क्षमता उत्पन्न हो सकी है कि हम इसके अन्तराल में निहित रहस्यों के प्रति सतर्क एवम् जागरूक हो सकें। ऐसा

कहा जा सकता है कि यह साहित्य सर्वमान्य नहीं बन सकता। फिर भी यदि समाज में ऐसे लोगों का स्थान है, जो परंपरित मान्यताओं के प्रति विद्रोही दृष्टिकोण रखते हैं और उपस्थित व्यवस्थाओं का परित्याग करना चाहते हैं तो यह उनके लिए आशाप्रद संदेश अवश्य दे सकेगा। इसका मूल कारण यह है कि इसके अन्दर उपस्थित दुनिया के असंतोषों का अनुपस्थित दुनिया के स्वप्नों एवम् संतोषों में परिणत कर देने का अमोघ अस्त्र है। हम इन विधाओं का आलोड़न-प्रलोड़न केवल इसलिए नहीं करते कि इन्होंने अलाउद्दीन के जादुई चिराग़ की तरह कोई नवीन एवम् अघटित कार्य संपादित कर दिया। हम तो इसका अध्ययन इस दृष्टि से करते हैं कि अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति के सहारे इन दोनों ही विधाओं के कवियों ने अपने कर्त्तृत्व में एक नया जीवन-स्पन्दन एवम् युग-सन्देश निहित कर दिया है। वे इस शाश्वत सर्जन की चलती हुई व्यवस्था के तटस्थ दर्शन मात्र नहीं रहे हैं, अपितु जीवन में सक्रिय भाग लेकर इसके यथार्थ एवम् आदर्श स्वप्नों को अपनी कविता-कल्पना के धागे में पिरोने वाले सजग कलाकार हैं। अतएव हम उनकी उस कर्त्तृत्व-शक्ति की प्रशंसा करते हैं जिनके आधार पर हैं अपने सर्जन में उन्मुख होते हुए इस बात का उद्घोष भी करते हैं कि जिन भी समस्याओं का सुलझाव उन्होंने खोजने का प्रयत्न किया है वे किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा अस्वीकृत नहीं की जा सकतीं जो इस विश्व का निवासी है और साथ ही इसके व्यापारों में अन्तर्दृष्टि प्राप्त करना चाहता है।
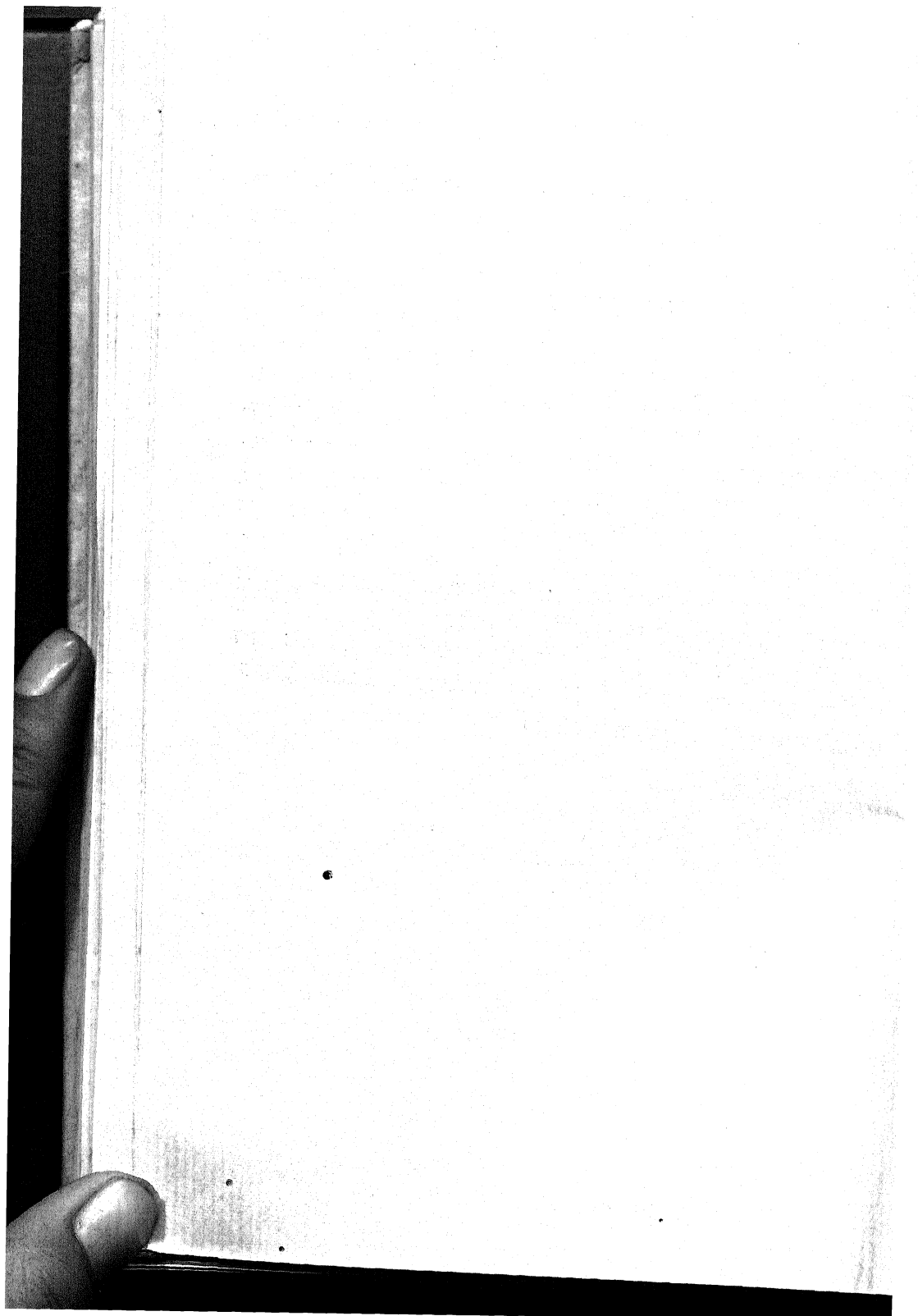
सहायक ग्रन्थ सूची

१. आधुनिक साहित्य	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
२. नया साहित्य नये प्रश्न	,,
३. जयशंकर प्रसाद	,,
४. हिन्दी साहित्य (२० वीं शदी)	,,
५. आधुनिक हिंदी काव्य की प्रवृत्तियाँ	डॉ० नगेन्द्र
६. पन्त	,,
७. विचार एवम् विवेचन	,,
८. विचार एवम् विश्लेषण	,,
९. अरस्तू का काव्यशास्त्र	,,
१०. काव्य-चिन्तन	,,
११. हिंदी साहित्य की भूमिका	डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
१२. अशोक के फूल	,,
१३. साहित्य का मर्म	,,
१४. हिंदी साहित्य का इतिहास	,,
१५. चिन्तामणि (प्रथम-द्वितीय भाग)	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१६. निराला	डॉ० रामविलास शर्मा
१७. स्वाधीनता एवम् राष्ट्रीय साहित्य	,,
१८. प्रगति एवम् परंपरा	,,
१९. छायावाद की काव्य-साधना	प्रो० क्षेम
२०. छायावाद के गौरव-चिह्न	,,
२१. छायावाद का पतन	डॉ० देवराज
२२. रोमांटिक साहित्यशास्त्र	श्री देवराज उपाध्याय
२३. आधुनिक साहित्य का विकास	डॉ० श्रीकृष्ण लाल
२४. विचार-दर्शन	डॉ० रामकुमार वर्मा
२५. हिन्दी कविता में युगान्तर	श्रीसुधीन्द्र, एम० ए०
२६. हिन्दी साहित्य एवम् विभिन्न वाद	श्री रामजी लाल बघौतिया
२७. आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा	डॉ० त्रिभुवन सिंह

२८. छायावाद युग	डॉ० शम्भूनाथ सिंह
२९. आधुनिक काव्यधारा	डॉ० केसरी नारायण शुक्ल
३०. प्रसाद का काव्य	डॉ० प्रेमशंकर तिवारी
३१. क्रान्तिकारी कवि निराला	डॉ० बच्चन सिंह
३२. पंत का काव्य एवम् युग	श्री यशदेव
३३. महादेवी वर्मा	सं० शची रानी गुर्ट
३४. साहित्य-दर्शन	,,
३५. साहित्यिकी	,,
३६. प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन	डॉ० किशोरी लाल
३७. आधुनिक हिन्दी साहित्य	डॉ० लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय
३८. हिन्दी का सामसामयिक साहित्य	पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
३९. छायावाद	डॉ० नामवर सिंह
४०. मूल्य एवं मूल्यांकन	डॉ० रामरतन भटनागर
४१. महाप्राण निराला	श्री गंगाप्रसाद पांडेय
४२. महाकवि निराला	श्री विश्वम्भर उपाध्याय
४२. कवि एवं काव्य	श्री शांतिप्रिय द्विवेदी
४४. संचारिणी	,,
४५. कवि पन्त एवं उनका प्रतिनिधि काव्य	प्रो० शिवनन्दन प्रसाद
४६. छायावाद एवं प्रगतिवाद	प्रो० देवेन्द्र शर्मा
४७. कवि प्रसाद की काव्य-साधना	श्री रामनाथ सुमन
४८. हिंदी कलाकार	डॉ० इन्दनाथ मदान
४९. अभिव्यंजना	श्री भगवानदास तिवारी
५०. काव्य में अभिव्यंजनावाद	श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु
५१. काव्यशास्त्र	डॉ० भगीरथ मिश्र
५२. कामायनी में काव्य, संस्कृति एवं दर्शन	डॉ० द्वारिका प्रसाद
५४. जीवन-तत्व एवं काव्य-सिद्धान्त	श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु
५५. नयी कविता के प्रतिमान	श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा
५६. महाकवि निराला : संस्मरण एवं श्रद्धांजलियाँ	श्री रामकुमार शर्मा
५७. सिद्धान्त एवं अध्ययन	श्री गुलाबराय
५८. काव्य-कला एवं अन्य निबन्ध	जयशंकर प्रसाद

५९. स्कंदगुप्त	जयशंकर प्रसाद
६०. कामायनी, झरना, आँसू, लहर	,,
६१. अजातशत्रु	,,
६२. प्रबन्ध-पद्म, चयन, चाबुक, प्रबन्ध-प्रतिमा, गीतिका, पंत एवं पल्लव, अनामिका	निराला
६३. युगवाणी, ज्योत्स्ना, रश्मि-बन्धन गुंजन, उत्तरा, पल्लव, ग्राम्या, आधुनिक कवि, पल्लविनी	सुमित्रानन्दन पंत
६४. नीरजा, पथ के साथी, सांध्य गीत, रश्मि, आधुनिक कवि, यामा, अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, दीपशिखा, महादेवी का विवेचनात्मक गद्य	महादेवी वर्मा

ENGLISH BOOKS

	Title	Author
1.	History of Criticism and Literary Taste in Europe, Vol. I	Saintsbury.
2.	Biographia Litereria	Cambridge
3.	Eng. Critical Essays	Edmund D. Sones
4.	Literary Criticism in Antiquity, Vol. II	Atkins.
5.	Loci Critici	Saintsbury.
6.	Critical Opinion of W. Wordsworth	Ed. Markham.
7.	Principle of Literary Criticism	L. Abercrombie
3.	Theory of Literature	Warren & Welleck
9.	Making of Literature	Scott James
10.	The Dynamics of Literature	N. G. Starr
11.	Literature & Psychology	F. L. Lucas
12.	Literature & Science	B. I. Evans.
13.	Illusion & Reality	Christopher Caudwell.
14.	Literary Essays	Ezra Pound
15	Meaning of Art	H. Read
16.	Principle of Literary Criticism	I. A. Richard
17.	Appreciation	W. Pater
18.	Approaches to Literature	D. Diaches.
19.	Study of Literature	,,
20.	Progress of Romance	Clara Reeve
21.	On the Application of Epithet Romantic	John Forster
22.	Discrimination of Romanticism	R. O. Love Joy.
23.	The 17th Century Background	Basil Willey
24.	The 18th ,, ,,	,,
25.	Worabsworth	F. W. H. Meyers
26.	,,	Garrod
27.	,,	Walter Raleigh
28.	,,	J. C. Smith
29.	Romantic Movement in Eng. Poetry.	A. Symons

30. A Survey of Eng. Litt., Vol. II — Oliver Elton
31. Essays in Criticism (I&II) — Arnold
32. Oxford Lectures on Poetry — A. C. Bradley
33. Romantic Imagination — Bowara
34. Studies in Poetry — Stopford A. Brooke
35. Oxford Lectures on Poetry — Bradley
36. Collected Essays — Robert Bridges
37. The Romantic Poets — G. Hough
38. Keats Craftsmanship — M. R. Ridley
39. Keats — H. W. Garrod
40. The Life of Keats — Sidney Colvin
41. Keats & Shakespeare — J. Middleton Murray
42. Shelley Godwin & other Circle — H. N. Brialsford
43, Shelley — J. A. Symons
44. Shelley the Man & Poet — Clutton Brock
45. Shelley — Edmund Blunden
46. Main Current in 19th Century Poetry — ...Beandes
47. Shelley's Major Poetry — C. Beker
48. Three Voices of Feeling — H. Read
49. Flowering of Byron's Genius — P. G. True Blood
50. Byron, Poetry & Prose — A. Nichol Smith
51. Rossetti — F. M. Dueffer
52. Literature of Victorian Era — H. Walker
53. Critical History of Eng. Poetry — Grierson & Smith
54. The Eng. Muse — O. Elton
55. Pre-paphaetite and Other Poets — Lafcadio Htarn
56. Mysticism Old & New — Arthur H. Hopkins
57. Shelley & Thought of his Time — Joseph Barrel
58. Critique of Poetry — Michael Roberts
59. The Movement of Thought in 19th Century — G. H. Mead
60. History of Eng. Litt. — C. Rickett
61. History of Eng. Litt. — Legouis & Cazamia
62. Encyclopaedia Britannica, Vol. 19th
63. Encyclopaedia Americana, Vol. 23rd
64 Wordsworth's Poetical Work — E. D. Selincourt
65. Keats ,, — ,, ,,
66. Shelley's Poetical Work — ,, ,,

67. The Poems of S. T. Coleridge — Earnest Hartley Coleridge
68. Byron's Poetical Works — Oxford Press
69. Cambridge History of Eng. Litt.
70. Oxford Dictionary of Quotations
71. Dictonary of World Literature — Shipley
72. Hist. of Eng. Romanticism in 18th & 19th Cen. by — Beers
73. Eng. Romanticism in 19th Century — Babbit
७४. बृहत् हिन्दी अंग्रेजी शब्दकोश—डॉ० हरदेव बाहरी
७५. हिन्दी साहित्य कोश—ज्ञानमंडल लि०

पत्र एवम् पत्रिकाएँ

१. हीरक जयन्ती ग्रन्थ—संपा० डॉ० श्रीकृष्ण लाल एवम् पं० करुणापति त्रिपाठी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
२. अवन्तिका—काव्यालोचनांक
४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका की फाइलें।
५. साहित्य-संदेश की फाइलें।
६. प्रसाद पत्रिका, सन् १९५५।